फलदीपिका

डा० हरिशंकर पाठक

फलदीपिका

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
३४९

श्रीमन्त्रेश्वरविरचिता

फलदीपिका

हिन्दीव्याख्यासहिता

व्याख्याकार

डा. हरिशङ्कर पाठक

ज्यौतिषाचार्य, एम.ए.

भू.पू. पञ्चाङ्गसम्पादक : ज्यौतिष विभाग
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

प्रकाशक
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001
दूरभाष : 2335263

पुर्नमुद्रित संस्करण 2007
मूल्य : 250.00

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं. 21-ए, अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली 110002
दूरभाष : 32996391
ई-मेल : chaukhamba_neeraj@yahoo.com

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर
पो. बा. नं. 2113
दिल्ली 110007
दूरभाष : 23856391

चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001
दूरभाष : 2420404

आमुख

मन्त्रेश्वर कृत फलदीपिका जातक ग्रन्थों की शृङ्खला की एक अनुपम कड़ी है। यह ग्रन्थ अपने मूल रूप में प्राचीन भारतीय लिपि 'ग्रन्थ' में ही उपलब्ध था और दक्षिण भारत में ही प्रचलित और प्रचारित था। १९वीं शताब्दी के तीसरे दशक में यह ग्रन्थ सर्वप्रथम नागरी लिपि में कलकत्ता से मूलरूप में प्रकाशित हुआ। तमिल, तेलगू आदि दक्षिण भारतीय भाषाओं में इसके अनुवाद उपलब्ध थे। १९३७ ई. में इसकी टीका आङ्‌लभाषा में प्रकाशित हुई। इसके बाद ही उत्तर भारत इस अनुपम ग्रन्थ से परिचित हो सका। फिर भी हिन्दी भाषा-भाषी पाठक इस ग्रन्थ की विशिष्टता से प्राय: अनभिज्ञ ही रहे। आज इस ग्रन्थ की कतिपय हिन्दी टीकाएँ उपलब्ध हैं। किन्तु इनमें से कोई भी सन्तोषजनक और ग्रन्थ के मर्म को उद्‌घाटित करने में सफल नहीं रही है। इसी उद्देश्य से मैं इस ग्रन्थ की टीका लिखने में प्रवृत्त हुआ।

इस ग्रन्थ के रचयिता—श्री मन्त्रेश्वर—का जन्म दक्षिण भारत के सुदूरवर्ती तिनेवेली जनपद के निम्बूदरीपाद ब्राह्मण कुल में हुआ था। सुकुन्तलाम्बा इनके कुलदेवता थे। इनके विषय में विशेष कुछ ज्ञात नहीं है। इस ग्रन्थ के रचना काल के सम्बन्ध में भी कोई प्रामाणिक उल्लेख उपलब्ध नहीं है। कुछ विद्वान् इन्हें १३वीं और कुछ १६वीं शताब्दी में मानते हैं। किन्तु १३वीं शताब्दी में इनकी स्थिति भ्रामक लगती है। इस ग्रन्थ के कतिपय श्लोक वैद्यनाथ कृत जातकपारिजात से यथावत् उद्धृत हैं। जातकपारिजात के रचयिता वेंकटाद्रि के पुत्र श्री वैद्यनाथ १४वीं शताब्दी में थे। अत: मन्त्रेश्वर १३वीं शताब्दी में नहीं हो सकते। १६वीं शताब्दी में ही इनका होना अधिक तर्कसंगत लगता है।

इस ग्रन्थ में विषयवस्तु का प्रतिपादन आचार्य ने कुल २८ अध्यायों में किया है; यथा—(१) संज्ञाध्याय, (२) ग्रहभेदाध्याय, (३) वर्गविभागाध्याय, (४) षड्बलनिरूपणाध्याय, (५) कर्मजीवाध्याय, (६) योगभावाध्याय, (७) महाराजयोगाध्याय, (८) लग्नादिद्वादशभावफलाध्याय, (९) मेषादिलग्नफलाध्याय, (१०) कलत्रभावाध्याय, (११) स्त्रीजातकाध्याय, (१२) पुत्रचिन्ताध्याय, (१३) आयुर्भावाध्याय, (१४) रोगाध्याय, (१५) जातकफलसारभूतभावाध्याय, (१६) लग्नादिद्वादशभाव-समुदायफलाध्याय, (१७) निर्याणभावाध्याय, (१८) द्विग्रहयोगाध्याय, (१९) दशाफलाध्याय, (२०) दशापहारफलाध्याय, (२१) भुक्त्यन्तलक्षणाध्याय, (२२) कालचक्रदशाध्याय, (२३) अष्टकवर्गाध्याय, (२४) होरासारोक्त अष्टवर्गफलाध्याय, (२५) उपग्रहाध्याय, (२६) गोचरफलनिर्णयाध्याय, (२७) प्रव्रज्यायोगाध्याय तथा (२८) उपसंहाराध्याय।

इस ग्रन्थ में जातक विषयों पर एक नये दृष्टिकोण का साक्षात्कार होता है जो अन्य ग्रन्थों से थोड़ा भिन्न है। मन्त्रेश्वर के गोचरफल कथन अत्यन्त तर्कपूर्ण और तथ्यात्मक हैं। भावफलकथन में भी मन्त्रेश्वर के वैशिष्ट्य की झलक देखने को मिलती है। सर्वतोभद्र पर

विशेष टिप्पणी दी गयी है जो गोचरफल कथन में विशेष उपयोगी है। तत्सम्बन्धी उदाहरण भी दिये गये हैं। साथ ही कालचक्र दशा की सोदाहरण विशद व्याख्या दी गई है। टीका में आवश्यकतानुसार गणितीय उदाहरण तथा अन्य परम्परागत जातक ग्रन्थों के विचारों को यथास्थान उद्धृत किया गया है।

अन्त में इस ग्रन्थ को अपने शुद्धतम रूप में ज्योतिष जगत् के समक्ष प्रस्तुत करने में अथक, अमूल्य सहयोग और परिश्रम के लिए 'चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन' के व्यवस्थापक गुप्त-बन्धुओं के प्रति मैं अत्यन्त आभारी हूँ।

डा. हरिशङ्कर पाठक

वसन्त पञ्चमी
वि.सं. २०५८

विषयानुक्रम

(५) कर्मजीवभेदाध्याय

(६) राजयोगभेदाध्याय

(७) महाराजयोगभेदाध्याय

(८) भावाश्रयफलभेदाध्याय

(२०) दशापहारफलाध्याय

(२१) प्रत्यन्तर्दशाफलाध्याय

(२२) दशाभेदाध्याय

(२३) अष्टकवर्गाध्याय

(२४) अष्टकवर्गफलाध्याय

(२५) गुलिकाद्युपग्रहाध्याय

(२६) गोचरफलाध्याय

●

॥ श्रीः ॥

फलदीपिका

प्रथमोऽध्यायः

राशिभेदः

सन्दर्शनं वितनुते पितृदेवनृणां
मासाब्दवासरदलैरथ ऊर्ध्वगं यत्।
सव्यं क्वचित् क्वचिदुपैत्यपसव्यमेकं
ज्योतिः परं दिशतु वस्त्वमितां श्रियं नः ॥१॥

ऊर्ध्वाकाश में कभी बायीं ओर और कभी दायीं ओर (उत्तरायण और दक्षिणायन गति से) निरन्तर गतिमान देवलोक, पितृलोक और मृत्युलोक को क्रमशः छः मास तक, एक पक्ष तक तथा आधे दिन अर्थात् १२ घण्टे तक अनवरत दर्शन देने वाले परम ज्योतिःपुञ्ज सूर्य मनुष्यों को अमित वैभव से सम्पन्न करें ॥१॥

वाग्देवीं कुलदेवतां मम गुरून् कालत्रयज्ञानदान्
सूर्यादींश्च नवग्रहान् गणपतिं भक्त्या प्रणम्येश्वरम्।
संक्षिप्यात्रिपराशरादिकथितान् मन्त्रेश्वरो दैवविद्
वक्ष्येऽहं फलदीपिकां सुविमलां ज्योतिर्विदां प्रीतये ॥२॥

मैं मन्त्रेश्वर दैवज्ञ वाग्देवी सरस्वती को, कुलदेवता को अपने गुरुजनों को, कालत्रय—भूतकाल, वर्तमान काल और भविष्य काल—का बोध कराने वाले सूर्यादि नवग्रहों को, गणेश को और देव शङ्कर को प्रणाम कर ज्योतिर्विदों के मोदार्थ महर्षि अत्रि-पराशरादि द्वारा कथित फलों को प्रकाशित करने वाले इस फलदीपिका नामक ग्रन्थ की रचना करता हूँ ॥२॥

पदाभाद्यैर्यन्त्रैर्जननसमयोऽत्र प्रथमतो
विशेषाद्विज्ञेयः सह विघटिकाभिस्त्वथ तदा।
गतैर्दृक्तुल्यत्वं गणितकरणैः खेचरगतिं
विदित्वा तद्भावं बलमपि फलं तैः कथयतु ॥३॥

पद और छाया से अथवा काल-गणना में प्रयुक्त अन्य यन्त्रों के द्वारा सर्वप्रथम फलादेश के मूलाधार जन्मकाल के घट्यादि का निर्णय करना चाहिए। तदुपरान्त दृश्य गणनानुसार ग्रहों की तात्कालिक गति का ज्ञान कर जन्मकाल में ग्रहों की स्थिति का निर्णय करना चाहिए। तब उनके बलाबल का ज्ञान कर उसके आधार पर फलादेश करना चाहिए ॥३॥

कालपुरुष के अङ्ग

शिरोवक्त्रोरोहृज्जठरकटिवस्तिप्रजनन-
स्थलान्यूरूजान्वोर्युगलमिति जङ्घे पदयुगम्।
विलग्नात्कालाङ्गान्यलिझषकुलीरान्तिममिदं
भसन्धिर्विख्याता सकलभवनान्तानपि परे ॥४॥

कालपुरुष के शरीर के विभिन्न अङ्ग लग्न से प्रारम्भ कर जन्माङ्ग के द्वादश भाव क्रमशः १. शिर, २. मुख, ३. वक्ष, ४. हृदय, ५. उदर, ६. कटि, ७. वस्ति (पेडू), ८. गुप्ताङ्ग, ९. ऊरु (जङ्घा), १०. दोनों घुटने, ११. दोनों पिण्डलियाँ और १२. दोनों पैर होते हैं। कर्क, वृश्चिक और मीन राशियों के अन्तिम अंश के अन्तिम भाग (३०वें अंश की ६०वीं कला) को भसन्धि या ऋक्षसन्धि कहते हैं। अन्य के मतानुसार सभी राशियों के अन्तिम अंश के अन्तिम भाग को ऋक्षसन्धि कहते हैं ॥४॥

जन्माङ्ग के द्वादश भाव कालपुरुष के शिर आदि विभिन्न अङ्गों के प्रतीक होते हैं। जैसे लग्न कालपुरुष के शिर का, द्वितीय भाव मुख का, तृतीय भाव कालपुरुष के वक्षःस्थल का प्रतीक होता है इत्यादि। इस प्रकार द्वादश भावों के अङ्गन्यास का उद्देश्य जातक के विभिन्न अङ्गों के आकार-प्रकारादि का अनुमान करना है। जो भाव पापाक्रान्त हो, निर्बल हो उस भाव से सम्बन्धित अङ्ग पीड़ित अथवा अपेक्षया ह्रस्व या निर्बल होगा तथा जो भाव पुष्ट हो, शुभग्रहों से युत या दृष्ट हो उस अङ्ग का समुचित विकास होगा अथवा वह अङ्ग अपेक्षया दीर्घ होगा।

मेषादि राशियों के वासस्थान

अरण्ये केदारे शयनभवने श्वभ्रसलिले
गिरौ पाथः सस्यान्वितभुवि विशां धाम्नि सुषिरे।
ज़नाधीशस्थाने सजलविपिने धाम्नि विचरत्
कुलाले कीलाले वसतिरुदिता मेषभवनात् ॥५॥

१. वनप्रदेश, २. सिंचित कृषिभूमि, ३. शयन कक्ष, ४. जलयुक्त दरार, ५. पर्वत, ६. अन्नयुक्त सिंचित कृषिक्षेत्र, ७. वैश्य का घर, ८. छिद्र, ९. राजगृह, १०. जलयुक्त वन (दलदलीय वन), ११. कुम्भकार गृह तथा १२. जल—ये मेषादि द्वादश राशियों के निवासस्थान हैं ॥५॥

मेषादि राशियों के स्वामी और ग्रहों के उच्च-नीच स्थान

भौमः शुक्रबुधेन्दुसूर्यशशिजाः शुक्रारजीवार्कजाः
मन्दो देवगुरुः क्रमेण कथिता मेषादिराशीश्वराः।
सूर्यादुच्चगृहाः क्रियो वृषमृगस्त्रीकर्किमीनास्तुला
दिक्त्र्यंशैर्मनुयुक्तिथीषुभनखांशैस्तेऽस्तनीचाः क्रमात् ॥६॥

मङ्गल, शुक्र, बुध, चन्द्रमा, सूर्य, बुध, शुक्र, मङ्गल, बृहस्पति, शनि, शनि और बृहस्पति मेषादि राशियों के क्रमशः स्वामी होते हैं।

मेष, वृष, मकर, कन्या, कर्क, मीन और तुला राशियाँ सूर्यादि ग्रहों के उच्च स्थान हैं। इन राशियों में क्रमशः १०°,३°,२८°,१५°,५°,२७° और२०° सूर्यादि ग्रहों के परमोच्च स्थान हैं। उच्च राशियों से सप्तम राशि ग्रहों की नीच राशियाँ कहलाती हैं ॥६॥

ग्रह	स्वामित्व	उच्चस्थान	परमोच्चस्थान	नीचस्थान	परमनीचस्थान
सूर्य	मेष	मेष	रा ०।१०°	तुला	रा ६।२०°
चन्द्रमा	वृष	वृष	रा १।३°	वृश्चिक	रा ७।३°
मङ्गल	मेष, वृश्चिक	मकर	रा ९।२८°	कर्क	रा ३२८°
बुध	मिथुन, कन्या	कन्या	रा ५।१५°	मीन	रा ११।१५°
गुरु	धनु, मीन	कर्क	रा ३।५°	मकर	रा ९।५°
शुक्र	वृष, तुला	मीन	रा ११।२७°	कन्या	रा ५।२७°
शनि	मकर, कुम्भ	तुला	रा ६।२०°	मेष	रा ०।२०°

ग्रहों के स्वामित्व एवं उच्चादि स्थान

राशियों के मूलत्रिकोण और द्विपदादि भेद

सिंहोक्षाजवधूहयाङ्गवणिजः कुम्भस्त्रिकोणा रवेः
ज्ञेन्द्वोस्तूच्चलवान्नखोड्विनशरैर्दिग्भूतकृत्यंशकैः ।
चापाद्यर्धवधूनृयुग्घटतुला मर्त्याश्च कीटोऽलिभं
त्वाप्याः कर्किमृगापरार्द्धशफराः शेषाश्चतुष्पादकाः ॥७॥

सिंह, वृष, मेष, कन्या, धनु, तुला और कुम्भ ये सूर्यादि ग्रहों की मूलत्रिकोण राशियाँ हैं। सिंह राशि में राशि के आदि से २०° तक सूर्य का मूलत्रिकोण, वृष राशि में चन्द्रमा के परमोच्चांश के ४थे अंश से ३०° तक (४° से ३०° तक कुल २७°) चन्द्रमा का मूल-त्रिकोण, मेष राशि में राशि के आदि से १२° पर्यन्त भौम का, कन्या राश में १५वें अंश से २०° पर्यन्त बुध का, धनु राशि में प्रथम १०° (०°–१०°तक) बृहस्पति का, तुला राशि में प्रथम ५° (०°-५°तक) शुक्र का, कुम्भ राशि में प्रारम्भिक २०° (०°-२०°तक) शनि का मूलत्रिकोण होता है।

धनु राशि का पूर्वार्द्ध, कन्या, मिथुन, कुम्भ और तुला राशियाँ द्विपद या मनुष्य राशियाँ हैं। वृश्चिक राशि कीटसंज्ञक तथा कर्क-मकर का उत्तरार्द्ध और मीन ये राशियाँ जलचर राशियाँ हैं। शेष मेष, वृष, सिंह, धनु का उत्तरार्द्ध और मकर का पूर्वार्द्ध ये चतुष्पद राशियाँ हैं ॥७॥

ग्रहों के मूलत्रिकोणबोधक चक्र

ग्रह	मूलत्रिकोण राशियाँ	अंश	स्वगृह
सूर्य	सिंह	०°-२०°	२१°-३०°
चन्द्रमा	वृष	४°-३०°	कर्कराशि
मङ्गल	मेष	०°-१२°	१३°-३०°
बुध	कन्या	१६°-२०°	२१°-३०°
बृहस्पति	धनु	०°-१०°	११°-३०°
शुक्र	तुला	०°-५°	६°-३०°
शनि	कुम्भ	०°-२०°	२१°-३०°

राशियों की द्विपदादि संज्ञा

द्विपद	कीट	जलचर	चतुष्पद
मिथुन, कन्या तुला, कुम्भ धनु का पूर्वार्द्ध	वृश्चिक	कर्क, मीन मकर का उत्तरार्द्ध	मेष, वृष, सिंह धनु का उत्तरार्द्ध मकर का पूर्वार्द्ध

पराशर के मतानुसार तुला राशि में ०°-१५° तक शुक्र का मूलत्रिकोण और शेष १६`-३०° तक उसका स्वगृह होता है।

'शुक्रस्य तु तिथयोंऽशास्त्रिकोणमपरे तुले स्वराशिश्च'। (पराशर)

शीर्षोदय-पृष्ठोदय-उभयोदय राशियाँ

गोकर्क्यश्व्यजनक्रभान्यथ नृयुङ्मीनौ परे राशय-
स्ते पृष्ठोभयकोदयाः समिथुनाः पृष्ठोदयाश्चैन्दवाः।
सौराः शेषगृहाः क्रमेण कथिता रात्रिद्युसंज्ञाः क्रमा-
दूर्ध्वाधःसमवक्रभानि तु पुनस्तीक्ष्णांशुमुक्ताद् गृहात् ॥८॥

वृष, कर्क, धनु, मेष और मकर ये पृष्ठोदय राशियाँ हैं। मीन और मिथुन उभयोदय तथा शेष सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक और कुम्भ शीर्षोदय राशियाँ हैं।

चन्द्रमा के प्रभाव में होने से मिथुन और पृष्ठोदय राशियाँ—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, धनु और मकर—रात्रिबली होती हैं तथा शीर्षोदय राशियाँ—सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कुम्भ और मीन—ये सूर्य के अभाव में होने से दिवाबली होती हैं।

सूर्य जिस राशि में स्थित हो उससे पूर्व राशि से क्रमशः चार-चार राशियाँ क्रमशः ऊर्ध्व, अधः, सम और वक्र संज्ञक होती हैं। शेष आठ राशियों की भी इसी क्रम से ऊर्ध्वादि संज्ञाएँ होती हैं ॥८॥

वृष, कर्कादि पृष्ठोदय राशियों के अधोभाग पहले उदित होते हैं, मिथुन और मीन राशियों के ऊर्ध्व और अधोभाग साथ-साथ उदित होते हैं तथा सिंह, कन्या आदि शीर्षोदय राशियों के शीर्ष या उर्ध्व भाग पहले उदय होने से इन्हें पृष्ठोदय, उभयोदय और शीर्षोदय राशियाँ कहते हैं। पृष्ठोदय राशियाँ सौम्य और शीर्षोदय क्रूर कहलाती हैं तथा उभयोदय राशियाँ सम होती हैं। पृष्ठोदय राशियों में स्थित ग्रह अपनी दशा के प्रारम्भ में, उभयोदय राशियों में स्थित ग्रह दशा के मध्य में तथा पृष्ठोदय राशियों में स्थित ग्रह अपनी दशा के अन्तिम भाग में फलद होते हैं।

कल्पना कीजिए—सूर्य मिथुन राशि में स्थित है। तब मिथुन के पूर्व की राशि वृष ऊर्ध्व संज्ञक, मिथुन अध:, कर्क सम और सिंह वक्र संज्ञक होगा। पुन: कन्या, तुला, वृश्चिक और धनु क्रमश: ऊर्ध्व, अध:, सम और वक्र संज्ञक होंगे तथा मकर, कुम्भ, मीन और मेष राशियों की भी क्रमश: ऊर्ध्व, अध; सम और वक्र संज्ञाएँ होंगी।

वराहमिहिर ने मिथुन राशि को शीर्षोदय की श्रेणी में रखा है, यद्यपि इसे रात्रिबली भी कहा है—

'गोजाश्विकर्किमिथुनास्समृगा निशाख्या: पृष्ठोदया विमिथुना: कथितास्त एव।
शीर्षोदया दिनबलाश्च भवन्ति शेषा लग्नं समेत्युभयत: पृथुरोमयुग्मम्' ॥

(बृहज्जातक)

पराशर ने भी मिथुन को शीर्षोदयी ही माना है।

'शीर्षोदयी नृमिथुनं सगदं च सवीणकम्'। (पराशर)

राशियों के अन्य भेद

मेषादाह चरं स्थिराख्यमुभयं द्वारं बहिर्गर्भभं
धातुर्मूलमितीह जीव उदितं क्रूरं च सौम्यं विदु:।
मेषाद्या: कथितास्त्रिकोणसहिता: प्रागादिनाथा: क्रमा-
दोजर्क्षं समभं पुमांश्च युवतिर्वामाङ्गमस्तादिकम् ॥९॥

मेष राशि से प्रारम्भ कर मीन राशि पर्यन्त १. चर, स्थिर और उभय (द्विस्वभाव); २. द्वार, बाह्य और गर्भ; ३. धातु, मूल और जीव; ४. क्रूर, सौम्य; ५. विषम, सम और ६. पुरुष, स्त्री—ये छ: भेद होते हैं।

अपनी-अपनी त्रिकोण (पञ्चम और नवम) राशियों के सहित ये राशियाँ पूर्वादि चार दिशाओं के स्वामी होते हैं।

सप्तम भाव से द्वादश भाव पर्यन्त राशियाँ कालपुरुष के वामाङ्ग के और लग्न से छठे भाव पर्यन्त भाव उसके दक्षिणाङ्ग के प्रतीक होते हैं।

राशियों के चर-स्थिरादि भेद

	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
१.	चर	स्थिर	उभय	चर	स्थिर	उभय	चर	स्थिर	उभय	चर	स्थिर	उभय
२.	द्वार	बाह्य	गर्भ	द्वार	बाह्य	गर्भ	द्वार	बाह्य	गर्भ	द्वार	बाह्य	गर्भ
३.	धातु	मूल	जीव	धातु	मूल	जीव	धातु	मूल	जीव	धातु	मूल	जीव
४.	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य
५.	विषम	सम	विषम	सम	विषम	सम	विषम	सम	विषम	सम	विषम	सम
६.	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री
स्वामित्व	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर

राशियों के इन भेदों के भिन्न-भिन्न प्रयोजन आचार्यों ने बतलाये हैं। चर राशि के उदयकाल में प्रारम्भ किये गये कार्यों में स्थायित्व का अभाव होता है। स्थिर राशि के उदयकाल में किया गया कार्य स्थिर (दीर्घकालिक) होता है। उभय या द्विस्वभाव राशि के पूर्वार्द्ध में सम्पादित कार्य में स्थायित्व होगा किन्तु उत्तरार्द्ध में कृत कार्य में स्थायित्व का अभाव होगा।

इसी प्रकार द्वारसंज्ञक राशि के उदय काल में नष्ट वस्तु की स्थिति घर के निकट ही कहीं होगी तथा उसकी प्रकृति धातुमूलक होगी। बाह्यसंज्ञक राशि कें उदयकाल में नष्ट वस्तु की स्थिति घर के बाहर होगी तथा उसके काष्ठ निर्मित होने की सम्भावना होती है और यदि गर्भसंज्ञक राशि में प्रश्न हो तो नष्ट वस्तु की स्थिति गृह के भीतर ही होगी। इसके अतिरिक्त लाभालाभ के प्रश्न में भी राशियों के विभाजन का प्रयोग किया जा सकता है। लाभकर ग्रह यदि धातुसंज्ञक राशि में स्थित है तो धातु का, यदि मूलसंज्ञक राशि में उक्त ग्रह स्थित है तो काष्ठनिर्मित पदार्थ का और यदि उक्त ग्रह जीवसंज्ञक राशिगत है तो प्राणी का लाभ होगा। पुरुष या विषम राशि में पुरुषग्रह और स्त्रीसंज्ञक राशि में स्त्रीग्रह बलवान् होते हैं।

राशियों की दिशा से भाग्योदय अथवा लाभ की दिशा का ज्ञान होता है। योगकारक (लाभप्रद) ग्रह जिस राशि में स्थित हो उसकी दिशा में लाभ की अधिक सम्भावना होती है।

भावों के नाम

लग्नं होरा कल्यदेहोदयाख्यं रूपं शीर्षं वर्तमानं च जन्म।
वित्तं विद्या स्वान्नपानानि भुक्तिं दक्षाक्ष्यास्यं पत्रिका वाक्कुटुम्बम् ॥१०॥

लग्न, होरा, कल्य, देह, उदय, रूप, शीर्ष, वर्तमान और जन्म—ये प्रथम भाव के पर्याय हैं। वित्त, विद्या, स्व, अन्नपान (सम्पदादि), भुक्ति, दक्षिण नेत्र, आस्य (मुखाकृति), पत्रिका (लेखन), वाक् (वाणी) और कुटुम्ब—ये द्वितीय भाव की संज्ञाएँ हैं ॥१०॥

दुश्चिक्योरो दक्षकर्णं च सेनां धैर्यं शौर्यं विक्रमं भ्रातरं च।
गेहं क्षेत्रं मातुलं भागिनेयं बन्धुं मित्रं वाहनं मातरं च ॥११॥

राज्यं गोमहिषसुगन्धवस्त्रभूषाः पातालं हिबुकसुखाम्बुसेतुनद्यः ।
राजाङ्कं सचिवकरात्मधीभविष्यज्ज्ञानासून् सुतजठरश्रुतिस्मृतीश्च ॥१२॥

दुश्चिक्य, उर (वक्षःस्थल), दक्षकर्ण, सेना, धैर्य, शौर्य, विक्रम (पराक्रम) और भ्राता—ये तृतीय भाव की संज्ञाएँ हैं।

गृह, क्षेत्र (भूमि, कृषिगत भूमि), मातुल (मामा), भागिनेय (भांजा), बन्धु, मित्र, वाहन, माता, राज्य, गोधन, बैल, भैंस, सुगन्ध, वस्त्र, आभूषण, पाताल, हिबुक, सुख, अम्बु, सेतु और नदी—ये चतुर्थ भाव के पर्याय हैं।

राजाङ्क, सचिव, कर (हाथ), आत्मा, बुद्धि, भविष्य ज्ञान, असु (पुत्र), श्रुति और स्मृति—ये पञ्चम भाव की संज्ञाएँ हैं ॥११-१२॥

ऋणास्त्रचोरक्षतरोगशत्रून् ज्ञात्याजिदुष्कृत्यघभीत्यवज्ञाः ।
जामित्रचित्तोत्थमदास्तकामान् द्यूनाध्वलोकान् पतिमार्गभार्याः ॥१३॥

ऋण, अस्त्र, चोर, क्षत (घाव, चोट), रोग, शत्रु, ज्ञाति (सगोत्रिय), अजि (युद्ध, विवाद, झगड़ा), दुष्कृति (दुष्कर्म), अघ (पापकर्म), भीति (भय) और अवज्ञा (मानहानि, अपमान)—ये छठे भाव के पर्याय हैं।

जामित्र, चित्तोत्थ, मद (कामवासना), अस्त, काम, द्यून, अध्व (मार्ग), लोक, पति और भार्या (स्त्री)—ये सप्तम भाव के पर्याय हैं ॥१३॥

माङ्गल्यरन्ध्रमलिनाधिपराभवायुः
क्लेशापवादमरणाशुचिविघ्नदासान् ।
आचार्यदैवतपितॄन् शुभपूर्वभाग्य-
पूजातपःसुकृतपौत्रजपार्यवंशान् ॥१४॥

माङ्गल्य, रन्ध्र, मलिन, आधि, पराभव, आयु, क्लेश, अपवाद, मृत्यु, अशुचि, विघ्न और दास—ये अष्टम भाव के पर्याय हैं।

आचार्य, दैवत (देवता), पितृ, शुभ, पूर्व भाग्य, पूजा, तप, सुकृत, पौत्र, जप और आर्यवंश—ये नवम भाव की संज्ञाएँ हैं ॥१४॥

व्यापारास्पदमानकर्मजयसत्कीर्तिं क्रतुं जीवनं
व्योमाचारगुणप्रवृत्तिगमनान्याज्ञां च मेषूरणम् ।
लाभायागमनाप्तिसिद्धिविभवान् प्राप्तिं भवं श्लाघ्यतां
ज्येष्ठभ्रातरमन्यकर्णसरसान् सन्तोषमाकर्णनम् ॥१५॥

व्यापार, आस्पद (पद), मान (सम्मान, प्रतिष्ठा), कर्म (व्यवसाय), जय (सफलता), सत् (शुभ), कीर्ति, क्रतु (यज्ञादि धार्मिक अनुष्ठान), जीवन (जीविकोपार्जन), व्योम (ऊर्ध्वाकाश), आचार, (पेशा या व्यवसाय), गुण, प्रवृत्ति, गमन, आज्ञा (प्रशासन) और मेषूरण—ये दशम भाव की संज्ञाएँ हैं।

लाभ, आय, आगमन, आप्ति (प्राप्ति), सिद्धि (कार्य की सफलता), विभव (वैभव), प्राप्ति, भव, श्लाघ्यता, ज्येष्ठ भ्राता या भगिनी, वामकर्ण, सरस (रसमय पदार्थ), सन्तोष और शुभश्रवण—ये एकादश भाव की संज्ञाएँ हैं ॥१५॥

दुःखाङ्घ्रिवामनयनक्षयसूचकान्त्य-
दारिद्र्यपापशयनव्ययरिःफबन्धान्‌ ।
भावाह्वया निगदिताः क्रमशोऽथ लीन-
स्थानं त्रिषड्व्ययपराभवराशिनाम ॥१६॥

दुःख, अंघ्रि (पैर), बायीं आँख, क्षय (हानि), सूचक (संवादवाहक), अन्त्य, दारिद्र्य, पाप (पापकर्म), शयन (बिछावन), व्यय, रिष्फ और बन्धन—ये द्वादश भाव के पर्याय हैं। ये क्रमशः द्वादश भावों के विभिन्न नाम हैं। तृतीय, षष्ठ, अष्टम और द्वादश भावों को लीन स्थान कहा गया है ॥१६॥

भावों की केन्द्रादि संज्ञाएँ

दुःस्थानमष्टमरिपुव्ययभावमाहुः सुस्थानमन्यभवनं शुभदं प्रदिष्टम्‌ ।
प्राहुर्विलग्नदशसप्तचतुर्थभानि केन्द्रं हि कण्टकचतुष्टयनामयुक्तम्‌ ॥१७॥

षष्ठ, अष्टम और द्वादश भाव दुःस्थान या अरिष्टस्थान हैं। शेष भाव सुस्थान या शुभस्थान कहलाते हैं। लग्न, दशम, सप्तम और चतुर्थ भावों को केन्द्र, कण्टक या चतुष्टय कहते हैं ॥१७॥

पणफरमिति केन्द्रादूर्ध्वमापोक्लिमन्तत्‌-
परमथ चतुरस्त्रं नैधनं बन्धुभं च ।
अथ समुपचयानि व्योमशौर्यारिलाभा
नवमसुतभयुग्मं स्यात्‌ त्रिकोणं प्रशस्तम्‌ ॥१८॥

इति मन्त्रेश्वरविरचितायां फलदीपिकायां संज्ञाध्यायो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥
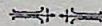
केन्द्र भावों से द्वितीय स्थानों (द्वितीय, पञ्चम, अष्टम और एकादश) को पणफर तथा केन्द्र भावों से तृतीय स्थानों (तृतीय, षष्ठ, नवम और द्वादश) को आपोक्लिम कहते हैं।

चतुर्थ और अष्टम भावों को चतुरस्त्र और तृतीय, षष्ठ, दशम तथा एकादश भावों को उपचय कहते हैं। पञ्चम और नवम भावों को त्रिकोण कहते हैं ॥१८॥

सुस्थान
सुस्थान
सुस्थान उपचय
सुस्थान
सुस्थान उपचय
सुस्थान
सुस्थान उपचय
त्रिकोण सुस्थान
सुस्थान
त्रिकोण सुस्थान
उपचय दुःस्थान
दुःस्थान

पणफर
आपोक्लिम
आपोक्लिम
केन्द्र कण्टक चतुष्टय
पणफर
केन्द्र कण्टक चतुष्टय
केन्द्र कण्टक चतुष्टय
पणफर
केन्द्र कण्टक चतुष्टय
आपोक्लिम
आपोक्लिम
पणफर चतुरस्त्र

तृतीय, षष्ठ, एकादश और दशम भावों को उपचय कहते हैं। किन्तु इनकी उपचय संज्ञा नित्य नहीं है। यदि इन भावों पर पापग्रहों एवं इनके स्वामी के शत्रुग्रह की दृष्टि हो तो इनका उपचयत्व बाधित हो जाता है।

'अथोपचयसंज्ञा स्यात्त्रिलाभरिपुकर्मणाम्।
न चेद्भवन्ति दृष्टास्ते पापस्य स्वामिशत्रुभिः' ॥ (गर्ग)

इन चार भावों के अतिरिक्त अन्य भावों को अपचय कहते हैं।

इस प्रकार मन्त्रेश्वर कृत फलदीपिका में संज्ञाध्याय
नामक पहला अध्याय समाप्त हुआ ॥१॥

○

द्वितीयोऽध्यायः

ग्रहभेदः

प्रथम अध्याय में द्वादश भावों से विचार्य विषयों को आचार्य ने बतलाया है। इस द्वितीय अध्याय में नव ग्रहों के द्वारा विचार्य विषयों को कहते हैं।

सूर्य से विचारणीय विषय

ताम्रं स्वर्णं पितृशुभफलं चात्मसौख्यप्रतापं
धैर्यं शौर्यं समितिविजयं राजसेवां प्रकाशम्।
शैवं कार्यं वनिगिरिगतिं होमकार्यप्रवृत्तिं
देवस्थानं कथयतु बुधस्तैक्ष्ण्यमुत्साहमर्कात् ॥१॥

विज्ञ पुरुषों को ताँबा, सोना, पिता के शुभफल, जातक के स्वयं के सुख, प्रताप, धैर्य, शौर्य, युद्ध में विजय, राजसेवा, प्रकाश (ज्ञान), शिवभक्ति, वन एवं पर्वतीय प्रदेश की यात्रा, हवन, यज्ञादि कार्य में प्रवृत्ति, देवालय आदि का निर्माण, स्वभावगत तीक्ष्णता और उत्साह आदि का विचार सूर्य से करना चाहिए ॥१॥

सूर्य उक्त समस्त पदार्थों एवं विषयों का कारक होता है।

चन्द्रमा से विचारणीय विषय

मातुः स्वस्ति मनःप्रसादमुदधिस्नानं सितं चामरं
छत्रं सुव्यजनं फलानि मृदुलं पुष्पाणि सस्यं कृषिम्।
कीर्तिं मौक्तिककांस्यरौप्यमधुरक्षीरादिवस्त्राम्बुगो-
योषाप्तिं सुखभोजनं तनुसुखं रूपं वदेच्चन्द्रतः ॥२॥

चन्द्रमा से मातृसुख, मानसिक आह्लाद, सागरस्नान; शुभ्र चँवर, छत्र, पंखा आदि राज-चिह्न; फल, पुष्प, अन्न, कृषिकार्य, यश-कीर्ति, मोती, काँसा, चाँदी, मिष्टान्न, खीर, वस्त्र, जल, गौ, स्त्री, भोजन, सुख, शारीरिक सुख और सौन्दर्य का विचार करना चाहिए ॥२॥

भौम से विचारणीय विषय

सत्त्वं भूफलितं सहोदरगुणं क्रौर्यं रणं साहसं
विद्वेषं च महानसाग्निकनकज्ञात्यस्त्रचोरान्रिपून्।
उत्साहं परकामिनीरतिमसत्योक्तिं महीजाद्वदे-
द्वीर्यं चित्तसमुन्नतिं च कलुषं सेनाधिपत्यं क्षतम् ॥३॥

भौम से व्यक्ति के सत्त्व, भूमि से उत्पन्न पदार्थ (खनिज धातु, रत्नादि), सहोदर भाई के गुण, क्रूरता, युद्ध, साहस, विद्वेष, भोजनालय, अग्नि, स्वर्ण, सगोत्रिय, अस्त्र, चोर,

शत्रु, उत्साह, परस्त्री में अनुरक्ति, असत्य भाषण, पुरुषार्थ चित्तवृत्ति का अभ्युत्थान और ह्रास, पापकर्म, सेनाधिपत्य और घाव आदि का विचार करना चाहिए ।।३।।

बुध से विचारणीय विषय

पाण्डित्यं सुवचः कलानिपुणतां विद्वत्स्तुतिं मातुलं
वाक्चातुर्यमुपासनादिपटुतां विद्यासु युक्तिं मतिम् ।
यज्ञं वैष्णवकर्म सत्यवचनं शुक्तिं विहारस्थलं
शिल्पं बान्धवयौवराज्यसुहृदस्तद्भागिनेयं बुधात् ।।४।।

विद्वत्ता, वाक्शक्ति, कला-कौशल में निपुणता, विद्वानों द्वारा प्रशस्ति, मामा, वाक्-चातुर्य, उपासना आदि में पटुता, विद्या में पटुता, यज्ञ, वैष्णव सम्प्रदाय की क्रिया, सत्य भाषण, शुक्ति (सीप), विहार (मनोरंजन) स्थान, शिल्प, बन्धु-बान्धव, युवराज (पद), मित्र और भागिनेय (बहन का पुत्र—भांजा) आदि का विचार बुध से करना चाहिए ।।४।।

बृहस्पति से विचारणीय विषय

ज्ञानं सद्गुणमात्मजं च सचिवं स्वाचारमाचार्यकं
माहात्म्यं श्रुतिशास्त्रधीस्मृतिमतिं सर्वोन्नतिं सद्गतिम् ।
देवब्राह्मणभक्तिमध्वरतपःश्रद्धाश्च कोशस्थलं
वैदुष्यं विजितेन्द्रियं धवसुखं संमानमीड्याद्दयाम् ।।५।।

ज्ञान, पुत्र, सद्गुण, मन्त्री, व्यक्ति के आचार, अध्यापन, श्रेष्ठता (महत्ता), वेद, शास्त्र और स्मृति आदि का ज्ञान, सर्वाङ्गीण विकास, सद्गति, देवता और ब्राह्मण में भक्ति, धार्मिक अनुष्ठान, यज्ञ, तप, श्रद्धा, कोशागार, विद्वत्ता, इन्द्रियनिग्रह, पतिसुख, सम्मान और दया का विचार बृहस्पति से करना चाहिए ।।५।।

शुक्र से विचारणीय विषय

सम्पद्वाहनवस्त्रभूषणनिधिद्रव्याणि तौर्यत्रिकं
भार्यासौख्यसुगन्धपुष्पमदनव्यापारशय्यालयान् ।
श्रीमत्त्वं कवितासुखं बहुवधूसङ्गं विलासं मदं
साचिव्यं सरसोक्तिमाह भृगुजादुद्वाहकर्मोत्सवम् ।।६।।

सम्पत्ति, वाहन, वस्त्र, आभूषण आदि का सुख, धनकोश; नृत्य, गायन, वादन आदि ललित कला; स्त्रीसुख, सुगन्धि, पुष्प, कामवासना, शय्या, भवन, धनसम्पन्नता, कवित्व-शक्ति, अनेक स्त्रियों से विलास, कामुकता, मन्त्रित्व, मिष्टवाक् और विवाहोत्सव आदि का विचार शुक्र से करना चाहिए ।।६।।

शनि से विचारणीय विषय

आयुष्यं मरणं भयं पतिततां दुःखावमानामयान्
दारिद्र्यं भृतकापवादकलुषाण्याशौचनिन्द्यापदः ।

स्थैर्यं नीचजनाश्रयं च महिषं तन्द्रीमृणं चायसं
दासत्वं कृषिसाधनं रविसुतात्कारागृहं बन्धनम् ॥७॥

आयुष्य, मृत्यु, भय, पतन (ऊँचे स्थान अथवा ऊँचे पद से गिरना), दुःख, अवमानना, बीमारी, दरिद्रता, नौकरी, अपवाद (लांछन), कलुष, पाप, अशुचि, निन्दा, विपत्ति (दुर्भाग्य), स्थिरता, निम्नस्तरीय व्यक्तियों का आश्रय, भैंस, तन्द्रामयता, ऋण, लौह पदार्थ, दासता, कृषि उपकरण, कारागार आदि का विचार शनि से करना चाहिए ॥७॥

सप्त ग्रहों के द्वारा विचारणीय विषयों के उल्लेख के बाद अब आगे के सात श्लोकों में उनके स्वरूप, गुण और प्रकृति के विषय में सूचित किया गया है।

सूर्य का स्वरूप और प्रकृति

पित्तास्थिसारोऽल्पकचश्च रक्तश्यामाकृतिः स्यान्मधुपिङ्गलाक्षः ।
कौसुम्भवासाश्चतुरस्रदेहः शूरः प्रचण्डः पृथुबाहुरर्कः ॥८॥

सूर्य की प्रकृति पित्त-प्रधान है। वह पुष्ट अस्थियों वाला, अल्पकेशी, रक्ताभ श्यामल वर्ण, मधु (शहद) के समान पिङ्गल नेत्रों से युक्त है। यह रक्ताम्बर प्रिय है अर्थात् लाल वस्त्र धारण करता है। उसका शारीरिक गठन चौकोर है। वह शूरवीर, दीर्घ भुजाओं से युक्त अति प्रचण्ड है ॥८॥

चन्द्रमा का स्वरूप और प्रकृति

स्थूलो युवा च स्थविरः कृशः सितः कान्तेक्षणश्चासितसूक्ष्ममूर्धजः ।
रक्तैकसारो मृदुवाक् सितांशुको गौरः शशी वातकफात्मको मृदुः ॥९॥

चन्द्रमा स्थूल शरीर, युवा और प्रौढ वय, कृशगात्र, सुन्दर आकर्षक नेत्रों और काले छोटे केशों से युक्त, रक्ताधिक्य, मृदुभाषी, श्वेत वस्त्रधारी, गौर वर्ण और वात-कफ प्रधान प्रकृति और अत्यन्त मृदु स्वभाव का है ॥९॥

भौम का स्वरूप और प्रकृति

मध्ये कृशः कुञ्चितदीप्तकेशः क्रूरेक्षणः पैत्तिक उग्रबुद्धिः ।
रक्ताम्बरो रक्ततनुर्महीजश्चण्डोऽत्युदारस्तरुणोऽतिमज्जः ॥१०॥

भौम के शरीर का मध्य भाग (कटि प्रदेश) अत्यन्त क्षीण है। उसके केश चमकीले और घुँघराले हैं। उसके नेत्रों से क्रूरता झलकती है तथा वह पित्त-प्रधान प्रकृति और उग्र बुद्धि से सम्पन्न है। उसका शरीर रक्त वर्ण है और वह रक्त वर्ण के ही वस्त्र धारण करता है। उसके शरीर में मज्जा की अधिकता है। उग्र स्वभाव का होने पर भी यह अति उदार स्वभाव का तरुण है ॥१०॥

बुध का स्वरूप और प्रकृति

दूर्वालताश्यामतनुस्त्रिधातुमिश्रः सिरावान्मधुरोक्तियुक्तः ।
रक्तायताक्षो हरितांशुकस्त्वक्सारो बुधो हास्यरुचिः समाङ्गः ॥११॥

बुध दूर्वा के समान हरित श्यान वर्ण, वात-पित्त-कफ मिश्रित प्रकृति, शरीर पर उभरी हुई नसें, मृदु भाषी, दीर्घ रक्ताभ नयन और हरे रंग का वस्त्र धारण करने वाला, विनोदप्रिय और सम शरीरधारी है। धर्म पर इसका अधिकार होता है। ॥११॥

बृहस्पति का स्वरूप और प्रकृति

पीतद्युतिः पिङ्गकचेक्षणः स्यात् पीनोन्नतोराश्च बृहच्छरीरः।
कफात्मकः श्रेष्ठमतिः सुरेड्यः सिंहाब्जनादश्च वसुप्रधानः ॥१२॥

पीत आभा से युक्त, पिङ्गल (भूरे) नेत्र और केश, स्थूल और उभरा हुआ वक्ष, बृहदाकार शरीर ऐसा देवगुरु बृहस्पति का स्वरूप है। वह कफ-प्रधान प्रकृति, श्रेष्ठ बुद्धि से युक्त, सिंह और शंख की ध्वनि के समान इसकी आवाज है। यह धनोत्सुक होता है ॥१२॥

'वसुप्रधानः' के स्थान पर कहीं-कहीं 'वसाप्रधानः' पाठान्तर मिलता है। उस स्थिति में 'वसा पर अधिकार होता है' ऐसा अर्थ होगा।

शुक्र का स्वरूप और प्रकृति

चित्राम्बराकुञ्चितकृष्णकेशः स्थूलाङ्गदेहश्च कफानिलात्मा।
दूर्वाङ्कुराभः कमनो विशालनेत्रो भृगुः साधितशुक्लवृद्धिः ॥१३॥

रंग-बिरंगे वस्त्र धारण किये, काले घुँघराले केश, स्थूल अङ्ग और शरीर, कफ-वायु प्रधान (कफ और वायु तत्त्व पर अधिकार रखने वाला), दूर्वा के अङ्कुर के समान कान्ति से युक्त, कमनीय, विशाल नेत्रों से युक्त तथा पौरुष शक्तिसम्पन्न होता है अर्थात् पौरुषशक्ति पर शुक्र का अधिकार होता है ॥१३॥

शनि का स्वरूप और प्रकृति

पङ्गुर्निम्नविलोचनः कृशतनुर्दीर्घः सिरालोऽलसः
कृष्णाङ्गः पवनात्मकोऽतिपिशुनः स्नाय्वात्मको निर्घृणः।
मूर्खः स्थूलनखद्विजः परुषरोमाङ्गोऽशुचिस्तामसो
रौद्रः क्रोधपरो जरापरिणतः कृष्णाम्बरो भास्करिः ॥१४॥

पैर से विकलाङ्ग, सदैव नीचे झुकी आँखें, दुर्बल किन्तु दीर्घ शरीर, नसें उभरी हुईं, वायु-प्रधान प्रकृति, आलसी, कृष्ण वर्ण, अत्यन्त चुगलखोर, स्नायुतन्त्र का अधिकारी, निर्मम, मूर्ख, लम्बे नख और दाँत से युक्त, कड़े रुखे रोमावली से युक्त शरीर, मलिन, तामस प्रकृति, क्रोधी, वृद्ध और काले वस्त्र धारण किये शनि का स्वरूप है ॥१४॥

आगे के श्लोकों में ग्रहों के आवास या विचरण स्थल और देवता आदि का वर्णन किया गया है।

ग्रहों के निवासस्थान

शैवं धाम बहिःप्रकाशकमरुद्देशो रवेः पूर्वदिक्
दुर्गास्थानवधूजलौषधिमधुस्थानं विधोर्वायुदिक्।

चोरम्लेच्छकृशानुयुद्धभुवि दिग्याम्या कुजस्योदिता
विद्वद्विष्णुसभाविहारगणकस्थानान्युदीचीं विदुः ॥१५॥

सूर्य—शिवालय, खुला प्रकाशमान स्थान, निर्जल स्थान (मरुभूमि) और पूर्व दिशा ये सूर्य के आवासस्थल हैं।

चन्द्रमा—दुर्गामन्दिर, वधूकक्ष, औषधिभण्डार, मधु के छत्ते और वायव्य कोण चन्द्रमा के आवासस्थान हैं।

भौम—चोर और म्लेच्छ जाति के निवासस्थल, अग्निस्थान (रसोई, भट्ठी आदि), युद्धभूमि और याम्य (दक्षिण) दिशा मङ्गल के विचरणस्थान हैं।

बुध—विद्वानों के सभास्थल, विष्णुमन्दिर, विहार (मनोरंजन के स्थान), गणक (ज्योतिषी) के स्थान और उत्तर दिशा में विचरण करता है ॥१५॥

कोशाश्वत्थसुरद्विजातिनिलयस्त्वैशानदिग्गीष्पते-
र्वेश्यावीथ्यवरोधनृत्तशयनस्थानं भृगोरग्निदिक् ।
नीचश्रेण्यशुचिस्थलं वरुणदिक्छास्तुः शनेरालयो
वल्मीकाहितमोबिलान्यहिशिखिस्थानानि दिग्रक्षसः ॥१६॥

बृहस्पति—कोशागार, पिप्पल वृक्ष, द्विज-देव स्थान और ईशान कोण बृहस्पति के आवास हैं।

शुक्र—वेश्यागृह, हरम (जनानखाना), नृत्यालय, शयनकक्ष और अग्निकोण शुक्र के वास हैं।

शनि—निम्न जाति की बस्ती, अशुचि स्थान, शास्ता[1] का मन्दिर और पश्चिम दिशा शनि के आवासस्थान हैं।

राहु और केतु—वल्मीक (दीमक) का आवास, सर्प की बाँबी, अन्धकार युक्त बिल और नैर्ऋत्य दिशा राहु और केतु के आवासस्थान हैं ॥१६॥

सूर्यादि ग्रहों के कारकत्व

शैवो भिषङ्नृपतिरध्वरकृत्प्रधानी
व्याघ्रो मृगो दिनपतेः किल चक्रवाकः ।
शास्ताङ्गनारजककर्षकतोयगाः स्यु-
रिन्दोः शशश्च हरिणश्च बकश्चकोरः ॥१७॥

सूर्य के बलवान् होने पर जातक शिवभक्त, चिकित्सक, राजा (अथवा प्रशासक), यज्ञादि अनुष्ठान कराने वाला (पुरोहित) एवं प्रधान होता है तथा सिंह, मृग (हरिण) और चक्रवाक आदि का कारक होता है।

शास्ता देवता के उपासक, स्त्री, धोबी, कृषक, जलचर, खरगोश, हरिण, बक (बगुला) और चकोर आदि पर चन्द्रमा का प्रभाव होता है ॥१७॥

---

१. शास्ता—दाक्षिणात्य प्रदेशों में पूजित एक देवता-विशेष।

भौमो महानसगतायुधभृत्सुवर्ण-
काराजकुक्कुटशिवाकपिगृध्रचोराः ।
गोपज्ञशिल्पगणकोत्तमविष्णुदासा-
स्ताक्ष्यः किकी दिविशुकौ शशिजो बिडालः ॥१८॥

पाकशाला में प्रयुक्त भाण्डादि, शस्त्रादि वहन करने वाला (सैनिक), स्वर्णकार, भेड़, कुक्कुट (मुर्गा), श्रृगाल, बन्दर, गीध और चोर का कारक भौम होता है।

गोपालक, विद्वान्, शिल्प, श्रेष्ठ गणक, विष्णु के उपासक, गरुड़, चातक और बिडाल के कारक बुध होते हैं ॥१८॥

दैवज्ञमन्त्रिगुरुविप्रयतीशमुख्याः
पारावतः सुरगुरोस्तुरगश्च हंसः ।
गानी धनी विटवणिङ्नटतन्तुवाय-
वेश्यामयूरमहिषाश्च भृगोः शुको गौः ॥१९॥

ज्यौतिषी, मन्त्री, गुरु, ब्राह्मण, संन्यासी, विशिष्ट व्यक्ति, अश्व, कबूतर और हंस के कारक बृहस्पति होते हैं।

गायक, धनिक, लम्पट, वणिक (व्यवसायी), व्यभिचारी, वेश्या, नर्तक, मयूर, महिष (भैंस), शुक (तोता) और गौ आदि का विचार शुक्र से करना चाहिए ॥१९॥

तैलक्रयी भृतकनीचकिरातकाय-
स्काराश्च दन्तिकरटाश्च पिकाः शनेः स्युः ।
बौद्धाहितुण्डिकखराजवृकोष्ट्रसर्प-
ध्वान्तादयो मशकमत्कुणकृम्युलूकाः ॥२०॥

तेल का व्यवसायी, भृत्य (दास, नौकर), नीच, वनेचर (जंगल में निवास करने वाली जाति-विशेष), लुहार, हाथी, कौवा और कोयल आदि का विचार शनि से करना चाहिए।

बौद्ध, सर्प पकड़ने वाला (सपेरा), गधा, भेड़, भेड़िया, ऊँट, सर्प, अन्धकारमय स्थान, मच्छर, खटमल, कीट-पतंग और उल्लू आदि का विचार राहु एवं केतु से करना चाहिए ॥२०॥

ग्रहों की मित्रता और शत्रुता

सौम्यः समोऽर्कजसितावहितौ खरांशो-
रिन्दोर्हितौ रविबुधावपरे समाः स्युः ।
भौमस्य मन्दभृगुजौ तु समौ रिपुर्ज्ञः
सौम्यस्य शीतगुररिः सुहृदौ सितार्कौ ॥२१॥

सूर्य के बुध सम (न मित्र न शत्रु), शुक्र और शनि शत्रु हैं (शेष चन्द्र, बृहस्पति और मङ्गल सूर्य के मित्र हैं)। सूर्य और बुध चन्द्रमा के मित्र तथा शेष (मंगल, बृहस्पति, शुक्र

और शनि) सम हैं। शुक्र और शनि मंगल के सम हैं तथा बुध शत्रु है (शेष सूर्य, चन्द्रमा और बृहस्पति मित्र हैं)। चन्द्रमा बुध का शत्रु है तथा सूर्य और शुक्र मित्र हैं (शेष मङ्गल, बृहस्पति और शनि सम हैं) ॥२१॥

सूरेर्द्विषौ कविबुधौ रविजः समः स्या-
न्मध्यौ कवेर्गुरुकुजौ सुहृदौ शनिज्ञौ।
जीवः समः सितविदौ रविजस्य मित्रे
ज्ञेया अनुक्तखचरास्तु तदन्यथा स्युः ॥२२॥

बुध और शुक्र बृहस्पति के शत्रु हैं, शनि सम हैं (शेष सूर्य, चन्द्रमा और मङ्गल उसके मित्र हैं)। शुक्र के मङ्गल और बृहस्पति सम, बुध और शनि मित्र हैं (शेष सूर्य और चन्द्रमा उसके शत्रु हैं)। शनि के शुक्र और बुध मित्र, बृहस्पति सम हैं (शेष सूर्य, चन्द्रमा और मङ्गल उसके शत्रु हैं)।

जिन ग्रहों की चर्चा उपर्युक्त श्लोकों में नहीं की गई है उनके अनुक्त सम्बन्ध समझना चाहिए ॥२२॥

नैसर्गिक मित्र-शत्रु-सम बोधक चक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
मित्र	चं.मं.बृ.	सू.बु.	सू.चं.बृ.	सू.शु.	सू.चं.मं.	बु.श.	बु.शु.
सम	बु.	मं.बु.शु.श.	शु.श.	मं.बृ.श.	श.	मं.बृ.	बृ.
शत्रु	शु.श.	—	बु.	चं.	बु.शु.	सू.चं.	सू.चं.मं.

तात्कालिक मित्रता-शत्रुता और दृष्टि

अन्योन्यं त्रिसुखस्वखान्त्यभवगास्तत्कालमित्राण्यमी
तन्नैसर्गिकमप्यवेक्ष्य कथयेत्तस्यातिमित्राहितान्।
शौर्याज्ञे रविजो गुरुर्गुरुसुतौ भौमश्चतुर्थाष्टमौ
पूर्णं पश्यति सप्तमं च सकलास्तेष्वंघ्रिवृद्ध्या क्रमात् ॥२३॥

दो ग्रह यदि परस्पर एक-दूसरे से तृतीय, चतुर्थ और द्वितीय तथा दशम, द्वादश और एकादश भावों में स्थित हों, तो ये तात्कालिक मित्र होते हैं। तात्कालिक मित्रामित्र और नैसर्गिक मित्रामित्र के अनुसार अतिमित्र या अतिशत्रु आदि का निर्णय करना चाहिए।

शनि अपने स्थान से तृतीय और दशम भाव को, बृहस्पति पञ्चम और नवम भाव को तथा भौम अपने स्थान से चतुर्थ और अष्टम भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता है (यह उनकी विशेष दृष्टियाँ हैं)। सभी ग्रह अपने स्थान से सप्तम भाव को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं तथा उपर्युक्त स्थानों पर उनकी चरण-वृद्धि क्रम से एक, दो और तीन चरण की दृष्टि होती है ॥२३॥

ऊपर के श्लोक में ग्रहों में परस्पर दो प्रकार की मित्रता आदि को बतलाया गया है— नैसर्गिक और तात्कालिक। ग्रह जिस भाव में स्थित होता है उससे द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ,

द्वादश, एकादश और दशम भावों में स्थित ग्रह उसके तात्कालिक मित्र और इनसे इतर भावों में स्थित ग्रह उसके तात्कालिक शत्रु होते हैं। इन दोनों प्रकार की मैत्री से पंचधा मैत्री का निर्णय किया जाता है। एक ग्रह यदि किसी अन्य ग्रह का नैसर्गिक मित्र हो और तात्कालिक मित्र भी हो तो वह अतिमित्र कहलाता है। यदि उक्त ग्रह तात्कालिक शत्रु हो तो वह दूसरे ग्रह का सम होगा। किन्तु नैसर्गिक सम ग्रह तात्कालिक मित्र हो तो उनमें सामान्य मैत्री होती है। इस तथ्य को हम एक तालिका द्वारा स्पष्ट करते हैं।

पंचधा मैत्री

नैसर्गिक मित्र + तात्कालिक मित्र = अतिमित्र
नैसर्गिक सम + तात्कालिक मित्र = मित्र
नैसर्गिक शत्रु + तात्कालिक मित्र = सम
नैसर्गिक सम + तात्कालिक शत्रु = शत्रु
नैसर्गिक शत्रु + तात्कालिक शत्रु = अतिशत्रु

उडुदायप्रदीप में एक ही प्रकार के दृष्टि सम्बन्ध को स्वीकार किया है—

'पश्यन्ति सप्तमं सर्वे शनिजीवकुजाः पुनः।
विशेषतश्च त्रिदशत्रिकोणचतुरष्टमानम्' ॥

किन्तु पराशरादि अन्य आचार्यों ने अन्य ग्रहों की सप्तम भाव पर पूर्ण दृष्टि के अतिरिक्त त्रिदशत्रिकोणचतुरष्ट भावों पर चरणवृद्धि क्रम से दृष्टियों को स्वीकार किया है—

'होराशास्त्रे भिन्नदृष्टिः खेटानां च परस्परम्। त्रिदशे च त्रिकोणे च चतुरस्त्रे च सप्तमे ॥
शनिर्देवगुरुर्भौमः परे च वीक्षणेऽधिकाः। पदार्धत्रिपदं पूर्णं वदन्ति गणकोत्तमाः ॥
शनिपादं त्रिकोणेषु चतुरस्त्रे द्विपादकम्। त्रिपादं सप्तमे विप्र त्रिदशे पूर्णमेव हि ॥
चतुरस्त्रे गुरुः पादं सप्तमे च द्विपादकम्। त्रिपादं त्रिदशे विप्र पूर्णं पश्यति कोणभे ॥
सप्तमे पादमेकं च द्विपादं त्रिदशे द्विज। त्रिपादं च त्रिकोणेषु भौमः पूर्णं चतुरस्त्रगे ॥
अन्येषां त्रिदशे पादं द्विपादं च त्रिकोणगे। चतुरस्त्रे त्रिपादं च पूर्णं पश्यति सप्तमे' ॥
(पराशर)

उपरोक्त विवरण के अनुसार निम्न चक्रानुसार ग्रहों की दृष्टियाँ होती हैं।

दृष्टिचक्र—पराशर

दृष्टि-परिमाण (चरण)	सूर्य	चन्द्र	भौम	बुध	बृहस्पति	शुक्र	शनि
१-१।४	३।१०	३।१०	७	३।१०	४।८	३।१०	५।९ भावाः
२-१।२	५।९	५।९	३।१०	५।९	७	५।९	४।८ भावाः
३-३।४	४।८	४।८	५।९	४।८	३।१०	४।८	७ भावाः
४-पूर्ण.४	७	७	४।८	७	५।९	७	३।१० भावाः

ग्रहों का अधिकार-जाति-गुण आदि

सूर्यादिरयनं क्षणो दिनमृतुर्मासश्च पक्षः शर-
द्विप्रौ शुक्रगुरू रविक्षितिसुतौ चन्द्रो बुधोऽन्त्यः शनिः ।
प्राहुः सत्त्वरजस्तमांसि शशिगुर्वर्काः कविज्ञौ परे
ग्रीष्मादर्ककुजौ शशी शशिसुतो जीवः शनिर्भार्गवः ॥२४॥

सूर्यादि ग्रहों का अधिकार क्रमशः अयन (छः मास), क्षण (२ घटी), १ दिन, २ मास, १ मास, एक पक्ष (१५ दिन) और १ वर्ष होता है।

बृहस्पति और शुक्र ब्राह्मण, सूर्य और भौम क्षत्रिय, चन्द्रमा वैश्य और बुध शूद्र हैं तथा शनि म्लेच्छ वर्ण है।

चन्द्रमा, बृहस्पति और सूर्य सत्त्वगुण-प्रधान ग्रह हैं। शुक्र और बुध राजस गुण प्रधान तथा भौम-शनि तमोगुण-प्रधान ग्रह हैं।

ग्रीष्म ऋतु पर सूर्य और मङ्गल का, वर्षा ऋतु पर चन्द्रमा का, शरद् ऋतु पर बुध का, हेमन्त ऋतु फर बृहस्पति का, शिशिर ऋतु पर शनि का और वसन्त ऋतु पर शुक्र का अधिकार होता है ॥२४॥

ग्रहों के काल-जाति-गुण-ऋतु बोधक चक्र

ग्रह	काल	जाति	गुण	ऋतु
सूर्य	छः मास	क्षत्रिय	सत्त्व	ग्रीष्म
चन्द्र	२ घटी	वैश्य	सत्त्व	वर्षा
भौम	१ दिन	क्षत्रिय	तमस्	ग्रीष्म
बुध	२ मास	शूद्र	राजस	शरद्
गुरु	१ मास	ब्राह्मण	सत्त्व	हेमन्त
शुक्र	१ पक्ष	ब्राह्मण	राजस	वसन्त
शनि	१ वर्ष	म्लेच्छ	तमस्	शिशिर

कतिपय आचार्यों ने चन्द्रमा और बुध को वैश्य माना है।

'गुरुशुक्रौ विप्रवर्णौ कुजार्कौ क्षत्रियौ द्विज ।
शशिसौम्यौ वेश्यवर्णौ शनिः शूद्रो द्विजोत्तमः' ॥ (पराशर)

'विप्रादितः शुक्रगुरू कुजार्कौ शशी बुधश्चेत्यसितोऽन्त्यजानाम् ।'
(वराहमिहिर)

'गुरुशुक्रौ रविरक्तौ चन्द्रः सौम्यः शनैश्चरश्चेति ।
विप्रक्षत्रियविट्शूद्रसङ्कराणां प्रभुत्वकराः' ॥ (सत्याचार्य)

ग्रहों के पित्र्यादि कारकत्व

ताताम्बे रविभार्गवौ दिवि निशि प्राभाकरीन्दू स्मृतौ
तद्व्यस्तेन पितृव्यमातृभगिनीसंज्ञौ तदा तत्क्रमात्।
वामाक्षीन्दुरिनोऽन्यदक्षि कथितो भौमः कनिष्ठानुजो
जीवो ज्येष्ठसहोदरः शशिसुतो दत्तात्मजः संज्ञितः ॥२५॥

दिन में जन्म हो तो सूर्य पितृकारक और शुक्र मातृकारक होते हैं, शनि पितृव्य और चन्द्रमा मातृभगिनी (मौसी) के कारक होते हैं। रात्रिजन्म हो तो शनि पितृकारक और चन्द्रमा मातृकारक तथा सूर्य और शुक्र क्रमशः पितृव्य और मौसी के कारक होते हैं।

सूर्य और चन्द्रमा क्रमशः दक्षिण और वाम नेत्र के कारक हैं। भौम कनिष्ठ भ्राता के और बृहस्पति ज्येष्ठ भ्राता के कारक हैं। बुध दत्तक पुत्र का कारक होता है ॥२५॥

देहो देही हिमरुचिरिनस्त्विन्द्रियाण्यारपूर्वा
आदित्यद्विड्गुलिकशिखिनस्तस्य पीडाकराः स्युः।
गन्धः सौम्यो भृगुजशशिनौ द्वौ रसौ सूर्यभौमौ
रूपौ शब्दो गुरुरथ परे स्पर्शसंज्ञाः प्रदिष्टाः ॥२६॥

चन्द्रमा शरीर का और सूर्य आत्मा का कारक होता है। भौमादि पाँच ग्रह पञ्चज्ञानेन्द्रियों के कारक होते हैं। सूर्य के शत्रुग्रह गुलिक, राहु और केतु जातक को शारीरिक और आत्मिक कष्ट देते हैं।

बुध घ्राणशक्ति का, शुक्र और चन्द्रमा रस (स्वाद या जिह्वा) के कारक हैं। सूर्य और मङ्गल रूप (दृष्टि) के और बृहस्पति शब्द (वाचा = वाक्शक्ति) के कारक हैं। शेष ग्रह शनि, राहु और केतु स्पर्श के कारक हैं ॥२६॥

ग्रह की सबलता या निर्बलता उन अङ्गों को प्रभावित करती है जिनके वे कारक कहे गए हैं। जैसे किसी व्यक्ति के जन्माङ्ग में यदि बुध निर्बल हो तो उस व्यक्ति की घ्राणशक्ति निर्बल होगी। बृहस्पति के बलवान् होने पर जातक अच्छा वक्ता हो सकता है। इसी प्रकार अन्य ग्रहों के विषय में समझना चाहिए।

ग्रहों के शुभत्व और पापत्व

क्षीणेन्द्वर्ककुजाहिकेतुरविजाः पापाः सपापश्च वित्
क्लीबाः केतुबुधार्कजाः शशितमःशुक्राः स्त्रियोऽन्ये नराः।
रुद्राम्बागुहविष्णुधातृकमलाकालाह्यजा देवताः
सूर्यादग्निजलाग्निभूमिखपयोवाय्वात्मकाः स्युर्ग्रहाः ॥२७॥

क्षीण चन्द्रमा, सूर्य, मङ्गल, शनि, राहु तथा केतु और पापग्रह से युक्त बुध—ये पापग्रह हैं।

केतु, बुध और शनि नपुंसक ग्रह हैं। शुक्र, राहु और चन्द्रमा स्त्री ग्रह हैं तथा शेष सूर्य, मङ्गल और बृहस्पति पुरुष ग्रह हैं।

रुद्र (शिव), अम्बा (पार्वती), कार्तिकेय, विष्णु, ब्रह्मा, लक्ष्मी और यम सूर्यादि सात ग्रहों के अधिष्ठाता देवता हैं। राहु के देवता शेषनाग और केतु के देवता ब्रह्मा हैं।

सूर्यादि सात ग्रहों में क्रमशः अग्नि, जल, अग्नि, पृथ्वी, आकाश, जल और वायु तत्त्वों की प्रधानता होती है ॥२७॥

ग्रहों के पापत्त्वादि, तत्त्व और देवता

ग्रह	पाप/शुभ	तत्त्व	देवता
सूर्य	पाप	अग्नि	रुद्र
चन्द्रमा (क्षीण) पूर्णचन्द्र	पाप शुभ	जल -	अम्बा (पार्वती) -
मङ्गल	पाप	अग्नि	गुह (कार्तिकेय)
बुध सपाप बुध शुभयुक्त	पाप शुभ	पृथ्वी	विष्णु
बृहस्पति	शुभ	आकाश	ब्रह्मा
शुक्र	शुभ	जल	लक्ष्मी
शनि	पाप	वायु	यम

कृष्णपक्ष की पञ्चमी से शुक्लपक्ष की पञ्चमी तक चन्द्रमा क्षीण और शेष दिनों में पूर्ण या बली होता है।

सूर्यादि ग्रहों के अन्न-प्रदेश

गोधूमं तण्डुलं वै तिलचणककुलुत्थाढकश्याममुद्गा
निष्पावा माष अर्केन्द्वसितगुरुशिखिक्रूरविद्भृग्वहीनाम्।
भोगीनार्क्यारजीवज्ञशशिशिखिसितेष्वम्बराख्यं कलिङ्गं
सौराष्ट्रावन्तिसिन्धून्सुमगधयवनान्पर्वतान्कीकटांश्च ॥२८॥

सूर्य का अन्न गेहूँ, चन्द्रमा का चावल, शनि का तिल, बृहस्पति का चणक (चना), केतु का कुलुत्थ (कुल्थी), मङ्गल का अन्न दाल, बुध का मूँग, शुक्र का श्याम मूँग और राहु का अन्न उडद है।

राहु, सूर्य, शनि, मङ्गल, बृहस्पति, बुध, चन्द्रमा, केतु और शुक्र के क्रमशः अम्बर, कलिंग, सौराष्ट्र, अवन्ति, सिन्धु, मगध, यवनदेश, पर्वत और कीकट प्रदेश हैं ॥२८॥

अनिष्टकर ग्रहों के प्रभाव से मुक्ति हेतु उस ग्रह के अन्न, रत्न, धातु आदि पदार्थों का दान करना चाहिए। प्रदेशों के अधिकार का प्रयोजन उस प्रदेश का ज्ञान करना है जहाँ जातक की अभिवृद्धि सम्भव हो सकती है। जैसे जन्माङ्ग में जो ग्रह सर्वाधिक बलसम्पन्न हो उसके सम्बन्धित प्रदेश में जातक का समुचित विकास सम्भव हो सकता है।

ग्रहों के रत्न

माणिक्यं तरणेः सुधार्यममलं मुक्ताफलं शीतगो-
र्माहेयस्य च विद्रुमं मरकतं सौम्यस्य गारुत्मतम्।
देवेड्यस्य च पुष्परागमसुरामात्यस्य वज्रं शने-
र्नीलं निर्मलमन्ययोश्च गदिते गोमेधवैदूर्यके ॥२९॥

सूर्य का रत्न माणिक्य है, चन्द्रमा का निष्कलंक मुक्ता, भौम का रत्न मूँगा, बुध का रत्न मरकत मणि (पन्ना), बृहस्पति का रत्न पुखराज, शुक्र का रत्न वज्र (हीरा) और शनि का रत्न नील (नीलम) है। राहु और केतु के रत्न क्रमशः गोमेदक और वैदूर्य मणि (लहसूनियाँ) हैं ॥२९॥

सूर्यादि ग्रहों के अन्न-प्रदेश-रत्नादि बोधक चक्र

ग्रह	अन्न	प्रदेश	रत्न	धातु	रस
सूर्य	गेहूँ	कलिङ्ग	माणिक्य	ताँबा	कटु
चन्द्र	चावल	यवनदेश	मुक्ता (धवल)	काँसा	लवण
भौम	दाल	अवन्ति	मूँगा	ताँबा	तिक्त
बुध	मूँग	मगध	पन्ना	सीसा	मिश्रित
बृहस्पति	चना	सिन्धु	पुखराज	स्वर्ण	मधुर
शुक्र	काली मूँग	कीकट	वज्र (हीरा)	रौप्य	अम्लीय (खट्टा)
शनि	तिल	सौराष्ट्र	नीलम	लोहा	कषाय (कसैला)
राहु	उड़द	अम्बर	गोमेध		
केतु	कुलित्थ (कुल्थी)	पर्वतीय प्रदेश	वैदूर्यमणि		

ग्रहों के धातु, वस्त्र और रस

ताम्रं कांस्यं धातुताम्रं त्रपु स्यात् स्वर्णं रौप्यं चायसं भास्करादेः।
वस्त्रं तत्तद्वर्णयुक्तं विशेषाज्जीर्णं मन्दस्याग्निदग्धं कुजस्य ॥३०॥
भानोः कटुर्भूमिसुतस्य तिक्तं लावण्यमिन्दोरथ चन्द्रजस्य।
मिश्रीकृतं यन्मधुरं गुरोस्तु शुक्रस्य चाम्लं च शनेः कषायः ॥३१॥

ताँबा, काँसा, ताँबा, त्रपु (सीसा), स्वर्ण, रौप्य (चाँदी) और लोहा सूर्यादि ग्रहों के धातु हैं। ग्रहों के वर्ण के अनुसार उनके वस्त्र होते हैं। मङ्गल का वस्त्र दग्ध वस्त्र और शनि का जीर्ण-शीर्ण वस्त्र है।

सूर्य का रस कटु, मंगल का तिक्त, चन्द्रमा का लवण, बुध का मिश्रित, बृहस्पति का मधुर, शुक्र का अम्लीय और शनि का कषाय रस है ॥३०-३१॥

ग्रहों के चिह्नस्थान (लक्षण)

भास्वग्दीष्पतिचन्द्रजक्षितिभुवां स्याद्दक्षिणे लाञ्छनं
शेषाणामितरत्र तिग्मकिरणात्कट्यां शिरःपृष्ठयोः ।
कक्षेंऽसे वदने च सक्थिचरणे चिह्नं वयांस्यर्कतो
नेमे नाथ तटं नखं नग सनि ज्ञानाढ्य नग्नाटनम् ॥३२॥

सूर्य, बृहस्पति, बुध और मंगल शरीर के दक्षिण भाग में चिह्न या लक्षण देते हैं। अन्य ग्रह शरीर के वाम भाग में लक्षण करते हैं। सूर्यादि ग्रह क्रमशः कटिप्रदेश (कमर), शिर, पृष्ठ (पीठ), काँख, स्कन्ध, मुख और पैर पर चिह्न करते हैं।

सूर्य की अवस्था ५० वर्ष, चन्द्रमा की ७० वर्ष, भौम की अवस्था १६ वर्ष, बुध की २० वर्ष, बृहस्पति की ३० वर्ष, शुक्र की ७ वर्ष और शनि की अवस्था १०० वर्ष है। राहु की अवस्था भी १०० वर्ष है ॥३२॥

सूर्यादि ग्रहों के प्रभावाङ्ग, लाञ्छन और आयु

ग्रह	प्रभाव	लाञ्छन	आयु वर्ष
सूर्य	दक्षिणाङ्ग	कटि में	५०
चन्द्र	वामाङ्ग	शिर में	७०
भौम	दक्षिणाङ्ग	पृष्ठ में	१६
बुध	दक्षिणाङ्ग	कुक्षि में	२०
बृहस्पति	दक्षिणाङ्ग	स्कन्ध में	३०
शुक्र	वामाङ्ग	आनन में	७
शनि	वामाङ्ग	पैरों में	१००

केतु-राहु के विषय में विशेष

नीलद्युतिर्दीर्घतनुः कुवर्णः पामी सपाषण्डमतः सहिक्कः ।
असत्यवादी कपटी च राहुः कुष्ठी परान्निन्दति बुद्धिहीनः ॥३३॥
रक्तोग्रदृष्टिर्विषवागुदग्रदेहः सशस्त्रः पतितश्च केतुः ।
धूम्रद्युतिर्धूमप एव नित्यं व्रणाङ्किताङ्गश्च कृशो नृशंसः ॥३४॥

सीसं च जीर्णवसनं तमसस्तु केतो-
र्मृद्भाजनं विविधचित्रपटं प्रदिष्टम् ।
मित्राणि विच्छनिसितास्तमसोर्द्वयोस्तु
भौमः समो निगदितो रिपवश्च शेषाः ॥३५॥

राहु का वर्ण श्यामल, लम्बा शरीर, निम्न जाति का, चर्मरोग से ग्रस्त एवं पाखण्डी है और हकलाकर बोलता है। वह असत्य भाषण करने वाला, धूर्त, कुष्ठरोगी, दूसरों की निन्दा करने वाला और बुद्धिहीन है।

केतु रक्ताभ भयंकर नेत्रों से युक्त, विष में बुझी जिह्वा, उभरी हुई देह, शस्त्रसज्जित और पतित है। धूम के समान उसका वर्ण है और वह नित्य धूम का ही पान करता है। उसका शरीर दुर्बल एवं व्रणचिह्नों से भरा है। वह अत्यन्त नृशंस है।

राहु की धातु सीसा और जीर्ण वस्त्र उसकी भूषा है। केतु का मृत्तिका पात्र और अनेक रंगों से युक्त उसका वस्त्र है। बुध, शुक्र और शनि राहु के मित्र हैं। केतु के भी यही मित्र हैं। मंगल सम और शेष सूर्य, बृहस्पति और चन्द्रमा दोनों के शत्रु हैं ॥३३-३५॥

सुस्थान और दुःस्थान

मूढोऽपि नीचरिपुगोऽष्टमषड्व्ययस्थो
दुःस्थः स्मृतो भवति सुस्थ इतीतरः स्यात्।
चन्द्रे व्ययायतनुषट्सुतकामसंस्थे
तोयाभिवृद्धिमिह शंसति वृद्धिकार्ये ॥३६॥

सूर्य-सान्निध्य में अस्त ग्रह, नीचराशि या शत्रुराशिगत ग्रह; षष्ठ, अष्टम और द्वादश भाव में स्थित ग्रह दुःस्थान में स्थित कहलाते हैं। इनसे अतिरिक्त स्थानों में स्थित ग्रह सुस्थानस्थ या शुभद कहलाते हैं।

जल सम्बन्धी प्रश्न में यदि चन्द्रमा द्वादश भाव में, आय (एकादश) भाव में, तनु (लग्न) भाव में, षष्ठ एवं सुत (पंचम) भाव में अथवा काम (सप्तम) भाव में स्थित हो तो जल की अभिवृद्धि कहना चाहिए ॥३६॥

ग्रह और उनके वृक्ष

अन्तः सारसमुन्नतद्रुररुणो वल्ली सितेन्दू स्मृतौ
गुल्मः केतुरहिश्च कण्टकनगौ भौमार्कजौ कीर्तितौ।
वागीशः सफलोऽफलः शशिसुतः क्षीरप्रसूनद्रुमौ
शूक्रेन्दू विधुरोषधिः शनिरसारागश्च सालद्रुमः ॥३७॥

इति मन्त्रेश्वरविरचितायां फलदीपिकायां ग्रहभेदो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

बृहदाकार अन्तःसार (भीतर से सुदृढ़) वृक्षों पर सूर्य का अधिकार होता है। लताओं पर चन्द्रमा और शुक्र का अधिकार है। गुल्म तथा झाड़ियों पर राहु और केतु का अधिकार है। काँटेदार वृक्षों पर मंगल और शनि का अधिकार है। फलदार वृक्षों पर बृहस्पति का और फलरहित वृक्षों पर बुध का अधिकार होता है। दुग्धधारी और पुष्प देने वाले वृक्षों पर चन्द्रमा और शुक्र का, वनौषधियों पर चन्द्रमा का अधिकार होता है। रस विहीन निर्बल वृक्षों पर शनि का अधिकार होता है। साल वृक्ष पर राहु का अधिकार होता है ॥३७॥

इस प्रकार मन्त्रेश्वर कृत फलदीपिका में ग्रहभेद
नामक दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥२॥

तृतीयोऽध्यायः

वर्गभेदः

एक राशि में ३० अंश होते हैं। राशि को पूर्वाचार्यों ने दश प्रकार से विभाजित किया है। इनको अलग-अलग नाम दिये हैं। इन्हीं विभाजनों को वर्ग कहा गया है। १. गृहक्षेत्र या राशि, २. होरा, ३. द्रेष्काण, ४. सप्तमांश, ५. नवमांश या नवांश, ६. दशमांश, ७. द्वादशांश, ८. कलांश या षोडशांश, ९. त्रिंशांश और १०. षष्ट्यंश—ये दश वर्ग हैं। इन दश वर्गों में १. गृह, २. होरा, ३. द्रेष्काण, ४. सप्तमांश, ५. नवांश, ६. द्वादशांश और ७. त्रिंशांश इनको सप्त वर्ग कहते हैं। सप्तवर्ग में सप्तमांश को छोड़कर १. गृह, २. होरा, ३. द्रेष्काण, ४. नवांश, ५. द्वादशांश और ६. त्रिंशांश को षड्वर्ग कहते हैं।

इस अध्याय में इन्हीं दश वर्गों की चर्चा विस्तार से की गई है।

क्षेत्रत्रिभागनवभागदशांशहोरा-
त्रिंशांशसप्तलवषष्टिलवाः कलांशाः।
ते द्वादशांशसहिता दशवर्गसंज्ञा
वर्गोत्तमो निजनिजे भवने नवांशः ॥१॥

१. क्षेत्र (३०°)
२. द्रेक्काण (३०°/३ = १०°)
३. नवांश (३०°/९ = ३°२०′)
४. दशांश (३०°/१० = ३°)
५. होरा (३०°/२ = १५°)
६. त्रिंशांश (३०°/३० = १°)
७. सप्तमांश (३०°/७ = ४°१७′८.५″)
८. षष्ठ्यंश (३०°/६० = ०°३०′)
९. कलांश (३०°/१६ = १°५२′३०″)
१०. द्वादशांश (३०°/१२ = २°३०′)

ये दश वर्ग हैं। राशि के उस नवांश को जो उसी राशि का होता है, वर्गोत्तम कहते हैं ॥१॥

चर राशि का प्रथम नवांश, स्थिर राशि का पंचम नवांश और द्विस्वभाव राशि का नवम नवांश वर्गोत्तमसंज्ञक होता है।

सप्तवर्ग और षड्वर्ग

दशांशषष्ट्यंशकलांशहीनास्ते सप्तवर्गाश्च विसप्तमांशाः।
षड्वर्गसंज्ञास्त्वथ राशिभावतुल्यं नवांशस्य फलं हि केचित् ॥२॥

उपर्युक्त दश वर्गों में दशांश, षष्ट्यंश और कलांश का त्याग करने पर १. क्षेत्र, २. होरा, ३. द्रेक्काण, ४. सप्तमांश, ५. नवमांश, ६. द्वादशांश और ७. त्रिंशांश के रूप में

सप्तवर्ग बचता है। इस सप्तवर्ग में सप्तमांश का त्याग करने पर छः वर्ग या षड्वर्ग शेष रहता है।

कुछ आचार्यों के मतानुसार राशि और भाव फल के समान ही नवांश का फल होता है।

विभिन्न वर्गों में फलप्रमाण

क्षेत्रेषु पूर्णमुदितं फलमन्यवर्गे-
ष्वर्द्धं कलादशमषष्टिलवेषु पादम्।
बालः कुमारतरुणौ प्रवया मृतः षड्
भागः क्रमाद्युजि विपर्ययमित्यवस्थाः ॥३॥

राशिवर्ग में पूर्ण फल होता है। षोडशांश, दशमांश और षष्ट्यंश वर्गों में एक चौथाई तथा शेष होरा, द्रेक्काण, नवमांश, सप्तमांश, द्वादशांश और त्रिंशांश वर्गों में आधा फल प्राप्त होता है।

बाल, कुमार (तरुण), युवा, वृद्ध और मृत विषम राशि में ग्रहों की पाँच अवस्थाएँ क्रम से होती हैं। समराशि में इसके विपरीत क्रम से ग्रहों की अवस्थाएँ होती हैं। ये अवस्थाएँ ६°-६° की होती हैं ॥३॥

कोई ग्रह स्वराशि में स्थित होकर पूर्ण फल देता है। सप्तवर्ग के अन्य वर्गों में यदि ग्रह स्ववर्ग में हों तो आधा फल ही देता है तथा दशमांश, षोडशांश और षष्ट्यंश में केवल चतुर्थांश फल देता है।

कुछ आचार्यों के अनुसार नवमांश वर्ग में भी ग्रह पूर्ण फल देते हैं।

ग्रहों की पाँच अवस्थाओं की चर्चा उपर्युक्त श्लोक में आयी है। यदि कोई ग्रह विषम राशि के प्रारम्भिक ६° अंशों में स्थित हो तो उसकी बाल्यावस्था होती है। ६° से १२° तक उसकी तरुणावस्था होती है। १२° से १८° तक युवावस्था, १८°-२४° तक वृद्धावस्था और २४°-३०° तक ग्रह की मृत अवस्था होती है। सम राशि में इसके विपरीत अवस्थाएँ होती हैं। आगे चक्र देखिए।

ग्रह-अवस्थाबोधक चक्र

विषमराशि	विस्तार	समराशि
बाल	०°-६°	मृत
तरुण	६°-१२°	वृद्ध
युवा	१२°-१८°	युवा
वृद्ध	१८°-२४°	तरुण
मृत	२४°-३०°	बाल

होरा-द्रेष्काण-द्वादशांश-त्रिंशांश-नवांश

क्षेत्रस्यार्द्धं हि होरा त्वयुजि रविसुधांश्वोः समे व्यस्तमेतद्
द्रेष्काणेशास्त्रिभागैस्तनुसुतशुभपा द्वादशांशस्तु लग्नात्।

भौमार्कीड्यज्ञशुक्राः शिशुजसमलवा ह्योजभे युग्मभे तद्-
व्यस्तं त्रिंशांशनाथाः क्रियमकरतुलाः कर्कटाद्या नवांशाः ।।४।।

होरा—राशि के आधे भाग (१५°) को होरा कहते हैं। विषमराशि में प्रथम होरा सूर्य की और द्वितीय होरा चन्द्रमा की होती है। समराशि में इसके विपरीत प्रथम होरा चन्द्रमा की और द्वितीय होरा सूर्य की होती है।

द्रेष्काण—राशि के तृतीय भाग ($\frac{३०^\circ}{३}$=१०°) को द्रेष्काण या द्रेक्काण कहते हैं। एक राशि में तीन द्रेष्काण होते हैं। राशि का प्रथम द्रेष्काण उसी राशि का, द्वितीय द्रेष्काण उससे सुत (पंचम) राशि का और तीसरा द्रेष्काण शुभ (नवम) राशि का होता है।

द्वादशांश—राशि के बारहवें भाग को द्वादशांश ($\frac{३०^\circ}{१२}$=२°३०′) कहते हैं। २°३०′ का एक द्वादशांश होता है। उसी राशि से प्रारम्भ कर बारह द्वादशांश क्रमशः बारह राशियों के होते हैं।

त्रिंशांश—राशि के ३०वें भाग ($\frac{३०^\circ}{३०}$=१°) को त्रिंशांश कहते हैं। विषमराशि में प्रथम ५° के स्वामी भौम, अग्रिम ५° के स्वामी शनि, उससे अगले ८° के स्वामी बृहस्पति, उसके बाद के ७° के स्वामी बुध और अन्तिम ५° के स्वामी शुक्र होते हैं।

समराशियों में अंशों के स्वामी विपरीत क्रम से होते हैं अर्थात् प्रथम ५° के स्वामी शुक्र, अग्रिम ७° के स्वामी बुध, अगले ८° के स्वामी बृहस्पति, उसके अग्रिम ५° के स्वामी शनि और अन्तिम ५° के स्वामी मंगल होते हैं।

नवांश—एक राशि के नवें भाग को ($\frac{३०^\circ}{९}$=३°२०′) नवमांश कहते हैं। मेष राशि से प्रारम्भ कर राशियों के प्रथम नवांश मेष, मकर, तुला और कर्क राशियों के क्रम से होते हैं ।।३-४।।

एक राशि में ३०° अंश होते हैं। इसका आधा अर्थात् १५° की एक होरा होती है। विषमराशि के प्रथम १५° के स्वामी सूर्य और अन्तिम १५° अंश के स्वामी चन्द्रमा होते हैं। समराशियों में इसके विपरीत स्वामित्व होता है। समराशि में प्रथम १५° के स्वामी चन्द्रमा और अन्तिम १५° के स्वामी सूर्य होते हैं।

स्पष्टार्थ होराचक्र

राशियाँ	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
प्रथम होरा ०°-१५°	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	च्नं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.
द्वितीय होरा १५°-३०°	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.

एक राशि (=३०°) के तीसरे भाग अर्थात् १०° के खण्ड को द्रेष्काण या द्रेक्काण कहते हैं। इस प्रकार एक राशि में १०° के तीन द्रेक्काण होते हैं। उस राशि के स्वामी ही

प्रथम द्रेष्काण के स्वामी होते हैं। उस राशि से पंचम राशि के स्वामी ग्रह द्वितीय द्रेष्काण के स्वामी होते हैं तथा उस राशि से नवम राशि के स्वामी ग्रह तृतीय द्रेष्काण के स्वामी होते हैं।

स्पष्टार्थ द्रेष्काण चक्र

राशियाँ		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
प्रथम द्रेष्काण प्रथम १०°	राशि-स्वामी	१ सू.	२ शु.	३ बु.	४ चं.	५ सू.	६ बु.	७ शु.	८ मं.	९ बृ.	१० श.	११ श.	१२ बृ.
द्वितीय द्रेष्काण ११°-१२°	राशि-स्वामी	५ सू.	६ बु.	७ शु.	८ मं.	९ बृ.	१० श.	११ श.	१२ बृ.	१ मं.	२ शु.	३ बु.	४ चं.
तृतीय द्रेष्काण २१°-३०°	राशि-स्वामी	९ बृ.	१० श.	११ श.	१२ बृ.	१ मं.	२ शु.	३ बु.	४ चं.	५ सू.	६ बु.	७ शु.	८ मं.

उदाहरण के लिए मिथुन राशि में प्रथम द्रेष्काण मिथुन का ही होगा जिसके स्वामी बुध होंगे। द्वितीय द्रेष्काण मिथुन से पाँचवीं राशि तुला का होगा और उसके स्वामी शुक्र होंगे। तीसरा द्रेष्काण कुम्भ राशि का होगा और शनि उसके स्वामी होंगे। सूर्य का स्पष्ट भोग राश्यादि २।१८।२३।३४ हो तो सूर्य मिथुन राशि के द्वितीय तुला के द्रेष्काण में होगा और शुक्र द्रेक्काणेश होंगे। मिथुन के द्वितीय होरा में सूर्य होगा और होरेश चन्द्रमा होंगे।

एक राशि का १२वाँ भाग २°३०′ का एक द्वादशांश होता है। प्रत्येक राशि के द्वादश द्वादशांश उसी राशि से प्रारम्भ होकर क्रमश: द्वादश राशियों के होते हैं और उन राशियों के स्वामी तत्तद् द्वादशांशों के स्वामी होते हैं। स्पष्टार्थ चक्र देखिए।

द्वादशांश चक्र

द्वादशांश \ राशियाँ	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
०°-२°३०′	१ मं.	२ शु.	३ बु.	४ चं.	५ र.	६ बु.	७ शु.	८ मं.	९ बृ.	१० श.	११ श.	१२ बृ.
५°०′	२ शु.	३ बु.	४ चं.	५ र.	६ बु.	७ शु.	८ मं.	९ बृ.	१० श.	११ श.	१२ बृ.	१ मं.
७°३०′	३ बु.	४ चं.	५ र.	६ बु.	७ शु.	८ मं.	९ बृ.	१० श.	११ श.	१२ बृ.	१ मं.	२ शु.
१०°०′	४ चं.	५ र.	६ बु.	७ शु.	८ मं.	९ बृ.	१० श.	११ श.	१२ बृ.	१ मं.	२ शु.	३ बु.
१२°३०′	५ र.	६ बु.	७ शु.	८ मं.	९ बृ.	१० श.	११ श.	१२ बृ.	१ मं.	२ शु.	३ बु.	४ चं.
१५°०′	६ बु.	७ शु.	८ मं.	९ बृ.	१० श.	११ श.	१२ बृ.	१ मं.	२ शु.	३ बु.	४ चं.	५ र.

राशियाँ / द्वादशांश	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
१७°३०′	७ शु.	८ मं.	९ बृ.	१० श.	११ श.	१२ बृ.	१ मं.	२ शु.	३ बु.	४ चं.	५ र.	६ बु.
२०°०′	८ मं.	९ बृ.	१० श.	११ श.	१२ बृ.	१ मं.	२ शु.	३ बु.	४ चं.	५ र.	६ बु.	७ शु.
२२°३०′	९ बृ.	१० श.	११ श.	१२ बृ.	१ मं.	२ शु.	३ बु.	४ चं.	५ र.	६ बु.	७ शु.	८ मं.
२५°०′	१० श.	११ श.	१२ बृ.	१ मं.	२ शु.	३ बु.	४ चं.	५ र.	६ बु.	७ शु.	८ मं.	९ बृ.
२७°३०′	११ श.	१२ बृ.	१ मं.	२ शु.	३ बु.	४ चं.	५ र.	६ बु.	७ शु.	८ मं.	९ बृ.	१० श.
३०°०′	१२ बृ.	१ मं.	२ शु.	३ बु.	४ चं.	५ र.	६ बु.	७ शु.	८ मं.	९ बृ.	१० श.	११ श.

इसी प्रकार एक राशि में एक-एक अंश के ३० त्रिंशांश होते हैं। विषमराशि के इन ३० त्रिंशांशों में प्रथम ५ त्रिंशांशों के स्वामी मङ्गल, दूसरे ५ अंश के स्वामी शनि, उसके बाद के ८ अंशों के स्वामी बृहस्पति, अगले ७ अंशों के स्वामी बुध और अन्तिम ५ अंशों के स्वामी शुक्र होते हैं। समराशि में इसके विपरीत व्यवस्था होती है। स्पष्टार्थ चक्र देखिए।

त्रिंशांश चक्र

विषमराशि

	० मे.	२ मि.	४ सिं.	६ तु.	८ ध.	१० कु.
०°-५°	१	१	१	१	१	१
५°-१०°	११	११	११	११	११	११
१०-१८°	९	९	९	९	९	९
१८-२५°	३	३	३	३	३	३
२५-३०°	७	७	७	७	७	७

समराशि

	१ वृ.	३ क.	५ कं.	७ वृ.	९ म.	११ मी.
०°-५°	२	२	२	२	२	२
५°-१२°	६	६	६	६	६	६
१२°-२०°	१२	१२	१२	१२	१२	१२
२०°-२५°	१०	१०	१०	१०	१०	१०
२५°-३०°	८	८	८	८	८	८

इसी प्रकार राशि के ३°२०′ के प्रत्येक खण्ड को नवांश कहते हैं। इनके स्वामित्व की अलग व्यवस्था है। मेष राशि में मेष से प्रारम्भ कर धनु राशि पर्यन्त नव राशियों के नव नवांश होते हैं। वृष राशि में मकर से प्रारम्भ कर, मिथुन राशि में तुला से प्रारम्भ कर और कर्क राशि में कर्क ही से प्रारम्भ कर क्रमशः राशियों के नव-नव नवांश होते हैं। स्पष्टार्थ चक्र देखें।

नवांश चक्र

	० मे.	१ वृ.	२ मि.	३ क.	४ सिं.	५ क.	६ तु.	७ वृ.	८ ध.	९ म.	१० कुं.	११ मी.
०°-३°।२०'	१ मं.	१० श.	७ शु.	४ चं.	१ मं.	१० श.	७ शु.	४ चं.	१ मं.	१० श.	७ शु.	४ चं.
३°।२०'-६°।४०'	२ शु.	११ श.	८ मं.	५ सू.	२ शु.	११ श.	८ मं.	५ सू.	२ शु.	११ श.	८ मं.	५ सू.
६°।४०'-१०°।०'	३ बु.	१२ बृ.	९ बृ.	६ बु.	३ बु.	१२ बृ.	९ बृ.	६ बु.	३ बु.	१२ बृ.	९ बृ.	६ बु.
१०°।०'-१३°।२०'	४ चं.	१ मं.	१० श.	७ शु.	४ चं.	१ मं.	१० श.	७ शु.	४ चं.	१ मं.	१० श.	७ शु.
१३°।२०'-१६°।४०'	५ सू.	२ शु.	११ श.	८ मं.	५ सू.	२ शु.	११ श.	८ मं.	५ सू.	२ शु.	११ श.	८ मं.
१६°।४०'-२०°।०'	६ बृ.	३ बु.	१२ बृ.	९ बृ.	६ बु.	३ बु.	१२ बृ.	९ बृ.	६ बु.	३ बु.	१२ बृ.	९ बृ.
२०°।०'-२३°।२०'	७ शु.	४ चं.	१ मं.	१० श.	७ शु.	४ चं.	१ मं.	१० श.	७ शु.	४ चं.	१ मं.	१० श.
२३°।२०'-२६°।४०'	८ मं.	५ सू.	२ शु.	११ श.	८ मं.	५ सू.	२ शु.	११ श.	८ मं.	५ सू.	२ शु.	११ श.
२६°।४०'-३०°।०'	९ बृ.	६ बु.	३ बु.	१२ बृ.	९ बृ.	६ बु.	३ बु.	१२ बृ.	९ बृ.	६ बु.	३ बु.	१२ बृ.

पूर्व कथित सूर्यभोग २।१८।२३।३४ को यदि द्वादशांश चक्र में देखें तो सूर्य मिथुन राशि के १९° अंश में स्थित है। अर्थात् यह १७°३०' और २०° के आठवें मकर के द्वादशांश में स्थित है। इसका स्वामी शनि है। मिथुन विषम राशि है अत: विषम त्रिंशांश चक्र के अनुसार मिथुन के त्रिंशांश में है, जिसका स्वामी बुध है। नवांश चक्र के अनुसार सूर्य छठे मीन के नवांश में स्थित है जिसका स्वामी बृहस्पति है।

शुभाशुभ षष्ट्यंश

यज्ञं रत्न जनं धनं नय पटं रूपं शुकं चेटिना
नागं योग खगं बलं भग शिला धूलिर्नवं प्रस्वनम्।
लाभं विश्व दिवं कुशं रम धमं षष्ट्यंशकाश्चौजभे
क्रूराख्याः समभे विपर्ययमिदं शेषास्तु सौम्याह्वयाः ॥५॥

विषम राशि का १ला, २सरा, ८वाँ, ९वाँ, १०वाँ, ११वाँ, १२वाँ, १५वाँ, १६वाँ ३०वाँ, ३१वाँ, ३२वाँ, ३३वाँ, ३४वाँ, ३५वाँ, ३९वाँ, ४०वाँ, ४२वाँ, ४३वाँ, ४४वाँ, ४८वाँ, ५१वाँ, ५२वाँ और ५९वाँ षष्ट्यंश क्रूर या पाप फल देने वाले होते हैं,

शेष षष्ट्यंश शुभद होते हैं। समराशियों में इसके विपरीत फल होता है। अर्थात् समराशि में उपर्युक्त षष्ट्यंश शुभद और शेष अशुभ होते हैं ॥६॥

एक राशि के ६०वें भाग को (३०°।६० = ०°।३०') अर्थात् अंश के आधे भाग को षष्ट्यंश कहते हैं। इन साठ षष्ट्यंशों की घोर, राक्षस आदि संज्ञाएँ हैं तथा नाम के अनुरूप ही उनके फल होते हैं। स्पष्टार्थ चक्र देखें।

षष्ट्यंश चक्र

विषम राशि क्रमांक	जातक-तत्त्वम्	जातक-पारिजात	पराशर होरा	सम राशि क्रमांक	विषम राशि क्रमांक	जातक-तत्त्वम्	जातक-पारिजात	पराशर होरा	सम राशि क्रमांक
१	घोर	घोर	घोर	६०	३१	मृत्यु	मृत्यु	मृत्यु	३०
२	राक्षस	राक्षस	राक्षस	५९	३२	काल	काल	काल	२९
३	देव	देव	देव	५८	३३	दावाग्नि	दावाग्नि	दावाग्नि	२८
४	कुबेर	कुबेर	कुबेर	५७	३४	घोर	घोर	घोर	२७
५	रक्षोगण	यक्ष	यम	५६	३५	यमकंटक	यम	यम	२६
६	किन्नर	किन्नर	किन्नर	५५	३६	सुधा	कण्टक	कण्टक	२५
७	भ्रष्ट	भ्रष्ट	भ्रष्ट	५४	३७	अमृत	सुधा	सुधा	२४
८	कुलघ्न	कुलघ्न	कुलघ्न	५३	३८	पूर्णेन्दु	अमृत	अमृत	२३
९	विष	गरल	गरल	५२	३९	विषदिग्ध	पूर्णचन्द्र	पूर्णचन्द्र	२२
१०	अग्नि	अग्नि	अग्नि	५१	४०	कुलनाश	विषदिग्ध	विषप्रदग्ध	२१
११	माया	माया	माया	५०	४१	मुख्य	कुलनाश	कुलनाश	२०
१२	प्रेतपुरीष	यम	पुरीष	४९	४२	वंशक्षय	वंशक्षय	वंशक्षय	१९
१३	वरुण	अपाम्पति	अपाम्पति	४८	४३	उत्पात	उत्पात	उत्पात	१८
१४	इन्द्र	गणेश	मरुत्वान्	४७	४४	कालरूप	काल	काल	१७
१५	कला	कला	काल	४६	४५	सौम्य	सौम्य	सौम्य	१६
१६	अहि	सर्प	अहि	४५	४६	मृदु	मृदु	कोमल	१५
१७	चन्द्र	अमृत	अमृत	४४	४७	शीतल	द्रंष्ट्राक.	शीतल	१४
१८	चन्द्र	चन्द्र	चन्द्र	४३	४८	दंष्ट्राक.	इन्दुमुख	दंष्ट्राक.	१३
१९	मृदु	मृदु	मृदु	४२	४९	इन्दुमुख	प्रवीण	इन्दुमुख	१२
२०	मृदु	कोमल	कोमल	४१	५०	प्रवीण	कालाग्नि	प्रवीण	११
२१	पद्म	पद्म	हेरम्ब	४०	५१	कालाग्नि	दण्डायुध	कालाग्नि	१०
२२	विष्णु	विष्णु	ब्रह्मा	३९	५२	दण्डायुध	निर्मल	दण्डायुध	९
२३	वागीश	ब्रह्मा	विष्णु	३८	५३	निर्मल	निर्मल	निर्मल	८
२४	दिगम्बर	महेश	महेश	३७	५४	शुभ	शुभकर	सौम्य	७
२५	देव	देव	देव	३६	५५	अशुभ	क्रूर	क्रूर	६
२६	आर्द्र	आर्द्र	आर्द्र	३५	५६	अतिशी.	शीतल	अतिशी.	५
२७	कलिनाश	कलिनाश	कलिनाश	३४	५७	सुधा	सुधा	सुधा	४
२८	क्षितीश	क्षितीश	क्षितीश	३३	५८	पयोधि	पयोधि	पयोधीश	३
२९	कमलाकर	कमलाकर	कमलाकर	३२	५९	भ्रमण	भ्रमण	भ्रमण	२
३०	मन्दात्मज	गुलिक	गुलिक	३१	६०	इन्दुरेखा	इन्दुरेखा	इन्दुरेखा	१

इस चक्र में समराशि के उपर्युक्त क्रमांकों के षष्ट्यंश अशुभ होते हैं, शेष शुभद होते हैं। समराशि में इसके विपरीत होता है। अर्थात् विषमराशि के जो षष्ट्यंश अशुभ कहे गये हैं वे शुभद और शेष अशुभ षष्ट्यंश होते हैं।

सप्तमांश, दशांश, षोडशांश

स्वात् सप्तांशदशांशकौ तु विषमे युग्मे तु कामाच्छुभात्
स्वादीशाश्च कलांशपा विधिहरीशार्काः समर्क्षेऽन्यथा।
ख्यातैः कोणयुतैस्त्रिकोणभवनस्वर्क्षोच्चकेन्द्रोत्तमै-
र्वर्गाः सप्त दश त्रयोदशमिता वर्गाः प्रदिष्टाः परैः ॥६॥

विषमराशियों के ७ सप्तांशों (प्रत्येक ४°१७'९" का) की गणना उसी राशि से और समराशियों में उससे सातवीं राशि से क्रमशः गणना होती है।

विषमराशियों में दशांश (३०°।१०-३°) की गणना उसी राशि से क्रमशः तथा समराशियों में उससे नवीं राशि से गणना प्रारम्भ होती है।

विषमराशि में प्रथम षोडशांश के स्वामी ब्रह्मा से प्रारम्भ कर ब्रह्मा, विष्णु, महेश और सूर्य क्रम से स्वामी होते हैं। प्रथम षोडशांश के स्वामी ब्रह्मा, द्वितीय के विष्णु, तृतीय के महेश और चतुर्थ के सूर्य होते हैं। इसके बाद पुनः पाँचवें षोडशांश के स्वामी ब्रह्मा से प्रारम्भ होकर आगे भी स्वामी होते हैं। समराशियों में इसके विपरीत स्वामित्व होता है।

स्वराशि, स्वहोरा, स्वद्रेक्काण में स्थित ग्रह बली होते हैं। त्रिकोण, मूलत्रिकोण, स्वक्षेत्र, स्वोच्च, केन्द्र और वर्गोत्तम के योग से तथा सप्त, दश और त्रयोदश वर्गों के योग से अनेक शुभयोग बनते हैं ॥६॥

दशांश—एक राशि में ३° के दश दशांश होते हैं। विषमराशि में उसी राशि से तथा समराशि में उससे नवम राशि से प्रारम्भ होकर क्रमशः राशियों के दशांश होते हैं। स्पष्टार्थ चक्र देखिए।

दशांश चक्र

	० **मे.**	१ **वृ.**	२ **मि.**	३ **क.**	४ **सिं**	५ **क.**	६ **तु.**	७ **वृ.**	८ **ध.**	९ **म.**	१० **कुं.**	११ **मी.**
०°-३°	१ मं.	१० श.	३ बु.	१२ बृ.	५ सू.	२ शु.	७ शु.	४ चं.	९ बृ.	६ बु.	११ श.	८ मं.
३°-६°	२ शु.	११ श.	४ चं.	१ मं.	६ बु.	३ बु.	८ मं.	५ सू.	१० श.	७ शु.	१२ बृ.	९ बृ.
६°-९°	३ बु.	१२ बृ.	५ सू.	२ शु.	७ शु.	४ चं.	९ बृ.	६ बु.	११ श.	८ मं.	१ मं.	१० श.
९°-१२°	४ चं.	१ मं.	६ बु.	३ बु.	८ मं.	५ सू.	१० श.	७ शु.	१२ बृ.	९ बृ.	२ शु.	११ श.

१२°-१५°	५ सू.	२ शु.	७ शु.	४ चं.	९ बृ.	६ बु.	११ श.	८ मं.	१ मं.	१० श.	३ बु.	१२ बृ.
१५°-१८°	६ बु.	३ बु.	८ मं.	५ सू.	१० श.	७ शु.	१२ बृ.	९ बृ.	२ शु.	११ श.	४ चं.	१ मं.
१८°-२१°	७ शु.	४ चं.	९ बृ.	६ बु.	११ श.	८ मं.	१ मं.	१० श.	३ बु.	१२ बृ.	५ सू.	२ शु.
२१°-२४°	८ मं.	५ सू.	१० श.	७ शु.	१२ बृ.	९ बृ.	२ शु.	११ श.	४ चं.	१ मं.	६ बु.	३ बु.
२४°-२७°	९ बृ.	६ बु.	११ श.	८ मं.	१ मं.	१० मं.	३ बु.	१२ बृ.	५ सू.	२ शु.	७ शु.	४ चं.
२७°-३०°	१० श.	७ शु.	१२ बृ.	९ बृ.	२ शु.	११ श.	४ चं.	१ मं.	६ बु.	३ बु.	८ मं.	५ सू.

षोडशांश—राशि के १६वें भाग को (३०।१६=१°।५२'।३०") षोडशांश कहते हैं। एक राशि में १°५२'३०" के १६ षोडशांश होते हैं। चर राशि में प्रथम षोडशांश मेष से प्रारम्भ होकर कर्क पर्यन्त क्रमशः राशियों के षोडशांश होते हैं। स्थिर राशि में प्रथम षोडशांश सिंह का और द्विस्वभाव राशियों में प्रथम षोडशांश धनु राशि का होता है।

षोडशांश चक्र

	विषम राशि-स्वामी	० मे.	१ वृ.	२ मि.	३ क.	४ सिं	५ क.	६ तु.	७ वृ.	८ ध.	९ म.	१० कुं.	११ मी.	सम राशि-स्वामी
१°।५२'।३०"	ब्रह्मा	१ मं.	५ सू.	९ बृ.	१ मं.	५ सू.	९ बृ.	१ मं.	५ सू.	९ बृ.	१ मं.	५ सू.	९ बृ.	सूर्य
३°।४५'।०"	विष्णु	२ शु.	६ बु.	१० श.	२ शु.	६ बु.	१० श.	२ शु.	६ बु.	१० श.	२ शु.	६ बु.	१० श.	महेश
५°।३७'।३०"	महेश	३ बु.	७ शु.	११ श.	३ बु.	७ शु.	११ श.	३ बु.	७ शु.	११ श.	३ बु.	७ शु.	११ श.	विष्णु
७°।३०'।०"	सूर्य	४ चं.	८ मं.	१२ बृ.	४ चं.	८ मं.	१२ बृ.	४ चं.	८ मं.	१२ बृ.	४ चं.	८ मं.	१२ बृ.	ब्रह्मा
९°।२२'।३०"	ब्रह्मा	५ सू.	९ बृ.	१ मं.	५ सू.	९ बृ.	१ मं.	५ सू.	९ बृ.	१ मं.	५ सू.	९ बृ.	१ मं.	सूर्य
११°।१५'।०"	विष्णु	६ बु.	१० श.	२ शु.	६ बु.	१० श.	२ शु.	६ बु.	१० श.	२ शु.	६ बु.	१० श.	२ शु.	महेश
१३°।७'।३०"	महेश	७ शु.	११ श.	३ बु.	७ शु.	११ श.	३ बु.	७ शु.	११ श.	३ बु.	७ शु.	११ श.	३ बु.	विष्णु

१५°।०'।०"	सूर्य	८ मं.	१२ बृ.	४ चं.	८ मं.	१२ बृ.	४ चं.	८ मं.	१२ बृ.	४ चं.	८ मं.	१२ बृ.	४ चं.	ब्रह्मा
१६°।५२'।३०"	ब्रह्मा	९ बृ.	१ मं.	५ सू.	९ बृ.	१ मं.	५ सू.	९ बृ.	१ मं.	५ सू.	९ बृ.	१ मं.	५ सू.	सूर्य
१८°।४५'।०"	विष्णु	१० श.	२ शु.	६ बु.	१० श.	२ शु.	६ बु.	१० श.	२ शु.	६ बु.	१० श.	२ शु.	६ बु.	महेश
२०°।३७'।३०"	महेश	११ श.	३ बु.	७ शु.	११ श.	३ बु.	७ शु.	११ श.	३ बु.	७ शु.	११ श.	३ बु.	७ शु.	विष्णु
२२°।३०'।०"	सूर्य	१२ बृ.	४ चं.	८ मं.	१२ बृ.	४ चं.	८ मं.	१२ बृ.	४ चं.	८ मं.	१२ बृ.	४ चं.	८ मं.	ब्रह्मा
२४°।२२'।३०"	ब्रह्मा	१ मं.	५ सू.	९ बृ.	१ मं.	५ सू.	९ बृ.	१ मं.	५ सू.	९ बृ.	१ मं.	५ सू.	९ बृ.	सूर्य
२६°।१५'।०"	विष्णु	२ शु.	६ बु.	१० श.	२ शु.	६ बु.	१० श.	२ शु.	६ बु.	१० श.	२ शु.	६ बु.	१० सू.	महेश
२८°।७'।३०"	महेश	३ बु.	७ शु.	११ श.	३ बु.	७ शु.	११ श.	३ बु.	७ शु.	११ श.	३ बु.	७ शु.	११ श.	विष्णु
३०°।०'।०"	सूर्य	४ चं.	८ मं.	१२ बृ.	४ चं.	८ मं.	१२ बृ.	४ चं.	८ मं.	१२ बृ.	४ चं.	८ मं.	१२ बृ.	ब्रह्मा

षष्ट्यंश—षष्ट्यंश अर्थात् एक राशि का ६०वाँ भाग (३०°।६० = ०°।३०') होता है। प्रत्येक षष्ट्यंश ०°३०' का होता है। पृष्ट ३० पर उद्धृत चक्र में इन साठ षष्ट्यंशों के अलग-अलग नाम दिये गये हैं। इन षष्ट्यंशों के फल इनके नाम के अनुरूप होते हैं।

पराशर ने षोडश वर्गों का उल्लेख किया है। इन दश वर्गों के अतिरिक्त छ: अन्य वर्ग— १. चतुर्थांश, २. विंशांश, ३. सिद्धांश या चतुर्विंशांश, ४. भांशांश, ५.खवेदांश और ६. अक्षवेदांश—होते हैं।

चतुर्थांश—एक राशि में ७°३०' के चार चतुर्थांश होते हैं। प्रथम चतुर्थांश उसी राशि का, दूसरा उससे चौथी राशि का, तीसरा उससे सातवीं राशि का तथा चौथा उस राशि से दसवीं राशि का होता है। प्रथमादि चतुर्थांशों के सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन क्रमश: स्वामी होते हैं।

विंशांश—एक राशि में १°३०' के बीस विंशांश होते हैं। चर राशि में मेष से प्रारम्भ होकर, स्थिर राशि में धनु से तथा द्विस्वभाव राशि में सिंह के प्रथमादि क्रम से विंशांश होते हैं। विषमराशि में काली, गौरी, जया, लक्ष्मी, विजया, विमला, सती, तारा, ज्वालामुखी, श्वेता, ललिता, बगलामुखी, प्रत्यङ्गिरा, शची, रौद्री, भवानी, वरदा, जया, त्रिपुरा और सुमुखी—ये क्रम से २० विंशाशों के स्वामी होते हैं। समराशि में विपरीत क्रम से ये स्वामी होते हैं।

सिद्धांश या चतुर्विंशांश—एक राशि में १°१५' का एक सिद्धांश होता है। विषमराशि में प्रथम सिद्धांश सिंह से, समराशि में कर्क से प्रारम्भ होकर क्रमशः २४ सिद्धांश होते हैं। १. स्कन्द, २. पशुधर, ३. अनल, ४. विश्वकर्मा, ५. भग, ६. मित्र, ७. यम, ८. अन्तक, ९. वृषध्वज, १०. गोविन्द, ११. मदन और १२. भीम—विषमराशि में ये प्रथम चतुर्थांश से प्रारम्भ कर बारह चतुर्थांशों के स्वामी होते हैं। तेरहवें चतुर्थांश से चौबीसवें चतुर्थांश पर्यन्त इसी क्रम से स्कन्दादि स्वामी होते हैं। समराशि में विपरीत क्रम से अर्थात् भीम से प्रारम्भ कर स्कन्द पर्यन्त प्रथमादि चतुर्थांशों के स्वामी होते हैं।

भांशांश—एक राशि में १°६'४०" के २७ भांशांश होते हैं। मेषादि राशियों में प्रथम भांशांश मेष, कर्क, तुला और मकर से प्रारम्भ होकर २७ भांशांश होते हैं। प्रत्येक राशि में १. अश्विनीकुमार, २. यम, ३. अग्नि, ४. ब्रह्मा, ५. चन्द्रमा, ६. शङ्कर, ७. अदिति, ८. जीव, ९. अहि, १०. पितर, ११. भग, १२. अर्यमा, १३. अर्क (सूर्य), १४. त्वष्टा, १५. वायु, १६. शक्राग्नि, १७. मित्र, १८. वासव, १९. निर्ऋति, २०. उदक, २१. विश्वेदेव, २२. गोविन्द, २३. वसु, २४. वरुण, २५. अजपात्, २६. अहिर्बुध्न्य और २७. पूषा—ये क्रमशः प्रथमादि भांशों के स्वामी होते हैं।

खवेदांश—एक राशि में ०°४५' के ४० खवेदांश होते हैं। विषमराशि में मेष राशि से तथा समराशि में तुला राशि से प्रारम्भ होकर ४० खवेदांश होते हैं। प्रथम खवेदांश से प्रारम्भ कर क्रमशः १. विष्णु, २. चन्द्रमा, ३. मरीचि, ४. त्वष्टा, ५. धाता, ६. शिव, ७. रवि, ८. यम, ९. यक्षेश, १०. गन्धर्व, ११. काल और १२. वरुण प्रत्येक खवेदांश के स्वामी होते हैं। तेरहवें, पचीसवें और सैंतीसवें खवेदांश से पुनः इस क्रम से शेष खवेदांशों के स्वामी होते हैं।

अक्षवेदांश—एक राशि के पैतालिसवें भाग को अक्षवेदांश कहते हैं। ०°४०' (शून्य अंश ४० कला) का एक अक्षवेदांश होता है। स्पष्ट है कि एक राशि में कुल पैतालिस अक्षवेदांश होते हैं। चर राशि में मेषराशि से प्रारम्भ होकर क्रमशः पैतालिस अक्षवेदांश होते हैं तथा ब्रह्मा, शिव और विष्णु क्रमशः उनके स्वामी होते हैं। स्थिर राशि में सिंह राशि से प्रारम्भ होकर क्रमशः पैतालिस अक्षवेदांश होते हैं तथा शिव, विष्णु और ब्रह्मा क्रमशः इनके स्वामी होते हैं। द्विस्वभाव राशि में मकर राशि से अक्षवेदांशों का प्रारम्भ होता है तथा विष्णु, ब्रह्मा और शिव क्रमशः इनके स्वामी होते हैं।

वैशेषिकांश

वर्गान्योजयतु त्रयोदश सुहृत्स्वर्क्षोच्चभेषु क्रमाद्-
द्वित्रिः पञ्च चतुर्नवाद्रिवसुषट्संख्यासु वर्गैक्यतः।
प्राहुश्चोत्तमपारिजातकथितौ सिंहासनं गोपुरं
चेत्यैरावतदेवलोकसुरलोकांशांश्च पारावतम् ॥७॥

तेरह वर्गों में दो या दो से अधिक वर्गों में यदि ग्रह स्वोच्च स्वराशि या मित्रराशि के हों तो उनके योग से अनेक वैशेषिकांश उद्भूत होते हैं। यदि दो वर्गों में ग्रह स्वराशि,

स्वोच्चराशि या मित्रराशि में हों तो पारिजातांश में; तीन वर्गों में उक्त स्थिति रहने पर उत्तमांश में, यदि चार वर्गों में उक्त स्थिति हो तो गोपुरांश में, यदि पाँच वर्ग उसकी राशि, मित्रराशि या स्वोच्चराशि के हों तो सिंहासनांश में, यदि छः वर्ग उक्त स्थिति में हों तो पारावतांश में, ७ वर्गों में उक्त स्थिति रहने पर देवलोकांश में, ८ वर्गों में उक्त स्थिति होने पर सुरलोकांश में तथा ९ वर्गों में उक्त स्थिति के रहने पर ऐरावतांश में ग्रह कहलाता है।

उदाहरण के लिए सूर्यभोग ४।१।२२।३६ हो तो वह अपनी राशि के होरा, द्रेष्काण, सप्तमांश, दशांश, द्वादशांश और षोडशांश ६ वर्गों में उसकी अपनी राशि होने से सूर्य पारावतांश में कहा जायेगा।

वैशेषिकांशस्थ ग्रहों के फल

आर्यानल्पगुणार्थसौख्यविभवान्यः पारिजातांशकः
स्वाचारं विनयान्वितं च निपुणं यद्युत्तमांशे स्थितः।
खेटो गोपुरभागगः शुभमतिं स्वक्षेत्रगो मन्दिरं
यः सिंहासनगो नृपेन्द्रदयितं भूपालतुल्यं नरम्॥८॥

पारिजातांशस्थ ग्रह जातक को सम्मान, सद्गुण, धन, सुख, वैभव और प्रतिष्ठा देता है। उत्तमांशस्थ ग्रह जातक को सदाचारी, विनयी और चतुर बनाता है। गोपुरांशस्थ ग्रह जातक को सदाशयता देता है और धन, भूमि, गोधन तथा स्वनिर्मित भवन से सम्पन्न बनाता है। सिंहासनांशस्थ ग्रह जातक को राजा का प्रिय पात्र अथवा राजा के समान ही वैभवादि का सुख देता है॥८॥

श्रेष्ठाश्वद्विपवाहनादि विभवं पारावताधिष्ठितः
सत्कीर्तिं यदि देवलोकसहितो भूमण्डलाधीश्वरम्।
वन्द्यं भूपतिभिः सुरेन्द्रसदृशं त्वैरावतांशस्थितः
सद्भाग्यं धनधान्यपुत्रसहितं भूपं विदध्याद् ग्रहः॥९॥

पारावतांशस्थ ग्रह जातक को उत्तम घोड़े, पालकी आदि वाहन और अनेक वैभव देता है। देवलोकांश में स्थित ग्रह होने से दिग्-दिगन्त में व्याप्त सत्कीर्ति से युक्त भूमण्डलाधीश्वर राजाधिराज होता है। ऐरावतांश में स्थित ग्रह जातक को अनेक राजाओं से पूजित इन्द्र के समान राजा बनाने में सक्षम होता है। सुरलोकांशस्थ ग्रह धन-धान्य और सन्तति सुख से सुखी बनाता है॥९॥

अशुभवर्गस्थ ग्रह और बालादि अवस्था फल

यद्वर्गेष्वखिलेषु मृत्युरबलेष्वत्राथ वक्ष्ये क्रमा-
न्नाशं दुःखमनर्थतां च विसुखं बन्धुप्रियं तद्वरम्।
भूपेष्टं धनिनं नृपं नृपवरं वर्गे बलिष्ठेऽखिले
वर्धिष्णुं सुखिनं नृपं गदमृती बालाद्यवस्थाफलम्॥१०॥

दश वर्गों के सभी वर्गों में यदि ग्रह निर्बल हों तो मृत्युकारक होते हैं (पापग्रह की राशि, नीचराशि, शत्रुराशि के वर्गों में ग्रह निर्बल होते हैं)। यदि ग्रह नव वर्गों में निर्बल हों तो विनाश, आठ वर्गों में निर्बल हों तो दु:ख, सात वर्गों में निर्बल हों तो निर्धनता, छ: वर्गों में निर्बल हों तो सुख का अभाव, पाँच वर्गों में यदि निर्बल हों तो बन्धु-बान्धवों का सुख, चार वर्गों में निर्बल हों तो सम्बन्धियों एवं स्वजनों में श्रेष्ठ, तीन वर्गों में निर्बल हों तो राजा का प्रिय, दो वर्गों में निर्बल हों तो धनिक और यदि एक ही वर्ग में निर्बलता हो तो जातक राजा होता है। यदि सभी दश वर्गों में ग्रह बलवान् हों तो जातक श्रेष्ठ राजा होता है।

यदि ग्रह बाल्यावस्था में हो तो जातक विकासोन्मुख, तरुणावस्था में ग्रह हो तो सुखी, युवावस्था में ग्रह हो तो राजा, वृद्धावस्था में ग्रह हो तो जातक रोगी और मृतावस्था में ग्रह हो तो जातक के लिए मृत्युभय कारक होता है ॥१०॥

कोई ग्रह विषमराशि के ०° से ६° के मध्य स्थित हो तो उसकी बाल्यावस्था होती है। यदि ६° से १२° के मध्य स्थित हो तो कुमारावस्था या तरुणावस्था होती है। १२° से १८° के मध्य युवावस्था, १८° से २४° के मध्य वृद्धावस्था और २४° से ३०° के मध्य मृतावस्था होती है। समराशियों में विपरीत क्रम से ग्रहों की अवस्थाएँ होती हैं।

विषमराशि में अवस्थाएँ	अंश	समराशि में अवस्थाएँ
बाल्यावस्था	०°-६°	मृतावस्था
कुमारावस्था	६°-१२°	वृद्धावस्था
युवावस्था	१२°-१८°	युवावस्था
वृद्धावस्था	१८°-२४°	कुमारावस्था
मृतावस्था	२४°-३०°	बाल्यावस्था

'बालो रसांशैरसमे प्रदिष्टस्ततः कुमारो हि युवाथ वृद्धः।
मृतः क्रमादुत्क्रमतः समर्क्षे बालाद्यवस्थाः कथिता ग्रहाणाम् ॥
फलन्तु किञ्चिद्वितनोति बालश्चार्धं कुमारो यतते न पुंसाम्।
युवा समग्रं खचरोऽथ वृद्धः फलं च दुष्टं मरणं मृताख्यम्' ॥ (पराशर)

षड्वर्गेषु शुभग्रहाधिकगुणैः श्रीमांश्चिरं जीवति
क्रूरांशे बहुले विलग्नभवने दीनोऽल्पजीवः शठः।
तन्नाथा बलिनो नृपोऽस्त्यथ नवांशेशो दृगाणेश्वरो
लग्नेशः क्रमशः सुखी नृपसमः क्षोणीपतिर्भाग्यवान् ॥११॥

किसी ग्रह के षड्वर्ग में यदि शुभवर्गों (स्वराशि, स्वमित्रराशि, स्वत्रिकोणराशि, स्वोच्चराशि अथवा शुभग्रह की राशि के वर्गों) की अधिकता हो तो जातक धनवान् और दीर्घजीवी होता है। यदि लग्न के षड्वर्ग में पाप या अशुभ वर्गों की अधिकता हो तो जातक दुष्ट, दीन और अल्पजीवी होता है। किन्तु यदि उन पापवर्गों के स्वामी बलवान् हों तो जातक राजा होता है। यदि लग्नेश, लग्ननवांशेश और लग्नद्रेष्काणेश बलवान् हों तो जातक क्रमशः परम सौभाग्यशाली राजा, सुखी, राजा के समान वैभवशाली होता है ॥११॥

ओजे क्रूरेऽर्कहोरां गतवति बलवान् क्रूरवृत्तिर्धनाढ्यो
युग्मे चान्द्रीं शुभेषु द्युतिविनयवचोहृद्यसौभाग्ययुक्तः ।
व्यस्तं व्यस्तेऽत्र मिश्रे समफलमुदितं लग्नचन्द्रौ बलिष्ठौ
तन्नाथौ द्वौ च तद्वद्यदि भवति चिरंजीव्यदुःखी यशस्वी ॥१२॥

विषमराशि के सूर्य होरा (पूर्वार्द्ध) में स्थित क्रूर ग्रह बलवान् होते हैं तथा जातक क्रूरवृत्ति का धनिक होता है। समराशि के चान्द्र होरा (पूर्वार्द्ध) में शुभग्रह स्थित हों तो जातक तेजस्वी, विनयी, मिष्टभाषी, आकर्षक और भाग्यवान् होता है। इसके विपरीत होने से अर्थात् यदि विषमराशि के चान्द्र होरा (उत्तरार्द्ध) में क्रूर ग्रह स्थित हों अथवा समराशि के सूर्य होरा में शुभग्रह स्थित हों तो वे पाप फल देते हैं। इसी प्रकार समराशि के सूर्य होरा (उत्तरार्द्ध) में शुभग्रह अथवा चान्द्र होरा (पूर्वार्द्ध) में पापग्रह स्थित होकर शुभफल नहीं देते। मिश्रित स्थिति में मिश्रित फल होता है।

लग्न और चन्द्रमा यदि बलवान् हों तथा लग्नेश और चन्द्रराशीश भी पर्याप्त बलवान् हों तो जातक विख्यात दीर्घायु होता है और सुखमय जीवन व्यतीत करता है ॥१२॥

उपर्युक्त श्लोक का तात्पर्य इस प्रकार समझना चाहिए—

१. विषमराशि के पूर्वार्द्ध में क्रूरग्रह—क्रूर शासक, धनवान्।
२. समराशि के पूर्वार्द्ध में शुभग्रह—कान्तिमान्, मिष्टभाषी, भाग्यवान्।

इन स्थितियों के विपरीत अर्थात्—

३. विषमराशि के पूर्वार्द्ध में शुभग्रह,
४. समराशि के पूर्वार्द्ध में पापग्रह,
५. विषमराशि के उत्तरार्द्ध में पापग्रह तथा
६. समराशि के उत्तरार्द्ध में शुभग्रह, ये सभी नेष्ट फल देते हैं।

द्रेष्काण-स्वरूप

सिंहाजाश्वितुलानृयुग्मभवनेष्वन्त्या हयाजादिमाः
मध्यौ स्त्रीयमयोरिहायुधभृतः पाशोलिमध्यो भवेत् ।
नक्राद्यो निगलो मृगेन्द्रघटयोराद्यो वणिङ्मध्यमो
गृध्रास्यो वृषभान्तिमश्च विहगः कर्क्यादि कोलाननम् ॥१३॥

सिंह राशि का अन्तिम द्रेष्काण (तृतीय द्रेष्काण), मेष और धनु राशियों के प्रथम और अन्तिम द्रेष्काण, कन्या राशि का मध्य देष्काण, मिथुन राशि का मध्य और अन्तिम द्रेष्काण आयुधसंज्ञक है। वृश्चिक राशि का मध्य (द्वितीय) द्रेष्काण पाशसंज्ञक है। मकर के प्रथम द्रेष्काण को निगल कहते हैं। सिंह और कुम्भ राशियों में प्रथम द्रेष्काण और तुला राशि में मध्य द्रेष्काण की गृद्ध्र संज्ञा है। वृष राशि के अन्तिम (तृतीय) द्रेष्काण को विहग कहते हैं। कर्क राशि के प्रथम द्रेष्काण को कोल (शूकर) कहते हैं ॥१३॥

कौर्प्याद्यः कर्कटान्त्यो झषचरममहिश्चाजगोमध्यसिंहा-
द्यल्यन्त्यं स्याच्चतुष्पादिह फलमधनक्रूरनिन्द्या दरिद्राः ।
द्वन्द्वर्क्षे स्युर्दृगाणैरधमसमशुभान्यस्थिरे चोत्क्रमेण
प्राहुस्तज्ज्ञाः स्थिरर्क्षेष्वशुभशुभसमान्येव लग्ने फलानि ॥१४॥

वृश्चिक राशि के प्रथम, मीन-कर्क के तृतीय द्रेष्काण को अहि (सर्प) कहते हैं । मेष और वृष राशि के द्वितीय, सिंह राशि के प्रथम और वृश्चिक राशि के तृतीय द्रेष्काण को चतुष्पाद कहते हैं । यदि लग्न में ये द्रेष्काण हों तो जातक धनहीन, क्रूरमना और दरिद्र होता है ।

द्वन्द्व (द्विस्वभाव) राशियों में प्रथम, द्वितीय और तृतीय द्रेष्काण क्रमशः अधम, सम और शुभ कहलाते हैं । चर राशि में इसके विपरीत क्रम से संज्ञाएँ होती हैं अर्थात् चर राशि के प्रथम द्रेष्काण को शुभ, द्वितीय द्रेष्काण को सम और अन्तिम द्रेष्काण को अधम कहते हैं । स्थिर राशि के तीनों द्रेष्काणों की क्रमशः अधम, शुभ और सम संज्ञाएँ हैं । लग्नस्थ द्रेष्काण के नामानुसार उसके फल भी आचार्यों ने कहे हैं ॥१४॥

राशि	प्रथम द्रेष्काण	द्वितीय द्रेष्काण	तृतीय द्रेष्काण
मेष	आयुध	चतुष्पाद्	आयुध
वृष	—	चतुष्पाद्	विहग (पक्षी)
मिथुन	—	आयुध	आयुध
कर्क	शूकरमुख	—	सर्प
सिंह	गृद्ध्र, चतुष्पाद्	—	आयुध
कन्या	—	आयुध	—
तुला	—	गृद्ध्र	आयुध
वृश्चिक	सर्प	पाश	चतुष्पाद्
धनु	आयुध	—	आयुध
मकर	निगल	—	—
कुम्भ	गृद्ध्र	—	—
मीन	—	—	सर्प

ये सभी द्रेष्काण अशुभ फलदायक हैं ।

जातकपारिजात में द्रेष्काणों के जो स्वरूप कहे गये हैं वे इससे कुछ भिन्न हैं—

'कुलीरमीनालिगता दृगाणाः मध्यावसान प्रथमा भुजङ्गा ।
अलि द्वितीयो मृगलेयपूर्वः क्रमेण पाशो निगडो विहङ्गः' ॥

इसके अनुसार कर्क राशि का द्वितीय, मीन राशि का तृतीय और वृश्चिक का प्रथम द्रेष्काण भुजङ्ग (अहि) है । वृश्चिक राशि के द्वितीय द्रेष्काण की पाश, सिंह राशि के प्रथम द्रेष्काण की निगड, मकर के प्रथम द्रेष्काण की विहङ्ग संज्ञा है ।

द्रेक्काणेशे स्ववर्गे शुभखगसहिते स्वोच्चमित्रर्क्षगे वा
तद्वत्त्रिंशांशनाथे बलवति यदि चेद् द्वादशांशाधिपे वा।
होरानाथे तथा चेन्निखिलगुणगणो नित्यशुद्धप्रवीणो
दीर्घायुः स्याद्दयावान् सुतधनसहितः कीर्तिमान्राजभोगः ॥१५॥

लग्नोदित द्रेष्काण का स्वामी अपने वर्ग में हो, स्वोच्च, स्वमित्र की राशि में स्थित हो, शुभग्रह के साथ युत हो, लग्नोदित द्वादशांश के स्वामी और लग्नोदित होरा का स्वामी भी उक्त स्थिति में स्थित होकर बलवान् हो तो जातक गुणवान्, कीर्तिमान् और राजा के समान भोग युक्त होता है ॥१५॥

मान्दिस्थराशिपतिसङ्गतसुत्रिकोणं
तस्यांशराशिपतिसंयुतमंशकोणम् ।
लग्नं वदन्ति गुलिकांशकराशिकोणं
तद्वद्विधौ बलयुते शशिनैव विद्यात् ॥१६॥

मान्दि जिस राशि में स्थित हो उस राशि से अथवा उस राशि का स्वामी जिस राशि में स्थित हो उस राशि में अथवा इन दोनों राशियों से पञ्चम या नवम राशि लग्न होता है। अथवा मान्दि की नवांश राशि का स्वामी जिस राशि के नवांश में स्थित हो उस राशि से पञ्चम या नवम राशि लग्न होता है। मान्दि की नवांश राशि से त्रिकोण राशि भी लग्न हो सकती है। यदि चन्द्रमा बलवान् हो तो उसी से लग्न का निर्धारण करना चाहिए ॥१६॥

मान्दि जिस राशि में स्थित हो उसके स्वामी से त्रिकोण (५,९) राशि लग्न होती है अथवा मान्दि नवांश का स्वामी जिस राशि के नवांश में स्थित हो उससे पञ्चम या नवम राशि लग्न होती है। अथवा मान्दि की जो नवांशराशि हो उससे ५वीं या ९वीं राशि लग्नराशि होती है।

इसी प्रकार जन्मकाल में चन्द्रमा यदि पर्याप्त बलशाली हो तो चन्द्रराशि के स्वामी उसके नवांशेश की नवांशराशि से भी लग्न का निश्चय करना चाहिए ॥१६॥

यहाँ गुलिक या मान्दि के विषय में कहना उचित होगा। पराशर ने अपने बृहत्पाराशर-होराशास्त्र में गुलिक के सम्बन्ध में लिखा है—

'रविवारादिशन्यन्तं गुलिकादि निरूप्यते। दिवसानष्टधा कृत्वा वारेशाद्गणयेत् क्रमात्॥
अष्टमांशो निरीशः स्याच्छन्यंशो गुलिकः स्मृतः। रात्रिरप्यष्टधा भक्त्या वारेशात्पञ्चमादितः॥
गणयेदष्टमो खण्डो निष्पतिः परिकीर्तितः। शन्यंशो गुलिकः प्रोक्तो गुर्वंशो यमकण्टकः॥
भौमांशो मृत्युरादिष्टो रव्यंशो कालसंज्ञकः। सौम्यांशोऽर्धप्रहरकः स्पष्टकर्मप्रदेशकः' ॥
(पराशर)

दिवाजन्म हो तो वारप्रवृत्ति काल से सूर्यास्त पर्यन्त कालखण्ड, रात्रिजन्म हो तो सूर्यास्त से अग्रिम दिन के प्रवृत्ति काल पर्यन्त कालखण्ड को इष्ट दिन के ध्रुवाङ्क से गुणाकर गुणनफल में आठ से भाग देने पर लब्ध घट्यादि गुलिकेष्टकाल होता है।

वारप्रवृत्ति काल विवादास्पद है। आचार्य गणों में मत-वैभिन्न्य है। श्री रामदैवज्ञ ने मुहूर्त्तचिन्तामणि में वारप्रवृत्ति काल जानने के लिए जो युक्ति दी है वह प्रचलित है—

'पादोनरेखापरपूर्वयोजनैः पलैर्युतोनास्तिथयो दिनार्धतः।
ऊनाधिकास्तद्विवरोद्भवैः पलैरूर्ध्वं तथाधो दिनप्रवेशनम्' ॥

स्वचतुर्थांश से हीन मध्यरेखा से स्वस्थान के पूर्वापर योजनान्तर तुल्य पल को, स्वस्थान यदि मध्यरेखा से पूर्व हो तो १५ घटी में ऋण करने से और यदि स्वस्थान मध्यरेखा से पश्चिम हो तो १५ घटी में युत करने से वारप्रवेश की ध्रुवा होती है। उक्त दिन के दिनार्ध में इस ध्रुवा को हीन करने से जो (±) फल प्राप्त हो (यदि दिनार्ध > ध्रुवा हो तो धनात्मक और यदि दिनार्ध < ध्रुवा हो तो ऋणात्मक) उक्त दिन सूर्योदय में संस्कार करने से वार प्रवृत्ति काल होता है। यदि दिनार्ध से ध्रुवा अधिक हो तो उक्त फल ऋणात्मक होगा और यदि दिनार्ध से ध्रुवा अल्प हो तो फल धनात्मक होगा।

उदाहरण—मध्य रेखा से काशी का योजनान्तर ६३ योजन पूर्व है। सं. २०५६ भाद्रपद शुक्रवार के दिन दिनमान ३०।२६ घट्यादि और सूर्योदय घं. ५ मि. ४९ पर है। पूर्वोक्त नियमानुसार—

पादोन योजनान्तर = $६३ - \frac{६३}{४} = \frac{६३ \times ३}{४}$ = ४७।१५ पलादि

यतः काशी मध्यरेखा से पूर्व है इसलिए

१५-०।४७।१५ = १४।१२।४५ घट्यादि

= वारप्रवेश ध्रुवा

दिनमान ३०।२६ है अतः दिनार्ध १५।१३ > ध्रुवा।

१५।१३-१४।१२।४५ = १।०।१५ घट्यादि (+)

= ०।२४।६ घंटादि (+)

सूर्योदय ५।४९ + ०।२४।६ = ६।१३।६ घंटादि

अर्थात् घं. ६ मि. १३ से ६ पर प्रातः शुक्रवार की प्रवृत्ति होगी। इस वारप्रवृत्ति काल और सूर्यास्त के अन्तर तुल्य कालखण्ड घण्टादि १८।३-६।१३।६ = ११।४९।५४ घण्टादि = २९।३४।४५ घट्यादि में उक्त दिन के गुलिक ध्रुवा २ से गुणाकर ८ से भाग देने पर लब्धि सूर्योदय से गुलिकेष्टकाल होगा। शुक्रवार की गुलिक ध्रुवा २ है। उक्त अन्तर तुल्य कालखण्ड $\frac{२९।३४।४५ \times २}{८} = \frac{५९।९।१५}{८}$ = ७।२३।४१.२ घट्यादि गुलिकेष्टकाल हुआ। इस इष्टकाल पर लग्न साधन करने से गुलिक का राश्यादि भोग होगा।

इसी गुलिक या मान्दि की चर्चा उपर्युक्त श्लोक में की गई है[१]।

---

१. गुलिक के सम्बन्ध में विशेष जानकारी हेतु मेरे द्वारा सम्पादित 'जातकपारिजात' देखें।

कुर्यादात्मसुहृद्दृगाणगशशी कल्याणरूपं गुणं
श्रेयांस्युत्तमवर्गजस्त्वपरगस्तन्नाथजातान् गुणान्।
स्वत्रिंशांशगता ग्रहा विदधते तत्कारकत्वोदितं
तत्रैकोऽपि सुहृद्ग्रहेक्षितयुतः स्वोच्चेऽर्थयुक्तं नृपम् ॥१७॥

स्वद्रेष्काणस्थ अथवा स्वमित्रद्रेष्काणस्थ चन्द्रमा जातक को सुन्दर रूप और गुण प्रदान करता है। यदि वर्गोत्तमांश में स्थित हो तो चन्द्रमा जातक को उत्तम भाग्यसुख प्रदान करता है। चन्द्रमा जिस राशि में स्थित हो उसके स्वामी ग्रह के अनुसार गुण जातक में उत्पन्न करता है।

स्वत्रिंशांशस्थ ग्रह अपने कारकत्व के अनुसार जातक को फल प्रदान करता है। उच्चराशिस्थ ग्रह यदि अपने मित्रग्रह से युत या दृष्ट हो तो वह जातक को वैभव-सम्पन्न राजा बनाने की सामर्थ्य रखता है ॥१७॥

ग्रहों की दीप्तादि अवस्थाएँ

स्वोच्चे प्रदीप्तः सुखितस्त्रिकोणे स्वस्थः स्वगेहे मुदितः सुहृद्भे।
शान्तस्तु सौम्यग्रहवर्गयुक्तः शक्तो मतोऽसौ स्फुटरश्मिजालः ॥१८॥

अपनी उच्चराशि में स्थित ग्रह की प्रदीप्तावस्था होती है। अपनी मूलत्रिकोण राशि में यदि ग्रह स्थित हो तो उसकी सुखितावस्था होती है। यदि ग्रह स्वराशि में स्थित हो तो स्वस्थावस्था होती है तथा मित्र की राशि में स्थित ग्रह की मुदितावस्था होती है। यदि ग्रह शुभग्रहों के वर्गों में हो तो उसकी शान्त नामक अवस्था होती है तथा स्पष्ट रश्मियों से युक्त (सूर्यसान्निध्य में अस्त न हो) तो ग्रह की शक्तावस्था होती है ॥१८॥

ग्रहयुद्ध में विजित ग्रह

ग्रहाभिभूतः स निपीडितः स्यात् खलस्तु पापग्रहवर्गयातः।
सुदुःखितः शत्रुगृहे ग्रहेन्द्रो नीचेऽतिभीतो विकलोऽस्तयातः ॥१९॥

अन्य ग्रह से प्रभावित (अभिभूत) ग्रह की निपीडितावस्था होती है। पापग्रहों के वर्ग से युक्त ग्रह खल कहलाता है। यदि ग्रह शत्रु की राशि में स्थित हो तो दु;खितावस्था में होता है। अपनी नीचराशि में स्थित ग्रह अतिभीत और यदि सूर्यसान्निध्य में अदृश्य या अस्त हो तो विकल होता है।

अवस्था फल के सम्बन्ध में

पूर्णं प्रदीप्ता विकलास्तु शून्यं मध्येऽनुपाताच्च शुभं क्रमेण।
अनुक्रमेणाशुभमेव कुर्युर्नामानुरूपाणि फलानि तेषाम् ॥२०॥

इति श्रीमन्त्रेश्वरविरचितायां फलदीपिकायां वर्गभेदो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

प्रदीप्तावस्था में ग्रह की पूर्ण शुभता होती है अर्थात् इस अवस्था में वह शुभ फल देने में पूर्ण समर्थ होता है तथा विकलावस्था में स्थित ग्रह की शुभता शून्य होती है अर्थात् इस अवस्था में शुभ फल देने में वह असमर्थ होता है। इन अवस्थाओं के मध्यगत अवस्थाओं में ग्रह की शुभता में क्रमश: आनुपातिक ह्रास होता है उसके अशुभ फल देने की क्षमता में क्रमिक आनुपातिक वृद्धि होती है। अवस्थाओं के नामानुरूप उनके फल होते हैं ।।२०।।

जातकशास्त्रों में ग्रहों की अनेक प्रकार की अवस्थाओं का वर्णन आचार्यों ने किया है। बाल्यादि अवस्था की चर्चा इस अध्याय के १०वें श्लोक में आचार्य ने की है। इस श्लोक (१८वें) में ग्रह की दीप्तादि आठ अवस्थाओं को बतलाया गया है। सारावली में कल्याणवर्मा ने नव अवस्थाओं का वर्णन किया है जो इससे किञ्चिद् भिन्न है—

'दीप्त: स्वस्थो मुदित: शान्त: शक्तो निपीडितो भीत: ।
विकल: खलश्च कथितो नवप्रकारो ग्रहो हरिणा ।।
स्वोच्चे भवति च दीप्त: स्वस्थ: स्वगृहे सुहृद्गृहे मुदित: ।
शान्त: शुभवर्गस्थ: शक्त: स्फुटकिरणजालश्च ।।
विकलो रविलुप्तकरो ग्रहाभिभूतो निपीडितश्चैवम् ।
पापगणस्थश्च खलो नीचे भीत: समाख्यात:' ।। (सारावली)

उच्चराशि में ग्रह दीप्त, स्वराशि में स्वस्थ, मित्रराशि में मुदित, शुभवर्ग में शान्त, स्फुरित रश्मि (बलवान्) हो तो शक्त, अस्त हो तो लुप्त या मृत, नीचराशि में दीन, पाप ग्रह या शत्रुराशि में पीड़ित होता है। सारावली के अनुसार इन अवस्थाओं के फल निम्न तालिका में दिये गये हैं।

ग्रहों की विभिन्न अवस्थाओं के फल

१. दीप्तावस्था—उच्चस्थ ग्रह—शत्रुञ्जयी, ऐश्वर्यवान्।
२. स्वस्थ—स्वराशिगत—वंशवृद्धिकर्त्ता, ऐश्वर्य, सम्प्रभुता सम्पन्नता।
३. मुदित—मित्रगृही—प्रसन्नचित्त, ऐश्वर्यवान्, शत्रुञ्जयी, भोगी।
४. शान्त—शुभवर्गस्थ—शान्तचित्त, धार्मिक, विद्वान्, मन्त्री।
५. शक्त—बलवान्—वैभवसम्पन्न, कीर्तिवान्, लोकप्रिय।
६. पीड़ित—युद्ध में पराजित—शत्रुपीड़ित, दु:खी, बन्धुवियोग, प्रवासी।
७. भीत—नीचराशिस्थ—शत्रुपीड़ित, निर्बल, पराजित, दीन।
८. विकल—अस्तग्रह—अनाचारी, नीच, दरिद्र, यायावर, भीत।
९. खल—पापवर्गस्थ—दायित्व वहन में अक्षम, दु:खी, नीचवृत्ति, शोकार्त।

इसके अतिरिक्त ग्रहों की शयनादि अवस्था भी होती है। भावकुतूहल में इन अवस्थाओं का वर्णन है।

'ग्रहर्क्षसंख्या खगमाननिघ्नी खेटांशसंख्यागुणिता ग्रहाणाम्।
निजेष्टजन्मर्क्षतनुप्रमाणैर्युताऽर्कतष्टा शयनाद्यवस्था ।।

प्रथमं शयनं ज्ञेयं द्वितीयमुपवेशनम् ।
नेत्रपाणि: प्रकाशश्च गमनागमने तथा ।
सभायां च ततो ज्ञेय: आगमो भोजनं तथा ।
नृत्यलिप्ता कौतुकं च निद्रावस्था नभ:सदाम्' ॥ (भावकुतूहल)

इस प्रकार मन्त्रेश्वर कृत फलदीपिका में वर्गभेद
नामक तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ।

○

चतुर्थोऽध्यायः

ग्रहबलभेदः

कालबल

वीर्यं षड्विधमाह कालजबलं चेष्टाबलं स्वोच्चजं
दिग्वीर्यं त्वयनोद्भवं दिविषदां स्थानोद्भवं च क्रमात्।
निश्यारेन्दुसिताः परे दिवि सदा ज्ञः शुक्लपक्षे शुभाः
कृष्णोऽन्ये च निजाब्दमासदिनहोरास्वङ्घ्रिवृद्ध्या क्रमात् ॥१॥

ग्रहों के छः प्रकार के बल होते हैं। १. कालज बल, २. चेष्टाबल, ३. उच्चज बल, ४. दिग्बल, ५. अयनबल और ६. स्थानबल।

कालबल—मङ्गल, चन्द्रमा और शुक्र रात्रि में, बुध दिन और रात्रि दोनों में तथा शेष सूर्य, बृहस्पति और शनि दिन में कालबल प्राप्त करते हैं। इसके अतिरिक्त शुक्लपक्ष में शुभग्रह (पूर्ण चन्द्रमा, बृहस्पति, शुक्र और शुभग्रह के साथ बुध) और कृष्णपक्ष में पापग्रह (रवि, मङ्गल, शनि, क्षीण चन्द्रमा और पापग्रह से युक्त बुध) कालबली होते हैं। अपने वर्ष में $\frac{१}{४}$, अपने मास में $\frac{१}{२}$, अपने दिन में $\frac{३}{४}$ और अपनी होरा में सभी ग्रह कालबल प्राप्त करते हैं ॥१॥

चेष्टा-उच्च-स्थान-अयन बल

राकाचन्द्रस्य चेष्टाबलमुदगयने भास्वतो वक्रगानां
युद्धे चोदक्स्थितानां स्फुटबहुलरुचां स्वोच्चवीर्यं स्वतुङ्गे।
दिग्वीर्यं खेऽर्कभौमौ सुहृदि शशिसितौ विद्गुरू लग्नगौ चे-
न्मन्देऽस्ते याम्यमार्गे बुधशनिशशिनोऽन्येऽयनाख्ये परस्मिन् ॥२॥

चेष्टाबल—पूर्ण चन्द्रमा चेष्टाबली होता है, उत्तरायण होने पर सूर्य और वक्र गति प्राप्त करने पर अन्य भौमादि ग्रह चेष्टाबल प्राप्त करते हैं। युद्धरत ग्रहों में उत्तरशर युक्त ग्रह विजयी और चेष्टाबली होता है। सम्पूर्ण रश्मियों से युक्त ग्रह भी चेष्टाबली होता है।

उच्चबल—अपनी परमोच्चावस्था में स्थित होकर ग्रह उच्चबल प्राप्त करता है।

दिग्बल—सूर्य और मङ्गल दशम भाव में, चन्द्रमा और शुक्र चतुर्थ भाव में, बुध और बृहस्पति लग्न में तथा सप्तम भाव में शनि दिग्बली होते हैं।

अयनबल—बुध, शनि और चन्द्रमा दक्षिणायन होने पर, शेष ग्रह (सूर्य, मङ्गल, बुध, बृहस्पति और शुक्र उत्तरायण होने पर अयनबली होते हैं ॥२॥

सारावली में दिक्, स्थान, काल और चेष्टा बल को ही प्रधानता दी गई है। स्वोच्च, स्वस्थान, मित्रराशि एवं स्वनवांश में स्थित ग्रह को भी स्थानबली कहा गया है। स्त्रीराशि

(सम राशि) में स्थित चन्द्रमा और शुक्र को स्थानबली कहा गया है। शेष ग्रह पुरुष (विषम) राशि में स्थानबल प्राप्त करते हैं।

'दिक्स्थानकालचेष्टाकृतं बलं सर्वनिर्णयविधाने।
वक्ष्ये चतु:प्रकारं ग्रहस्तु रिक्तो भवेदबल: ॥
लग्ने जीवबुधौ दिवाकरकुजौ व्योम्नि स्मरे भास्करि-
र्बन्धाविन्दुसितौ दिशाकृतमिदं स्वोच्चे स्वकोणे स्वभे।
मित्रस्वांशकसंस्थित: शुभफलैर्दृष्टो बलीयान ग्रह:
स्त्रीक्षेत्रे शशिभार्गवौ नरगृहे शेषा बले स्थानजे ॥
जीवार्कास्फुजितोऽह्नि विच्च सततं मन्देन्दुभौमा निशि
होरामासदिनाब्दपाश्च बलिन: सौम्या: सितेऽन्येऽसिते।
संग्रामे जयिनो विलोमगतय: सम्पूर्णगावो ग्रहा:
सूर्येन्दू पुनरुत्तरेण बलिनौ सत्योक्तचेष्टाबले' ॥ (सारावली)

स्थानबल-विशेष

स्वोच्चस्वर्क्षसुहृद्गृहेषु बलिन: षट्सु स्ववर्गेषु वा
प्रोक्तं स्थानबलं चतुष्टयमुखात्पूर्णार्द्धपादा: क्रमात्।
मध्याद्यन्तकषण्डमर्त्यवनिता: खेटा बलिष्ठा: क्रमात्
मन्दारज्ञगुरूशनोब्जरवयो नैजे बले वर्द्धना: ॥३॥

यदि ग्रह षड्वर्ग में अपनी उच्चराशि, अपनी राशि, अपने मित्रग्रह की राशि के वर्ग में स्थित हों तो वे स्थानबली होते हैं। केन्द्र, पणफर और आपोक्लिम भावों में स्थित ग्रह भी स्थानबली होता है। केन्द्र में पूर्ण बल, पणफर में आधा और आपोक्लिम में चतुर्थांश स्थानबल होता है।

नपुंसक ग्रह राशि के मध्य भाग में, पुरुष ग्रह राशि के आदि भाग में तथा स्त्री ग्रह राशि के अन्तिम भाग में बली होते हैं।

शनि, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, चन्द्रमा और सूर्य क्रमश: नैसर्गिक रूप से बली होते हैं ॥३॥

प्रसङ्गवश ग्रहों की नपुंसकादि संज्ञाएँ—

'बुधसूर्यसुतौ नपुंसकाख्यौ शशिशुक्रौ युवती नराश्च शेषा:'।
(बृहज्जातक)

वक्रं गतो रुचिररश्मिसमूहपूर्णो
नीचारिभांशसहितोऽपि भवेत्स खेट:।
वीर्यान्वितस्तुहिनरश्मिरविोच्चमित्र-
स्वक्षेत्रगोऽपि विबलो हतदीधितिश्चेत् ॥४॥

अपनी नीच या शत्रुराशि या नवांश में स्थित होने पर भी यदि ग्रह वक्री हो या अपनी पूर्ण रश्मियों से युक्त हो तो वह बलवान् होता है तथा अपनी उच्चराशि, मित्रराशि या इनके नवांशों में स्थित होने पर भी यदि वह अस्त हो तो चन्द्रमा के समान निर्बल होता है ॥४॥

तुङ्गस्था बलिनोऽखिलाश्च शशिनः श्लाघ्यं हि पक्षोद्भवं
भानोर्दिग्बलमाह वक्रगमने ताराग्रहाणां बलम् ।
कर्क्युक्षाजघटालिगोहिरबलान्त्योक्षाश्विपाश्चात्यगः
केतुस्तत्परिवेषधन्वसु बली चेन्द्वर्कयोगो निशि ॥५॥

सभी ग्रह अपनी उच्चराशि में स्थित होकर बलवान् होते हैं। अपने सम्पूर्ण पक्षबल को प्राप्त कर चन्द्रमा बलवान् और शुभ फलदाता होता है। सूर्य दिग्बल (दशम भाव में स्थित होकर) प्राप्त कर बलवान् होता है। अन्य भौमादि ग्रह वक्री होने पर पूर्ण बली होते हैं। यदि रात्रि में जन्म हो तो राहु कर्क, वृष, कन्या, कुम्भ और वृश्चिक राशियों में तथा केतु मीन, कन्या, वृष और धनु के उत्तरार्द्ध में, परिवेश (परिधि) और इन्द्रचाप (इन्द्रधनुष) के योग में सूर्य चन्द्रमा के साथ बलवान् होते हैं ॥५॥

परिवेश और इन्द्रचाप अप्रकाश ग्रह है—

'सदा चतुर्थैर्विश्वांशैः नखलिप्ताधिको रविः । धूमो नाम महादोषः सर्वकर्मविनाशकः ॥
धूमो मण्डलतः शुद्धो व्यतीपातोऽत्र दोषदः । सषड्भेऽत्र व्यतीपाते परिवेशस्तु दोषदः ॥
परिवेषश्च्युतश्चक्रादिन्द्रचापस्तु दोषदः । त्र्यंशोनात्षष्ट्यंशा युतश्चापः केतुग्रहो भवेत् ॥
एकराशियुते केतौ सूर्यः स्यात्पूर्ववत्समः । अप्रकाशग्रहाश्चैते दोषाः पापग्रहाः स्मृताः' ॥
(पराशर)

अर्थात् सूर्य के राश्यादि भोग में ४ राशि १३ अंश २० कला जोड़ने से धूम नामक अप्रकाश ग्रह होता है जो सभी कार्यो का विनाशक होता है। १२ राशि में धूम को हीन करने पर शेष व्यतीपात नामक अप्रकाश ग्रह होता है। व्यतीपात में ६ राशि जोड़ने पर परिवेश नामक अप्रकाश ग्रह होता है। परिवेश को १२ राशि में हीन करने से शेष इन्द्रचाप नामक अप्रकाश ग्रह होता है। इन्द्रचाप में १६°४०' जोड़ने से केतु नामक अप्रकाश ग्रह होता है तथा केतु में १ राशि जोड़ने से योग सूर्य के राश्यादि तुल्य हो जाता है।

उदाहरण—सूर्य का राश्यादि भोग ४रा।१८°।२३'।४६" है
+ ४।१३।२०।०
९।१।४३।४६ धूम
१२।०°।०'।०"
-९।१।४३।४६
२।२८।१६।१४ व्यतीपात
+ ६।०।०।०
८।२८।१६।१४ परिवेश

१२।०।०।०
-८।२८।१६।१४
३।१।४३।४६ इन्द्रचाप
+०।१६।४०।०
३।१८।२३।४६ केतु
+१।०।०।०
४।१८।२३।४६ सूर्य

लग्नबल

रूपं मानुषभेऽलिभेऽङ्घ्रिरपरेष्वर्द्धं बलं स्यात्तनोः
तुल्यं स्वामिबलेन चोपचयगे नाथेऽतिवीर्योत्कटम्।
स्वामीड्यज्ञयुतेक्षिते कवियुते चान्यैरयुक्तेक्षिते
शर्वर्यां निशि राशयोऽहनि परे वीर्यान्विताः कीर्तिताः ॥६॥

पुरुष राशि (विषम राशि) यदि लग्न हो तो उसे १ बल प्राप्त होता है अर्थात् वह पूर्ण बली होती है। वृश्चिक राशि यदि लग्नस्थ हो तो उसे मात्र $\frac{१}{४}$ बल ही प्राप्त होता है। शेष राशियों के लग्नस्थ होने पर लग्न को आधा बल प्राप्त होता है।

लग्नेश के बलवान् होने से लग्न भी लग्नेश के ही समान बलवान् होता है। लग्नेश यदि उपचय स्थानों (३।६।१०।११वें भाव) में स्थित हो तो लग्नेश और लग्न पूर्णबली होते हैं। लग्न यदि लग्नेश, बुध या बृहस्पति से युत या दृष्ट हो और अन्य ग्रहों से युत या दृष्ट न हो तो वह बलवान् होता है। शुक्र से युत लग्न भी बलवान् होता है; यदि अन्य ग्रहों (पाप ग्रहों) से युत-दृष्ट न हो (शुक्र की युति ही बल प्रदान करती है, उसकी दृष्टि में उतना बल नहीं होता)। दिन में जन्म हो तो दिवाबली राशि के लग्न और रात्रि में जन्म हो तो रात्रिबली राशि का लग्न बलवान् होता है ॥६॥

बल-परिमाण

स्वोच्चे पूर्णं स्वत्रिकोणे त्रिपादं स्वक्षेत्रेऽर्द्धं मित्रभे पादमेव।
द्विट्क्षेत्रेऽल्पं नीचगेऽस्तं गतेऽपि क्षेत्रं वीर्यं निष्फलं स्याद्ग्रहानाम् ॥७॥

अपनी उच्चराशि में ग्रह पूर्ण बल प्राप्त करता है, अपनी मूलत्रिकोण राशि में स्थित ग्रह को $\frac{३}{४}$ बल प्राप्त होता है, अपनी राशि में स्थित ग्रह $\frac{१}{२}$ और मित्रराशि स्थित ग्रह $\frac{१}{४}$ बल प्राप्त करता है तथा शत्रुराशिस्थ ग्रह अत्यल्प बल से बली होता है। अस्त या अपनी नीच राशि में स्थित होकर ग्रह निर्बल होते हैं ॥७॥

केन्द्रस्थ ग्रह के बल-परिमाण

केन्द्रे ग्रहाणामुदितं बलं यत्सुखे नभस्यस्तगृहे विलग्ने।
उपर्युपर्युक्तपदक्रमेण बलाभिवृद्धिं हि विकल्पयन्ति ॥८॥

केन्द्रस्थ ग्रहों के बल चतुर्थ, दशम, सप्तम और लग्न में क्रमशः पादवृद्धि क्रम से होते हैं अर्थात् चतुर्थभावगत ग्रह $\frac{१}{४}$ बल, दशम भाव में $\frac{१}{२}$ अर्धबल, सप्तम भाव में $\frac{३}{४}$ बल और लग्न में पूर्ण बल प्राप्त करते हैं ॥८॥

केन्द्रभावों में ग्रहबल के विषय में लघुपाराशरी का भिन्न मत है। लघुपाराशरी के अनुसार ये उत्तरोत्तर बलवान् होते हैं। तनुभाव से चतुर्थ भाव, चतुर्थ से सप्तम, सप्तम से दशम भाव बलवान् होता है।

'न दिशन्ति शुभनृणां सौम्या केन्द्राधिपा यदि।
क्रूरश्चेत् शुभं ह्येते प्रबलाश्चोत्तरोत्तरम्' ॥ (लघुपाराशरी)

ग्रहों के दृष्टिबल

श्रेष्ठेति सा सप्तमदृष्टिरेव सर्वत्र वाच्या न तथाऽन्यदृष्टिः।
योगादिषु न्यूनफलप्रदेति विशेषदृष्टिर्न तु कैश्चिदुक्ता ॥९॥

ग्रहों की सप्तम दृष्टि ही सर्वाधिक प्रभावशाली होती है। अन्य दृष्टियाँ उतनी प्रभावशाली नहीं होतीं। कतिपय आचार्यों के मतानुसार योगों में विशेष दृष्टियाँ (बृहस्पति की पञ्चम और नवम भावों पर, मङ्गल की चतुर्थ और अष्टम भावों पर तथा शनि की तृतीय और दशम भावों पर) भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण होती है ॥९॥

'पश्यति सप्तमं सर्वे शनिजीवकुजाः पुनः।
विशेषतश्च त्रिदशत्रिकोणचतुरष्टमानम्' ॥ (लघुपाराशरी)

शत्रु-मित्रबल

नैसर्गिकं शत्रुसुहृत्त्वमेव भवेत्प्रमाणं फलकारि सम्यक्।
तात्कालिकं कार्यवशेन वाच्यं तच्छत्रुमित्रत्वमनित्यमेव ॥१०॥

ग्रहों की परस्पर नैसर्गिक मित्रता या शत्रुता ही प्रभावी होती है। तात्कालिक मित्रता या शत्रुता अस्थायी होती है। अतः इसका विचार भी अस्थायी कार्यों में—तात्कालिक प्रश्न आदि में—करना चाहिए ॥१०॥

शुभता में बृहस्पति की सर्वोत्कृष्टता

निःशेषदोषहरणे शुभवर्द्धने च
वीर्यं गुरोरधिकमस्त्यखिलग्रहेभ्यः।
तद्वीर्यपाददलशक्तिभृतौ ज्ञशुक्रौ
चान्द्रं बलं तु निखिलग्रहवीर्यबीजम् ॥११॥

बृहस्पति की दोष-निवारण क्षमता (ग्रहों के पापफल को रोकने की क्षमता) और शुभफल वृद्धि की क्षमता समस्त ग्रहों की अपेक्षा अधिक होती है। पापत्व के निवारण और शुभत्व वृद्धि की यह क्षमता बुध में चौथाई और शुक्र में आधी होती है।

जन्माङ्ग में चन्द्रमा का बल ही अन्य ग्रहों के बल का मूल है।११॥

चन्द्रक्रिया-अवस्था-वेला

जन्मर्क्षविघटी नीतैर्ज्ञानाङ्गैर्नननयैर्भजेत्।
लब्धाश्चन्द्रक्रियावस्थावेलाख्यास्तत्फलं क्रमात् ॥१२॥

जन्म के समय जन्मनक्षत्र का जो घट्यादि भाग गत हो गया हो उसका पल बनाकर उसमें ६०, ३०० और १०० से भाग देने से लब्ध फल क्रमशः चन्द्रक्रिया, चन्द्रावस्था और चन्द्रवेला होती है। इनके क्रमशः फल आगे कहे गये हैं ॥१२॥

जन्मकाल तक जन्मनक्षत्र के गत घट्यादि (भयात) को पलात्मक बनाकर उसे ६० से भाग देने से प्राप्त फल के क्रमानुसार आगे १३-१५ श्लोकों के कथित फल देखना चाहिए।

नक्षत्र के सम्पूर्ण मध्यम भोगकाल ६० घटी या ३६०० पल में ६० का भाग देने से लब्धि ६० होती है। अर्थात् सम्पूर्ण नक्षत्र भोगकाल में ६०-६० पल की ६० चन्द्र क्रियाएँ होती हैं। इन चन्द्रक्रियाओं में प्रत्येक का मान १३°२०' ÷ ६० = १३'२०" होता है।

इसी प्रकार एक नक्षत्र के मध्यम भोगकाल ३६०० ÷ ३०० = १२ चन्द्रावस्थाएँ होती हैं। इनमें से प्रत्येक अवस्था का मान १३°२०' ÷ १२ = १°६४०" होता है।

एक नक्षत्र के सम्पूर्ण मध्यम भोगकाल ३६०० ÷ १०० = ३६ चन्द्रवेलाएँ होती हैं। इनमें प्रत्येक वेला का मान १३°२०' ÷ ३६ = ०°२२'१३.३" होता है।

चन्द्रक्रियाफल

स्थानाद्भ्रष्टस्तपस्वी परयुवतिरतो द्यूतकृद्धस्तिमुख्या-
रूढः सिंहासनस्थो नरपतिररिहा दण्डनेता गुणी च।
निष्प्राणश्छिन्नमूर्द्धा क्षतकरचरणो बन्धनस्थो विनष्टो
राजा वेदानधीते स्वपिति सुचरितः संस्मृतो धर्मकर्ता ॥१३॥
सद्वंश्यो निधिसङ्गतः श्रुतकुलो व्याख्यापरः शत्रुहा
रोगी शत्रुजितः स्वदेशचलितो भृत्यो विनष्टार्थकः।
अस्थानी च सुमन्त्रकः परमहीभर्ता सभार्यो गज-
त्रस्तः संयुगभीतिमानतिभयो लीनोऽन्नदातानिगः ॥१४॥
क्षुद्बाधासहितोऽन्नमत्ति विचरन्मांसानोऽस्त्रक्षतः
सोद्वाहो धृतकन्दुको विहरति द्यूतैर्नृपो दुःखितः।
शय्यास्थो रिपुसेवितश्च ससुहृद्योगी च भार्यान्वितो
मिष्टाशी च पयः पिबन् सुकृतकृत् स्वस्थस्तथास्ते सुखम् ॥१५॥

एक नक्षत्र में ०°१३'२०" की एक चन्द्रक्रिया होती है। इनके फल निम्न तालिका में दिये गये हैं। एक नक्षत्र में कुल ६० चन्द्रक्रियाएँ होती हैं।

चन्द्रक्रिया	चन्द्रभोग अंशादि	फल	चन्द्रक्रिया	चन्द्रभोग अंशादि	फल
१.	०°१३'२०"	स्थानच्युति	३१.	६°५३'२०"	राजसभासद
२.	०°२६'४०"	तपस्वी	३२.	७°६'४०"	सद् मन्त्री
३.	०°४०'०"	परस्त्रीरत	३३.	७°२०'०"	परभूस्वामी
४.	०°५३'२०"	जुवाड़ी	३४.	७°३३'२०"	सपत्नीक
५.	१°६'४०"	हाथीनशीन	३५.	७°४६'४०"	गजत्रस्त
६.	१°२०'०"	सिंहासनासीन	३६.	८°०'०"	भीरु
७.	१°३३'२०"	प्रशासक	३७.	८°१३'२०"	भयभीत
८.	१°४६'४०"	शत्रुञ्जय	३८.	८°२६'४०"	गुप्तवासी
९.	२°०'०"	सेनापति	३९.	८°४०'०"	अन्नदाता
१०.	२°१३'२०"	गुणवान्	४०.	८°५३'२०"	अग्नि में पड़ा हुआ
११.	२°२६'४०"	निस्तेज	४१.	९°६'४०"	बुभुक्षित
१२.	२°४०'०"	छिन्नशिर	४२.	९°२०'०"	पक्वान्नभोजी
१३.	२°५३'२०"	हस्तपदक्षत	४३.	९°३३'२०"	यायावर
१४.	३°६'४०"	बन्दी	४४.	९°४६'४०"	मांसाहारी
१५.	३°२०'०"	विनष्ट	४५.	१०°०'०"	शस्त्रादि से घायल
१६.	३°३३'२०"	राजा	४६.	१०°१३'२०"	विवाहित
१७.	३°४६'४०"	वेदपाठी	४७.	१०°२६'४०"	हाथ में गेंद
१८.	४°०'०"	निद्रालु	४८.	१०°४०'०"	जुवारी
१९.	४°१३'२०"	चरित्रवान्	४९.	१०°५३'२०"	राजा
२०.	४°२६'४०"	धर्माचारी	५०.	११°६'४०"	दुःखी
२१.	४°४०'०"	सत्कुलोत्पन्न	५१.	११°२०'०"	शय्यासीन
२२.	५°५३'२०"	धनिक	५२.	११°३३'२०"	शत्रुसेवित
२३.	५°६'४०"	ख्यातकुलावतंस	५३.	११°४६'४०"	मित्रों से युक्त
२४.	५°२०'०"	व्याख्याकार	५४.	१२°०'०"	सन्त, योगी
२५.	५°३३'२०"	शत्रुञ्जयी	५५.	१२°१३'२०"	सपत्नीक
२६.	५°४६'४०"	रुग्ण, रोगी	५६.	१२°२६'४०"	मिष्टान्नभोगी
२७.	६°०'०"	विजित	५७.	१२°४०'०"	दुग्धपानप्रिय
२८.	६°१३'२०"	परदेशवासी	५८.	१२°५३'२०"	सत्कर्मरत
२९.	६°२६'४०"	दास	५९.	१३°६'४०"	स्वस्थ
३०.	६°४०'०"	नष्टधन	६०.	१३°२०'०"	सुखी।

जन्मकालिक या प्रश्नकालिक चन्द्रभोग के राश्यादि जिस क्रिया के अन्तर्गत हों उसके अनुसार फल कहना चाहिए। जैसे अभीष्टकालिक चन्द्रमा २ रा १०°४२'३४" या ७०°४२'३४" है।

७०°४२'३४" ÷ १३°२०' = ७०°.७०९४ ÷ १३°.३

= ५.३०३२०८

गत नक्षत्र संख्या = ५ का भोग कर चन्द्रमा छठे नक्षत्र आर्द्रा के ४°२'३४" पर है जो उपर्युक्त तालिका के अनुसार १९वीं क्रिया के अन्तर्गत है। अतः जातक चरित्रवान् होगा।

चन्द्रावस्था फल

आत्मस्थानात्प्रवासो महितनृपहितो दासता प्राणहानि-
र्भूपालत्वं स्ववंशोचितगुणनिरतो रोग आस्थानवत्त्वम्।
भीतिः क्षुद्बाधितत्वं युवतिपरिणयो रम्यशय्यानुषक्ति-
र्मृष्टाशित्वं च गीता इति नियमवशात्सद्भिरिन्दोरवस्था ॥१६॥

निम्न तालिका में १२ चन्द्र-अवस्थाओं के फल दिये गये हैं।

चन्द्रवेला	चन्द्रभोग अंशादि	फल	चन्द्रक्रिया	चन्द्रभोग अंशादि	फल
१.	१°६'४०"	स्वस्थानेतर स्थिति	७.	७°४६'४०"	राजसभासद
२.	२°१३'२०"	राजवल्लभ	८.	८°५३'२०"	भयातुर
३.	३°२०'०"	दासत्व में प्राणभय	९.	१०°०'०"	क्षुधार्तता
४.	४°२६'४०"	भूपालत्व	१०.	११°६'४०"	पाणिग्रहण
५.	५°३३'२०"	स्वकुलोचित गुण सम्पन्न	११.	१२°१३'२०"	सुशय्यालिप्सा
			१२.	१३°२०'०"	सुस्वादुभोजी
६.	६°४०'०"	रुग्णता			

पूर्वोक्त उदाहरण में अभीष्ट काल में चन्द्रमा आर्द्रा के ४°२'३४" भोग चुका है। उपर्युक्त सारिणी के अनुसार चन्द्रमा चतुर्थ चन्द्रावस्था में है जिसका भूपालत्व अर्थात् राजोचित गुणों से युक्त होना फल होता है।

चन्द्रवेला फल

मूर्द्धामयो मुदितता यजनं सुखस्थो
नेत्रामयः सुखितता वनिताविहारः।
उग्रज्वरः कनकभूषणमश्रुमोक्षः
क्ष्वेलाशनं निधुवनं जठरस्य रोगः ॥१७॥
क्रीडा जले हसनचित्रविलेखने च
क्रोधश्च नृत्तकरणं घृतभुक्तिनिद्रे।
दानक्रिया दशनरुक् कलहः प्रयाण-
मुन्मत्तता च सलिलाप्लवनं विरोधः ॥१८॥
स्वेच्छास्नानं क्षुद्भयं शास्त्रलाभं स्वैरं गोष्ठी योधनं पुण्यकर्म।
पापा चारः क्रूरकर्मा प्रहर्षं प्राज्ञैरेवं चन्द्रवेला प्रदिष्टा ॥१९॥

३६ चन्द्रवेला के फल निम्न तालिका में दिये गये हैं—

चन्द्रवेला	चन्द्रभोग अंशादि	फल	चन्द्रवेला	चन्द्रभोग अंशादि	फल
१.	०°२२′१३″.३	शिरःशूल	१८.	६°४०′०″	निद्रस्थ
२.	०°४४′२६″.६	प्रसन्नता	१९.	७°२′१३″.३	दानक्रिया
३.	१°६′४०″	यज्ञादि कर्म	२०.	७°२४′२६″.६	दन्तशूल
४.	१°२८′५३″.३	सुखी	२१.	७°४६′४०″	विवाद, कलह
५.	१°५१′६″.६	नेत्ररोगी	२२.	८°८′५३″.३	प्रयाण, यात्रारम्भ
६.	२°१३′२०″	प्रसन्नचित्त	२३.	८°३१′६″.६	उन्मत्तता
७.	२°३५′३३″.३	स्त्रियों से मनोरंजन	२४.	८°५३′२०″	जलविहार, तैरना
८.	२°५७′४६″.६	ज्वराधिक्य	२५.	९°१५′३३″.३	विरोध
९.	३°२०′०″	स्वर्णाभूषणमण्डित	२६.	९°३७′४६″.६	स्वेच्छास्नान
१०.	३°४२′१३″.३	अश्रुविसर्जन-दुःखी	२७.	१०°०′०″	क्षुधार्तता
११.	४°४′२६″.६	विषपान	२८.	१०°२२′१३″.३	भय
१२.	४°२६″४०″	सम्भोग	२९.	१०°४४′२६″.६	शास्त्रलाभ
१३.	४°४८′५३″.३	उदरशूल	३०.	११°६′४०″	स्वेच्छाचारिता
१४.	५°११′६″.६	जलविहार, मनोरंजन, चित्रकारी	३१.	११°२८′५३″.३	संगोष्ठी
			३२.	११°५१′६″.६	युद्ध, झगड़ा
			३३.	११°१३′२०″	पुण्यकर्म
१५.	५°३३′२०″	क्रोध	३४.	१२°३५′३३″.३	पापाचार
१६.	५°५५′३३″.३	नृत्यरंजन	३५.	१२°५७′४६″.६	क्रूरकर्म
१७.	६°१७′४६″.६	घीयुक्त भोजन	३६.	१३°२०′०″	हर्ष, प्रसन्नता

जातके च मुहूर्ते च प्रश्ने चन्द्रक्रियादयः ।
सम्यक् फलप्रदास्तस्माद्विशेषेण विचिन्तयेत् ॥२०॥

जन्माङ्ग में, प्रश्न में और महूर्त्त में इन चन्द्रक्रिया आदि का अवश्य विचार करना चाहिए। ये सभी फल घटित होते हैं ॥२०॥

बल-विशिष्टता

पक्षोद्भवं हिमकरस्य विशेषमाहुः
स्थानोद्भवं तु बलमप्यधिकं परेषाम्।
तत्सम्प्रयुक्तमितरैरधिकाधिकं स्या-
दन्यानि तेन सदृशानि बहूनि ते स्युः ॥२१॥

चन्द्रमा का पक्षबल विशेषरूप से महत्त्वपूर्ण होता है। अन्य ग्रहों के स्थानबल महत्त्वपूर्ण होते हैं। अन्य बलों के योग से एक का षड्बल अन्य से अधिक हो जाता है। अन्य प्रकार के अनेक बल होते हैं ॥२१॥

बलपिण्ड संस्था

सार्द्धानि षट्तीक्ष्णकरो बलीयान् चन्द्रस्तु षट्पञ्च वसुन्धराजः ।
सप्तेन्दुसूनो रविवद्गुरोस्तु सार्द्धानि पञ्चाथ सितो बली स्यात् ॥२२॥

सूर्य का बलपिण्ड (षड्बलयोग) यदि ६½ रूप हो, चन्द्रमा का ६ रूप हो, मंगल का ५ रूप हो, बुध का ७ रूप हो, बृहस्पति का ६½ रूप हो तथा शुक्र का बलपिण्ड ५½ हो तो ये ग्रह बली होते हैं ॥२२॥

मन्दस्तु पञ्चैव हि षड्बलानां संयोग एवापरथान्यथा स्युः ।
एवं ग्रहाणां स्वबलाबलानि विचिन्त्य सम्यक्कथयेत्फलानि ॥२३॥

शनि का बलपिण्ड ५ हो तो वह बली समझा जाता है। ये सभी रूप ग्रहों के बलपिण्ड के हैं। इन कथित रूपों से अल्प बल होने से ग्रह निर्बल होता है। फलकथन में सभी ग्रहों के बलपिण्ड के अनुसार बलाबल विचार करना चाहिए ॥२३॥

भावबल

लग्नादिकानामधिपस्य पिण्डे रूपान्विते तद्बलपिण्डमाहुः ।
गृहस्य यस्यां दिशि दिग्बलं स्यात्तद्भाववीर्यं सहितस्य दृष्ट्या ॥२४॥

इति मन्त्रेश्वरविरचितायां फलदीपिकायां षड्बलनिरूपणं
नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

लग्नादि भाव के स्वामी के बलपिण्ड में भाव के दिग्बल और दृग्बल जोड़कर १ और जोड़ने से भावबलपिण्ड होता है ॥२४॥

इस प्रकार मन्त्रेश्वर कृत फलदीपिका में ग्रहबलभेद
नामक चौथा अध्याय समाप्त हुआ ॥४॥

पञ्चमोऽध्याय:

कर्मजीवभेद:

अर्थाप्तिं कथयेद्विलग्नशशिनोः प्राबल्यतः खेचरैः
कर्मस्थैः पितृमातृशात्रवसुहृद्भ्रात्रादिभिः स्त्रीधनात् ।
भृत्याद्वा दिननाथलग्नशशिनां मध्ये बलीयांस्ततः
कर्मेशस्थनवांशराशिपवशाद्वृत्तिं जगुस्तद्विदः ॥१॥

जन्माङ्ग में लग्न या चन्द्रमा के बलाबल के अनुसार जातक को धन की प्राप्ति होती है। लग्न या चन्द्रमा में जो बलवान् हो उससे दशम भाव में स्थित सूर्यादि ग्रह के अनुसार क्रमशः पिता, माता, शत्रु, मित्र, भाई, स्त्री या भृत्य (नौकर) के माध्यम से धन का लाभ होता है। सूर्य, लग्न और चन्द्रमा में जो बलवान् हो उससे दशम भाव के स्वामी के नवांश-पति के अनुसार जातक का पेशा होता है ॥१॥

लग्न अथवा चन्द्रमा के बलाबल के अनुसार जातक के धन की प्रचुरता होती है। इनमें से कोई एक यदि पूर्ण बली हो तो जातक को धनसुख उत्तम होता है। इन दोनों में जो अधिक बलशाली हो उससे दशम भाव में यदि सूर्य स्थित हो तो पिता से, चन्द्रमा स्थित हो तो माता से, मङ्गल स्थित हो तो शत्रु के द्वारा, बुध स्थित हो तो मित्रों के माध्यम से, बृहस्पति स्थित हो तो भाइयों या बन्धु-बान्धवों से, शुक्र स्थित हो तो स्त्री से और यदि शनि स्थित हो तो दास-दासियों से धन की प्राप्ति होती है। सूर्य, चन्द्रमा और लग्न में जो सर्वाधिक बलशाली हो उससे दशम भाव का स्वामी जिस राशि के नवांश में स्थित हो उसके स्वामी ग्रह के अनुसार व्यक्ति का पेशा होता है। दशमेश के नवांशपति के जो भी पदार्थ कहे गये हैं उसके ही व्यवसाय में व्यक्ति को अधिक लाभ की सम्भावना होती है। उदाहरण के लिए यदि दशम भाव का स्वामी मङ्गल के नवांश में स्थित हो तो अग्नि के संयोग से निर्मित पदार्थों के व्यवसाय से अथवा लाल रंग के पदार्थों के व्यवसाय से अधिक लाभ हो सकता है। इसी प्रकार व्यक्ति के व्यवसाय का अनुमान करना चाहिए।

सूर्यादि ग्रहों द्वारा निर्देशित व्यवसाय की चर्चा आगे के श्लोकों में विस्तार से की गई है।

सूर्य-इङ्गित व्यवसाय

फलद्रुमैर्मन्त्रजपैश्च शाठ्याद्द्यूतानृतैः कम्बलभेषजाद्यैः ।
धातुक्रियाद्वा क्षितिपालपूज्याज्जीवत्यसौ पङ्कजवल्लभांशे ॥२॥

दशम भाव का स्वामी सूर्य के नवांशगत हो तो ऐसा व्यक्ति फलदार वृक्ष से, मंत्रजप से, छल से, द्यूत कर्म से, असत्य भाषण से, ऊन या ऊन से बने वस्त्रादि से, औषधि आदि के व्यवसाय से, धातुक्रिया से, किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति अथवा राजसत्ता की सेवा से अपनी आजीविका प्राप्त करता है ॥२॥

चन्द्रमा-इङ्गित व्यवसाय

जलोद्भवानां क्रयविक्रयेण कृषिक्रियागोमहिषीसमुत्थैः ।
तीर्थाटनाद्वा वनिताश्रयाद्वा निशाकरांशे वसनक्रयाद्वा ॥३॥

यदि दशम भाव का स्वामी चन्द्रमा के नवांश में स्थित हो तो जातक जल से उद्भूत पदार्थ (मत्स्य, मोती, सिंघाडा आदि) के क्रय-विक्रय से अथवा समुद्र के पार स्थित किसी देश से आयात-निर्यात व्यवसाय से अथवा नौवहन से, कृषि-व्यवसाय अथवा चौपायों गौ, भैंस आदि के क्रय-विक्रय से, तीर्थाटन के द्वारा अथवा स्त्री के माध्यम से तथा वस्त्रादि के व्यवसाय से जीविका प्राप्त करता है ॥३॥

भौम-इङ्गित व्यवसाय

भौमांशके धातुरणप्रहारैर्महानसाद्भूमिवशात्सुवर्णात् ।
परोपतापायुधसाहसैर्वा म्लेच्छाश्रयात्सूचकचोरवृत्त्या ॥४॥

दशम भाव का अधिपति यदि मङ्गल के नवांश में स्थित हो तो जातक धातु सम्बन्धी व्यवसाय से, युद्ध से, प्रहार से (डाकाजनी आदि, सेना में प्रविष्ट होकर, विद्युत् या अग्नि के संयोग से), सोना और स्वर्ण-निर्मित वस्तुओं के व्यवसाय से, सर्राफे के व्यवसाय से, भोजन बनाने से, भूमि के व्यवसाय से, दूसरों को प्रताड़ित करके, म्लेच्छों के माध्यम से, गुप्तचरी के द्वारा अथवा चौरकर्म से जीविका प्राप्त करता है ॥४॥

बुध-इङ्गित व्यवसाय

काव्यागमैर्लेखकलिप्युपायैर्ज्योतिर्गणज्ञानवशाद्बुधांशे ।
परार्थवेदाध्ययनाज्जपाच्च पुरोहितव्याजवशात्प्रवृत्तिः ॥५॥

यदि दशमभावाधिपति बुध के नवांश में स्थित हो तो जातक काव्यरचना के द्वारा, आगमादि शास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन के द्वारा, लिपि या लेखन (क्लर्क) आदि के द्वारा, ज्योतिषशास्त्र के द्वारा, दूसरों के निमित्त वेदादि के पाठ या मन्त्रजप के द्वारा अथवा पौरोहित्य कर्म के द्वारा आजीविका प्राप्त करता है ॥५॥

बृहस्पति-इङ्गित व्यवसाय

जीवांशके भूसुरदेवतानां समाश्रयाद्भूमिपतिप्रसादात् ।
पुराणशास्त्रागमनीतिमार्गाद्धर्मोपदेशेन कुसीदवृत्त्या ॥६॥

दशमभावाधिपति यदि बृहस्पति के नवांश में हो तो जातक ब्राह्मण देवता के माध्यम से अथवा राजा की कृपा से, पौराणिक कथाओं और व्याख्यानों से, शास्त्रों के अध्ययन से और तदनुसार धर्मोपदेश करके अथवा व्याज पर धन देकर आजीविका प्राप्त करता है ॥६॥

शुक्र-इङ्गित व्यवसाय

स्त्रीसंश्रयाद्गोमहिषीगजाश्वैस्तौर्यत्रिकैर्वा रजतैश्च गन्धैः ।
क्षीराद्यलङ्कारपटीपटाद्यैः शुक्रांशकेऽमात्यगुणैः कवित्वात् ॥७॥

यदि दशमेश शुक्र के नवांशगत हो तो जातक स्त्री के माध्यम से; गौ, भैंस, हाथी, घोड़े, संगीत-नृत्यादि ललित कलाओं से सम्बन्धित व्यवसाय से; चाँदी, सुगन्धि (इत्र, सेण्ट आदि), दूध, आभूषण, अलंकृत रेशमी वस्त्र, राजमन्त्री सदृश गुणों से अथवा स्वाभाविक कवित्व-प्रतिभा के व्यवसाय से जीविका प्राप्त करता है ॥७॥

शनि-इङ्गित व्यवसाय

शन्यंशके मूलफलैः श्रमेण प्रेष्यैः खलैर्नीचधनैः कुधान्यैः ।
भारोद्वहात्कुत्सितमार्गवृत्त्या शिल्पादिभिर्दारुमयैर्वधाद्यैः ॥८॥

दशम भाव का स्वामी यदि शनि के नवांश में स्थित हो तो जातक फल-मूल आदि के व्यवसाय से, श्रमसाध्य कार्यों भारवहनादि के सम्पादन से, प्रेष्य कर्म (नौकरी) द्वारा, दुष्टजनों के सहयोग से, नीच वृत्ति के व्यक्तियों के सहयोग से, भारवहन (बोझ ढोना) से, कुत्सित (निन्दित) मार्ग से, शिल्पादि के व्यवसाय से, काष्ठ-निर्मित वस्तुओं के व्यवसाय से अथवा वधिक कर्म के द्वारा जीवन यापन करता है ॥८॥

लाभस्थान भेद

अंशेशे बलवत्ययत्नधनसम्प्राप्तिं बलोनेंशपे
स्वल्पं प्रोक्तफलं भवेदुदयतः कर्मर्क्षदेशे फलम् ।
अंशस्योक्तदिशं वदेत्पतियुते दृष्टे स्वदेशे फलं
सत्यन्यैः परदेशजं तदधिपस्यांशे स्वदेशे स्थिरे ॥९॥

इति श्रीमन्त्रेश्वरविरचितायां फलदीपिकायां कर्मजीवभेदो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥
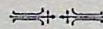
दशम भाव का स्वामी जिस राशि के नवांश में स्थित हो उसका स्वामी यदि बलवान् हो तो अधिक श्रम के बिना ही सहज भाव से धनागम होता है। किन्तु यदि उक्त नवांशेश निर्बल हो तो कृत श्रम का पूर्ण फल नहीं प्राप्त होता।

लग्न से दशमभावगत राशि की दिशा में व्यवसाय अधिक सफल होता है। दशमेश जिस राशि के नवांश में स्थित हो उस राशि की दिशा में भी व्यवसाय लाभकर होता है। किन्तु यदि ये राशियाँ (दशमस्थ राशि और दशमेश की नवांश राशि) अपने स्वामी से युत अथवा दृष्ट हों तो धनार्जन की दृष्टि से जातक का स्वदेश ही उपयुक्त होता है। उपर्युक्त राशियाँ यदि स्थिरसंज्ञक हों तब भी व्यवसाय की दृष्टि से जातक का स्वदेश ही अधिक उपयुक्त होता है। यदि उक्त राशियाँ चरसंज्ञक हों तो उन राशियों की दिशाएँ व्यवसाय के लिए उपयुक्त होती है ॥९॥

इस प्रकार मन्त्रेश्वर कृत फलदीपिका में कर्मजीवभेद
नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥५॥

षष्ठोऽध्याय:

राजयोगभेद:

पञ्चमहापुरुष योग

रुचकभद्रकहंसकमालवा:
सशशका इति पञ्च च कीर्तिता: ।
स्वभवनोच्चगतेषु चतुष्टये
क्षितिसुतादिषु तान् क्रमशो वदेत् ॥१॥

अपनी उच्चराशि या स्वराशि के होकर मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि यदि केन्द्र (१।४।७।१०वें) भावों में स्थित हों तो क्रमश: रुचक, भद्र, हंस, मालव और शश योग बनाते हैं। इन योगों को क्रमश: कहता हूँ ॥१॥

मेष, वृश्चिक या मकर राशि का मङ्गल यदि केन्द्र—लग्न, चतुर्थ, सप्तम या दशम—भाव में स्थित हो तो **रुचक** योग; मिथुन या कन्या राशिगत बुध यदि केन्द्रस्थ हो तो **भद्र** योग; यदि कर्क, धनु या मीन राशि का बृहस्पति केन्द्रस्थ हो तो **हंस** योग; यदि वृष, तुला या मीन राशि का शुक्र केन्द्र में स्थित हो तो **मालव** योग और यदि तुला, मकर अथवा कुम्भ राशिस्थ शनि केन्द्र में स्थित हो तो **शश** योग बनता है। इन्हें पञ्चमहापुरुष योग कहते हैं तथा इन योगों में उत्पन्न व्यक्तियों के स्वरूप और भाग्यादि फल आगे के श्लोकों में विस्तार से कहे गये हैं।

पञ्चमहापुरुष योग प्राय: सभी जातक-ग्रन्थों में लगभग इसी रूप में कहा गया है। जातकपारिजातकार श्री वैद्यनाथ ने भौमादि पञ्च ग्रहों के उच्चराशि, मूलत्रिकोण या स्वराशिस्थ होकर केन्द्रगत होने से इन योगों को कहा है।

'मूलत्रिकोणनिजतुङ्गगृहोपयाता भौमज्ञजीवसितभानुसुता बलिष्ठा: ।
केन्द्रस्थिता यदि तथा रुचकभद्रहंससमालव्यचारुशशयोगकरा भवन्ति' ॥
(जातकपारिजात)

'स्वक्षेत्रे च चतुष्टये च बलिभि: स्वोच्चस्थितैर्वा ग्रहै:
शुक्राङ्गारकमन्दजीवशशिजैरेतैर्यथानुक्रमम् ।
मालव्यो रुचक: शशोऽथ कथितो हंसश्च भद्रस्तथा
सर्वेषामपि विस्तरं मतिमतां संक्षिप्यते लक्षणम्' ॥ (सारावली)

रुचक-भद्र योग लक्षण

दीर्घास्यो बहुसाहसाप्तविभव: शूरोऽरिहन्ता बली
गर्विष्ठो रुचके प्रतीतगुणवान् सेनापतिर्जित्वर: ।

आयुष्मान् सकुशाग्रबुद्धिरमलो विद्वज्जनश्लाघितो
भूपो भद्रकयोगजोऽतिविभवश्चास्थानकोलाहल: ॥२॥

रुचक योग में उत्पन्न व्यक्ति का मुखमण्डल लम्बा होता है। वह साहसिक कार्यों से अर्जित विभव का स्वामी, शूरवीर, शत्रुओं का नाश करने वाला, शक्तिशाली, गर्वोन्मत्त, अपने सद्गुणों से विख्यात, सेनापति और विजयी होता है।

भद्र योग में उत्पन्न जातक दीर्घजीवी और प्रखर बौद्धिक क्षमता से सम्पन्न, निर्मल आचारवान्, विद्वानों से प्रशंसित तथा अतुल वैभव-सम्पन्न राजा होता है ॥२॥

सारावली में रुचकादि योगों के लक्षण विशद रूप में कहे गये हैं।

रुचक योग—

'दीर्घास्य: स्वच्छकान्तिर्बहुरुचिरबल: साहसावाप्तकार्य-
श्चारुभ्रूर्नीलकेशश्चरणरणरतो मन्त्रविच्चोरनाथ:।
रक्तश्यामोऽतिशूरो रिपुबलमथन: कम्बुकण्ठ: प्रधान:
क्रूरो भर्त्ता नराणां द्विजगुरुविनत: क्षामसज्जानुजङ्घ: ॥
खट्वाङ्गपाशवृषकार्मुकवज्रवीणारेखाङ्कहस्तचरणश्च शताङ्गुलश्च।
मन्त्राभिचारकुशलस्तुलया सहस्रं मध्यं च तस्य कथितं मुखदैर्घ्यतुल्यम् ॥
विन्ध्याचलसह्यगिरीन् भुनक्ति सप्ततिसमा नगरदेशान्।
शस्त्रानलकृतमृत्यु: प्रयाति देवालयं रुचक:' ॥ (सारावली)

रुचकयोगोत्पन्न व्यक्ति का मुख लम्बा, निर्मल कान्ति से युक्त, अत्यन्त बलशाली, साहसिक कार्यनिरत, सुन्दर भौंह, नीले केश, युद्धप्रिय, मन्त्रविद्या में निष्णात, चोरों का स्वामी, रक्ताभ श्यामल वर्ण, अतिशूरवीर, शत्रु का मान मर्दन करने वाला, शङ्ख के समान ग्रीवा, अपने वर्ग में प्रधान, क्रूरमना, नरपति, क्षीण जानु और जङ्घाओं से युक्त होता है। उसके हाथ और पैर में खट्वाङ्ग, पाश, वृष, धनुष, वज्र और वीणा आदि की आकृतियों के समान रेखाएँ होती हैं। उसकी लम्बाई १०० अङ्गुल तथा भार १००० तुला और कटि प्रदेश का विस्तार उसके मुख की लम्बाई के समान होती है तथा वह मन्त्रादि के प्रयोग और अभिचार कर्म में निष्णात होता है। वह विन्ध्य और सह्य पर्वतीय प्रदेश के नगरों का पालक होता है तथा ७० वर्ष की वय प्राप्त होने पर शत्रु अथवा अग्नि से उसकी मृत्यु होती है।

भद्र योग—

'शार्दूलप्रतिमाननो द्विपगति: पीनोरुवक्ष:स्थलो
लम्बापीनसुवृत्तबाहुयुगलस्तत्तुल्यमानोच्छ्रय:।
कामी कोमलसूक्ष्मरोमनिकरै: संरुद्धगण्डस्थल:
प्राज्ञ: पङ्कजगर्भपाणिचरण: सत्त्वाधिको योगवित् ॥
शङ्खासिकुञ्जरगदाकुसुमेषुकेतुचक्राब्जलाङ्गलविचिह्नितपाणिपाद:।
यात्रागुरुद्विपमदप्रथमाम्बुसिक्तभूकुङ्कुमप्रतिमगन्धतनु: सुघोण: ॥

शास्त्रार्थविद्धृतियुतः समसङ्गतभ्रूर्नागोपमो भवति चाथ निगूढगुह्यः ।
सत्कुक्षिधर्मनिरतः सुललाटशङ्खो धीरः स्थिरस्त्वसितकुञ्चितकेशभारः ।।
स्वतन्त्रः सर्वकार्येषु स्वजनप्रीणनक्षमी ।
भुज्यते विभवश्चास्य नित्यं मन्त्रिजनैः परैः ।।
भारस्तुलायां तुलितो यदि स्याच्छ्रीमध्यदेशेष्वधिपस्तदासौ ।
यस्त्र्यादिमुख्यैः सहितः सभद्रः सर्वत्र राजा शरदामशीतिः' ।। (सारावली)

हंस-मालव्य योग लक्षण

हंसे सद्भिरभिष्टुतः क्षितिपतिः शङ्खाब्जमत्स्याङ्कुशै-
श्चिह्नैः पादकराङ्कितः शुभवपुर्मृष्टान्नभुग्धार्मिकः ।
पुष्टाङ्गो धृतिमान्धनी सुतवधूभाग्यान्वितो वर्धनो
मालव्ये सुखभुक्सुवाहनयशा विद्वान्प्रसन्नेन्द्रियः ।।३।।

हंस योग में उत्पन्न व्यक्ति सज्जनों से प्रशंसित राजा होता है। उसे हाथ और पैरों में शङ्ख, कमल, मत्स्य (मछली) और अङ्कुश के चिह्न होते हैं। वह सुन्दर शरीरधारी मिष्टान्न-भोजी और धार्मिक होता है।

मालव्य योग में उत्पन्न व्यक्ति दृढनिश्चयी, धनवान्, स्त्री-पुत्रादि और सौभाग्य से सम्पन्न, वैभवादि से युक्त, सुस्वादु भोजनादि से सुखी, अनेक वाहनादि से युक्त, यशस्वी, विद्वान् और प्रसन्नमना होता है ।।३।।

हंस—

'रक्तास्योन्नतनासिकः सुचरणो हंसः प्रसन्नेन्द्रियो
गौरः पीनकपोलरक्तकरजो हंसस्वरः श्लेष्मलः ।
शङ्खाब्जाङ्कुशदाममत्स्ययुगलः खट्वाङ्गचापाङ्गद-
श्चिह्नैः पादकराङ्कितो मधुनिभे नेत्रे च वृत्तं शिरः ।।
सलिलाशयेषु रमते स्त्रीषु न तृप्तिं प्रयाति कामार्तः ।
षोडशशतानि तुलितोऽङ्गुलानि दैर्घ्येण षण्णवतिः ।।
पातीह देशान् खलु शूरसेनान् गान्धारगङ्गायमुनान्तरालान् ।
जीवेदनूनां शतवर्षसंख्यां पश्चाद्वनान्ते समुपैति नाशम्' ।।

मालव्य—

'न स्थूलोष्ठो न विषमवपुर्नातिरक्ताङ्गसन्धि-
मध्ये क्षामः शशधररुचिर्हस्तिनादः सुगन्धः ।
सन्दीप्ताक्षः समसितरदो जानुदेशाप्तपाणि-
र्मालव्योऽयं विलसति नृपः सप्ततिर्वत्सराणाम् ।।
वक्त्रं त्रयोदशमितानि दशाङ्गुलानि दैर्घ्येण कर्णविवरं दशविस्तरेण ।
मालव्यसंज्ञमनुजः स भुनक्ति नूनं लाटान्समालवससिन्धुसपारियात्रान्' ।।
(सारावली)

शश योग लक्षण

शस्तः सर्वजनैः सुभृत्यबलवान् ग्रामाधिपो वा नृपो
दुर्वृत्तः शशयोगजोऽन्यवनितावित्तान्वितः सौख्यवान् ।
लग्नेन्द्वोरपि योगपञ्चकमिदं साम्राज्यसिद्धिप्रदं
तेष्वेकादिषु भाग्यवान् नृपसमो राजा नृपेन्द्रोऽधिकः ।।४।।

शशयोगोत्पन्न व्यक्ति सभी के द्वारा प्रशंसित, अच्छे सेवकों से युक्त, बलवान्, ग्रामप्रमुख या राजा, हीन, कुटिल प्रवृत्ति से युक्त, दूसरों के धन और स्त्री का भोग करने वाला, सौभाग्यशाली होता है। रुचक, भद्र आदि जो पाँच योग लग्न से कहे गये हैं वे चन्द्रमा से भी होते हैं। ये योग साम्राज्य और सिद्धियों को देने वाले हैं। इनमें से यदि एक भी योग जन्माङ्ग में उपस्थित हो तो जातक भाग्यवान् होता है। यदि जन्माङ्ग में इनमें से दो योग उपस्थित हों तो जातक राजा के समान विभवादि से सम्पन्न होता है। इनमें से यदि तीन योग जन्माङ्ग में उपस्थित हों तो जातक राजा, चार योग उपस्थित हों तो सम्राट् और यदि पाँचों योग उपस्थित हों तो जातक समस्त भूमण्डल का स्वामी होता है ।।४।।

'तनुद्विजास्यो द्रुतगः शशोऽयं शठोऽतिशूरो निभृतप्रतापः ।
वनाद्रिदुर्गेषु नदीषु सक्तः कृशोदरो नातिलघुः प्रसिद्धः ।।
सेनानाथो निखिलनिरतो दन्तुरश्चापि किञ्चित्
धातोर्वादे भवति निरतश्चञ्चलः कोशनेत्रः ।
स्त्रीसंसक्तः परधनगृहो मातृभक्तः सुजङ्घो
मध्ये क्षामो बहुविधमती रन्ध्रवेदी परेषाम् ।।
पर्यङ्कशङ्खहरिशस्त्रमृदङ्गमालावीणोपमा यदि करे चरणे च रेखाः ।
वर्षाणि सप्ततिमितानि करोति राज्यं प्रत्यन्तिकः क्षितिपतिः कथितो मुनीन्द्रैः' ।।

चान्द्र योग

विधोस्तु सुनफानफाधुरुधुराः स्वरिःफोभय-
स्थितैर्विरविभिर्ग्रहैरितरथा तु केमद्रुमः ।
हिमत्विषि चतुष्टये ग्रहयुतेऽथ केमद्रुमो
न हीति कथितोऽथवा हिमकराद्ग्रहैः केन्द्रगैः ।।५।।

चन्द्र स्थित राशि (भाव) से द्वितीय भाव में यदि सूर्य से इतर भौमादि ग्रह स्थित हों तो सुनफा, द्वादश भाव में स्थित हों तो अनफा योग और यदि द्वितीय और द्वादश दोनों भावों में उक्त ग्रह स्थित हों तो दुरधुरा योग होता है। इन तीनों योगों के अनुपस्थित रहने पर (अर्थात् चन्द्रमा स्थित भाव से द्वितीय और द्वादश भाव ग्रहशून्य हों तो) केमद्रुम योग होता है। कतिपय विद्वानों के अनुसार चन्द्रमा के साथ या उससे केन्द्र में यदि कोई ग्रह संयुक्त हो तो केमद्रुम योग नहीं होता ।।५।।

कल्याण वर्मा ने सुनफा-अनफा के ३१ भेद और दुरधुरा के १८० भेद कहे हैं—

'सुनफानफासरूपास्त्रिंशद्योगास्त्रिसंगुणा षष्टिः ।
संख्या दौरुधुराणां प्रस्तारविधौ समाख्याताः' ॥ (सारावली)

केमद्रुम योग के सम्बन्ध में कल्याण वर्मा कहते हैं—

'एते (सुनफानफादुरधुरा) न यदा योगाः केन्द्रग्रहवर्जितः शशाङ्कश्च ।
केमद्रुमोऽतिकष्टः शशिनि समस्तग्रहादृष्टे' ॥ (सारावली)

चन्द्रमा और चन्द्रलग्न से केन्द्रभाव यदि ग्रहशून्य हों अथवा चन्द्रमा पर अन्य किसी ग्रह की दृष्टि न हो तब भी केमद्रुम योग होता है जो अत्यन्त कष्टप्रद होता है।

सुनफा-अनफा योगफल

स्वयमधिगतवित्तः पार्थिवस्तत्समो वा
भवति हि सुनफायां धीधनख्यातिमांश्च ।
प्रभुरगदशरीरः शीलवान् ख्यातकीर्ति-
र्विषयसुखसुवेषो निर्वृतश्चानफायाम् ॥६॥

जो व्यक्ति सुनफा योग में उत्पन्न होता है वह अपने पुरुषार्थ से अर्जित धन-वैभवादि और ख्याति से युक्त राजा अथवा राजा के समान वैभवशाली होता है।

अनफा योग में उत्पन्न व्यक्ति शक्तिशाली, स्वस्थ, शीलवान्, विख्यात, भौतिक सुख से सम्पन्न, सुवेषधारी, सन्तुष्ट और प्रसन्नचित्त होता है ॥६॥

जैसा कि पहले कहा जा चुका है चन्द्रलग्न से द्वितीय भाव में भौमादि ग्रहों के योग से सुनफा योग बनता है। उपर्युक्त श्लोक में मन्त्रेश्वर ने सुनफा योग के सामान्य फल कहे हैं। स्पष्ट है कि उक्त भौमादि विभिन्न पाँच ग्रहों के योग से उत्पन्न होने वाले योगों के फल एक जैसे नहीं होंगे। कल्याण वर्मा ने सारावली में इस पर विशद चर्चा की है।

मङ्गल—

'विक्रमवित्तपायो निष्ठुरवचनश्चमूपतिश्चण्डः ।
हिंस्रो दम्भाविरोधी सुनफायां भौमसंयोगे' ॥

बुध—

'श्रुतिशास्त्रगेयकुशलो धर्मपरः काव्यकृन्मनस्वी च ।
सर्वहितो रुचिरतनुः सुनफायाः सोमजे भवति' ॥

बृहस्पति—

'विद्याचार्यं ख्यातं नृपतिं नृपतिप्रियं वाऽपि ।
सुकुटुम्बधनसमृद्धं सुनफायां सुरगुरुः कुरुते' ॥

शुक्र—

'स्त्रीक्षेत्रवित्तविभवश्चतुष्पदाढ्यः सुविक्रमो भवति ।
नृपसत्कृतः सुधीरो दक्षः शुक्रेण सुनफायाम्' ॥

शनि—

'निपुणमतिर्ग्रामपुरैर्नित्यं सम्पूजितो धनसमृद्धः ।।
सुनफायां रविपुत्रे क्रियासु युक्तो भवेद्धीरः' ।।

अनफा योग फल

मङ्गल—

'चोरस्वामी धृष्टः स्ववशो मानी रणोत्कटः क्रोधी ।
श्रेष्ठः श्लाघ्यः सुतनुः कुजेऽनफायां सुलाभश्च' ।।

बुध—

'गन्धर्वलेखनपटुः कविः प्रवक्तः नृपाप्तसत्कारः ।
रुचिरतनुस्त्वनफायां प्रसिद्धकर्मा बुधेन भवेत्' ।।

बृहस्पति—

'गाम्भीर्यसत्त्वमेधास्थानरतो बुद्धिमान् नृपाप्तयशाः ।
अनफायां त्रिदशगुरौ सञ्जातः सत्कविर्भवति' ।।

शुक्र—

'युवतीनामतिसुभगः प्रणयी क्षितिपस्य भोगवान् कान्तः ।
ख्यातः कनकसमृद्धस्त्वनफायां भार्गवे भवति' ।।

शनि—

'विस्तीर्णभुजो नेता गृहीतवाक्यश्चतुष्पदसमृद्धः ।
दुर्वनिताया भक्तो गुणसहितश्चार्कपुत्रेण' ।। (सारावली)

दुरधुरा-केमद्रुम योगफल

उत्पन्नभोगसुखभाग्धनवाहनाढ्य-
स्त्यागान्वितो धुरुधुराप्रभवः सभृत्यः ।
केमद्रुमे मलिनदुःखितनीचनिःस्वाः
प्रेष्याः खलाश्च नृपतेरपि वंशजाताः ।।७।।

दुरधुरा योग में उत्पन्न व्यक्ति सहज ही भोग, सुख, सौभाग्य, वाहनादि सुख प्राप्त कर लेता है तथा वह त्यागी और सद्भृत्यों से युक्त होता है। इसके विपरीत राजकुल में उत्पन्न होकर भी केमद्रुम योग में उत्पन्न व्यक्ति मलिन चित्तवृत्ति का, दुःखी, नीच, निर्धन, दास और दुष्ट स्वभाव का व्यक्ति होता है।

भिन्न-भिन्न ग्रहों के योग से उद्भूत दुरधुरा योगों के फल भी सारावली में कहे गये हैं—

मं. + बु.—

'आनृतिको बहुवित्तो निपुणोऽतिशठोऽधिको लुब्धः ।
वृद्धासतीप्रसक्तः कुलाग्रणीः शशिनि भौमबुधमध्ये ।।'

मं. + बृ.—

'ख्यातः कर्मसु विभवी बहुजनवैरस्त्वमर्षणो हृष्टः ।
कुलरक्षी कुजगुर्वोः सङ्ग्रहशीलः शशिनि मध्ये' ।।

मं. + शु.—

'उत्तमरामः सुभगो विवादशीलः शुचिर्भवेद्दक्षः ।
व्यायामी रणशूरः सितारयोर्मध्यगे चन्द्र' ।।

मं. + श.—

'कुत्सितयोषिद्रमणो बहुसञ्चयकारको व्यसनसक्तः ।
क्रोधी पिशुनो रिपुहा यमारयोः स्याद्दुरुधुरायाम् ।।'

बु. + बृ.—

'धर्मपरः शास्त्रज्ञो वाचालः सत्कविर्धनोपेतः ।
त्यागयुतो विख्यातो बुधगुरुमध्ये स्थिते चन्द्रे' ।।

बु. + शु.—

'प्रियवाक् सुभगः कान्तः प्रनृत्तगेयादिषु प्रियो भवति ।
सेव्यः शूरो मन्त्री बुधसितयोर्दुरुधुरायोगे ।।'

बु. + श.—

'देशाद्देशं गच्छति वित्तपरो नातिविद्यया सहितः ।
चन्द्रेऽन्येषां पूज्यः स्वजनविरोधी ज्ञमन्दयोर्मध्ये' ।।

बृ. + शु.—

'धृतिमेधाशौर्ययुतो नीतिज्ञः कनकरत्नपरिपूर्णः ।
ख्यातो नृपकृत्यकरो गुरुसितयोर्दुरुधुरायोगे' ।।

बृ. + श.—

'सुखनयविज्ञानयुतः प्रियवाग्विद्वान् धुरन्धरोऽप्यार्यः ।
शान्तो धनी सुरूपश्चन्द्रे गुरुभानुजान्तःस्थे' ।।

शु. + श.—

'वृद्धचरितं कुलाग्र्यं निपुणं स्त्रीवल्लभं धनसमृद्धम् ।
नृपसत्कृतं बहुधनं कुरुते चन्द्रः सितासितयोः' ।।

वेसि-वासि-कर्तरि-उभयचरी योग

हित्वेन्दुं शुभवेसिवास्युभयचर्याख्याः स्वरिःफोभय-
स्थानस्थैः सवितुः शुभैः स्युरशुभैस्ते पापसंज्ञाः स्मृताः ।
सत्पार्श्वे शुभकर्तरीत्युदयभे पापैस्तु पापाह्वयो
लग्नाद्वित्तगतैः शुभैस्तु सुशुभो योगो न पापेक्षितैः ।।८।।

सूर्याधितिष्ठित राशि से द्वितीय भाव में यदि शुभग्रह (बुध, बृहस्पति और शुक्र) स्थित हों तो **शुभ वेसि** योग, द्वादश भाव में शुभग्रह हों तो **शुभ वासि** और यदि द्विर्द्वादश दोनों

भावों में शुभग्रह स्थित हों तो **शुभ उभयचरी** योग बनते हैं। सूर्याधितिष्ठित राशि से द्वितीय भाव में यदि पापग्रह (मंगल या शनि) हों तो **अशुभ वेसि**, द्वादश भाव में पापग्रह हों तो **पाप वासि** योग और यदि द्विर्द्वादश दोनों भावों में पापग्रह हों तो **अशुभ उभयचरी** योग बनते हैं।

लग्न से द्वितीय और द्वादश दोनों भावों में यदि शुभग्रह स्थित हों तो **शुभ कर्तरि** और उन स्थानों में पापग्रह स्थित हों तो **पाप कर्तरि** योग बनता है।

लग्न से द्वितीय भाव में यदि पापग्रहों से अदृष्ट शुभग्रह स्थित हों तो इस योग को **सुशुभ** योग कहते हैं ॥८॥

शुभवेसि-शुभवासि-शुभोभयचरी योगफल

जातः स्यात् सुभगः सुखी गुणनिधिर्धीरो नृपो धार्मिको
विख्यातः सकलप्रियोऽतिसुभगो दाता महीशप्रियः।
चार्वङ्गः प्रियवाक्प्रपञ्चरसिको वाग्मी यशस्वी धनी
विद्यादत्र सुवेसिवास्युभयचर्याख्येषु पादक्रमात् ॥९॥

शुभवेसि योगोत्पन्न जातक भाग्यवान्, सुखी, गुणवान्, धैर्यवान्, धार्मिक राजा होता है। शुभवासि योग में उत्पन्न जातक विख्यात, सर्वप्रिय, अत्यन्त भाग्यशाली, दानवीर तथा राजा का प्रिय पात्र होता है। शुभ उभयचरी योग में उत्पन्न जातक के अङ्ग सुन्दर होते हैं। वह प्रियभाषी, सांसारिक प्रपञ्च में रुचि रखने वाला, वाचाल, यश और धन से सम्पन्न होता है ॥९॥

भिन्न ग्रहों से उत्पन्न शुभवेसि और शुभवासि योग के फल सारावली में कहे गये हैं—

शुभवेसि—

'वसुसञ्चयवित्ससुहृत्स्याद्वेसौ सुरगुरौ भवति जातः।
भीरुः कार्योद्विग्नो लघुचेष्टो भृगुसुते पराधीनः ॥
परिकर्मको दरिद्रो मृदुर्विनीतो बुधे सलज्जश्च'।

शुभवासि—

'धृतिसत्त्वबुद्धियुक्तो भवति गुरौ वासिके वचनसारः।
शूरः ख्यातो गुणवान् यशस्करो भार्गवे पुरुषः ॥
प्रियभाषी रुचिरतनुर्वास्यां स्याद्बोधने पराज्ञाकृत्।'

उभयचरी—

'सर्वसहः सुभद्रः समकायः सुस्थिरो विपुलसत्त्वः।
नात्युच्चः परिपूर्णो विद्यायुक्तो भवेदुभयचर्याम् ॥
सुभगो बहुभृत्यधनो बन्धूनामाश्रयो नृपतितुल्यः।
नित्योत्साही हृष्टो भुङ्क्ते भोगानुभयचर्याम्' ॥ (सारावली)

अशुभ वेसि-वासि-उभयचरी योगफल

अन्यायाज्जननिन्दको हतरुचिर्हीनप्रियो दुर्जनो
मायावी परनिन्दकः खलयुतो दुर्वृत्तशास्त्राधिकः।

लोके स्यादपकीर्तिदुःखितमना विद्यार्थभाग्यैश्च्युतो
जातश्चाशुभवेसिवास्युभयचर्याख्येषु पादक्रमात् ॥१०॥

अशुभ या पाप वेसि योग में उत्पन्न व्यक्ति अन्यायपूर्वक (अनावश्यक रूप से) दूसरों की निन्दा करने वाला, निम्नस्तरीय व्यक्तियों का प्रिय और दुष्ट होता है। अशुभवासि योग में उत्पन्न जातक मायावी, दूसरों की निन्दा करने वाला, दुष्टो का मित्र, हीनवृत्ति से युक्त तथा शास्त्रों का मर्मज्ञ होता है। अशुभोभयचरी योग में उत्पन्न व्यक्ति संसार में अपकीर्त्ति से युक्त, दुःखी, विद्या और धन से हीन एवं भाग्यहीन होता है ॥१०॥

पापवेसि—

'मार्गलघुः क्षितिपुत्रे परोपकारी नरो वेसौ ॥
परदाररतश्चण्डो वृद्धाकारः शठो घृणी ।
भवेन्मनुष्यः सधनो याते वेसिं शनैश्चरे' ॥

पापवासि—

'सङ्ग्रामे विख्यातो भूमिसुते नाऽन्यभाग्यश्च ॥
वणिक् खलस्वभावः स्यात् परद्रव्यापहारकः ।
गुरुद्वेषी सुनिस्त्रिंशो गते वासिं शनैश्चरे' ॥ (सारावली)

शुभ-अशुभ कर्तरी योग फल

जैवातृको विभयरोगरिपुः सुखी स्या-
दाढ्यः श्रिया च शुभकर्तरियोगजातः ।
निःस्वोऽशुचिर्विसुखदारसुतोऽङ्गहीनः
स्यात्पापकर्तरिभवोऽचिरमायुरेति ॥११॥

शुभकर्तरी योग में उत्पन्न जातक निर्भय, निरोग, शत्रुओं से हीन, सुखी, धन-वैभवादि से सम्पन्न एवं दीर्घायु होता है। पापकर्तरी योग में उत्पन्न व्यक्ति निर्धन, मलिन, दुःखी, स्त्री-पुत्रादि से हीन और अङ्गहीन होता है ॥११॥

अमला योगफल

आचारवान् धर्ममतिः प्रसन्नः सौभाग्यवान् पार्थिवमाननीयः ।
मृदुस्वभावः स्मितभाषणश्च धनी भवेच्चामलयोगजातः ॥१२॥

अमला योग में उत्पन्न व्यक्ति आचारवान्, धार्मिक वृत्ति का, प्रसन्नचित्त, सौभाग्यशाली, राजा के द्वारा मान-प्रतिष्ठा प्राप्त करने वाला, अत्यन्त कोमल स्वभाव का, मृदुभाषी और धन सम्पन्न होता है ॥१२॥

अमला योग के लक्षण आचार्य ने (इसी अध्याय के १९वें श्लोक में) कहा है। जातकपारिजात में अमला योग के लक्षण और फल कहे गये हैं।

'यस्य जन्मकाले राशिलग्नात् सद्ग्रहो यदि च कर्मणि संस्थः ।
तस्य कीर्तिरमला भुवि तिष्ठेदायुषोऽन्तमविनाशनसम्पत् ॥

लग्नाद्वा चन्द्रलग्नाद्वा दशमे शुभसंयुते ।
योगोऽयममला नाम कीर्तिराचन्द्रतारकौ ॥
राजपूज्यो महाभोगी दाता बन्धुजनप्रियः ।
परोपकारी गुणवान् अमलायोगसम्भवः' ॥ (जातकपारिजात)

जन्मलग्न या चन्द्रलग्न से दशम भाव में शुभग्रह (बृहस्पति, बुध और शुक्र) के योग से अमला योग होता है ।

चन्द्र-सूर्य योगों के फलों में समानता

सुशुभे शुभकर्तर्यां वेस्यादौ सुनभादिवत् ।
शुभैः क्रमात्फलं ज्ञेयं विपरीतमसद्ग्रहैः ॥१३॥

सुशुभ, शुभकर्तरी, शुभवेसि आदि योगों के फल सुनफादि योगों के समान होते हैं तथा अशुभ, पाप कर्तरी और पापवेसि आदि पापग्रहों के योग से उत्पन्न योगों के फल उनके विपरीत समझना चाहिए ॥१३॥

महाभाग्य-केसरी-शकट-अधम-सम-वरिष्ठ योग

ओजेष्वर्केन्दुलग्नान्यजनि दिवि पुमांश्चेन्महाभाग्ययोगः
स्त्रीणान्तद्व्यत्यये स्याच्छशिनि सुरगुरोः केन्द्रगे केसरीति ।
जीवान्त्याष्टारिसंस्थे शशिनि तु शकटः केन्द्रगे नास्ति लग्ना-
च्चन्द्रे केन्द्रादिगेऽर्कादधमसमवरिष्ठाख्ययोगाः प्रसिद्धाः ॥१४॥

दिवाजन्म हो और पुरुष के जन्माङ्ग में यदि लग्न, सूर्य और चन्द्रमा तीनों विषम राशि के हों; रात्रिजन्म हो और स्त्री के जन्माङ्ग में लग्न, सूर्य और चन्द्रमा सम राशि के हों तो **महाभाग्य** योग होता है ।

जन्माङ्ग में यदि बृहस्पति-अधिष्ठित राशि से चतुर्थ, सप्तम या दशम राशि में चन्द्रमा स्थित हो तो **केसरी** योग होता है ।

बृहस्पति द्वारा अधिष्ठित राशि से छठी या आठवीं राशि में यदि चन्द्रमा स्थित हो तो **शकट** योग होता है । किन्तु यदि चन्द्रमा लग्न से केन्द्रगत हो तो शकट योग भङ्ग हो जाता है ।

सूर्याधितिष्ठित राशि से केन्द्र (१।४। ७।१०वें) भाव में चन्द्रमा स्थित हो तो **अधम** योग; पणफर (२।५।८।११वें) भावों में चन्द्रमा स्थित हो तो **सम** योग; यदि आपोक्लिम (३।६।९।१२वें) भावों में चन्द्रमा स्थित हो तो **वरिष्ठ** योग होता है ॥१४॥

नाभस योगों की संख्या ३२ है जिसमें २० आकृति योग, ३ आश्रय योग और ७ संख्या योग होते हैं । शकट योग आकृति योगों में एक है । अन्य जातक-ग्रन्थों में इस योग के जो लक्षण कहे गये हैं वे इस शकट योग के लक्षणों से भिन्न हैं । अन्य जातक-ग्रन्थों के अनुसार लग्न और सप्तम भावों में सभी ग्रहों के योग से शकट योग होता है ।

दिवाजन्म—महाभाग्ययोग-१ — पुरुषजन्माङ्ग

रात्रिजन्म—महाभाग्ययोग-२ — स्त्रीजन्माङ्ग

केसरी योग

शकट

अधम योग

वरिष्ठ योग

'होरास्तगतैः शकटं..........' (सारावली)

''तन्वस्तगेषु शकटं..........' (जातकपारिजात)

'लग्नास्तसंस्थैः शकटः समस्तैः'। (पराशर)

यद्यपि लक्षण में भिन्नता है किन्तु फल में काफी समानता है। इसके अतिरिक्त शकट योग का एक और प्रकार कहा गया है जिसकी चर्चा १७वें श्लोक की टीका में की गई है।

महाभाग्य योगफल

महाभाग्ये जातः सकलनयनानन्दजनको
वदान्यो विख्यातः क्षितिपतिरशीत्यायुरमलः।

वधूनां योगेऽस्मिन् सति धनसुमाङ्गल्यसहिता
चिरं पुत्रैः पौत्रैः शुभमुपगता सा सुचरिता ॥१५॥

सौभाग्य योग में उत्पन्न जातक अपने दर्शन मात्र से सभी के नेत्रों को आनन्दित करने वाला, अति उदार, वाक्पटु, विख्यात, राजा अथवा राजा के समान वैभवशाली होता है। यह योग यदि कन्या के जन्माङ्ग में हो तो वह सुचरित्रा, धन और दीर्घायु पति, पुत्र-पौत्रादि से दीर्घकाल तक सुखी होती है। ऐसी कन्या अनन्त सौभाग्यशालिनी होती है ॥१५॥

केसरी योगफल

केसरीव रिपुवर्गनिहन्ता प्रौढवाक् सदसि राजसवृत्तिः ।
दीर्घजीव्यतियशाः पटुबुद्धिस्तेजसा जयति केसरियोगे ॥१६॥

केसरी योग (अन्य जातक-ग्रन्थों में इस योग को गजकेसरी योग कहा गया है) में उत्पन्न जातक सिंह के समान अपने शत्रुओं का नाश करने वाला होता है। वह गम्भीर अथवा गर्वोक्त वक्ता, राजस वृत्तिसम्पन्न, दीर्घजीवी और महान् यशस्वी होता है। अपनी बुद्धि-कौशल और तेजस्विता के बल पर जय प्राप्त करता है ॥१६॥

जातकपारिजातादि ग्रन्थों में गजकेसरी योग दो प्रकार से कहे गये हैं। बृहस्पति और चन्द्रमा के परस्पर केन्द्र में स्थित होने से; बुध, बृहस्पति और शुक्र यदि अपनी नीच राशि में न स्थित हों तथा अस्त न हों और उनसे चन्द्रमा देखा जाता हो तो दोनों स्थितियों में गजकेसरी योग होता है—

'केन्द्रस्थिते देवगुरौ मृगाङ्काद्योगस्तदाहुर्गजकेसरीति ।
दृष्टे सितार्येन्दुसुतैः शशाङ्के नीचास्तहीनैर्गजकेसरी स्यात् ॥
गजकेसरिसञ्जातस्तेजस्वी धनधान्यवान् ।
मेधावी गुणसम्पन्नो राजप्रियकरो भवेत्' ॥ (जातकपारिजात)

शकट योगफल

क्वचित्क्वचिद्भाग्यपरिच्युतः सन् पुनः पुनः सर्वमुपैति भाग्यम् ।
लोकेऽप्रसिद्धोऽपरिहार्यमन्तः शल्यं प्रपन्नः शकटेऽतिदुःखी ॥१७॥

शकट योग में उत्पन्न व्यक्ति कभी अपने सुख-सौभाग्य को नष्ट कर लेता है तथा कभी वह सब कुछ पुनः प्राप्त कर लेता है। संसार में ख्याति रहित अति साधारण जीवन व्यतीत करता है। वह अपरिहार्य मानसिक सन्ताप झेलता है और दुःखी रहता है ॥१८॥

शकट नाम से दो भिन्न योग जातक-ग्रन्थों में मिलते हैं। एक प्रकार का उल्लेख श्लोक की व्याख्या में किया जा चुका है। दूसरा भेद इस प्रकार है—

'षष्ठाष्टमगतश्चन्द्रात्सुरराजपुरोहितः । केन्द्रादन्यगतो लग्नाद्योगः शकटसंज्ञितः ॥
अपि राजकुले जातो निःस्वः शकटयोगजः । क्लेशायासवशान्नित्यं सन्तप्तो नृपविप्रियः' ॥
(जातकपारिजात)

कष्ट-मध्यम-वरिष्ठ योगफल

कष्टमध्यमवराह्वययोगे द्रव्यवाहनयशःसुखसम्पत् ।
ज्ञानधीविनयनैपुणविद्यात्यागभोगजफलान्यपि तद्वत् ॥१८॥

धन, वाहन, यश, सुख, सम्पदादि, ज्ञान, बुद्धि, विनय, नैपुण्य, विद्या, त्याग और भोगादि कष्ट, मध्यम और वरिष्ठ योगों में क्रमश: अल्प, मध्यम और प्रचुर मात्रा में जातक को प्राप्त होते हैं।

'अधमसमवरिष्ठान्यर्ककेन्द्रादिसंस्थे शशिनि विनयवित्तज्ञानधीनैपुणानि ।
अहनि निशि च चन्द्रे स्वाधिमित्रांशके वा सुरगुरुक्षितदृष्टे वित्तवान् स्यात् सुखी च' ॥
(जातकपारिजात)

वसुमत्-अमला-पुष्कल योग

चन्द्राद्वा वसुमांस्तथोपचयगैर्लग्नात्समस्तैः शुभै-
श्चन्द्राद्व्योम्न्यमलाह्वयः शुभखगैर्योगो विलग्नादपि ।
जन्मेशे सहिते विलग्नपतिना केन्द्रेऽधिमित्रर्क्षगे
लग्नं पश्यति कश्चिदत्र बलवान्योगो भवेत्पुष्कलः ॥१९॥

लग्न अथवा चन्द्र राशि से उपचय (३,६,१०,११वें) भाव में सभी शुभग्रह स्थित हों तो **वसुमत्** योग होता है। लग्न या चन्द्रराशि से दशम भाव में सभी शुभग्रह स्थित हों तो **अमला** योग होता है। यदि लग्नेश और चन्द्रराशीश अधिमित्र राशि में अथवा केन्द्र में स्थित हों और लग्न पर बलवान् शुभग्रहों की दृष्टि हो तो **पुष्कल** योग होता है ॥१९॥
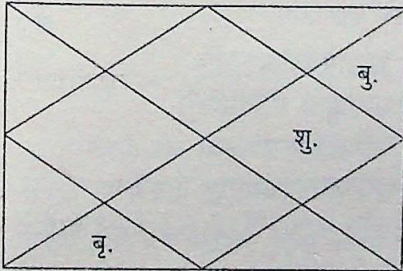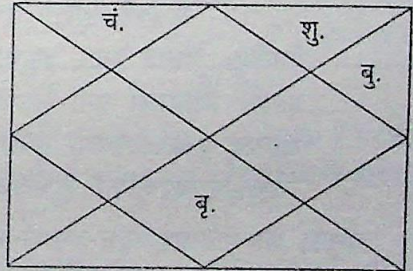
वसुमत् योग वसुमत् योग
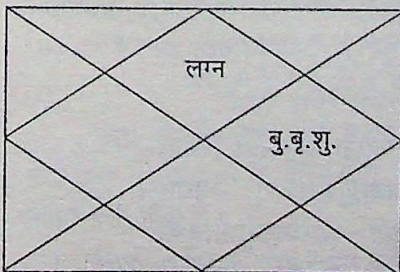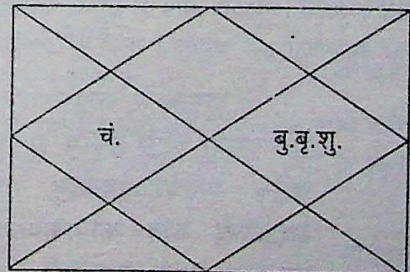
अमला योग अमला योग

पुष्कल योग के दो भेद आचार्य ने कहे हैं—

१. लग्नेश और चन्द्रराशीश की युति केन्द्र (१।४।७।१०वें) भाव में हो और लग्न पर शुभग्रह की दृष्टि हो;

२. लग्नेश और चन्द्रराशीश अपने अधिमित्र की राशि में युत हों और लग्न पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो।

(१)

(२)

पुष्कल योग

चक्र पुष्कल (१) में लग्नेश शुक्र और चन्द्रराशीश बुध की युति केन्द्र में है तथा लग्न पंचम, सप्तम या नवमस्थ बृहस्पति से दृष्ट है। चक्र पुष्कल (२) में लग्नेश सूर्य और चन्द्रराशीश बृहस्पति की युति मेष राशि में है। मेष का स्वामी मंगल सूर्य और बृहस्पति का अधिमित्र है। शुक्र की पूर्ण दृष्टि लग्न पर है। अत: दोनों जन्माङ्गों में पुष्कल योग बनता है।

वसुमत्-अमला-पुष्कल योगफल

तिष्ठेयुः स्वगृहे सदा वसुमति द्रव्याण्यनल्पान्यपि
क्ष्मेशः स्यादमले धनी सुतयशःसम्पद्युतो नीतिमान्।
श्रीमान् पुष्कलयोगजो नृपवरैः संमानितो विश्रुतः
स्वाकल्पाम्बरभूषितः शुभवचाः सर्वोत्तमः स्यात्प्रभुः ॥२०॥

वसुमत् योग में उत्पन्न व्यक्ति धन-धान्य से सम्पन्न सदैव स्वस्थान में निवास करता है। अमला योग में उत्पन्न जातक धन-वैभवादि और पुत्रों से युक्त, नीतिवान् एवं यशस्वी भूपति होता है। पुष्कल योग में उत्पन्न जातक राजाओं में श्रेष्ठ, धन-सम्पन्न, विख्यात, सुन्दर आभूषणों और बहुमूल्य वस्त्रों से अलंकृत मृदुभाषी सर्वोत्तम राजा होता है ॥२०॥

शुभमाला-अशुभमाला-लक्ष्मी-गौरी योग

सर्वे पञ्चसु षट्सु सप्तसु शुभा मालाश्च पङ्क्त्या स्थिता
यद्येवं मृतिषड्व्ययादिषु गृहेष्वत्राशुभाख्याः स्मृताः।
स्वर्क्षोच्चे यदि कोणकण्टकयुतौ भाग्येशशुक्रावुभौ
लक्ष्म्याख्योऽथ तथाविधे हिमकरे गौरीति जीवेक्षिते ॥२१॥

पंचम, षष्ठ और सप्तम भावों में यदि सभी शुभग्रह क्रमबद्ध हों तो **शुभमाला** योग होता है। यदि वे (शुभग्रह) क्रमशः अष्टम, षष्ठ और द्वादश भावों में स्थित हों तो **अशुभमाला** योग बनाते हैं।

यदि स्वराशि या स्वोच्च राशिगत शुक्र और भाग्येश दोनों त्रिकोण या केन्द्र में स्थित हों तो **लक्ष्मी** योग होता है। उक्त स्थिति में यदि चन्द्रमा बृहस्पति से दृष्ट हो तो **गौरी** योग होता है अर्थात् स्वराशि, स्वोच्चराशि (कर्क अथवा वृष राशि) गत चन्द्रमा त्रिकोण या केन्द्र में स्थित हो तो **गौरी** योग होता है ॥२१॥
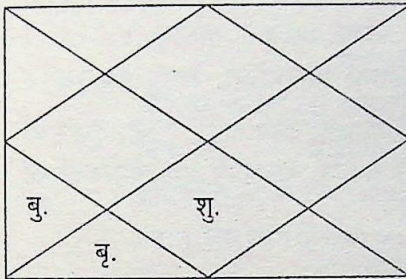
शुभमाला योग
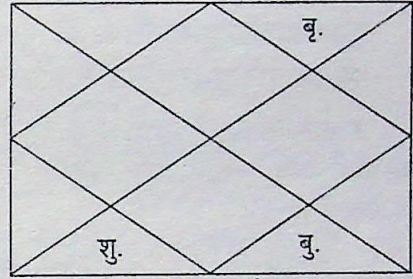
अशुभमाला योग
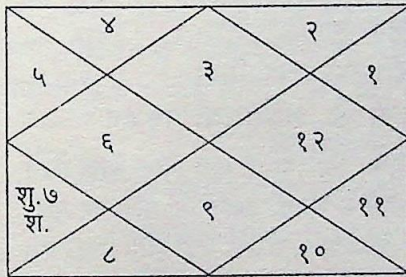
लक्ष्मी योग
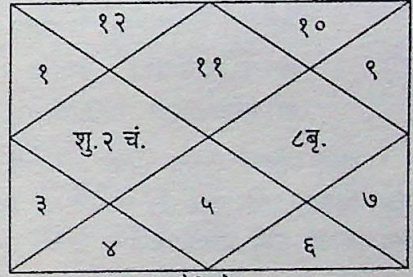
गौरी योग

लक्ष्मी योग अन्य जातकशास्त्रों में इससे भिन्न रूप में देखने को मिलता है। उसके अनुसार भाग्येश के मूलत्रिकोण या परमोच्च स्थिति में केन्द्रस्थ होने और लग्नेश के बलवान् होने से लक्ष्मी योग का होना कहा गया है—

'केन्द्रे मूलत्रिकोणस्थे भाग्येशे परमोच्चगे।
लग्नाधिपे बलाढ्ये च लक्ष्मीयोग इतीरितः' ॥ (जातकपारिजात)

'परमोच्चगते केन्द्रे भाग्यनाथे शुभेक्षिते।
लग्नाधिपे बलाढ्ये तु लक्ष्मीयोग इतीरितः' ॥ (जातकादेश)

माला योग के विषय में भी शास्त्रों में भिन्नता है। सारावली के अनुसार सभी शुभग्रह यदि केन्द्र में स्थित हों तो माला योग और यदि सभी पापग्रह केन्द्र में स्थित हों तो सर्प नामक योग होता है।

'केन्द्रेषु सौम्यपापैर्माला सर्पश्च दलयोगौ'। (सारावली)

शुभमाली योगफल

जनाधिकारी क्षितिपालशस्तो भोगी प्रदाता परकार्यकर्ता।
बन्धुप्रियः सत्सुतदारयुक्तो धीरः सुमालाह्वययोगजातः ॥२२॥

सुमाला या शुभमाला योग में उत्पन्न व्यक्ति राजा से सम्मान प्राप्त करने वाला मण्डलाधिपति होता है। वह भोगयुक्त, उदार दानी, परोपकारी, स्वजनों एवं बन्धु-बान्धवों का प्रिय, सत्पुत्र और सुन्दर पत्नी से युक्त तथा धैर्यवान् होता है ॥२२॥

अशुभमाला योगफल

कुमार्गयुक्तोऽशुभमालिकाख्ये दुःखी परेषां वधकृत् कृतघ्नः।
स्यात्कातरो भूसुरभक्तिहीनो लोकाभिशप्तः कलहप्रियः स्यात् ॥२३॥

अशुभमाला योग में उत्पन्न व्यक्ति कुमार्ग का अनुसरण करने वाला, दुःखी, दूसरों की हत्या करने वाला, कृतघ्नी, कातर, ब्राह्मणों में भक्ति से हीन, कलहप्रिय और लोकनिन्दा का पात्र होता है ॥२३॥

लक्ष्मी योगफल

नित्यं मङ्गलशीलया वनितया क्रीडत्यरोगी धनी
तेजस्वी स्वजनान् सुरक्षति महालक्ष्मीप्रसादालयः।
श्रेष्ठान्दोलिकया प्रयाति तुरगस्तम्बेरमध्यासितो
लोकानन्दकरो महीपतिवरो दाता च लक्ष्मीभवः ॥२४॥

लक्ष्मी योग में उत्पन्न जातक सुलक्षणों से युक्त, रमणियों के साथ नित्य केलि करने वाला, निरोग, धनी, तेजस्वी, स्वजनों की रक्षा करने में समर्थ, लक्ष्मी की कृपा का पात्र, उत्तम पालकी, घोड़े और हाथियों पर चलने वाला, लोकप्रिय एवं श्रेष्ठ राजा होता है ॥२४॥

गौरी योगफल

सुन्दरगात्रः श्लाघितगोत्रः पार्थिवमित्रः सद्गुणपुत्रः।
पङ्कजवक्त्रः संस्तुतजैत्रो राजति गौरीयोगसमुत्थः ॥२५॥

गौरी योग में उत्पन्न व्यक्ति का शरीर सुन्दर, श्रेष्ठकुलोत्पन्न, राजा का प्रियपात्र, सत्पुत्रवान्, कमल की आभा से युक्त आनन, शत्रुओं और विरोधियों को पराजित कर लोगों की प्रशंसा प्राप्त करने वाला होता है ॥२५॥

सरस्वती योग

शुक्रवाक्पतिसुधाकरात्मजैः केन्द्रकोणसहितैर्द्वितीयगैः।
स्वोच्चमित्रभवनेषु वाक्पतौ वीर्यगे सति सरस्वतीरिता ॥२६॥

यदि शुक्र, बृहस्पति और बुध त्रिकोण (५,९) या केन्द्र (१,४,७,१०वें) भावों में अथवा द्वितीय भाव में स्थित हों और इनमें से बृहस्पति स्वोच्च राशि अथवा मित्र (सूर्य, मंगल या चन्द्रमा) राशिगत हो तथा बलवान् हो तो सरस्वती योग होता है ॥२६॥
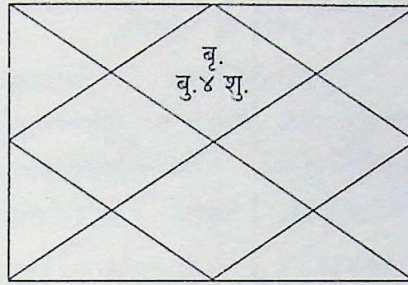
सरस्वती योग

सरस्वती योगफल

धीमन्नाटकगद्यपद्यगणनालङ्कारशास्त्रेष्वयं
निष्णातः कविताप्रबन्धरचनाशास्त्रार्थपारङ्गतः ।
कीर्त्याक्रान्तजगत्त्रयोऽतिधनिको दारात्मजैरन्वितः
स्यात् सारस्वतयोगजो नृपवरैः सम्पूजितो भाग्यवान् ॥२७॥

सरस्वती योग में उत्पन्न जातक अति बुद्धिशाली; नाट्य, गद्य-पद्य, गणित, अलङ्कार आदि अनेक शास्त्रों में निष्णात, काव्य एवं प्रबन्ध शास्त्रों के रहस्य को उद्घाटित करने वाला, त्रैलोक्य में अपनी कीर्तिपताका फहराने वाला, धनवान्, स्त्री-पुत्रादि से युक्त, श्रेष्ठ राजाओं के द्वारा सम्पूजित भाग्यवान् होता है ॥२७॥

श्रीकण्ठ-श्रीनाथ-विरञ्चि योग

लग्नाधीश्वरभास्करामृतकराः केन्द्रत्रिकोणाश्रिताः
स्वोच्चस्वर्क्षसुहृद्गृहानुपगताः श्रीकण्ठयोगो भवेत् ।
तद्वद्भार्गवभाग्यनाथशशिजाः श्रीनाथयोगस्तथा
वागीशात्मपसूर्यजा यदि तदा वैरिञ्चियोगस्ततः ॥२८॥

लग्नेश, सूर्य और चन्द्रमा अपनी उच्चराशि, स्वराशि या मित्रराशि से युक्त होकर यदि केन्द्र या त्रिकोण भवनों में स्थित हों तो **श्रीकण्ठ** योग होता है। उक्त स्थिति में यदि शुक्र, बुध और भाग्येश स्थित हों तो **श्रीनाथ** योग होता है। बृहस्पति, सूर्य और पञ्चमेश यदि उक्त स्थिति में हों तो **विरञ्चि** योग होता है ॥२८॥

श्रीकण्ठ योग

उपर्युक्त श्रीनाथ योग का स्वरूप भी अन्य जातक-ग्रन्थों में इससे भिन्न है। उनके अनुसार सप्तमेश यदि कर्म (दशम) भाव में स्थित हो और कर्मेश अपनी उच्चराशि में भाग्येश के साथ संयुक्त हो तो श्रीनाथ योग होता है।
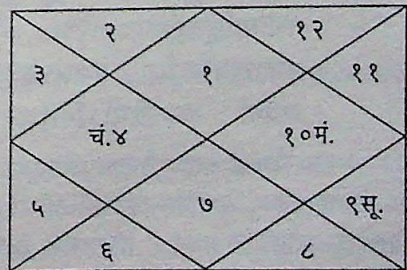
श्रीनाथ योग

विरञ्चि योग

'कामेश्वरे कर्मगते स्वतुङ्गे कर्माधिपे भाग्यपसंयुते च।
श्रीनाथयोगः शुभदस्तदानीं जातो नर; शक्रसमो नृपालः' ॥ (पराशर)

श्रीकण्ठ योगफल

रुद्राक्षाभरणो विभूतिधवलच्छायो महात्मा शिवं
ध्यायत्यात्मनि सन्ततं सुनियमः शैवव्रते दीक्षितः।
साधूनामुपकारकः परमतेष्वेवानसूयो भवेत्
तेजस्वी शिवपूजया प्रमुदितः श्रीकण्ठयोगोद्भवः ॥२९॥

श्रीकण्ठ योग में उत्पन्न जातक रुद्राक्ष धारण करने वाला होता है, भस्म धारण से उसके शरीर की धवल कान्ति होती है; वह महानात्मा शिव की सतत आराधना में लीन रहता है। वह शैव परम्परा में दीक्षित होता है तथा अति धार्मिक और शैव सम्प्रदाय के नियमों का पालन करने वाला, साधु-सन्तों का उपकार करने वाला, अन्य धर्म और सम्प्रदाय से विद्वेष-मुक्त होता है। ऐसा जातक निरन्तर शिव की आराधना में प्रसन्नता और तेजस्विता प्राप्त करता है ॥२९॥

श्रीकण्ठ शिव को कहते हैं तथा श्रीनाथ विष्णु को।

श्रीनाथ योगफल

लक्ष्मीवान् सरसोक्तिचाटुनिपुणो नारायणाङ्काङ्कितः
तन्नामाङ्कितहृद्यपद्यमनिशं सङ्कीर्तयन् सज्जनैः।
तद्भक्तापचितौ प्रसन्नवदनः सत्पुत्रदारान्वितः
सर्वेषां नयनप्रियोऽतिसुभगः श्रीनाथयोगोद्भवः ॥३०॥

श्रीनाथ योग में उत्पन्न जातक धनसम्पन्न, सरस और प्रियभाषी होता है तथा उसका शरीर भगवान् विष्णु के शंख-चक्रादि चिह्नों से युक्त होता है। वह सज्जन व्यक्तियों के साथ श्रीविष्णु के नामकीर्तन-भजन में सतत लगा रहता है। भगवान् विष्णु के आराधकों का प्रसन्न मन से आदर करता है। वह सुन्दर स्वभाव की पत्नी और पुत्रों से युक्त सभी का प्रिय और भाग्यवान् होता है ॥३०॥

विरञ्चि योगफल

ब्रह्मज्ञानपरायणो बहुमतिर्वेदप्रधानो गुणी
हृष्टो वैदिकमार्गतो न चलति प्रख्यातशिष्यव्रजः।
सौम्योक्तिर्बहुवित्तदारतनयः सद्ब्रह्मतेजोज्ज्वलन्
दीर्घायुर्विजितेन्द्रियो नतनृपो वैरिञ्चियोगोद्भवः ॥३१॥

विरञ्चि योग में उत्पन्न जातक ब्रह्मज्ञानी होता है। वह अत्यन्त बुद्धिमान्, वैदिक ज्ञान से परिपूर्ण, गुणवान्, प्रसन्नचित्त, वैदिक नियमादि का अहर्निश अनुसरण करने वाला तथा अनेक विख्यात शिष्यों से शोभित होता है। वह सौम्य भाषी और बहुधनसम्पन्न, स्त्री-पुत्रादिकों से सुखी, ब्रह्मतेज से शोभित, दीर्घायु, इन्द्रियजित् और राजाओं के द्वारा पूजित होता है ॥३१॥

दैन्य-खल-महायोग

अन्योन्यं भवनस्थयोर्विहगयोर्लग्नादिरिःफान्तकं
भावाधीश्वरयोः क्रमेण कथिताः षट्षष्टियोगा जनैः।
त्रिंशद्दैन्यमुदीरितं व्ययरिपुच्छिद्रादिनाथोत्थिता-
स्त्वष्टौ शौर्यपतेः खला निगदिताः शेषा महाख्याः स्मृताः ॥३२॥

लग्न से प्रारम्भ कर द्वादश भाव पर्यन्त दो भावेशों में परस्पर व्यत्यय सम्बन्ध से कुल ६६ योग बनते हैं। इनमें ३० योग छठे, आठवें और बारहवें भाव के स्वामियों के योग से उत्पन्न होते हैं। इनको **दैन्य** योग कहते हैं। आठ योग तृतीयेश के योग से बनते हैं। इन्हें **खल** योग कहते हैं। शेष २८ योग **महायोग** कहलाते हैं ॥३२॥

द्वादश भाव के स्वामी के साथ अन्य ११ भावेशों से व्यत्यय सम्बन्ध-जन्य ११ योग—

(१) द्वादशेश और लग्नेश में व्यत्यय, (२) द्वादशेश और द्वितीयेश में व्यत्यय, (३) द्वादशेश और तृतीयेश में व्यत्यय, (४) द्वादशेश और चतुर्थेश में व्यत्यय, (५) द्वादशेश और पञ्चमेश में व्यत्यय, (६) द्वादशेश और षष्ठेश में व्यत्यय, (७) द्वादशेश और सप्तमेश में व्यत्यय, (८) द्वादशेश और अष्टमेश में व्यत्यय, (९) द्वादशेश और नवमेश से व्यत्यय, (१०) द्वादशेश और दशमेश में व्यत्यय तथा (११) द्वादशेश और एकादशेश में व्यत्यय—ये ११ योग होते हैं।

इसी प्रकार छठे भाव के स्वामी के साथ अन्य १० भावेशों में व्यत्यय सम्बन्ध-जनित १० योग होंगे—

(१) षष्ठेश और लग्नेश में व्यत्यय, (२) षष्ठेश और द्वितीयेश में व्यत्यय, (३) षष्ठेश और तृतीयेश में व्यत्यय, (४) षष्ठेश और चतुर्थेश में व्यत्यय, (५) षष्ठेश और पञ्चमेश में व्यत्यय, (६) षष्ठेश और सप्तमेश में व्यत्यय, (८) षष्ठेश और अष्टमेश में व्यत्यय, (८) षष्ठेश और नवमेश में व्यत्यय, (९) षष्ठेश और दशमेश में व्यत्यय तथा (१०) षष्ठेश और एकादशेश में व्यत्यय। इनकी संख्या ११ है।

अष्टमेश के साथ शेष ९ भावेशों (षष्ठेश, द्वादशेश और अष्टमेश को छोड़कर) में ९ व्यत्यय सम्बन्ध होते हैं—

(१) अष्टमेश और लग्नेश में व्यत्यय, (२) अष्टमेश और द्वितीयेश में व्यत्यय, (३) अष्टमेश और तृतीयेश में व्यत्यय, (४) अष्टमेश और चतुर्थेश में व्यत्यय, (५) अष्टमेश और पञ्चमेश में व्यत्यय, (६) अष्टमेश और सप्तमेश में व्यत्यय, (७) अष्टमेश और नवमेश में व्यत्यय, (८) अष्टमेश और दशमेश में व्यत्यय तथा (९) अष्टमेश और एकादशेश में व्यत्यय।

ये कुल ११+१०+९ = ३० योग होते हैं। इन्हें दैन्य योग कहते हैं। इसी प्रकार तृतीय भाव से द्वादशेश, अष्टमेश, षष्ठेश एवं तृतीयेश के अतिरिक्त शेष भावेशों के साथ आठ प्रकार के सम्बन्ध होते हैं—

(१) तृतीयेश और लग्नेश में व्यत्यय, (२) तृतीयेश और द्वितीयेश में व्यत्यय, (३) तृतीयेश और चतुर्थेश में व्यत्यय, (४) तृतीयेश और पञ्चमेश में व्यत्यय, (५) तृतीयेश और सप्तमेश में व्यत्यय, (६) तृतीयेश और नवमेश में व्यत्यय, (७) तृतीयेश और दशमेश में व्यत्यय तथा (८) तृतीयेश और एकादशेश में व्यत्यय। इन ८ योगों को खल योग कहते हैं।

शेष (१) लग्नेश और द्वितीयेश में व्यत्यय, (२) लग्नेश और चतुर्थेश में व्यत्यय, (३) लग्नेश और पञ्चमेश में व्यत्यय, (४) लग्नेश और सप्तमेश में व्यत्यय, (५) लग्नेश और नवमेश में व्यत्यय, (६) लग्नेश और दशमेश में व्यत्यय, (७) लग्नेश और एकादशेश में व्यत्यय, (८) द्वितीयेश और चतुर्थेश में व्यत्यय, (९) द्वितीयेश और पञ्चमेश में व्यत्यय, (१०) द्वितीयेश और सप्तमेश में व्यत्यय, (११) द्वितीयेश और नवमेश में व्यत्यय, (१२) द्वितीयेश और दशमेश में व्यत्यय, (१३) द्वितीयेश और एकादशेश में व्यत्यय, (१४) चतुर्थेश और पञ्चमेश में व्यत्यय, (१५) चतुर्थेश और सप्तमेश में व्यत्यय, (१६) चतुर्थेश और नवमेश में व्यत्यय, (१७) चतुर्थेश और दशमेश में व्यत्यय, (१८) चतुर्थेश और एकादशेश में व्यत्यय, (१९) पञ्चमेश और सप्तमेश में व्यत्यय, (२०) पञ्चमेश और नवमेश में व्यत्यय, (२१) पञ्चमेश और दशमेश में व्यत्यय, (२२) पञ्चमेश और एकादशेश में व्यत्यय, (२३) सप्तमेश और नवमेश में व्यत्यय, (२४) सप्तमेश और दशमेश में व्यत्यय, (२५) सप्तमेश और एकादशेश में व्यत्यय, (२६) नवमेश और दशमेश में व्यत्यय, (२७) नवमेश और एकादशेश में व्यत्यय तथा (२८) दशमेश और एकादशेश में व्यत्यय—ये २८ महायोग कहे जाते हैं।

दैन्य और खल योगफल

मूर्खः स्यादपवादको दुरितकृन्नित्यं सपत्नार्दितः
क्रूरोक्तिः किल दैन्यजश्चलमतिर्विच्छिन्नकार्योद्यमः।
उद्वृत्तश्च खले कदाचिदखिलं भाग्यं लभेताखिलं
सौम्योक्तिश्च कदाचिदेवमशुभं दारिद्र्यदुःखादिकम् ॥३३॥

दैन्य योगों में उत्पन्न व्यक्ति मूर्ख, अपवाद युक्त, पापकर्मा, शत्रुओं से पीड़ित, करुष वचन बोलने वाला, चञ्चल बुद्धि का होता है तथा उसके समस्त कार्य बाधित होते हैं। खलयोग में उत्पन्न व्यक्ति उद्धत स्वभाव का, कभी कुमार्गगामी, करुषवाक्, द्रारिद्र्य-पीड़ित और कभी सन्मार्ग का अनुसरण करने वाला, मिष्टभाषी और सौभाग्य का भोग करने वाला होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि खलयोगोत्पन्न व्यक्ति शुभाशुभ कर्मों का सम्मिश्रण होता है। अशुभ फल की अधिकता के कारण ही इसे खल योग कहते हैं ॥३३॥

महायोग फल

श्रीकटाक्षनिलयः प्रभुराढ्यश्चित्रवस्त्रकनकाभरणश्च।
पार्थिवाप्तबहुमानसमाज्ञो यानवित्तसुतवांश्च महाख्ये ॥३४॥

महायोग में उत्पन्न व्यक्ति पर स्थायी रूप से लक्ष्मी की कृपा होती है। वह व्यक्ति समूह का स्वामी, धन-धान्य, सुन्दर वस्त्र-स्वर्णाभूषणादि से सम्पन्न, राजकृपा से सम्मान, अधिकार, अनेक धन और वाहन प्राप्त करता है ॥३४॥

काहल और पर्वत योग

लग्नाधिपाप्तभपतिस्थितराशिनाथः
स्वोच्चस्वभेषु यदि कोणचतुष्टयस्थः।
योगः स काहल इति प्रथितोऽथ तद्वत्
लग्नाधिपाप्तभपतिर्यदि पर्वताख्यः ॥३५॥

लग्नेशाधिष्ठित राशि का स्वामी जिस राशि में स्थित हो उसका स्वामी यदि अपनी उच्चराशिगत अथवा स्वराशिगत होकर केन्द्र या त्रिकोण में स्थित हो तो **काहल** योग होता है तथा लग्नेशाधिष्ठित राशि का स्वामी यदि उक्त स्थिति (स्वराशि अथवा स्वोच्चराशि का होकर यदि केन्द्र या त्रिकोण में स्थित हो) में हो, तो **पर्वत** योग होता है।३५॥

यह देखना चाहिए कि लग्नेश किस राशि में स्थित है। उस राशि का स्वामी जिस राशि में स्थित हो उसका स्वामी यदि उच्च या स्वराशि में स्थित होकर केन्द्र या त्रिकोण गत हों तो काहल योग बनता है।

संलग्न जन्माङ्ग में धनु लग्न है। धनु राशि का स्वामी बृहस्पति मेश राशि में स्थित

काहल योग

पर्वत योग

है, मेष का स्वामी मङ्गल बुध की राशि मिथुन में स्थित है तथा बुध अपनी उच्चराशि कन्या का होकर दशम भाव में स्थित होकर काहल योग बनाता है।

लग्नेश जिस राशि में स्थित हो यदि उसका स्वामी अपनी उच्चराशि का अथवा स्वराशि का होकर केन्द्र या त्रिकोण में स्थित हो तो पर्वत योग होता है।

लग्न का अधिपति शनि मिथुन राशि में स्थित है और मिथुन का स्वामी बुध अपनी उच्चराशि कन्या का होकर नवम भाव (त्रिकोण) में स्थित होकर पर्वत योग बनाता है।

अन्य जातक-ग्रन्थों में काहल और पर्वत योगों के भिन्न-भिन्न स्वरूपों की चर्चा हुई है—

'अन्योन्यकेन्द्रगृहगौ गुरुबन्धुनाथौ लग्नाधिपे बलयुते यदि काहलः स्यात्।
कर्मेश्वरेण सहिते तु विलोकिते वा स्वोच्चस्वके सुखपतौ यदि तादृशः स्यात्'॥
(जातकपारिजात)

'बन्धुधर्मगृहाधीशावन्योन्यं केन्द्रमाश्रितौ।
लग्नाधीशे बलवति योगः काहलसंज्ञकः'॥ (जातकादेश)

पर्वत योग भी अन्य जातक-ग्रन्थों में भिन्न रूप में कथित है—

'सौम्येषु केन्द्रगृहगेषु सपत्नरन्ध्रे शुद्धेऽथवा शुभयुते यदि पर्वतः स्यात्।
लग्नान्त्यपौ यदि परस्परकेन्द्रयातौ मित्रेक्षितौ भवति पर्वतनाम योगः'॥
(जातकपारिजात)

'लग्नास्तमेषूरणगाः प्रशस्ताः सर्वे ग्रहेन्द्रा इह चेदपापाः।
तं पर्वतं विद्धि बलाधिकानां महीपतीनां प्रसवाय योगम्'॥ (यवनाचार्य)

'उदयास्तकर्महिबुके ग्रहयुक्ते रिष्फनैधने शुद्धे।
यः कश्चिन्नवमगतो योगोऽयं पर्वतो नाम'॥ (जातकादेश)

काहल-पर्वत योगफल

वर्द्धिष्णुरार्यः सुमतिः प्रसन्नः क्षेमङ्करः काहलजो नृमान्यः।
स्थिरार्थसौख्यः स्थिरकार्यकर्त्ता क्षितीश्वरः पर्वतयोगजातः॥३६॥

काहल योग में उत्पन्न जातक निरन्तर उत्कर्षोन्मुख, सज्जन, प्रसन्नवदन, उदार और सर्वजनों से सम्मानित होता है। जिसके जन्माङ्ग में **पर्वत** योग हो उसके धन और सुख में स्थायित्व होता है। उसके द्वारा चिरस्थायी कार्य सम्पादित होते हैं। ऐसा व्यक्ति राजा होता है॥३६॥

राजयोग-शङ्खयोग

धर्मकर्मभवनाधिपती द्वौ संयुतौ महितभावगतौ चेत्।
राजयोग इति तद्वदिह स्यात् केन्द्रकोणयुतिर्यति शङ्खः॥३७॥

धर्मेश (नवमेश) और कर्मेश (दशमेश) यदि शुभ स्थान में संयुक्त हों तो **राजयोग** कारक होता है।

केन्द्रभाव के स्वामी किसी त्रिकोण के स्वामी के साथ यदि किसी शुभ स्थान में संयुक्त हों तो **शङ्खयोग** होता है ।।३७।।

अन्य जातक-ग्रन्थों के अनुसार पञ्चमेश और षष्ठेश के परस्पर केन्द्रस्थ (लग्न, चतुर्थ, सप्तम या दशम भावस्थ) होने और लग्नेश के बलवान् होने से अथवा लग्नेश और दशमेश के चरराशिगत होने और भाग्येश के बलवान् होने से शङ्ख योग का होना कहा गया है ।

'अन्योन्यकेन्द्रगृहगौ सुतशत्रुनाथौ लग्नाधिपे बलयुते यदि शङ्खयोगः ।
लग्नाधिपे च गगनाधिपे चरस्थे भाग्याधिपे बलयुते तु तथा भवन्ति' ।।
(जातकपारिजात)

राजयोग-शङ्खयोग फल

भेरीशङ्खप्रणादैर्धृतमृदुपटिकाजातवृत्तातपत्रो
हस्त्यश्वान्दोलिकाद्यैः सह मगधकृतप्रस्तुतिर्भूमिपालः ।
नानारूपोपहारस्फुरितकरयुतैः प्रार्थितः सज्जनैः स्या-
द्राजा स्याच्छङ्खयोगे बहुवरवनिताभोगसम्पत्तिपूर्णः ।।३८।।

राजयोग में उत्पन्न जातक समस्त राजचिह्नों से युक्त राजा होता है । यात्रा में उसके साथ भेरी, शङ्ख आदि वाद्यों का निनाद होता है । उसके शिर पर सुन्दर वस्त्र से निर्मित वृत्ताकार छत्र होता है । उसके साथ अनेक हाथी, घोड़े और पालकी चलती है तथा अनेक चारणगण उसका प्रशस्ति-गान करते चलते हैं । उसके साथ अनेक गणमान्य व्यक्ति हाथों में अनेक उपहार लिये चलते हैं । शङ्ख योग में उत्पन्न जातक श्रेष्ठ स्त्रियों सहित अनेक सुख-भोगों से युक्त होता है ।।३८।।

संख्या योग

संख्यायोगाः सप्तसप्तर्क्षसंस्थैरेकापायाद्वल्लकीदामपाशम् ।
केदाराख्यः शूलयोगो युगं च गोलश्चान्यान् पूर्वमुक्तान्विहाय ।।३९।।

किसी भी सात भावों में लगातार सात ग्रह स्थित हों, छः भावों में, पाँच भावों में, चार भावों में, तीन भावों में, दो भावों में और एक भाव में सात ग्रह स्थित हों तो क्रमशः **वीणा, दाम, पाश, केदार, शूल, युग** और **गोल** योग बनते हैं । इन्हें **संख्या** योग कहते है । पूर्वोक्त योगों की अनुपस्थिति में इन योगों का विचार करना चाहिए ।।३९।।

नाभस योग के चार भेदों में से एक संख्या योग है । ये सात प्रकार के होते हैं । नाभस योग का विशद विवरण मेरे द्वारा सम्पादित जातकपारिजात के राजयोगाध्याय में देखना चाहिए ।

सात ग्रह किन्हीं सात भावों में स्थित हों तो वल्लकी या वीणा योग, छः भावों में स्थित हों तो दाम या दामिनी योग, पाँच भावों में अवस्थित हों तो पाश योग, चार भावों में अवस्थित हों तो केदार योग, तीन भावों में अवस्थित हों तो शूल योग, दो भावों में

अवस्थित हों तो युग योग और यदि एक ही भाव में सात ग्रह स्थित हों तो गोल योग होता है। संख्या योगों की विशेषता यह है कि अन्य नाभस योग के अभाव में ही ये फलद होते हैं। जन्माङ्ग में आकृति, आश्रय और दल योगों में से किसी योग के साथ यदि संख्या योग भी उपस्थित हो तो आकृत्यादि योग ही फलद होंगे। संख्या योग के फल का अभाव होगा।

संख्या योगफल

वीणायोगे नृत्तगीतप्रियोऽर्थी दाम्नि त्यागी भूपतिश्चोपकारी।
पाशे भोगी सार्थसच्छीलबन्धुः केदाराख्ये श्रीकृषिक्षेत्रयुक्तः ॥४०॥
शूले हिंस्रः क्रोधशीलो दरिद्रः पाषण्डी स्याद् द्रव्यहीनो युगाख्ये।
निःस्वः पापी म्लेच्छयुक्तः कुशिल्पी गोले जातश्चालसोऽल्पायुरेव ॥४१॥

जिसके जन्माङ्ग में वीणा योग प्राप्त हो वह नृत्य-सङ्गीतादि में अनुरक्त और धन सम्पन्न होता है। दाम या दामिनी योग में उत्पन्न व्यक्ति राजा, दानवीर और त्यागी होता है। जिसका जन्म पाश योग में होता है वह धनवान्, भोगयुक्त, शीलवान् और बन्धु-बान्धवों से युक्त होता है। यदि जन्माङ्ग में केदार योग उपस्थित हो तो जातक धन और कृषिभूमि से युक्त होता है। शूल योग में उत्पन्न व्यक्ति हिंसक, क्रोधी और धनहीन होता है। युग योग में उत्पन्न व्यक्ति पाखण्डी और धनहीन होता है। गोल योग में उत्पन्न व्यक्ति धनहीन, पापकर्मा, नीचों की सङ्गति करने वाला, अल्पज्ञ कारीगर, आलसी और अल्पायु होता है ॥४०-४१॥

अधियोग

सौम्यैरिन्दोर्द्यूनषड्रन्ध्रसंस्थैस्तद्वल्लग्नात्संस्थितैर्वाधियोगः ।
नेता मन्त्री भूपतिः स्यात्क्रमेण ख्यातः श्रीमान्दीर्घजीवी मनस्वी ॥४२॥

सभी शुभग्रह यदि लग्न से अथवा चन्द्रराशि से सातवें, छठे और आठवें भाव में अवस्थित हों तो **अधियोग** होता है। इस योग में उत्पन्न जातक क्रमशः नेता, मन्त्री और राजा होता है। वह व्यक्ति विख्यात, धन-वैभवादि से सम्पन्न और दीर्घजीवी होता है ॥४२॥

अधियोगभवो नरेश्वरः स्थिरसम्पद्बहुबन्धुपोषकः।
अमुना रिपवः पराजिताश्चिरमायुर्लभते प्रसिद्धताम् ॥४३॥

इस अधियोग में उत्पन्न व्यक्ति राजा होता है। उसके सम्पदादि में स्थायित्व होता है तथा वह अनेक स्वजनों, बन्धु-बान्धवों का पालक, शत्रुञ्जय, दीर्घायु और विश्रुत होता है ॥४३॥

चामर-धेनु-शौर्यादि योग

भावैः सौम्ययुतेक्षितैस्तदधिपैः सुस्थानगैर्भास्वरैः
स्वोच्चस्वर्क्षगतैर्विलग्नभवनाद्योगाः क्रमाद्द्वादश।
संज्ञाश्चामरधेनुशौर्यजलधिच्छत्रास्त्रकामासुरा
भाग्यख्यातिसुपारिजातमुसलास्तज्ज्ञैर्यथा कीर्तिताः ॥४४॥

यदि भाव शुभग्रह से युत हो अथवा दृष्ट हो और भावेश अपनी राशि अथवा अपनी उच्चराशि का हो या सुस्थान में स्थित हो और अपनी प्रखर रश्मियों से युक्त हो अर्थात् अस्त न हो तो लग्नादि प्रत्येक भाव से क्रमशः (१) चामर, (२) धेनु, (३) शौर्य, (४) जलधि, (५) छत्र, (६) अस्त्र, (७) काम, (८) आसुर, (९) भाग्य, (१०) ख्याति, (११) सुपारिजात और (१२) मुसल—ये बारह योग उत्पन्न होते हैं ।।४४।।

लग्न शुभग्रह से युत या दृष्ट और लग्नेश प्रखर रश्मियों से युक्त स्वराशि अथवा स्वोच्चराशि का हो या सुस्थानस्थ हो तो **चामर** योग होता है। द्वितीय भाव शुभग्रह से युक्त या दृष्ट, प्रखर रश्मि से युक्त, स्वराशि अथवा स्वोच्चराशि का होकर सुस्थानस्थ हो तो **धेनु** योग; तृतीय भाव शुभग्रह से युत या दृष्ट, तृतीयेश प्रखर रश्मियों से युक्त स्वराशि अथवा स्वोच्चराशि का होकर सुस्थानस्थ हो तो **शौर्य** योग; चतुर्थ भाव शुभग्रह से युत या दृष्ट हो, चतुर्थेश प्रखर रश्मियों से युक्त स्वराशि अथवा स्वोच्चराशि का होकर सुस्थान में स्थित हो तो **जलधि** योग; पञ्चम भाव शुभग्रह से युत या दृष्ट हो, पञ्चम भाव का स्वामी प्रखर रश्मियों से युक्त स्वराशि अथवा स्वोच्चराशि का होकर सुस्थानस्थ हो तो **छत्र** योग; षष्ठ भाव शुभ-ग्रह से युत या दृष्ट हो, षष्ठभावाधिपति प्रखर रश्मियों से युक्त स्वराशि अथवा स्वोच्चराशि का होकर सुस्थानस्थ हो तो **अस्त्र** योग; सप्तम भाव यदि शुभग्रह से युत या दृष्ट हो, सप्तम भाव का स्वामी प्रखर रश्मियों से युक्त स्वराशि अथवा स्वोच्चराशि का होकर सुस्थानस्थ हो तो **काम** योग; अष्टम भाव यदि शुभग्रह से युत या दृष्ट हो, अष्टमेश प्रखर किरणों से युक्त स्वराशि अथवा स्वोच्चराशि का होकर सुस्थानगत हो तो **आसुर** योग; नवम भाव यदि शुभ-ग्रह से युत या दृष्ट हो, नवम भाव का स्वामी प्रखर किरण हो, स्वराशि या स्वोच्चराशिस्थ होकर सुस्थान में स्थित हो तो **भाग्य** योग; दशम भाव यदि शुभग्रह से युत या दृष्ट हो, दशम भाव का स्वामी प्रखर रश्मियों से युक्त स्वराशि अथवा स्वोच्चराशिगत होकर सुस्थान में स्थित हो तो **ख्याति** योग; एकादश भाव शुभग्रह से युत या दृष्ट हो, एकादश भाव का स्वामी प्रखर किरण हो और स्वराशि अथवा स्वोच्चराशिगत होकर सुस्थान में स्थित हो तो **सुपारिजात** योग और यदि द्वादश भाव शुभ ग्रह से युत या दृष्ट हो, द्वादशभावाधिपति प्रखर किरण हो तथा स्वराशि अथवा स्वोच्चराशि का होकर सुस्थानस्थ हो तो **मुसल** योग होता है।

चामर योगफल

प्रत्यहं व्रजति वृद्धिमुदग्रां शुक्लचन्द्र इव शोभनशीलः।
कीर्तिमान् जनपतिश्चिरजीवी श्रीनिधिर्भवति चामरजातः ।।४५।।

जिसके जन्माङ्ग में चामर योग होता है वह शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान नित्य विकासोन्मुख होता हुआ चरम अवस्था को प्राप्त होता है। वह धनसम्पन्न, कीर्तिमान्, जननायक और दीर्घजीवी होता है ।।४५।।

थोड़ी भिन्नता के साथ चामर योग वैद्यनाथ ने अपने ग्रन्थ जातकपारिजात में कहा है। उनके अनुसार बृहस्पति से दृष्ट उच्चस्थ लग्नेश का दशम भाव में स्थित होना ही चामर योग

के लिए पर्याप्त है अथवा लग्न, सप्तम, नवम या दशम भाव में दो शुभग्रहों की स्थिति से भी चामर योग होता है।

'लग्नेश्वरे केन्द्रगते स्वतुङ्गे जीवेक्षिते चामरनाम योगः।
सौम्यद्वये लग्नगृहे कलत्रे नवास्पदे वा यदि चामरः स्यात्' ॥
(जातकपारिजात)

धेनु योगफल

सान्नपानविभवोऽखिलविद्यापुष्कलोऽधिककुटुम्बविभूतिः।
हेमरत्नधनधान्यसमृद्धो राजराज इव राजति धेनौ ॥४६॥

जिसके जन्माङ्ग में धेनु योग हो वह भोजन-पानादि से सम्पन्न, समस्त विद्याओं में पारग, बृहद् परिवार से युक्त, स्वर्ण-रत्नादि एवं धन-धान्य से समृद्ध तथा कुबेर के समान होता है ॥४६॥

शौर्य योगफल

कीर्तिमद्भिरनुजैरभिष्टुतो लालितो महितविक्रमयुक्तः।
शौर्यजो भवति राम इवासौ राजकार्यनिरतोऽतियशस्वी ॥४७॥

शौर्ययोग में उत्पन्न व्यक्ति अपने वैभवशाली पराक्रमी भाइयों से प्रशंसित, स्वयं पराक्रमी और प्रशासनिक कार्यकर्त्ता, अत्यन्त यशस्वी तथा राम के समान पराक्रमी होता है ॥४७॥

जलधि योगफल

गोसम्पद्धनधान्यशोभिसदनं बन्धुप्रपूर्णं वर-
स्त्रीरत्नाम्बरभूषणानि महितस्थानं च सर्वोत्तमम्।
प्राप्नोत्यम्बुधियोगजः स्थिरसुखो हस्त्यश्वयानादिगो
राजेड्यो द्विजदेवकार्यनिरतः कूपप्रपाकृत्पथि ॥४८॥

जलधि या अम्बुधि योगोत्पन्न व्यक्ति गोधन, धन-धान्य और स्वजनों से पूर्ण भवन का स्वामी होता है। सुन्दर स्त्री, रत्नादि सुन्दर आभरणों से युक्त तथा सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित होता है। वह चिरस्थायी सुख, गज, अश्व, वाहन आदि राजोचित अलंकरणों से युक्त, देवता और ब्राह्मणों के कार्य में लिप्त, मार्ग में कूप, वापी आदि का निर्माता होता है ॥४८॥

छत्र योगफल

सुसंसारसौभाग्यसन्तानलक्ष्मीनिवासो यशस्वी सुभाषी मनीषी।
अमात्यो महीशस्य पूज्यो धनाढ्यः स्फुरत्तीक्ष्णबुद्धिर्भवेच्छत्रयोगे ॥४९॥

छत्र योग में उत्पन्न व्यक्ति पारिवारिक सुख से सुखी, सन्तान और धन से सम्पन्न, यशस्वी, सुन्दर वक्ता और मनीषी होता है। वह अति कुशाग्र बुद्धि का राजमन्त्री होता है और सभी के द्वारा सम्मानित होता है ॥४९॥

अस्त्र योगफल

शत्रून् बलिष्ठान् बलवन्निगृह्य क्रूरप्रवृत्त्या सहितोऽभिमानी ।
व्रणाङ्कितांगश्च विवादकारी स्यादस्त्रयोगे दृढगात्रयुक्तः ॥५०॥

अस्त्र योग में उत्पन्न व्यक्ति अपने बलिष्ठ शत्रुओं को पराभूत करने वाला, क्रूरमना और अत्यन्त अभिमानी होता है। उसका दृढ शरीर व्रणादि चिह्नों से युक्त होता है तथा ऐसा जातक अत्यन्त विवादी होता है ॥५०॥

काम योगफल

परदारपराङ्मुखो भवेद्वरदारात्मजबन्धुसंश्रितः ।
जनकादधिकः शुभैर्गुणैर्महनीयां श्रियमेति कामजः ॥५१॥

कामयोग में उत्पन्न व्यक्ति सुन्दर स्त्री-पुत्रादि एवं बन्धु-बान्धवों से युक्त, परस्त्री से विमुख, अपने सद्गुणों से अपने पिता की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली और विभव युक्त होता है ॥५१॥

आसुर योगफल

हन्त्यन्यकार्यं पिशुनः स्वकार्यपरो दरिद्रश्च दुराग्रही स्यात् ।
स्वयंकृतानर्थपरम्परार्तः कुकर्मकृच्चासुरयोगजातः ॥५२॥

आसुर योग में उत्पन्न व्यक्ति दूसरों के कार्य को विनष्ट करने वाला, चुगलखोर, स्वार्थी, दरिद्र और दुराग्रही होता है। अपने ही निकृष्ट कर्मों के दुष्परिणाम से सन्तप्त रहता है। वह महाकुकर्मी होता है ॥५२॥

भाग्य योगफल

चञ्चच्चामरवाद्यघोषनिबिडामान्दोलिकां शाश्वतीं
लक्ष्मीं प्राप्य महाजनैः कृतनतिः स्याद्धर्ममार्गे स्थितः ।
प्रीणात्येष पितॄन् सुरान्द्विजगणांस्तत्तत्प्रियैः पूजनैः
स्वाचारः स्वकुलोद्वहः सुहृदयः स्याद्भाग्ययोगोद्भवः ॥५३॥

भाग्ययोगोत्पन्न जातक लहराते चामर और वाद्यों के निनाद के मध्य पालकी में चलत है, शाश्वत धन प्राप्त कर श्रेष्ठ पुरुषों से वन्दित धर्ममार्ग में स्थित होता है। अपने पिता, दे और ब्राह्मणों के प्रिय कार्य कर पूजनादि से प्रसन्न करता है। ऐसा व्यक्ति सदाचारी, अपन कार्यों से अपने कुल की कीर्ति की वृद्धि करने वाला तथा अत्यन्त सुहृदय होता है ॥५३।

ख्याति योगफल

सत्क्रियां सकललोकसंमतामाचरन्नवति सज्जनान्नृपः ।
पुत्रमित्रधनदारभाग्यवान् ख्यातिजो भवति लोकविश्रुतः ॥५४॥

ख्यातियोग में उत्पन्न व्यक्ति सत्कार्य द्वारा जिसकी सभी लोग प्रशंसा करते हैं, अपन प्रजा का पालन करने वाला राजा होता है। वह धन, पुत्र, स्त्री एवं मित्रों से सुखी, भाग्य शाली और विख्यात होता है ॥५३॥

पारिजात योगफल

नित्यमङ्गलयुतः पृथिवीशः सञ्चितार्थनिचयः सुकुटुम्बी ।
सत्कथाश्रवणभक्तिरभिज्ञो पारिजातजननः शिवतातिः ॥५५॥

पारिजात योग में उत्पन्न व्यक्ति नित्य माङ्गलिक कृत्यों से युक्त, संचित धन का वह स्वामी होता है तथा उसे परिवार का सुख प्राप्त होता है। सत्कथाओं के श्रवण में उसकी अभिरुचि एवं भक्ति होती है। वह निरन्तर अनुष्ठानादि कार्य करता रहता है ॥५५॥

मुसल योगफल

कृच्छ्रलब्धधनवान् परिभूतो लोलसम्पदुचितव्ययशीलः ।
स्वर्गमेव लभतेऽन्त्यदशायां जाल्मको मुसलजश्चपलश्च ॥५६॥

मुसल योग में उत्पन्न जातक के लिये धन अतिश्रमसाध्य होता है अर्थात् अत्यधिक कठिनाई एवं परिश्रम से उसे धनार्जन होता है। वह प्रायः अपमानित और तिरस्कृत होता है। उसके धनकोश में स्थायित्व नहीं होता किन्तु उचित मार्ग में व्यय होता है। ऐसा व्यक्ति मूर्ख और चंचल चित्तवृत्ति का होता है। मृत्योपरान्त स्वर्गलोक प्राप्त करता है ॥५६॥

अव-निःस्व-मृति-कुहू आदि योग

दुःस्थैर्भावगृहेश्वरैरशुभसंयुक्तेक्षितैर्वा क्रमा-
द्भावैः स्युस्त्ववयोगनिःस्वमृतयः प्रोक्ताः कुहूः पामरः।
हर्षो दुष्कृतिरित्यथापि सरलो निर्भाग्यदुर्योगकौ
योगा द्वादश ते दरिद्रविमले प्रोक्ता विपश्चिज्जनैः ॥५७॥

लग्नादि द्वादश भाव के स्वामी यदि दुःस्थान (छठे, आठवें या बारहवें भाव) में स्थित हों और सम्बन्धित भाव पापग्रह से युक्त या दृष्ट हो तो बारह भावों से सम्बन्धित बारह योग उत्पन्न होते हैं जिनके लग्नादि भावक्रम से नाम इस प्रकार है—

(१) अवयोग, (२) निःस्वयोग, (३) मृतियोग, (४) कुहूयोग, (५) पामरयोग, (६) हर्षयोग, (७) दुष्कृतियोग, (८) सरलयोग, (९) निर्भाग्ययोग, (१०) दुर्योग, (११) दरिद्रयोग और (१२) विमलयोग ॥५७॥

(१) यदि लग्न पापग्रह से युत या दृष्ट हो और लग्नेश दुःस्थानस्थ हो तो **अवयोग**, (२) यदि द्वितीय भाव पापग्रह से युत या दृष्ट हो और द्वितीयेश दुःस्थानस्थ हो तो **निःस्वयोग**, (३) तृतीय भाव यदि पापग्रह से युत या दृष्ट हो और तृतीयेश दुःस्थानस्थ हो तो **मृतियोग**, (४) चतुर्थ भाव यदि पापग्रह से युत या दृष्ट हो और चतुर्थेश दुःस्थानस्थ हो तो **कुहूयोग**, (५) पंचम भाव यदि पापग्रह से युत या दृष्ट हो और पंचमेश दुःस्थानस्थ हो तो **पामरयोग**, (६) षष्ठ भाव यदि पापग्रह से युत या दृष्ट हो और षष्ठेश दुःस्थानगत हो तो **हर्षयोग**, (७) सप्तम भाव यदि पापग्रह से युत या दृष्ट हो और सप्तमेश दुःस्थानगत हो तो **दुष्कृतियोग**, (८) अष्टम भाव यदि पापग्रह से युत या दृष्ट हो और अष्टमेश दुःस्थानस्थ

हो तो **सरलयोग**, (९) नवम भाव यदि पापग्रह से युत या दृष्ट हो और नवमेश दु:स्थानस्थ हो तो **निर्भाग्ययोग**, (१०) दशम भाव यदि पापग्रह से युत या दृष्ट हो और दशमेश दु:स्थानगत हो तो **दुर्योग**, (११) एकादश भाव यदि पापग्रह से युत या दृष्ट हो और एकादश भाव का स्वामी दु:स्थानस्थ हो तो **दरिद्रयोग** तथा (१२) यदि द्वादश भाव पापग्रह से युत या दृष्ट हो और द्वादशेश दु:स्थानगत हो तो **विमलयोग** होता है।

अव योगफल

अप्रसिद्धिरतिदु:सहदैन्यं स्वल्पमायुरवमानमसद्भि: ।
संयुत: कुचरित: कुतनु: स्याच्चञ्चलस्थितिरिहाप्यवयोगे ॥५८॥

जिसके जन्माङ्ग में अवयोग होता है वह व्यक्ति अप्रसिद्ध, अतिदु:खी, दीन और अल्पायु होता है। वह सम्मानहीन अपमानित जीवन व्यतीत करता है। उसकी सङ्गति दुष्टजनों से होती है तथा वह अङ्गभङ्गी होता है और उसकी अस्थिर स्थिति होती है ॥५८॥

नि:स्व योगफल

सुवचनशून्यो विफलकुटुम्ब: कुजनसमाज: कुदशनचक्षु: ।
मतिसुतविद्याविभवविहीनो रिपुहृतवित्त: प्रभवति नि:स्वे ॥५९॥

यदि व्यक्ति का जन्म नि:स्वयोग में हो तो वह करुषवाक्, विफल कुटुम्ब (अर्थात् वन्ध्या पत्नी के सहित), दुर्जनों के सहवास में रहने वाला, नेत्र और दाँतों से कुरूप, बुद्धि, पुत्र, विभव और विद्या से हीन होता है तथा शत्रु उसके धन का हरण करते हैं ॥५९॥

मृति योगफल

अरिपरिभूत: सहजविहीनो मनसि विलज्जो हतबलवित्त: ।
अनुचितकर्मश्रमपरिखिन्नो विकृतिगुण: स्यादिति मृतियोगे ॥६०॥

मृतियोग में उत्पन्न व्यक्ति शत्रुवर्ग से पराभूत, सहोदरों से हीन, निर्लज्ज, निर्बल और निर्धन होता है। ऐसा व्यक्ति अकरणीय कार्यो से परिश्रान्त दुर्गुणों का आश्रय होता है ॥६०॥

कुहू योगफल

मातृवाहनसुहृत्सुखभूषाबन्धुभिर्विरहित: स्थितिशून्य: ।
स्थानमाश्रितमनेन हतं स्यात् कुस्त्रियामभिरत: कुहुयोगे ॥६१॥

कुहूयोगोत्पन्न व्यक्ति मातृसुख, वाहन, स्वजनों एवं बन्धु-बान्धवों के सुख, आभूषण और सुख-शान्ति से हीन, स्थितिविहीन, हठात् स्वस्थान के परित्याग के लिए बाध्य तथा दुश्चरित्र स्त्रियों में अनुरक्त होता है ॥६१॥

पामर योगफल

दु:खजीव्यनृतवागविवेकी वञ्चको मृतसुतोऽप्यनपत्य: ।
नास्तिकोऽल्पकुजनं भजतेऽसौ घस्मरो भवति पामरयोगे ॥६२॥

पामर योग में उत्पन्न व्यक्ति चिरदुःखी, असत्यभाषी, विवेकशून्य, धूर्त, सन्तानहीन या मृतसुत, नास्तिक, निम्न वर्ग या दुर्जनों का साथ करने वाला तथा अतिभोजी होता है ।।६२।।

हर्ष योगफल

सुखभोगभाग्यदृढगात्रसंयुतो निहताहितो भवति पापभीरुकः ।
प्रथितप्रधानजनवल्लभो धनद्युतिमित्रकीर्तिसुतवांश्च हर्षजः ।।६३।।

जिसके जन्माङ्ग में हर्षयोग होता है वह पापभीरु, सुखी, भोगों से युक्त भाग्यशाली, पुष्ट शरीर एवं शत्रुञ्जयी होता है। वह विख्यात और विश्रुत व्यक्ति का प्रियभाजन, धनद्युति, मित्र, सत्कीर्ति से युक्त और सन्तति से सुखी होता है ।।६३।।

दुष्कृति योगफल

स्वपत्नीवियोगं परस्त्रीरतीच्छा दुरालोकमध्वानसञ्चारवृत्तिः ।
प्रमेहादिगुह्यार्तिमुर्वीशपीडां वदेद्दुष्कृतौ बन्धुधिक्कारशोकम् ।।६४।।

दुष्कृतियोग में उत्पन्न व्यक्ति की अपनी पत्नी की मृत्यु हो जाती है तथा वह परायी स्त्री के भोग की कामना से युक्त होता है। तिमिराच्छन्न मार्ग पर घूमने वाला, प्रमेहादि गुह्याङ्ग सम्बन्धी व्याधियों से पीड़ित, राजा द्वारा प्रताड़ित, स्वजनों एवं बन्धु-बान्धवों द्वारा अपमानित और शोकसन्तप्त होता है ।।६४।।

सरल योगफल

दीर्घायुष्मान् दृढमतिरभयः श्रीमान्विद्यासुतधनसहितः ।
सिद्धारम्भो जितरिपुरमलो विख्याताख्यः प्रभवति सरले ।।६५।।

सरलयोगोत्पन्न व्यक्ति दीर्घायु, दृढनिश्चयी, निर्भय; धन, विद्या, सन्तति और वैभवादि से सम्पन्न होता है। वह अपने समस्त कार्यों में सफल, शत्रुञ्जयी और विश्रुत होता है ।।६५।।

निर्भाग्य योगफल

पित्रार्जितक्षेत्रगृहादिनाशकृत् साधून् गुरून्निन्दति धर्मवर्जितः ।
प्रत्नातिजीर्णाम्बरधृच्च दुर्गतो निर्भाग्ययोगे बहुदुःखभाजनम् ।।६६।।

जिसके जन्माङ्ग में निर्भाग्ययोग होता है वह पिता द्वारा अर्जित भूमि (कृषियोग्य) और गृहादि को विनष्ट करने वाला, साधुओं और गुरुजनों का निन्दक, अधर्मी, जीर्ण-शीर्ण वस्त्रधारी, दीन-हीन और दुःखकातर होता है ।।६६।।

दुर्योग फल

शरीरप्रयासैः कृतं कर्म यत्तत् व्रजेन्निष्फलत्वं लघुत्वं जनेषु ।
जनद्रोहकारी स्वकुक्षिम्भरिः स्यात् अजस्रं प्रवासी च दुर्योगजातः ।।६७।।

जिसके जन्माङ्ग में दुर्योग होता है उसके अपने शारीरिक श्रम से किये गये समस्त

कार्य विफल होते हैं। लोगों की दृष्टि में वह अन्यथा सिद्ध के समान होता है अर्थात् नगण्य होता है। वह जनद्रोही और परम स्वार्थी अपने उदर-पोषण तक सीमित होता है तथा स्थायी रूप से प्रवासी होता है ॥६७॥

दरिद्र योगफल

ऋणग्रस्त उग्रो दरिद्राग्रगण्यो भवेत्कर्णरोगी च सौभ्रातृहीनः ।
अकार्यप्रवृत्तो रसाभासवादी परप्रेष्यकः स्याद्दरिद्राख्ययोगे ॥६८॥

दरिद्रयोगोत्पन्न व्यक्ति ऋण से ग्रस्त, उग्र स्वभाव का, दरिद्रों में श्रेष्ठ, कर्णरोगी और अच्छे सहोदर भाई से हीन होता है। वह अकरणीय कार्यों में लिप्त रहता है, दुर्मुख और दूसरों की चाकरी करने वाला अत्यन्त दुःखी व्यक्ति होता है ॥६८॥

विमल योगफल

किञ्चिद्व्ययो भूरिधनाभिवृद्धिं प्रयात्ययं सर्वजनानुकूल्यम् ।
सुखी स्वतन्त्रो महनीयवृत्तिर्गुणैः प्रतीतो विमलोद्भवः स्यात् ॥६९॥

विमलयोगोत्पन्न व्यक्ति अल्प व्ययशील होता है, उसके धन की निरन्तर अभिवृद्धि होती है। वह सभी लोगों के अनुकूल कार्य करने वाला, सुखी, स्वतन्त्र, प्रतिष्ठापरक व्यवसाय करने वाला और सद्गुणों से युक्त होता है ॥६९॥

छिद्रारिव्ययनायकाः प्रबलगाः केन्द्रत्रिकोणाश्रिता
लग्नव्योमचतुर्थभाग्यपतयः षड्रन्ध्ररिःफस्थिताः ।
निर्वीर्या विगतप्रभा यदि तदा दुर्योग एव स्मृत-
स्तद्व्यस्ते सति योगवान्धनपतिर्भूपः सुखी धार्मिकः ॥७०॥

इति श्रीमन्त्रेश्वरविरचितायां फलदीपिकायां राजयोगभेदो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

यदि आठवें, छठे और बारहवें भाव के स्वामी बलवान् होकर केन्द्र या त्रिकोण (लग्न, चतुर्थ, पञ्चम, सप्तम, नवम, दशम) भावों में स्थित हों तथा लग्नेश, दशमेश, चतुर्थेश और नवमेश निर्बल हों या सूर्यरश्मियों से आहत हों तथा निर्बल होकर षष्ठ, अष्टम और द्वादश भावों में स्थित हों तो ये दुर्योग बनाते हैं। इसके विपरीत स्थिति में यथा अष्टम, षष्ठ और द्वादश भावों के स्वामी निर्बल या हतरश्मि होकर केन्द्र अथवा त्रिकोण में स्थित हों तो ऐसा व्यक्ति धनवान्, सुखी और धार्मिक राजा होता है ॥७०॥

इस प्रकार मन्त्रेश्वरकृत फलदीपिका में राजयोगभेद
नामक छठा अध्याय समाप्त हुआ ॥६॥

सप्तमोऽध्यायः

महाराजयोगभेदः

ग्रहों की राजयोगकारक स्थितियाँ

त्र्याद्यैः खेटैः स्वोच्चगैः केन्द्रसंस्थैः स्वर्क्षस्थैर्वा भूपतिः स्यात्प्रसिद्धः ।
पञ्चाद्यैस्तैरन्यवंशप्रसूतोऽप्युर्वीनाथो वारणाश्वौघयुक्तः ॥१॥

तीन या तीन से अधिक ग्रह अपनी उच्चराशि अथवा अपनी राशिगत होकर यदि केन्द्रभावों में स्थित हों तो जातक प्रसिद्ध राजा होता है । यदि पाँच या पाँच से अधिक ग्रह उक्त स्थिति में केन्द्रस्थ हों तो अन्य कुल में उत्पन्न होकर भी जातक हाथी और घोड़ों के समूह से युक्त राजा होता है ॥१॥

भूपाः स्युर्नृपवंशजास्तु यदि दुर्योगे न जातास्तथा
ह्यन्तर्धिर्नहि चेत्कराद्दिनकराज्जाताः स्फुरन्त्येव ते ।
त्र्याद्यैः केन्द्रगतैः स्वभोच्चसहितैर्भूपोद्भवाः पार्थिवाः
मर्त्यास्त्वन्यकुलोद्भवाः क्षितिपतेस्तुल्याः कदाचिन्नृपाः ॥२॥

यदि जातक का जन्म दुर्योग में न हुआ हो तथा उपर्युक्त योगों के योगकारक ग्रह यदि सूर्य-सान्निध्य में अस्त न हों तो उन योगों के उपस्थित रहने पर राजकुल में उत्पन्न बालक निश्चय ही राजा होता है । तीन या तीन से अधिक ग्रह यदि स्वराशि अथवा स्वोच्चराशि के होकर यदि केन्द्र में स्थित हों तो राजकुल में उत्पन्न व्यक्ति को राजा बनाते हैं । उक्त योग में सामान्य कुलोत्पन्न व्यक्ति राजा के समान ऐश्वर्यशाली होता है, कदाचित् राजा भी हो सकता है ॥२॥

यद्येकोऽपि विराजितांशुनिकरः सुस्थानगो वक्रगो
नीचस्थोऽपि करोति भूपसदृशं द्वौ वा त्रयो वा ग्रहाः ।
एवं चेज्जनयन्ति भूपतिममी शस्तांशराशिस्थिता-
स्तद्वच्चेद्बहवो नृपं समकुटच्छत्रोल्लसच्चामरम् ॥३॥

एक भी ग्रह, चाहे वह नीचराशिगत ही हो, यदि सुस्थान (६।८।१२वें भाव से इतर भावों) में वक्री होकर स्थित हो, प्रखर किरणजाल से युक्त हो तो वह जातक को राजा के तुल्य वैभवशाली बनाने में समर्थ होता है । यदि जन्माङ्ग में इस प्रकार के दो या अधिक ग्रह वर्तमान हों तो वे व्यक्ति को राजा बनाने में सक्षम होते हैं । उक्त स्थिति में यदि अधिक ग्रह जन्माङ्ग में स्थित हों तो वे व्यक्ति को मुकुट, सिंहासन, छत्र और चामरादि समस्त राजचिह्नों से युक्त राजा बनाने में सक्षम होते हैं ॥३॥

द्वौ वा त्र्याद्या दिग्बलयुक्ता यदि जातः
क्ष्माभृद्वंशे भूमिपतिः स्याज्जयशीलः ।
हित्वा मन्दं पञ्चखगा दिग्बलयुक्ता-
श्चत्वारो वा भूपतिरन्यान्वयजोऽपि ॥४॥

दो अथवा तीन आदि ग्रह दिग्बल से युक्त हों तो राजवंश में जन्म लेने वाला व्यक्ति विजयी राजा होता है । शनि को छोड़कर यदि पाँच ग्रह जन्माङ्ग में दिग्बल युक्त हों अथवा चार ही ग्रह दिग्बल-सम्पन्न हों तो साधारण वंश में उत्पन्न जातक भी राजा होता है ॥४॥

ग्रहों के दिग्बल—बुध और बृहस्पति लग्न में, शुक्र और चन्द्रमा चतुर्थ भाव में, शनि सप्तम भाव में तथा सूर्य और मङ्गल दशम भाव में दिग्बल प्राप्त करते हैं । कथित भावों से सप्तम भावों में ग्रह निर्बल होते हैं । अर्थात् शनि लग्न में, बुध और बृहस्पति सप्तम भाव में शुक्र और चन्द्रमा दशम भाव में तथा सूर्य और मङ्गल चतुर्थ भाव में निर्बल होते हैं उनमें दिग्बल का अभाव होता है ।

'दिक्षु बुधाङ्गिरसौ रविभौमौ सूर्यसुतः सितशीतकरौ च' । (वराहमिहिर)

'लग्ने जीवबुधौ दिवाकरकुजौ व्योम्नि स्मरे भास्करि-
र्बन्धाविन्दुसितौ दिशाकृतमिदं.......' (सारावली)

'विलग्नपातालवधूनभोगा बुधामरेज्यौ भृगुसूनुचन्द्रौ ।
मन्दो धरासूनुदिवाकरौ चेत् क्रमेण ते दिग्बलशालिनः स्युः' ॥
(जातकपारिजात)

गणोत्तमे लग्ननवांशकोद्गमे निशाकरश्चापि गणोत्तमेऽपि वा ।
चतुर्ग्रहैश्चन्द्रविवर्जितैस्तदा निरीक्षितः स्यादधमोद्भवो नृपः ॥५॥

यदि लग्न में वर्गोत्तम नवांश उदित हो अथवा चन्द्रमा वर्गोत्तम नवांश और चन्द्रमा के अतिरिक्त चार ग्रह लग्न को देखते हों तो नीच कुल में जन्मा व्यक्ति भी राजा होता है ॥५॥

विलग्नेशः केन्द्रे यदि तपसि वर्गोत्तमगतः
स्वतुङ्गे स्वर्क्षे वा गुरुपतिरपि स्याद्यदि तथा ।
गजस्कन्धे कार्तस्वरकृतविमानेऽतिसुषमे
सुखासीनं भूपं जनयति लसच्चामरयुगम् ॥६॥

लग्न का स्वामी यदि केन्द्र अथवा नवें भाव में स्थित हो और वर्गोत्तम नवांश में हो तथा नवम भाव का स्वामी अपनी उच्चराशि या अपनी राशि में स्थित होकर वर्गोत्तमांश में हो तो ऐसे योग में हाथी की पीठ पर रखे स्वर्णमण्डित सुन्दर आसन पर सुखपूर्वक आसीन होने वाले दो चामरों से युक्त राजा का जन्म होता है ॥६॥

निषादमपि पार्थिवं जनयतीन्दुरुच्चस्वभ-
स्थितग्रहनिरीक्षितो धवलकान्तिजालोज्ज्वलः ।

विहाय तनुभं कलास्फुरितपूर्णकान्तिः शशी
चतुष्टयगतो नृपं जनयति द्विपाश्वान्वितम् ॥७॥

धवल कान्ति (प्रखर किरणजाल) से युक्त चन्द्रमा स्वोच्च अथवा स्वराशि गत ग्रह से दृष्ट हो तो ऐसे योग में निषाद (नीच) कुल में जन्म लेने वाला व्यक्ति भी राजा होता है।

यदि पूर्ण कलाओं एवं प्रखर रश्मियों से युक्त चन्द्रमा लग्न के अतिरिक्त केन्द्र में स्थित हो (अर्थात् चतुर्थ, सप्तम अथवा दशम भाव में स्थित हो) तो ऐसे योग में हाथी-घोड़ों से युक्त राजा का जन्म होता है ॥७॥

अश्विन्यामुदयगतो भृगुर्ग्रहेन्द्रै-
र्दृष्टश्चेज्जनयति भूपतिं जितारिम्।
नीचार्योर्गृहमपहाय वित्तसंस्थो
लग्नेशः सह कविना बली च भूपम् ॥८॥

लग्नस्थ शुक्र यदि अश्विनी नक्षत्र में स्थित होकर तीन ग्रहों से दृष्ट हो तो इस योग में उत्पन्न व्यक्ति शत्रुञ्जयी राजा होता है।

यदि लग्न का स्वामी शुक्र के साथ द्वितीय भाव में स्थित हो और द्वितीयभावस्थ राशि उनके शत्रु की अथवा उनकी नीच राशि न हो तथा लग्नेश बलवान् हो तो ऐसे योग में उत्पन्न व्यक्ति राजा होता है ॥८॥

इस श्लोक में दो योग कहे गये हैं। प्रथम योग में शुक्र का अश्विनी नक्षत्र में होना कहा गया है। शुक्र ०°१३°२०' के मध्य स्थित हो तभी वह अश्विनी नक्षत्रगत होगा। तात्पर्य यह है कि मेषलग्न हो और उसमें शुक्र ०°से १३°२०' के मध्य स्थित हों और तीन ग्रह उसे देखते हों तभी उक्त योग घटित होगा।

भौमश्चेदजहरिचापलग्नसंस्थः
पृथ्वीशं कलयति मित्रखेटदृष्टः।
कर्मेशो नवमगतश्च भाग्यनाथो
मध्यस्थो भवति नृपो जनैः प्रशस्तः ॥९॥

यदि मेष, सिंह, धनु राशि के लग्न में मङ्गल स्थित हो और मित्रग्रहों से देखा जाता हो तो ऐसे योग में राजा जन्म लेता है।

दशमभावाधिपति नवें भाव में और नवमभावाधिपति यदि दशम भाव में अवस्थित हों तो अपनी प्रजा से प्रशस्ति प्राप्त करने वाले राजा का जन्म होता है ॥९॥

दशमेश और नवमेश में किसी प्रकार का सम्बन्ध राजयोगकारक होता है।

चापार्द्धे भगवान् सहस्रकिरणस्तत्रैव ताराधिपो
लग्ने भानुसुतेऽतिवीर्यसहितः स्वोच्चे च भूनन्दनः।

यद्येवं भवति क्षितेरधिपतिः संश्रुत्य दूरं भयात्
त्रस्ता एव नमन्ति तस्य रिपवो दग्धाः प्रतापाग्निना ॥१०॥

चन्द्रमा के साथ सूर्य धनुराशि के मध्य में (१५° पर), शनि लग्न में स्थित हो और पूर्ण बलवान् भौम अपनी उच्चराशि में स्थित हो तो ऐसे योग में प्रतापी राजा का जन्म होता है जिसके प्रतापाग्नि से सन्तप्त उसके शत्रु दूर से ही उसका नमन करते हैं।

शनि धनु, कुम्भ, मीन और तुला राशि में प्रशस्त कहा गया है।

सुधामृणालोपमबिम्बशोभितः शशी नवांशे नलिनीप्रियस्य ।
यदि क्षितीशो बहुहस्तिपूर्णः शुभाश्च केन्द्रेषु न पापयुक्ताः ॥११॥

चूने या अमृत के समान धवल बिम्ब से शोभित चन्द्रमा (पूर्ण रश्मियों से युक्त पूर्णिमा का चन्द्रमा, अन्य तिथियों के चन्द्रमा का बिम्ब पीताभ होता है) यदि सूर्य के नवमांश में हो, पापग्रहों की सङ्गति से मुक्त होकर शुभग्रह केन्द्र में स्थित हों तो ऐसे योग में अनेक हाथियों से युक्त राजा का जन्म होता है ॥११॥

नीचारिवर्गरहितैर्विहगैस्त्रिभिस्तु
स्वांशोपगैर्बलयुतैः शुभदृष्टिजुष्टैः ।
गोक्षीरशङ्खधवलो मृगलाञ्छनश्च
स्याद्यस्य जन्मनि स भूमिपतिर्जितारिः ॥१२॥

शत्रु और नीच राशि के वर्ग से विमुक्त स्व-स्व नवांशस्थ तीन ग्रह यदि शंख या दुग्ध धवल (पूर्ण रश्मि युक्त) चन्द्रमा पर दृष्टिपात करते हों तो इस योग में जन्म लेने वाला व्यक्ति शत्रुञ्जयी राजा होता है ॥१२॥

कुमुदगहनबन्धुं श्रेष्ठमंशं प्रपन्नं
यदि बलसमुपेतः पश्यति व्योमचारी ।
उदयभवनसंस्थः पापसंज्ञो न चैवं
भवति मनुजनाथः सार्वभौमः सुदेहः ॥१३॥

यदि वर्गोत्तमांशस्थ चन्द्रमा बलवान् ग्रह से दृष्ट हो तथा लग्न में पापग्रह युत न हो तो इस योग में उत्पन्न व्यक्ति सुन्दर देहधारी सार्वभौमिक राजा होता है ॥१३॥

जीवो बुधो भृगुसुतोऽथ निशाकरो वा
धर्मे विशुद्धतनवः स्फुटरश्मिजालाः ।
मित्रैर्निरीक्षितयुता यदि सूतिकाले
कुर्वन्ति देवसदृशं नृपतिं महान्तम् ॥१४॥

जिसमें जन्मकाल में बुध, बृहस्पति, शुक्र या चन्द्रमा प्रखर किरणों से युक्त होकर यदि नवम भाव में स्थित हों, सूर्य-सान्निध्य में अस्त न हों और मित्रग्रहों से युत या दृष्ट हों

तो ऐसा व्यक्ति महान् राजा होता है। उसकी प्रजा देवता के समान उसकी पूजा करती है ॥१४॥

शुक्रेड्यौ सवितुः शिशुस्तिमियुगे स्वोच्चे च पूर्णः शशी
दृष्टस्तीव्रविलोचनेन दिनकृन्मेषोदयेऽसौ नृपः ।
सेनायाश्चलनेन रेणुपटलैर्यस्य प्रविष्टे रवा-
वस्तभ्रान्तिसमाकुला कमलिनी सङ्कोचमागच्छति ॥१५॥

शुक्र, बृहस्पति और शनि मीन राशि में, पूर्ण चन्द्रमा अपनी उच्चराशि (वृष) में स्थित हो तथा मेषलग्न में स्थित सूर्य मङ्गल से दृष्ट हो—ऐसे योग में उत्पन्न व्यक्ति राजा होता है जिसकी महती सेना के चलने से उठने वाली धूलि से आच्छन्न सूर्य के अस्तगामी होने का भ्रम उत्पन्न होने से कमलिनी संकुचित होने लगती है ॥१५॥

इस श्लोक की एक और व्याख्या की जा सकती है—शुक्र, बृहस्पति और शनि मीन राशि में स्थित हों, पूर्ण चन्द्रमा अपनी उच्चराशि में मंगल से दृष्ट हो और सूर्य मेष राशि के लग्न में हो तो जातक राजा होता है।

नीचारिस्थैर्भवभवनगैः षष्ठदुश्चिक्यगैर्वा
सौम्यैः स्वोच्चं परमुपगतैर्निर्मलैः केन्द्रगैर्वा ।
आज्ञां याते शिशिरकिरणे कर्कटस्थे निशाया-
मेकच्छत्रं त्रिभुवनमिदं यस्य स क्षत्रियेशः ॥१६॥

रात्रिजन्म हो और शुभग्रह अपनी नीच या शत्रु राशि के होकर एकादश, षष्ठ या दुश्चिक्य (तृतीय) भाव में स्थित हों अथवा अपनी परमोच्च अवस्था में प्रखर किरणों से युक्त केन्द्र में अवस्थित हों तथा कर्क राशि का चन्द्रमा आज्ञा (दशम) भाव में स्थित हो तो इस योग में उत्पन्न व्यक्ति त्रैलोक्य का एकछत्र अधिपति होता है ॥१६॥

वर्गोत्तमे हिमकरः सकलः स्थितोंऽशे
कुर्यान्महीपतिमपूर्वयशोऽभिरामम् ।
यस्याश्ववृन्दखुरघातरजोऽभिभूतो
भानुः प्रभातशशिनोऽनुकरोति रूपम् ॥१७॥

यदि पूर्ण चन्द्र वर्गोत्तम अंशों में स्थित हो तो जातक अपूर्व यशस्वी एवं पराक्रमी राजा होता है। उसके अश्वों के खुरों के आघात से उठने वाली धूलि सूर्य को इस प्रकार ढक लेती है जिससे वह प्रातःकालीन चन्द्रमा के समान भासित होता है ॥१७॥

केन्द्रगौ यदि च जीवशशाङ्कौ यस्य जन्मनि च भार्गवदृष्टौ।
भूपतिर्भवति सोऽतुलकीर्तिर्नीचगो यदि न कश्चिदिह स्यात् ॥१८॥

जिसके जन्माङ्ग में चन्द्रमा के साथ बृहस्पति केन्द्रस्थ होकर शुक्र से दृष्ट हो और कोई भी ग्रह नीचराशिगत न हो तो जातक अतुल कीर्तिमान् राजा होता है ॥१८॥

जलचरराशिनवांशक इन्दुस्तनुभवने शुभदस्वकवर्गे।
अशुभकरः खलु कण्टकहीनो भवति नृपो बहुवारणनाथः ॥१९॥

यदि चन्द्रमा जलचर (कर्क-मकर का उत्तरार्द्ध और मीन) राशि में अथवा जलचर राशि के नवांश में स्थित होकर तनुभाव (लग्न) में हो अथवा चन्द्रमा शुभवर्ग अथवा स्ववर्ग में स्थित हो और केन्द्र पापग्रहों से हीन हो तो जातक अनेक हाथियों का स्वामी होता है और प्रजा के हित का कार्य करता है ॥१९॥

शुक्रो जीवनिरीक्षितो वितनुते भूपोद्भवं भूपतिं
देवेड्यो मृगभं विहाय तनुगो मत्तेभयुक्तं नृपम्।
केन्द्रे जन्मपतिर्बलाधिकयुतः कुर्याद्धरित्रीपतिं
दृष्टे वाक्पतिना बुधे दधति पृथ्वीशाश्च तच्छासनम् ॥२०॥

इस श्लोक में चार निम्न राजयोग कहे गये हैं—

(१) यदि शुक्र बृहस्पति से दृष्ट हो तो इस योग में राजकुल में जन्म लेने वाला व्यक्ति राजा होता है।

(२) मकरेतर राशि के लग्न में यदि बृहस्पति स्थित हो तो जातक मत्त हाथियों के समूह से युक्त राजा होता है।

(३) यदि जन्मपति (लग्नेश अथवा जन्मराशीश) बलान्वित होकर केन्द्रभावों में स्थित हो तो जातक राजा होता है।

(४) यदि जन्माङ्ग में बुध को बृहस्पति देखता हो तो राजाधिराज भी उसकी सम्मति के अनुसार चलते हैं। तात्पर्य यह है कि इस योग में उत्पन्न व्यक्ति अत्यधिक बुद्धिमान् होता है ॥२०॥

एकोऽप्युच्चक्षेत्रगो मित्रदृष्टः कुर्याद्भूपं मित्रयोगाद्धनाढ्यम्।
स्वांशे सूर्ये स्वर्क्षगश्चन्द्रमाश्चेद्देशाधीशं साश्वनागं विधत्ते ॥२१॥

जन्माङ्ग में यदि एक भी ग्रह अपनी उच्चराशि में स्थित होकर मित्रग्रह से दृष्ट हो तो जातक राजा होता है। यदि उच्चस्थ ग्रह अपने अन्य मित्रग्रह से युत हो तो जातक धनाढ्य होता है।

यदि सूर्य अपने नवांश में स्थित हो, चन्द्रमा स्वराशिगत हो तो ऐसे योग में उत्पन्न व्यक्ति हाथी-घोड़ों से युक्त अनेक देशों का स्वामी होता है ॥२१॥

मीने पूर्णज्योतिषि मित्रग्रहदृष्टे चन्द्रे
लोकानन्दकरः स्यान्नृपमुख्यः ।
पूर्णज्योतिः स्वोच्चगतश्चेत्तुहिनांशु-
स्त्यागाधिक्यं सज्जनशस्तं जगदीशम् ॥२२॥

मीन राशि में स्थित पूर्णरश्मि चन्द्रमा (पूर्णिमा का चन्द्रमा) यदि मित्रग्रह से देखा जाता हो तो इस योग में जन्म लेने वाला व्यक्ति विश्व को आनन्दित करने वाला राजाओं में प्रमुख होता है ।

जिसके जन्माङ्ग में पूर्णरश्मि से युक्त चन्द्रमा अपनी उच्चराशि में स्थित हो तो ऐसा जातक त्यागी तथा सज्जनों से प्रशंसित विश्वपति होता है ॥२२॥

चन्द्रेऽधिमित्रांशगते सुदृष्टे शुक्रेण लक्ष्मीसहितो नृपः स्यात् ।
तथा स्थिते वासवमन्त्रिदृष्टे पूर्णां धरित्रीं परिपालयेत्सः ॥२३॥

जन्माङ्ग में यदि चन्द्रमा अधिमित्र के नवांश में स्थित होकर शुक्र से पूर्ण दृष्ट हो तो जातक धनाधिक्य से युक्त राजा होता है ।

उक्त स्थिति में चन्द्रमा यदि बृहस्पति से दृष्ट हो तो जातक सम्पूर्ण पृथ्वी पर शासन करने वाला राजाधिराज होता है ॥२३॥

पापास्त्रिशत्रुभवगा यदि जन्मनाथा-
ल्लग्नाद्धने कुजबुधौ हिबुकेऽर्कशुक्रौ ।
कर्मायलग्नसहिताः कुजमन्दजीवा-
स्तज्ज्ञा वदन्ति चतुरस्त्विह राजयोगान् ॥२४॥

(१) जन्मलग्न या जन्मराशि के स्वामी द्वारा अधिष्ठित राशि से त्रिषडाय (तृतीय, षष्ठ और एकादश) भावों में पापग्रह स्थित हों,

(२) लग्न से द्वितीय भाव में मंगल बुध से संयुक्त हो,

(३) लग्न से चतुर्थ भाव में सूर्य और शुक्र अवस्थित हों,

(४) दशम, एकादश और लग्न भावों में क्रमशः मंगल, शनि और बृहस्पति अवस्थित हों;

विद्वानों ने ये चार राजयोग कहे हैं ॥२४॥

लाभेशधर्मेशधनेश्वराणामेकोऽपि चन्द्रग्रहकेन्द्रवर्ती ।
स्वपुत्रलाभाधिपतिर्गुरुश्चेदखण्डसाम्राज्यपतित्वमेति ॥२५॥

एकादशेश, नवमेश और द्वितीयेश में से कोई एक ग्रह चन्द्रराशि से केन्द्रभाव में

स्थित हो तथा एकादश, नवम और द्वितीय भावों में से किसी भाव का स्वामी यदि बृहस्पति हो तो ऐसे योग में उत्पन्न जातक अखण्ड साम्राज्य का अधिपति होता है ॥२५॥

नीचभङ्ग राजयोग

नीचस्थितो जन्मनि यो ग्रहः स्यात्तद्राशिनाथोऽपि तदुच्चनाथः ।
स चन्द्रलग्नाद्यदि केन्द्रवर्ती राजा भवेद्धार्मिकचक्रवर्ती ॥२६॥

व्यक्ति के जन्मकाल में जो ग्रह नीचराशि में स्थित हो, उस नीचराशि का स्वामी चन्द्रलग्न से केन्द्र (१,४,७,१०वें) भाव में स्थित हो और उस नीचस्थ ग्रह के उच्चराशि का स्वामी भी केन्द्रस्थ हो तो नीचस्थ ग्रह का नीचत्व भंग ही नहीं होता अपितु इस योग में उत्पन्न व्यक्ति राजा या प्रशासक होता है ॥२६॥

इस श्लोक में प्रयुक्त 'तदुच्चनाथः' पद विवादास्पद है। इसकी अनेक व्याख्याएँ देखने को मिलती हैं। इस पद का सीधा-सादा अर्थ है—'उसका उच्चनाथ या उसके उच्चराशि का स्वामी'। उसके किसके ? उस नीचस्थ ग्रह के उच्चनाथ या वह नीचस्थ ग्रह जिस राशि में उच्च का हो उसका स्वामी ग्रह। कतिपय विद्वान् इस व्याख्या से सन्तुष्ट न होकर एक अलग व्याख्या करते हैं। उनके अनुसार पद में प्रयुक्त 'तत्' शब्द सर्वनाम है जो उस नीच राशि के लिए प्रयुक्त है अर्थात् उनके अनुसार 'तदुच्चनाथः' का अर्थ होगा—'वह नीच राशि जिस ग्रह की उच्चराशि हो वह ग्रह'। अब यदि किसी जन्माङ्ग में चन्द्रमा वृश्चिक राशि में हो तो वह नीचगत होगा। यदि दूसरी व्याख्या ग्रहण करें तो उस नीचराशि वृश्चिक किस ग्रह का उच्चस्थान होगा ? वृश्चिक किसी ग्रह का उच्चस्थान नहीं है। अतः मेरे विचार से पहली व्याख्या ही युक्तियुक्त है।

यद्येको नीचगतस्तद्राश्यधिपस्तदुच्चपः केन्द्रे ।
यस्य स तु चक्रवर्ती समस्तभूपालवन्द्याङ्घ्रिः ॥२७॥

यदि कोई ग्रह नीच राशि में स्थित हो और उस नीच राशि के स्वामी एवं उस नीचस्थ ग्रह की उच्चराशि के स्वामी दोनों परस्पर केन्द्र में स्थित हों तो जातक समस्त राजाओं से वन्दनीय चक्रवर्ती राजा होता है ॥२७॥

यस्मिन्राशौ वर्तते खेचरस्तद्राशीशेन प्रेक्षितश्चेत्स खेटः ।
क्षोणीपालं कीर्तिमन्तं विदध्यात् सुस्थानश्चेत्किं पुनः पार्थिवेन्द्रः ॥२८॥

यदि ग्रह नीचराशिगत हो और उस नीचराशि का स्वामी उस ग्रह को देखता हो तो जातक कीर्तियुक्त राजा होता है। नीचस्थ ग्रह यदि सुस्थान (त्रिकेतर भाव) में स्थित हो तो जातक राजाओं में श्रेष्ठ राजा होता है ॥२८॥

नीचे तिष्ठति यस्तदाश्रितगृहाधीशो विलग्नाद्यदा
चन्द्राद्वा यदि नीचगस्य विहगस्योच्चर्क्षनाथोऽथवा ।
केन्द्रे तिष्ठति चेत्प्रपूर्णविभवः स्याच्चक्रवर्ती नृपो
धर्मिष्ठोऽन्यमहीशवन्दितपदस्तेजोयशोभाग्यवान् ॥२९॥

यदि ग्रह नीच राशि में स्थित हो और उस नीच राशि का स्वामी और उस नीच ग्रह की उच्चराशि का स्वामी यदि जन्मलग्न या जन्मराशि से केन्द्र में अवस्थित हो तो जातक वैभवादि से सम्पन्न, धार्मिक, अन्य राजाओं से पूजित, यशस्वी, भाग्यशाली एवं चक्रवर्ती राजा होता है ॥२९॥

नीचे यस्तस्य नीचोच्चभेशौ द्वावेक एव वा।
केन्द्रस्थश्चेच्चक्रवर्ती भूपः स्याद्भूपवन्दितः ॥३०॥

इति श्रीमन्त्रेश्वरविरचितायां फलदीपिकायां महाराजयोगभेदो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥
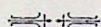
जो ग्रह नीचस्थ हो, उसकी नीच और उच्चराशि का स्वामी अथवा उनमें से कोई एक ही यदि केन्द्रभावों में अवस्थित हो तो जातक राजाओं से सत्कृत चक्रवर्ती राजा होता है ॥३०॥

इस प्रकार श्रीमन्त्रेश्वरकृत फलदीपिका में महाराजयोगभेद नामक सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥७॥

अष्टमोऽध्यायः

भावाश्रयफलभेदः

लग्नस्थ सूर्यफल

लग्नेऽर्केऽल्पकचः क्रियालसतमः क्रोधी प्रचण्डोन्नतो
मानी लोचनरूक्षकः कृशतनुः शूरोऽक्षमो निर्घृणः ।
स्फोटाक्षः शशिभे क्रिये सतिमिरः सिंहे निशान्धः पुमान्
दारिद्र्योपहतो विनष्टतनयो जातस्तुलायां भवेत् ॥१॥

जन्मकाल में सूर्य यदि **लग्न** में स्थित हो तो जातक अल्पकेशी, महा आलसी, क्रोधी, तेजस्वी, उन्नत और क्षीण शरीर, अभिमानी, मलिन नेत्र, शूरवीर, अक्षम और क्रूरमना होता है ।

यदि कर्क राशि के लग्न में सूर्य स्थित हो तो जातक के नेत्र स्फोट (मोतियाबिन्द आदि) से पीड़ित होता है । मेष राशि के लग्न में यदि सूर्य स्थित हो तो जातक नेत्ररोगी, यदि सिंह के लग्न में सूर्य स्थित हो तो जातक रात्र्यन्ध होता है । यदि तुला राशि के लग्न में सूर्य स्थित हो तो जातक धन और पुत्र से हीन होता है ॥१॥

यह श्लोक सारावली में पठित है ।

द्वितीय-तृतीय-चतुर्थभावस्थ सूर्यफल

विगतविद्याविनयवित्तं स्खलितवाचं धनगतः
सबलशौर्यश्रियमुदारं स्वजनशत्रुं सहजगः ।
जनयतीमं सुहृदि सूर्यो विसुखबन्धुक्षितिसुहृद्
भवनमुक्तं नृपतिसेवा जनकसम्पद्व्ययकरम् ॥२॥

यदि सूर्य **द्वितीय भाव** में स्थित हो तो जातक विद्या, विनय और धन से हीन एवं हकला होता है । यदि सूर्य **तृतीय भाव** में स्थित हो तो जातक शक्तिशाली, पराक्रमी, धनिक, उदारमना और स्वजनों का शत्रु होता है । यदि **चतुर्थ भाव** में सूर्य स्थित हो तो जातक स्वजनों, मित्रों, भूमि और भवन से हीन, राजा का सेवक और पैतृक सम्पत्ति का विनाशक होता है ॥२॥

'द्विपदचतुष्पदभागी मुखरोगी नष्टविभवसौख्यश्च ।
नृपचोरमुषितसारः कुटुम्बगे स्याद्रवौ पुरुषः ॥
विक्रान्तो बलयुक्तो विनष्टसहजस्तृतीयगे सूर्ये ।
लोके मतोऽभिरामः प्राज्ञो जितदुष्टपक्षश्च ॥
वाहनबन्धुविहीनः पीडितहृदयश्चतुर्थके सूर्ये ।
पितृगृहधननाशकरो भवति नरः कुनृपसेवी च' ॥ (सारावली)

७ फ.

पञ्चम-षष्ठ-सप्तम-अष्टमभावस्थ सूर्यफल

सुखधनायुस्तनयहीनं सुमतिमात्मन्यटविगं
प्रथितमुर्वीपतिमरिस्थः सुगुणसम्पद्विजयगम् ।
नृपविरुद्धं कुतनुमस्तेऽध्वगमदारं ह्यवमतं
हतधनायुः सुहृदमर्को विगतदृष्टिं निधनगः ।।३।।

यदि सूर्य लग्न से **पञ्चम भाव** में स्थित हो तो जातक सुख, धन और सन्तान से हीन अल्पजीवी होता है। वह बुद्धिमान और वनप्रदेश में भ्रमण करने वाला होता है। यदि **षष्ठ भाव**गत हो तो विशाल भूखण्ड का स्वामी, गुणवान्, धनिक और विजयी होता है; यदि **सप्तम भाव** में स्थित हो तो राजा का विरोधी, विकृत शरीर, यायावर, स्त्रीसुख से हीन और तिरस्कृत होता है; **अष्टम भाव**स्थ हो तो जातक धन- सम्पदादि-विहीन, विकल नेत्र और अल्पायु होता है ।।३।।

'सुखसुतवित्तविहीन: कर्षणगिरिदुर्गसेवकश्चपल: ।
मेधावी बलरहित: स्वल्पायु: पञ्चमे तपने ।।
प्रबलमदनोदराग्निर्बलवान् षष्ठं समाश्रिते भानौ ।
श्रीमान् विख्यातगुणो नृपतिर्वा दण्डनेता वा ।।
नि:श्रीक: परिभूत: कुशरीरो व्याधित: पुमान्द्यूने ।
नृपबन्धनसन्तप्तोऽमार्गरतो युवतिविद्वेषी ।।
विकलनयनोऽष्टमस्थे धनसुखहीनोऽल्पजीवित: पुरुष: ।
भवति सहस्रमयूखे स्वभिमतजनविरहसन्तप्त:' ।। (सारावली)

नवम-दशम-एकादश-द्वादशभावस्थ सूर्यफल

विजनकोऽर्के ससुतबन्धुस्तपसि देवद्विजमनाः
ससुतयानस्तुतिमतिश्रीबलयशाः खे क्षितिपतिः ।
भवगतेऽर्के बहुधनायुर्विगतशोको जनपतिः
पितुरमित्रं विकलनेत्रो विधनपुत्रो व्ययगते ।।४।।

यदि सूर्य **नवम भाव** में स्थित हो तो जातक पितृहीन, बन्धु-बान्धव और सन्तति सुख से युक्त, देव-ब्राह्मणों के प्रति आस्थावान् होता है; **दशम भाव**गत हो तो जातक सन्तान, वाहन, प्रशस्ति, कुशाग्र बुद्धि, धन, बल और यश से सम्पन्न होता है; **एकादश भाव**स्थ हो तो जातक अनेक धन-धान्यादि और दीर्घायुष्य से युक्त एवं विनष्टशोक राजा होता है; यदि **द्वादश भाव**गत हो तो जातक पितृविद्वेषी, नेत्ररोगी, धन और सन्तान से हीन होता है ।।४।।

'धनपुत्रमित्रभागी द्विजदैवतपूजनेऽतिरक्तश्च ।
पितृयोषिद्विद्वेषी नवमे तपने सुतप्त: स्यात् ।।
अतिमतिरतिविभवबलो धनवाहनबन्धुपुत्रवान् सूर्ये ।
सिद्धारम्भ: शूरो दशमेऽधृष्य: प्रशस्यश्च ।।

सञ्चयनिरतो बलवान् द्वेष्य: प्रेष्यो विभृत्यश्च ।
एकादशे विधेय: प्रियरहित: सिद्धकर्मा च ।।
विकलशरीर: काण: पतितो वन्ध्यापति: पितुरमित्र: ।
द्वादशसंस्थे सूर्ये बलरहितो जायते क्षुद्र:' ।। (सारावली)

• चन्द्रभावफल •

प्रथम-द्वितीय-तृतीयभावस्थ चन्द्र फल

सिते चन्द्रे लग्ने दृढतनुरदभ्रायुरभयो
बलिष्ठो लक्ष्मीवान् भवति विपरीतं क्षयगते ।
धनाढ्योऽन्तर्वाणिर्विषयसुखवान् वाचि विकल:
सहोत्थे सभ्रातृप्रमदबलशौर्योऽतिकृपण: ।।५।।

यदि शुक्लपक्ष का चन्द्रमा **लग्न** में स्थित हो तो जातक दृढवपु, दीर्घायु, निर्भय, बलवान् और धनसम्पन्न होता है। इससे विपरीत स्थिति में (अर्थात् कृष्णपक्ष में जन्म हो और लग्न में चन्द्रमा स्थित हो) तो विपरीत फल होता है अर्थात् उपर्युक्त फल का नाश हो जाता है। उक्त चन्द्रमा यदि **द्वितीय भाव** में स्थित हो तो जातक विद्वान्, मृदुभाषी, विषय-सुखभोगी किन्तु विकलाङ्ग होता है; यदि **तृतीय भाव** में हो तो जातक मातृसुख से युक्त, मदमस्त, बलयुक्त, शूरवीर और अत्यन्त कृपण होता है ।।५।।

'दाक्षिण्यरूपधनभोगगुणै: प्रधानश्चन्द्रे कुलीरवृषभाजगते विलग्ने ।
पूर्णेऽथ नीचबधिरो विकलश्च मूक: क्षीणे नरो भवति शेषगृहे विशेषात् ।।
अतुलितसुखमित्रयुतो धनैश्च चन्द्रे द्वितीयराशिगते ।
सम्पूर्णेऽतिधनेशो भवति नरोऽल्पप्रलापकर: ।।
भ्रातृजनाश्रयणीयो मुदान्वित: सहजगे बलिनि ।
चन्द्रे भवति च शूरो विद्यावस्त्रान्नसङ्ग्रहणशील:' ।। (सारावली)

चतुर्थ-पञ्चम-षष्ठ-सप्तमभावस्थ चन्द्रफल

सुखी भोगी त्यागी सुहृदि ससुहृद्वाहनयशा:
सुपुत्रो मेधावी मृदुगतिरमात्य: सुतगते ।
क्षतेऽल्पायुश्चन्द्रेऽमतिरुदररोगी परिभवी
स्मरे दृष्टे: सौम्यो वरयुवतिकान्तोऽतिसुभग: ।।६।।

चन्द्रमा यदि **चतुर्थ भाव** में स्थित हो तो जातक सभी सुखों से युक्त, भोग में लिप्त, त्यागी तथा मित्र, वाहन आदि से सुखी और यशस्वी होता है; यदि **पञ्चमभाव**गत हो तो जातक सत्पुत्रवान्, अत्यन्त मेधावी, मन्द गति से चलने वाला, राज्य का मन्त्री होता है; यदि **षष्ठभाव**गत हो तो जातक अल्पायु, मूर्ख, उदररोगी और मानरहित होता है; यदि **सप्तम भाव** में स्थित हो तो नयनाभिराम रूप से युक्त श्रेष्ठ युवतियों का प्रिय अत्यन्त सौभाग्यशाली होता है ।।६।।

'बन्धुपरिच्छदवाहनसहितो दाता चतुर्थगे चन्द्रे ।
जलसञ्चारानुरतः सुखात् सुखोत्कर्षपरियुक्तः ।।
चन्द्रे भवति न शूरो विद्यावस्त्रान्नसङ्ग्रहणशीलः ।
बहुतनयसौम्यमित्रो मेधावी पञ्चमे तीक्ष्णः ।।
षष्ठे नर उदरभवै रोगैः सम्पीडितो भवति ।
रजनिकरे स्वल्पायुः षष्ठगते भवति संक्षीणे ।।
सौम्यो धृष्यः सुखितः सुशरीरः कामसंयुतो द्यूने ।
दैन्यरुगार्दितदेहः कृष्णे सञ्जायते शशिनि' ।। (सारावली)

अष्टम-नवम-दशमैकादश-द्वादशभावस्थ चन्द्र फल

मृतौ रोग्यल्पायुस्तपसि शुभधर्मात्मसुतवान्
जयी सिद्धारम्भो नभसि शुभकृत्सत्प्रियकरः ।
मनस्वी बह्वायुर्धनतनयभृत्यैः सह भवे
व्यये द्वेष्यो दुःखी शशिनि परिभूतोऽलसतमः ।।७।।

यदि चन्द्रमा **अष्टम भाव** में स्थित हो तो जातक रोगी और अल्पायु होता है; **नवम भाव**गत हो तो जातक सम्पन्न, धर्मात्मा और सन्तान से सुखी होता है; यदि **दशम भाव** में स्थित हो तो जातक विजयी, सिद्ध कार्य एवं शुभ कार्य करने वाला, सज्जनों का उपकारक होता है; यदि **एकादश भावस्थ** हो तो जातक मनस्वी, दीर्घायु, धनिक, सन्तति और नौकरों से युक्त होता है; **व्ययभाव** में स्थित हो तो जातक विद्वेषी, दु;खी, पराभूत और अति आलसी होता है ।।७।।

'अतिमतिरतितेजस्वी व्याधिविबन्धक्षपितदेहः ।
निधनस्थे रजनिकरे स्वल्पायुर्भवति संक्षीणे ।।
दैवतपितृकार्यपरः सुखधनमतिपुत्रसम्पन्नः ।
युवतिजननयनकान्तो नवमे शशिनि प्रजायते मनुजः ।।
अविषादी कर्मपरः सिद्धारम्भश्च धनसमृद्धश्च ।
शुचिरतिबलोऽथ दशमे शूरो दाता भवेच्छशिनि ।।
धनवान् बहुसुतभागी बह्वायुः स्विष्टभृत्यवर्गश्च ।
इन्दौ भवेन्मनस्वी तीक्ष्णः शूरः प्रकाशश्च ।।
द्वेष्यः पतितः क्षुद्रो नयनरुगार्तोऽलसो भवेद्विकलः ।
चन्द्रे तथाऽन्यजातो द्वादशगे नित्यपरिभूतः' ।। (सारावली)

• भौमभावफल •

लग्न-द्वितीय-तृतीय-चतुर्थभावस्थ भौमफल

क्षततनुरतिक्रूरोऽल्पायुस्तनौ घनसाहसी
वचसि विमुखो निर्विद्यार्थः कुजे कुजनाश्रितः ।

सुगुणधनवाञ्छूरोऽधृष्यः सुखी व्यनुजोऽनुजे
सुहृदि विसुहृन्मातृक्षोणीसुखालयवाहनः ॥८॥

यदि जन्माङ्ग में मंगल **लग्न** में स्थित हो तो जातक का शरीर क्षत, व्रण आदि चिह्नों से युक्त होता है, वह अत्यन्त क्रूर और अति साहसी होता है। **धनभाव** में स्थित हो तो जातक कुरूप, विद्या और धन से हीन और दुर्जनों का आश्रित होता है; **तृतीयभावस्थ** हो तो जातक गुणी, धनी, शूरवीर और उद्धत स्वभाव का तथा सुखी व्यक्ति होता है, उसके भाई (सहोदर) नहीं होते; यदि भौम **चतुर्थ भाव** में स्थित हो तो जातक स्वजनों से हीन, मातृसुख, भूमि, भवन, वाहनादि सुख से हीन होता है ॥८॥

'क्रूरः साहसनिरतः स्तब्धोऽल्पायुः स्वमानशौर्ययुतः।
क्षतगात्रः सुशरीरो वक्रे लग्नाश्रिते चपलः ॥
अधनः कदशनतुष्टः पुरुषो विकृताननो धनस्थाने।
कुजनाश्रयश्च रुधिरे भवति नरो विद्यया रहितः ॥
शूरो भवत्यधृष्यो भ्रातृवियुक्तो मुदान्वितः पुरुषः।
भूपुत्रे सहजस्थे समस्तगुणभाजनं ख्यातः ॥
बन्धुपरिच्छदरहितो भवति चतुर्थेऽथ वाहनविहीनः।
अतिदुःखैः सन्तप्तः परगृहवासी कुजे पुरुषः' ॥ (सारावली)

पञ्चम-षष्ठ-सप्तम-अष्टमभावस्थ भौमफल

विसुखतनयोऽनर्थप्रायः सुते पिशुनोऽल्पधीः
प्रबलमदनः श्रीमान् ख्यातो रिपौ विजयी नृपः।
अनुचितकरो रोगार्तोऽस्तेऽध्वगो मृतदारवान्
कुतनुरधनोऽल्पायुश्छिद्रे कुजे जननिन्दितः ॥९॥

यदि भौम **पंचम भाव** में स्थित हो तो जातक शारीरिक सुख से हीन, निर्धन, चुगलखोर और मन्दबुद्धि होता है; **षष्ठ भाव** में स्थित हो तो जातक अतिकामी, धनसम्पन्न, विख्यात और विजयी राजा होता है; यदि **सप्तम भाव** में भौम स्थित हो तो जातक अनुचित कार्य निष्पन्न करने वाला, रोगी, प्रवासी, यायावर और सन्तानहीन होता है; **अष्टम भाव** में स्थित हो तो जातक विकलाङ्ग, निर्धन, अल्पायु और निन्दनीय होता है ॥९॥

'सौख्यार्थपुत्ररहितश्चलमतिरपि पञ्चमे कुजे भवति।
पिशुनोऽनर्थप्रायः खलश्च विकलो नरो नीचः ॥
प्रबलमदनोदराग्निः सुशरीरो व्यायतो बली षष्ठे।
रुधिरे सम्भवति नरः स्वबन्धुविजयी प्रधानश्च ॥
मृतदारो रोगार्तोऽमार्गरतो भवति दुःखितः पापः।
श्रीरहितः सन्तप्तः शुष्कतनुर्भवति सप्तमे भौमे ॥
व्याधिप्रायोऽल्पायुः कुशरीरो नीचकर्मकर्ता च।
निधनस्थे क्षितितनये भवति पुमान् शोकसन्तप्तः' ॥ (सारावली)

नवम-दशमैकाश-द्वादशभावस्थ भौमफल

नृपसुहृदपि द्वेष्योऽतातः शुभजनघातको
नभसि नृपतिः क्रूरो दाता प्रधानजनस्तुतः ।
धनसुखयुतोऽशोकः शूरो भवे सुशीलः कुजे
नयनविकृतः क्रूरोऽदारो व्यये पिशुनोऽधमः ॥१०॥

भौम यदि **नवम भाव** में स्थित हो तो जातक राजा का मित्र, निन्दित, पितृहीन और अपराधी वृत्ति का होता है; **दशम भाव** में स्थित हो तो जातक क्रूरमना, राजा, दानवीर, प्रधान और लोकप्रशंसित होता है; **एकादश भाव**गत हो तो शोकरहित, धन से सुखी, शूर और शीलवान् होता है; **द्वादश भाव** में स्थित हो तो जातक नेत्ररोगी, निर्मम, पत्नी से हीन, चुगलखोर और नीच होता है ॥१०॥

'अकुशलकर्मा द्वेष्यः प्राणिवधपरो भवेन्नवमसंस्थे ।
धर्मरहितोऽतिपापो नरेन्द्रकृतगौरवो रुधिरे ॥
कर्मोद्युक्तो दशमे शूरोऽधृष्यः प्रधानजनसेवी ।
सुखसौख्ययुतो रुधिरे प्रतापबहुलः पुमान् भवति ॥
एकादशगे गुणवान् प्रियसुखभोगी तथा भवेच्छूरः ।
धनधान्यसुतैः सहितः क्षितितनये विगतशोकश्च ॥
नयनविकारी पतितो जायाघ्नः सूचकश्च रौद्रश्च ।
द्वादशगे परिभूतो बन्धनभाक् भवति भूपुत्रे' ॥ (सारावली)

• बुधभावफल •

लग्न-द्वितीय-तृतीय-चतुर्थभावस्थ बुधफल

दीर्घायुर्जन्मनि ज्ञे मधुरचतुरवाक सर्वशास्त्रार्थबोधः
स्याद्बुद्ध्योपार्जितस्वः कविरमलवचा वाचि मिष्टान्नभोक्ता ।
शौर्ये शूरः समायुः सुसहजसहितः सश्रमो दैन्ययुक्तः
संख्यावान् चाटुवाक्यः सुहृदि सुखसुहृत्क्षेत्रधान्यार्थभोगी ॥११॥

जिसके जन्माङ्ग में **लग्न** में बुध स्थित हो वह जातक दीर्घायु, वाक्पटु, मिष्टभाषी, समस्त शास्त्रों का ज्ञाता होता है; यदि **द्वितीय भाव** में स्थित हो तो जातक अपनी बुद्धि से उपार्जित धन से धनी, सुन्दर कवि, शुद्ध वाणी और मिष्टान्नभोगी होता है; **तृतीय भाव** में स्थित हो तो जातक शूरवीर, मध्यायु, अच्छे भाइयों से युक्त, परिश्रमी किन्तु दीन-हीन एवं दरिद्र होता है; **चतुर्थभाव**गत हो तो जातक विद्वान्, चाटुकार, मित्र, भूमि, धन-धान्यादि से सुखी होता है ॥११॥

'अनुपहतदेहबुद्धिर्देशकलाज्ञानकाव्यगणितज्ञः ।
अतिचतुरमधुरवाक्यो दीर्घायुः स्याद् बुधे लग्ने ॥
बुद्ध्योपार्जितविभवो धनभवनगतेऽन्नपानभोगी च ।
शोभनवाक्यः सुनयः शशितनये मानवो भवति ॥

श्रमनिरतः प्रियहीनस्तृतीयभावे बुधे भवति जातः ।
निपुणः सहजसमेतो मायाबहुलो नरश्चपलः ॥
धनजनसहितः सुभगो वाहनयुक्तो बुधे हिबुकसंस्थे ।
सुपरिच्छदः सुबन्धुर्भवति नरः पण्डितो नित्यम्' ॥

पञ्चम-षष्ठ-सप्तम-अष्टमभावस्थ बुधफल

विद्यासौख्यप्रतापः प्रचुरसुतयुतो मान्त्रिकः पञ्चमस्थे
जातक्रोधो विवादैर्द्विषि रिपुबलहन्तालसो निष्ठुरोक्तिः ।
प्राज्ञोऽस्ते चारुवेषः ससकलमहिमा याति भार्यां सवित्तां
विख्याताख्यश्चिरायुः कुलभृदधिपतिर्ज्ञेऽष्टमे दण्डनेता ॥१२॥

यदि बुध **पंचम भाव** में स्थित हो तो जातक विद्वान्, सुखी और प्रतापी होता है, उसके अनेक पुत्र होते हैं तथा वह मन्त्रविद्यापारग होता है; यदि **षष्ठभाव**गत हो तो जातक क्रोधी, विवादी, शत्रुञ्जयी, आलसी और कटुभाषी होता है; यदि **सप्तम भाव** में हो तो जातक विद्वान्, सुन्दर वस्त्र धारण करने वाला, महिमामण्डित एवं धनवान् स्त्री का पति होता है; यदि **अष्टम भाव** में बुध स्थित हो तो जातक विख्यात, चिरायु, स्वकुल का पालनकर्त्ता और दण्डनेता होता है ॥१२॥

'मन्त्राभिचारकुशलो बहुतनयः पञ्चमे सौम्ये ।
विद्यासुखप्रभावैः समन्वितो हर्षसंयुक्तः ॥
वादविवादे कलहे नित्यजितो व्याधितो बुधे षष्ठे ।
अलसो विनष्टकोपो निष्ठुरवाक्योऽतिपरिभूतः ॥
प्रज्ञां सुचारुवेषां नातिकुलीनां च कलहशीलां च ।
भार्यामनेकवित्तां द्यूने लभते महत्त्वं च ॥
विख्यातनामसारश्चिरजीवी कुलधरो निर्धनसंस्थे ।
शशितनये भवति नरो नृपतिसमो दण्डनायको वाऽपि' ॥ (सारावली)

नवम-दशमैकादश-द्वादशभावस्थ बुधफल

विद्यार्थाचारधर्मैः सह तपसि बुधे स्यात्प्रवीणोऽतिवाग्मी
सिद्धारम्भः सुविद्याबलमतिसुखसत्कर्मसत्यान्वितः खे ।
बह्वायुः सत्यसन्धो विपुलधनसुखी लाभगे भृत्ययुक्तो
दीनो विद्याविहीनः परिभवसहितोऽन्त्ये नृशंसोऽलसश्च ॥१३॥

यदि बुध **नवम भाव** में स्थित हो तो जातक धन एवं विद्या से पूर्ण, आचारवान् और धार्मिक वृत्ति का, पटु और वाचाल (अधिक बोलने वाला) होता है; **दशम भाव** में बुध हो तो कार्यसाधक, विद्या-बल-बुद्धि-सुख से सम्पन्न, सत्कर्मकर्त्ता और सत्यवादी होता है; यदि **एकादश भाव** में स्थित हो तो जातक दीर्घायु, सत्यवादी, विपुल धन-वैभवादि और नौकर-चाकरों से सुखी होता है; यदि बुध **द्वादश भाव** में स्थित हो तो जातक दुःखी, विद्या से हीन, क्रूर, तिरस्कृत और आलसी होता है ॥१३॥

'नवमगते भवति पुमानतिधनविद्यायुतः शुभाचारः ।
वागीश्वरोऽतिनिपुणो धर्मिष्ठः सोमपुत्रे हि ॥
प्रवरमतिकर्मचेष्टः सफलारम्भो विशारदो दशमे ।
धीरः सत्त्वसमेतो विविधालङ्कारसंयुतः सौम्ये ॥
धनवान् विधेयभृत्यः प्राज्ञः सौख्यान्वितो विपुलभोगी ।
एकादशे बुधे स्याद्दीर्घायुः ख्यातिमान् पुरुषः ॥
सुगृहीतवाक्यमलसं परिभूतं वाग्मिनं तथा प्राज्ञम् ।
व्ययगः करोति सौम्यः पुरुषं दीनं नृशंसं च' ॥ (सारावली)

• बृहस्पतिभाव फल •

लग्न-द्वितीय-तृतीय-चतुर्थभावस्थ बृहस्पतिफल

शोभावान् सुकृती चिरायुरभयो लग्ने गुरौ सात्मजो
वाग्मी भोजनसारवांश्च सुमुखो वित्ते धनी कोविदः ।
सावज्ञः कृपणः प्रतीतसहजः शौर्येऽघकृद्दुष्टधी-
र्बन्धौ मातृसुहृत्परिच्छदसुतस्त्रीसौख्यधान्यान्वितः ॥१४॥

जिसके जन्माङ्ग में बृहस्पति **लग्न** में स्थित हो तो वह व्यक्ति सुन्दर, भाग्यशाली, निर्भय और सन्तति-सुख से सुखी होता है; **द्वितीय भाव** में हो तो जातक वाचाल, सुन्दर भोजन का प्रेमी, सुदर्शन, धन-सम्पदादि से सम्पन्न और विद्वान् होता है; यदि **तृतीय भाव** में बृहस्पति स्थित हो तो जातक तिरस्कृत, कृपण, लब्धख्याति भाइयों से युक्त, शूरवीर, पापकर्मा और दुष्टबुद्धि का व्यक्ति होता है; यदि **चतुर्थ भाव** में बृहस्पति हो तो जातक माता के साथ रहने वाला, स्त्री-पुत्र से सुखी तथा धन-धान्य से सम्पन्न होता है ॥१४॥

'होरासंस्थे जीवे सुशरीरः प्राणवान् सुदीर्घायुः ।
सुसमीक्षितकार्यकरः प्राज्ञो धीरस्तथार्यश्च ॥
धनवान् भोजनसारो वाग्मी सुभगः सुवाक् सुवक्त्रश्च ।
कल्याणवपुस्त्यागी सुमुखो जीवे भवेद्धनगे ॥
अतिपरिभूतः कृपणः सहजजितो मानवो भवति जीवे ।
मन्दाग्निः स्त्रीविजितो दुश्चिक्ये पापकर्मा च ॥
स्वजनपरिच्छदवाहनसुखमतिभोगार्थसंयुतो भवति ।
श्रेष्ठः शत्रुविषादी चतुर्थसंस्थे सदा जीवे' ॥ (सारावली)

पञ्चम-षष्ठ-सप्तम-अष्टमभावस्थ बृहस्पतिफल

पुत्रैः क्लेशयुतो महीशसचिवो धीमान् सुतस्थे गुरौ
षष्ठे स्यादलसोऽरिहा परिभवी मन्त्राभिचारे पटुः ।
सत्पत्नीसुतवान्मदेऽतिसुभगस्तातादुदारोऽधिको
दीनो जीवति सेवया कलुषभाग्दीर्घायुरिज्येऽष्टमे ॥१५॥

पंचम भाव में यदि बृहस्पति स्थित हो तो जातक पुत्रों के द्वारा दुःख प्राप्त करता है, वह बुद्धिमान् और राजा का मन्त्री होता है; यदि **षष्ठ भाव** में बृहस्पति स्थित हो तो जातक आलसी, शत्रुहन्ता, तिरस्कृत और मन्त्राभिचार में पारङ्गत होता है; यदि **सप्तम भाव** में स्थित हो तो जातक सुन्दर पत्नी और पुत्रों से युक्त, सुदर्शन और पिता की अपेक्षा अधिक उदारमना होता है; यदि **अष्टम भाव** में बृहस्पति स्थित हो तो जातक दीन, सेवावृत्ति से जीवन यापन करने वाला, पापात्मा और दीर्घायु होता है ॥१५॥

'सुखसुतमित्रसमृद्धः प्राज्ञो धृतिमांस्तथा विभवसारः ।
पञ्चमभवने जीवे सर्वत्र सुखी भवति जातः ॥
सन्नोदराग्निपुंस्त्वः परिभूतो दुर्बलोऽलसः षष्ठे ।
स्त्रीविदितो रिपुहन्ता जीवे पुरुषोऽतिविख्यातः ॥
सुभगः सुरुचिरदारः पितुरधिकः सप्तमे भवति जातः ।
वक्ता कविः प्रधानः प्राज्ञो जीवे सुविख्यातः ॥
परिभूतो दीर्घायुर्भृतको दासोऽथवा निधनसंस्थे ।
स्वजनप्रेष्यो दीनो मलिनस्त्रीभोगवान् जीवे' ॥ (सारावली)

नवम-दशम-एकादश-द्वादशभावस्थ बृहस्पतिफल

ख्यातः सन् सचिवः शुभेऽर्थसुतवान् स्याद्धर्मकार्योत्सुकः
स्वाचारः सुयशा नभस्यतिधनी जीवे महीशप्रियः ।
आयस्थे धनिकोऽभयोऽल्पतनयो जैवातृको यानगो
द्वेष्यो धिक्कृतवाग्व्यये वितनयः साघोऽलसः सेवकः ॥१६॥

यदि बृहस्पति **नवम भाव** में स्थित हो तो जातक विख्यात, मन्त्री, सन्मार्ग से अर्जित धन और सुन्दर पुत्रों से युक्त एवं धर्माचारी होता है; यदि **दशम भाव**गत हो तो जातक सन्मार्ग का अनुगमन करने वाला, अत्यन्त धनी और राजा का प्रियभाजन होता है; यदि **एकादश भाव** में स्थित हो तो व्यक्ति धनसम्पन्न, निर्भय, अल्प सन्तति से युक्त, दीर्घायु और वाहन सुख से सम्पन्न होता है; यदि **द्वादश भाव** में स्थित हो तो जातक दूसरों की घृणा का पात्र, अपशब्दों का उच्चारण करने वाला, सन्तानहीन, पापकर्मा, आलसी और सेवावृत्ति से जीवन यापन करता है ॥१६॥

'दैवतपितृकार्यरतो विद्वान् सुभगो भवेत्तथा नवमे ।
नृपमन्त्री नेता वा जीवे जातः प्रधानश्च ॥
सिद्धारम्भो मान्यः सर्वोपायः कुशलसमृद्धश्च ।
दशमस्थे त्रिदशगुरौ सुखधनजनवाहनयशोभाक् ॥
अपरिमितायद्वारो बहुवाहनभृत्यसंयुतः साधुः ।
एकादशमे जीवे न चातिविद्यो न चातिसुतः ॥
अलसो लोकद्वेष्यो ह्यपगतवाग्दैवपक्षभग्नो वा ।
परितः सेवानिरतो द्वादशसंस्थे गुरौ भवति' ॥

• शुक्रभावफल •

लग्न-द्वितीय-तृतीय-चतुर्थभावस्थ शुक्रफल

तनौ सुतनुदृक्प्रियं सुखिनमेव दीर्घायुषं
करोति कविरर्थगः कविमनेकवित्तान्वितम्।
विदारसुखसम्पदं कृपणमप्रियं विक्रमे
सुवाहनसुमन्दिराभरणवस्त्रगन्धं सुखे ॥१७॥

जिसके जन्माङ्ग में शुक्र **लग्नस्थ** हो उसका शरीर सुन्दर एवं स्वस्थ होता है तथा जातक दीर्घायु होता है; यदि शुक्र **द्वितीय भाव** में स्थित हो तो जातक कवि और धन-वैभवादि से सम्पन्न होता है; **विक्रम स्थान** (तृतीय भाव) में शुक्र स्थित हो तो जातक स्त्री, सुख और सम्पदादि से हीन, कृपण और लोगों के लिए अप्रियकर होता है; शुक्र यदि **चतुर्थ भाव** में स्थित हो तो जातक सुन्दर वाहन, सुन्दर भवन, सुन्दर आभूषणादि और सुगन्धि से सुखी होता है ॥१७॥

'सुनयनवदनशरीरं सुखितं दीर्घायुषं तथा भीरुम्।
युवतिजननयनकान्तं जनयति होरागतः शुक्रः ॥
प्रचुरान्नपानविभवं श्रेष्ठविलासं तथा सुवाक्यं च।
कुरुते द्वितीयराशौ बहुधनसहितं सितः पुरुषम् ॥
सुखधनसहितं शुक्रो दुश्चिक्ये स्त्रीजितं तथा कृपणम्।
जनयति मन्दोत्साहं सौभाग्यपरिच्छदातीतम् ॥
बन्धुसुहृत्सुखसहितं कान्तं वाहनपरिच्छदसमृद्धम्।
ललितमदीनं सुभगं जनयति हिबुके नरं शुक्रः' ॥ (सारावली)

पञ्चम-षष्ठ-सप्तम-अष्टमभावस्थ शुक्रफल

अखण्डितधनं नृपं सुमतिमात्मजे सात्मजं
विशत्रुमधनं क्षते युवतिदूषितं विक्लवम्।
सुभार्यमसतीरतं मृतकलत्रमाढ्यं मदे
चिरायुषमिलाधिपं धनिनमष्टमे संस्थितः ॥१८॥

यदि शुक्र **पञ्चम भाव** में स्थित हो तो जातक असीमित धन का स्वामी, राजा के समान वैभवशाली, बुद्धिमान् और सत्पुत्रों से सुखी होता है; यदि शुक्र **षष्ठ भाव** में स्थित हो तो जातक शत्रु और धन से हीन होता है, स्त्रियों के द्वारा उसका चारित्रिक पतन होता है तथा विक्षत शरीर क्लेशित रहता है; यदि शुक्र **सप्तम भाव** में स्थित हो तो जातक सुन्दर स्त्री का पति होकर भी अन्य पतिता स्त्रियों से भोगलिप्त रहता है तथा अपनी पत्नी से वियुक्त अतिधनी होता है; यदि शुक्र **अष्टम भाव** में स्थित हो तो जातक दीर्घायु, पृथ्वीपति और धनसम्पन्न होता है ॥१८॥

'सुखसुतमित्रोपचितं रतिपरमतिधनमखण्डितं शुक्रः।
कुरुते पञ्चमराशौ मन्त्रिणमथ दण्डनेतारम् ॥

अधिकमनिष्टं स्त्रीणां प्रचुरामित्रं निराकृतं विभवैः ।
विक्लवमतीव नीचं कुरुते षष्ठे भृगोस्तनयः ॥
अतिरूपदारसौख्यं बहुविभवं कलहवर्जितं पुरुषम् ।
जनयति सप्तमधामनि सौभाग्यसमन्वितं शुक्रः ॥
दीर्घायुरनुपमसुखः शुक्रे निधनाश्रिते धनसमृद्धः ।
भवति पुमान् नृपतिसमः क्षणे क्षणे लब्धपरितोषः' ॥ (सारावली)

नवम-दशम-एकादश-द्वादशभावस्थ शुक्रफल

सदारसुहृदात्मजं क्षितिपलब्धभाग्यं शुभे
नभस्यतियशःसुहृत्सुखितवृत्तियुक्तं प्रभुम् ।
धनाढ्यमितराङ्गनारतमनेकसौख्यं भवे
भृगुर्जनयति व्यये सरतिसौख्यवित्तद्युतिम् ॥१९॥

जिसके जन्माङ्ग के **नवम भाव** में शुक्र स्थित हो तो वह व्यक्ति स्त्री-पुत्रादि सुहृद्जनों से सुखी, राजकृपा से धन-धान्य से सम्पन्न एवं सौभाग्यशाली होता है; यदि शुक्र **दशम भाव** में स्थित हो तो जातक स्वजनों एवं परिजनों से सुखी, अच्छे व्यवसाय से युक्त, अनेक आश्रितों का पालक तथा अत्यन्त यशस्वी होता है; शुक्र यदि **एकादश भाव** में स्थित हो तो जातक धनवान्, परस्त्री में अनुरक्त, अनेकशः, सुखी होता है; **द्वादशभावस्थ** शुक्र जातक को रतिसुख और धन की द्युति से शोभित करता है ॥१९॥

'विमलायततनुवित्तोदारयुवतिसुखसुहृज्जनोपेतः ।
भृगुतनये नवमस्थे सुरातिथिगुरुप्रसक्तः स्यात् ॥
उत्थानविवादार्जितसुखरतिमानार्थकीर्तयो यस्य ।
दशमस्थे भृगुतनये भवति पुमान् बहुमतिख्यातः ॥
प्रतिरूपदासभृत्यं बह्वायं सर्वशोकसन्त्यक्तम् ।
जनयति भवभवनगतो भृगुतनयः सर्वदा पुरुषम् ॥
अलसं सुखिनं स्थूलं पतितं मृष्टाशिनं भृगोस्तनयः ।
शयनोपचारकुशलं द्वादशगः स्त्रीजितं जनयेत्' ॥ (सारावली)

• शनिभावफल •

लग्नस्थ शनिफल

स्वोच्चे स्वकीयभवने क्षितिपालतुल्यो
लग्नेऽर्कजे भवति देशपुराधिनाथः ।
शेषेषु दुःखपरिपीडित एव बाल्ये
दारिद्र्यदुःखवशगो मलिनोऽलसश्च ॥२०॥

स्वराशि अथवा अपनी उच्चराशि का शनि यदि **लग्न** में स्थित हो तो जातक राजा के समान ऐश्वर्यशाली, देश या ग्राम का अधिपति होता है। अन्य भावों में स्थित शनि जातक

को प्रायः दुःखी, पीड़ित तथा बाल्यकाल से ही दारिद्र्य दुःख से सन्तप्त, मलिन और आलसी बनाता है ॥२०॥

यह श्लोक सारावली में भी उल्लिखित है। वैद्यनाथ के अनुसार लग्नस्थ शनि बहुत प्रशस्त नहीं होता है—

'दुर्नासिको वृद्धकलत्ररोगी मन्दे विलग्नोपगतेऽङ्गहीनः।
महीपतुल्यः सुगुणाभिरामो जातः स्वतुङ्गोपगते चिरायुः' ॥ (जातकपारिजात)

द्वितीय-तृतीयभावस्थ शनिफल

विमुखमधनमर्थेऽन्यायवन्तं च पश्चा-
दितरजनपदस्थं यानभोगार्थयुक्तम्।
विपुलमतिमुदारं दारसौख्यं च शौर्ये
जनयति रविपुत्रश्चालसं विक्लवं च ॥२१॥

यदि शनि **धन (द्वितीय) भाव** में स्थित हो तो जातक कुरूप, निर्धन, अन्याय मार्ग का अनुसरण करने वाला होता है। किन्तु आगे वय प्राप्त करने पर प्रवासी, धन-वाहनादि से सम्पन्न भोगी होता है। यदि **तृतीय भाव** में शनि स्थित हो तो जातक अत्यन्त मेधावी, उदारमना, आलसी और विकल होता है ॥२१॥

सारावलीकार का मत इससे भिन्न है। उनके अनुसार जातक कुरूप, धनवान्, भोगी और न्यायप्रिय होता है।

'विकृतवदनोऽर्थभोक्ता जनरहितो न्यायकृत्कुटुम्बगते।
पश्चात् परदेशगतो धनवाहनभोगवान् सौरे' ॥ (सारावली)
'अल्पाशी धनशीलवंशगुणवान् भ्रातृस्थाने भानुजे'। (जातकपारिजात)
'श्यामः संस्कृतदेहो नीचोऽलसपरिजनो भवति सौरे।
शूरो दानानुरतो दुश्चिक्यगते विपुलबुद्धिः' ॥ (सारावली)

चतुर्थ-पञ्चम-षष्ठ-सप्तमभावस्थ शनिफल

दुःखी स्याद्गृहयानमातृवियुतो बाल्ये सरुग्बन्धुभे
भ्रान्तो ज्ञानसुतार्थहर्षरहितो धीस्थे शठो दुर्मतिः।
बह्वाशी द्रविणान्वितो रिपुहतो धृष्टश्च मानी रिपौ
कामस्थे रविजे कुदारनिरतो निःस्वोऽध्वगो विह्वलः ॥२२॥

यदि जन्माङ्ग में शनि **चतुर्थभाव**गत हो तो जातक दुःखी, गृह-वाहनादि से हीन और बाल्यावस्था में रोगार्त होता है। यदि शनि **पञ्चम भाव** में स्थित हो तो जातक भ्रमित बुद्धि, पुत्र, धन और हर्ष से हीन, दुष्ट और दुर्बुद्धि होता है। यदि शनि **षष्ठ भाव** में स्थित हो तो जातक अतिभोजी, धनवान्, शत्रुओं का विनाश करने वाला, धृष्ट और अभिमानी होता है। यदि **सप्तम भाव** में शनि स्थित हो तो जातक दुष्टा स्त्री में रत, निर्धन, विकल और यायावरी जीवन व्यतीत करता है ॥२२॥

'पीडितहृदयो हिबुके निर्बान्धववाहनार्थमतिसौख्यः ।
बाल्ये व्याधितदेहो नखरोमधरो भवेत् सौरे ॥
सुखसुतमित्रविहीनं मतिरहितमचेतसं त्रिकोणस्थः ।
सोन्मादं रवितनयः करोति पुरुषं सदा दीनम् ॥
प्रबलमदनं सुदेहं शूरं बह्वाशिनं विषमशीलम् ।
बहुरिपुपक्षक्षपितं रिपुभवनगतोऽर्कजः कुरुते ॥
सततमनारोग्यतनुं मृतदारं धनविवर्जितं जनयेत् ।
द्यूनेऽर्कजः कुवेषं पापं बहुनीचकर्माणम्' ॥ (सारावली)

अष्टमभावस्थ शनिफल

शनैश्चरे मृतिस्थिते मलीमसोऽर्शसोऽवसुः ।
करालधीर्बुभुक्षितः सुहृज्जनावमानितः ॥२३॥

जन्माङ्ग के **अष्टम भाव** में यदि शनि स्थित हो तो जातक मलिन (आभ्यन्तर और बाह्य रूप से), अर्श (बवासीर) से पीड़ित, क्रूरबुद्धि, क्षुधार्त और स्वजनों द्वारा अपमानित होता है ॥२३॥

'कुष्ठभगन्दररोगैरभितप्तं ह्रस्वजीवितं निधने ।
सर्वारम्भविहीनं जनयति रविजः सदा पुरुषम्' ॥ (सारावली)

नवम-दशम-एकादश-द्वादशभावस्थ शनिफल

भाग्यार्थात्मजताधर्मरहितो मन्दे शुभे दुर्जनो
मन्त्री वा नृपतिर्धनी कृषिपरः शूरः प्रसिद्धोऽम्बरे ।
बह्वायुः स्थिरसम्पदायसहितः शूरो विरोगो धनी
निर्लज्जार्थसुतो व्ययेऽङ्गविकलो मूर्खो रिपूत्सारितः ॥२४॥

यदि शनि **नवम भाव** में स्थित हो तो जातक सौभाग्य-धन-सन्तानादि से हीन, धर्म-विरुद्ध आचरण करने वाला दुर्जन व्यक्ति होता है। यदि शनि **दशम भाव** में स्थित हो तो जातक राजा या राजमन्त्री, धनसम्पन्न, कृषिकार्यरत, शूरवीर और विख्यात होता है। यदि शनि **एकादश भाव** में स्थित हो तो जातक दीर्घायु, स्थिर सम्पदादि और आय से युक्त, शूर- वीर, निरोगी और धनिक होता है। यदि शनि **द्वादश भाव** में स्थित हो तो जातक निर्लज्ज, धन-सन्तानादि से हीन, विकलाङ्ग, मूर्ख और शत्रुपीड़ित होता है ॥२४॥

'धर्मरहितोऽल्पधनिकः सहजसुतविवर्जितो नवमसंस्थे ।
रविजे सौख्यविहीनः परोपतापौ च जायते मनुजः ॥
धनवान् प्राज्ञः शूरो मन्त्री वा दण्डनायको वाऽपि ।
दशमस्थे रवितनये वृन्दपुरग्रामनेता च ॥
बह्वायुः स्थिरविभवः शूरः शिल्पाश्रयो विगतरोगः ।
आयस्थे भानुसुते धनजनसम्पद्युतो भवति ॥

• केतुभावफल •

लग्न-द्वितीयभावस्थ केतुफल

लग्ने कृतघ्नमसुखं पिशुनं विवर्णं
स्थानच्युतं विकलदेहमसत्समाजम् ।
विद्यार्थहीनमधमोक्तियुतं कुदृष्टिं
पातः परान्ननिरतं कुरुते धनस्थः ॥२८॥

जन्माङ्ग में यदि केतु **लग्नगत** हो तो जातक कृतघ्न, निर्धन, चुगलखोर, जाति-बहिष्कृत, स्थानभ्रष्ट, विकलाङ्ग और निकृष्ट समाज में अनुरक्त होता है । यदि केतु **द्वितीय भाव** में स्थित हो तो जातक धन और विद्या से हीन, निकृष्टवाक्, अशुभ दृष्टि से युक्त एवं परान्नभोजी होता है ॥२८॥

'यदा लग्नगश्चेच्छिखी सूत्रकर्त्ता सरोगादिभोगो भयव्यग्रता च ।
कलत्रादिचिन्ता महोद्वेगता च शरीरे प्रबाधा व्यथा मारुतस्य ॥
धने चेच्छिखी धान्यनाशो जनानां कुटुम्बाद्विरोधो नृपादद्रव्यचिन्ता ।
मुखे रोगता सन्ततं स्यात्तथासौ यदा स्वे गृहे सौम्यगे हेतिसौख्यम्' ॥(जातकाभरण)

तृतीय-चतुर्थभावस्थ केतुफल

आयुर्बलं धनयशःप्रमदान्नसौख्यं
केतौ तृतीयभवने सहजप्रणाशम् ।
भूक्षेत्रयानजननीसुखजन्मभूमि-
नाशं सुखे परगृहस्थितिमेव दत्ते ॥२९॥

यदि केतु **तृतीय भाव** में स्थित हो तो जातक दीर्घायु, यशस्वी, स्त्री और अन्न से सुखी होता है किन्तु उसके बन्धु-बान्धवों का विनाश होता है । यदि केतु **चतुर्थ भाव** में स्थित हो तो जातक की भूसम्पत्ति, कृषिगत भूमि (खेत), वाहनसुख, मातृसुख आदि का विनाश होता है तथा स्वस्थान का त्याग कर जातक पराये घर में निवास के लिए बाध्य होता है ॥२९॥

'शिखी विक्रमे शत्रुनाशश्च वादो धनं भोगमैश्वर्यतेजोऽधिकं च ।
भवेद्बन्धुनाशः सदा बाहुपीडा सुखं स्वोच्चगेहे भयोद्वेगता च ॥
चतुर्थे च मातुः सुखं नो कदाचित्सुहृद्वर्गतः पितृतो नाशमेति ।
शिखी बन्धुहीनः सुखं स्वोच्चगेहे चिरं नैति सर्वैः सदा व्यग्रता च' ॥(जातकाभरण)

पञ्चम-षष्ठभावस्थ केतुफल

पुत्रक्षयं जठररोगपिशाचपीडां
दुर्बुद्धिमात्मनि खलप्रकृतिं च पातः ।
औदार्यमुत्तमगुणं दृढतां प्रसिद्धिं
षष्ठे प्रभुत्वमरिमर्दनमिष्टसिद्धिम् ॥३०॥

यदि जन्माङ्ग के **पंचम भाव** में केतु स्थित हो तो जातक की सन्तान का नाश होता है तथा जातक स्वयं उदरविकार और पिशाचपीड़ा से त्रस्त रहता है तथा वह दुर्बुद्धि और पापात्मा होता है। जिसके जन्माङ्ग में केतु यदि **षष्ठ भाव** में स्थित हो तो वह व्यक्ति उदारमना, उत्तम (श्रेष्ठ) गुणों से युक्त, अत्यन्त दृढ़ स्वभाव का, विख्यात, प्रभुतासम्पन्न, शत्रुओं का विनाशक और अपने अभीष्ट को प्राप्त करने वाला होता है ॥३०॥

'यदा पञ्चमे यस्य केतुश्च जात: स्वयं स्वोदरे घातपातादिकष्टम्।
स बन्धुप्रिय: सन्मति: स्वल्पपुत्र: सदा स्वं भवेद्वीर्ययुक्तो नरश्च ॥
शिखी यस्य षष्ठे स्थितो वैरिनाशो भवेन्मातृपक्षाच्च तन्मानभङ्ग:।
चतुष्पात्सुखं द्रव्यलाभो नितान्तं न रोगोऽस्य देहे सदा व्याधिनाश:' ॥ (जातकाभरण)

सप्तम-अष्टमभावस्थ केतुफल

द्यूनेऽवमानमसतीरतिमान्त्ररोगं
पात: स्वदारवियुतिं मदधातुहानिम्।
स्वल्पायुरिष्टविरहं कलहं च रन्ध्रे
शस्त्रक्षतं सकलकार्यविरोधमेव ॥३१॥

जन्माङ्ग के **सप्तम भाव** में अवस्थित केतु जातक के लिए अपमानकारक और आँत सम्बन्धी विकार का जनक होता है। जातक दुश्चरित्रा स्त्रीरत, पापात्मा, स्वस्त्रीविहीन और पुरुषार्थविहीन होता है। यदि **अष्टम भाव** में केतु स्थित हो तो जातक अल्पायु होता है तथा प्रियजन के वियोग से सन्तप्त, विवादी, शस्त्राघात के अनेक चिह्नों से युक्त और सभी कार्यों में विफल होता है ॥३१॥

'शिखी सप्तमे मार्गतश्चित्तवृत्तिं सदा वित्तनाशोऽथवारातिभूत:।
भवेत्कीटगे सर्वदा लाभकारी कलत्रादिपीडा व्ययो व्यग्रता च ॥
गुदे पीडनं वाहनैर्द्रव्यलाभो यदा कीटगे कन्यकायुग्मगे वा।
भवेच्छिद्रग: केतुखेटो यदा स्यादजे गोऽलिगे जायते चाऽतिलाभ:' ॥ (जातकाभरण)

नवम-दशमभावस्थ केतुफल

पापप्रवृत्तिमशुभं पितृभाग्यहीनं
दारिद्र्यमार्यजनदूषणमाह धर्मे।
सत्कर्मविघ्नमशुचित्वमवद्यकृत्यं
तेजस्विनं नभसि शौर्यमतिप्रसिद्धम् ॥३२॥

यदि केतु **नवम भाव** में स्थित हो तो जातक पापवृत्ति का सदैव असत्कर्म में निरत, पितृसुख और सौभाग्य से हीन, दरिद्र और श्रेष्ठ व्यक्तियों का निन्दक होता है। यदि केतु की स्थिति **दशम भाव** में हो तो जातक सत्कर्म में विघ्न उपस्थित करने वाला (अथवा स्वयं उसके सत्कर्म में विघ्न उपस्थित हो), मलिन, अकरणीय कर्म करने वाला, अत्यन्त तेजस्वी और अपने शौर्य के लिए विख्यात होता है ॥३२॥

'यदा धर्मगः केतुकः क्लेशनाशः सुतार्थी भवेन्म्लेच्छतो भाग्यवृद्धिः ।
सहेतु व्यथां बाहुरोगं विधत्ते तपोदानतो हर्षवृद्धिं करोति ।।
पितुर्नो सुखं कर्मगो यस्य केतुः स्वयं दुर्भगः शत्रुनाशं करोति ।
रुजो वाहने वातपीडां च जन्तोर्यदा कन्यकास्थः सुखी द्रव्यभाक् च' ।। (जातकाभरण)

एकादश-द्वादशभावस्थ केतुफल

लाभेऽर्थसञ्चयमनेकगुणं सुभोगं
सद्द्रव्यसोपकरणं सकलार्थसिद्धिम् ।
प्रच्छन्नपापमधमव्ययमर्थनाशं
रिःफे विरुद्धगतिमक्षिरुजं च पातः ।।३३।।

यदि केतु **एकादश भाव** में स्थित हो तो जातक अनेकशः अर्थ (धन) का संचय करता है । वह अनेक सद्गुणों से शोभित, सुन्दर भोगों का भोग करने वाला, सुन्दर वस्तुओं का संग्रह करने में समर्थ होता है तथा विपुल धन प्राप्त करने में सफल होता है । यदि **द्वादश भाव** में केतु स्थित हो तो जातक गोपनीय ढंग से पापकर्म-निरत होता है तथा असत्कार्यों में धन के अपव्यय से उसका धन विनष्ट होता है । वह सदैव सन्मार्ग-विरुद्ध आचरण करता है और नेत्रविकार से पीड़ित होता है ।।३३।।

'सुभाषी सुविद्याधिको दर्शनीयः सुभोगः सुतेजाः सुवस्त्रोऽपि यस्य ।
गुदे पीड्यते सन्ततेर्दुर्भगत्वं शिखी लाभगः सर्वकाले करोति ।।
शिखी रिःफगः पादनेत्रेषु पीडा स्वयं राजतुल्यो व्ययं वै करोति ।
रिपोर्नाशनं मानसे नैव शर्म रुजा पीड्यते बस्तिगुह्यं सरोगम्' ।। (जातकाभरण)

ग्रहफल-प्रमाण

उदयर्क्षांशस्फुटतुल्यांशे निवसन् पूर्णं फलमाधत्ते ।
शनिवद्राहुः कुजवत्केतुः फलदाता स्यादिह सम्प्रोक्तः ।।३४।।

किसी भाव में स्थित ग्रह यदि लग्नस्पष्ट के अंशों के समान अंशों में स्थित हो तो वह उस भाव का पूर्ण फल जातक को प्रदान करता है । राहु शनि के समान और केतु मंगल के समान जातक को फल प्रदान करते हैं—ऐसा पूर्वाचार्यों का कथन है ।।३४।।

लग्न का उदितांश तनुभाव का मध्य माना गया है । द्वितीयभावस्थ राशि के उतने ही (लग्नोदितांश तुल्य) अंश द्वितीय भाव का मध्य, तृतीय भाव में स्थित राशि के उतने ही अंश पर तृतीय भाव का मध्य आदि होता है । भावस्पष्ट की यह प्राचीन पद्धति है । दशम भाव और लग्न से भाव स्पष्ट करने की प्रचलित पद्धति यवनों से ली गई है ।

उदाहरण के लिए संलग्न जन्माङ्ग देखें । लग्न का २४° उदित हो चुका है । इसलिए १रा।२४° द्वितीय भाव का, २रा।२४° तृतीय भाव का, ३रा।२४° चतुर्थ भाव का मध्य होगा आदि । अब यदि मंगल ९रा।२४° पर स्थित हो तो वह दशम भाव का पूर्ण फल देगा । इससे कम या अधिक अंशों में स्थित होने से अनुपात से फल में न्यूनता होगी । यही बात आगे के श्लोक में कही गई है ।

लग्नस्पष्ट ०।२४।४।३६

भावसमांशकसंस्था भावफलं पूर्णमेव कलयन्ति।
न्यूनाधिकांशवशतः फलवृद्धिर्ह्रासिता वाच्या ॥३५॥

इति मन्त्रेश्वरविरचितायां फलदीपिकायां ग्रहभावफलभेदो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

भाव के तुल्य अंशों में स्थित ग्रह भाव का पूर्ण फल जातक को प्रदान करते हैं। उससे अल्प अथवा अधिक अंशों में स्थित ग्रह न्यूनाधिक फल देते हैं ॥३५॥

यहाँ आचार्य ने न्यूनाधिक अंशों में स्थित ग्रहफल में ह्रास और वृद्धि कहा है। भावसमांशक संस्था = भावमध्य अंशों में स्थित ग्रह पूर्ण फल देता है। उससे कम या अधिक अंशों में स्थित ग्रह न्यूनाधिक फल देते हैं। इसका अर्थ केवल यही है कि भावमध्य से अल्प और अधिक सन्निकटता होने से भावफल में ह्रास और वृद्धि होगी न कि भावमध्य से अल्प और अधिक होने से। उदाहरण (पृ. ११५) में मंगल मकर के २४° पर स्थित होकर दशम भाव का पूर्ण फल देगा। शुक्र मकर के ८° पर और शनि मकर के २०° पर स्थित है। दशम भाव का भावमध्य ९।२४° है। अतः शुक्र भावमध्य से २४°-८° = १६° तथा शनि २४°-२०° = ४° के अन्तर पर स्थित है। शुक्र स्पष्टतः शनि की अपेक्षा भावमध्य से अधिक अन्तर पर स्थित है। फलतः शुक्र की अपेक्षा शनि का भावफल अधिक होगा किन्तु मंगल की अपेक्षा अल्प होगा।

२
१२
३
१
११
२४ ८
मं.१०शु.
२०
श.
४
५
७
९
६
५

लग्नस्पष्ट ०।२४।४।३६

इस प्रकार मन्त्रेश्वर कृत फलदीपिका में ग्रहभावफलभेद
नामक आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥८॥

नवमोऽध्यायः

लग्नफलभेदः

मेषलग्नफल

वृत्तेक्षणो दुर्बलजानुरुग्रो भीरुर्जले स्याल्लघुभुक् सुकामी।
सञ्चारशीलश्चपलोऽनृतोक्तिर्व्रणाङ्कितांङ्गः क्रियभे प्रजातः ॥१॥

जिसके जन्म के समय मेष राशि का लग्न हो उसके नेत्र गोल होते हैं तथा जातक दुर्बल जानु, रोगी, जल से भय खाने वाला, अल्पभोजी, अत्यन्त कामुक, यायावर, चपल, असत्यभाषी, व्रण (फोड़ा-फुंसी आदि) के चिह्नों से युक्त शरीर होता है ॥१॥

जातकाभरण में लग्न फल विशद और विशेष रूप में दिये हैं—

'चण्डाभिमानी गुणवान् सकोपः सुहृद्विरोधी च सखा परेषाम्।
पराक्रमप्राप्तयशोविशेषो मेषोदये यः पुरुषोऽतिरोषः' ॥ (जातकाभरण)

वृषलग्नफल

पृथूरुवक्त्रः कृषिकर्मकृत्स्यान्मध्यान्तसौख्यः प्रमदाप्रियश्च।
त्यागी क्षमी क्लेशसहश्च गोमान् पृष्ठास्यपार्श्वेऽङ्कयुतो वृषोत्थः ॥२॥

वृषलग्न में उत्पन्न व्यक्ति का मुख चौड़ा और जाँघें बड़ी होती हैं। जातक कृषिकर्म द्वारा आजीविका प्राप्त करने वाला, जीवन के मध्य और अन्तिम भाग में सुखी, स्त्रियों का प्रिय होता है। वह त्यागी, क्षमावान्, कष्ट सहन करने वाला, गोधन-सम्पन्न व्यक्ति होता है। उसके शरीर के पार्श्व भाग में जन्मजात चिह्न होते हैं ॥२॥

'गुणाग्रणी स्याद्द्रविणेन पूर्णो भक्तो गुरूणां हि रणप्रियश्च।
धीरश्च शूरः प्रियवाक् प्रशान्तः स्यात्पूरुषो यस्य वृषे विलग्ने' ॥ (जातकाभरण)

मिथुनलग्नफल

श्यामेक्षणः कुञ्चितमूर्द्धजः स्त्रीक्रीडानुरक्तश्च परेङ्गितज्ञः।
उत्तुङ्गनासः प्रियगीतनृत्तो वसन् सदान्तः सदने च युग्मे ॥३॥

यदि मिथुनराशि का लग्न हो तो जातक के नेत्र श्यामल और कुञ्चित केश (घुँघराले केश) होते हैं। युवतियों के साथ क्रीड़ा में इनकी अनुरक्ति होती है तथा वे दूसरों के मन की बात को समझ लेने में पटु होते हैं। उनकी नासिका उठी हुई होती है। संगीत-नृत्यादि में इनकी अच्छी अभिरुचि होती है। ये स्वगृह में ही निवास करते हैं ॥३॥

'भोगी वदान्यो बहुपुत्रमित्रः सुगूढमन्त्रः सघनः सुशीलः।
तस्य स्थितिः स्यान्नृपसन्निधाने लग्ने भवेद्वै मिथुनाभिधाने' ॥ (जातकाभरण)

कर्कलग्नफल

स्त्रीनिर्जितः पीनगलः समित्रो बह्वालयस्तुङ्गकटिर्धनाढ्यः ।
ह्रस्वश्च वक्रो द्रुतगः कुलीरे मेधान्वितस्तोयरतोऽल्पपुत्रः ॥४॥

कर्कलग्न में जन्म लेने वाला व्यक्ति स्त्रियों से हारा हुआ तथा मोटे गले का व्यक्ति होता है। उसके अनेक मित्र होते हैं तथा अनेक भवनों का वह स्वामी और धनसम्पन्न होता है। उसकी कमर अतिस्थूल होती है। वह नाटे कद-काठी का, तीव्र गति से चलने वाला, मेधावी होता है तथा जल से उससे विशेष लगाव होता है तथा उसके कम सन्तानें होती हैं ॥४॥

'मिष्टान्नभुक् साधुरतो विनीतो विलोमबुद्धिर्जलकेलिशीलः ।
प्रकृष्टसारोऽतितरामुदारो लग्ने कुलीरे हि नरो भवेद्यः' ॥ (जातकाभरण)

सिंहलग्नफल

पिङ्गेक्षणः स्थूलहनुर्विशालवक्त्रोऽभिमानी सपराक्रमः स्यात् ।
कुप्यत्यकार्ये वनशैलगामी मातुर्विधेयः स्थिरधीर्मृगेन्द्रे ॥५॥

सिंहलग्न में उत्पन्न व्यक्ति के नेत्र पीले और ठोडी स्थूल होती है। उसका विशाल चेहरा होता है तथा वह अत्यन्त अभिमानी और पराक्रमी होता है। निरर्थक कार्यों से वह कुपित होता है। वन-पर्वतीय क्षेत्रों में घूमने की उसकी प्रवृत्ति होती है। वह अपने माता का विशेष कृपापात्र एवं स्थिर बुद्धि का मनुष्य होता है ॥५॥

'कृशोदरश्चारु पराक्रमश्च भोगी भवेदल्पसुतोऽल्पभक्षः ।
सञ्जातबुद्धिर्मनुजोऽभिधाने पञ्चानने सञ्जनने विलग्ने' ॥ (जातकाभरण)

कन्यालग्नफल

स्त्रस्तांसबाहुः परवित्तगेहैः सम्पूज्यते सत्यरतः प्रियोक्तिः ।
व्रीडालसाक्षः सुरतप्रियः स्याच्छास्त्रार्थविच्चाल्पसुतोऽङ्गनायाम् ॥६॥

यदि जन्मलग्न कन्या हो तो जातक के स्कन्ध और भुजाएँ झुके हुए होते हैं। वह सत्यवादी और प्रियवक्ता होता है तथा दूसरों के धन और गृह के अधिग्रहण से आदर प्राप्त करता है। वह लज्जासिक्त नेत्रों से युक्त, अत्यन्त कुशल, शास्त्रों में पारग, अतिकामी और अल्प पुत्रवान् होता है ॥६॥

'कामक्रीड़ासद्गुणज्ञानसत्त्वकौशल्याधैः संयुतः सुप्रसन्नः ।
लग्नं कन्या यस्य जन्यां जघन्यां कन्यां क्षीराब्धेरवाप्नोति नित्यम्' ॥
(जातकाभरण)

तुलालग्नफल

चलत्कृशाङ्गोऽल्पसुतोऽतिभक्तो देवद्विजानामटनो द्विनामा ।
प्रांशुश्च दक्षः क्रयविक्रयेषु धीरोऽदयस्तौलिनि मध्यवादी ॥७॥

जिसका जन्म तुला राशि के लग्न में होता है वह दुर्बल, चपल और लम्बा शरीर,

अल्प सन्तति वाला, देवता और ब्राह्मणों के प्रति आस्थावान्, यायावर और दो नामों से विख्यात होता है। क्रय-विक्रय के व्यवसाय में वह अति कुशल होता है तथा धैर्यवान् और निर्मम प्रकृति का व्यक्ति होता है ॥७॥

'गुणाधिकत्वाद्द्रविणोपलब्धिर्वाणिज्यकर्मण्यतिनैपुणत्वम्।
पद्मालया तन्निलये न लोला लग्नं तुला चेत्स कुलावतंसः' ॥ (जातकाभरण)

वृश्चिकलग्नफल

वृत्तोरुजङ्घः पृथुनेत्रवक्षा रोगी शिशुत्वे गुरुतातहीनः।
क्रूरक्रियो राजकुलाभिमुख्यः कीटेऽब्जरेखाङ्कितपाणिपादः ॥८॥

वृश्चिक लग्न में उत्पन्न व्यक्ति की जंघाएँ और घुटने गोलाई लिये होते हैं। उसके नेत्र और वक्ष विशाल होते हैं। यह रोगी और बाल्यकाल में ही पिता और गुरुजनों से इसका विछोह हो जाता है। यह स्वभाव से क्रूर एवं राजकुल का प्रमुख होता है तथा उसके हाथ और पैरों में कमलरेखाएँ (पद्मरेखा) होती हैं ॥८॥

'शूरो नरोऽत्यन्तविचारसारोऽनवद्यविद्याधिकतासमेतः।
प्रसूतिकाले किल लग्नशाली भवेदलिस्तस्य कलिः सदैवः' ॥ (जातकाभरण)

धनुर्लग्नफल

दीर्घास्यकण्ठः पृथुकर्णनासः कर्मोद्यतः कुब्जतनुर्नृपेष्टः।
प्रागल्भ्यवाक्त्यागयुतोऽरिहन्ता साम्नैकसाध्योऽश्विभवो बलाढ्यः॥९॥

जिसका जन्म धनुलग्न में होता है उसका मुख और गर्दन लम्बी होती है। उसकी नासिका और कान भी बड़े होते हैं। वह अत्यन्त कर्मठ, कुबड़ा शरीर और राजा का प्रिय भाजन होता है। उसकी बातों में परिपक्वता की झलक होती है। वह त्यागी, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाला, प्रेममय व्यवहार के आगे झुकने वाला तथा बलशाली व्यक्ति होता है ॥९॥

'प्राज्ञश्च राज्ञः परिसेवनज्ञः सत्यप्रतिज्ञः सुतरां मनोज्ञः।
सुज्ञः कलाज्ञश्च धनुर्विधिज्ञश्चेन्नुर्धनुर्यस्य जनुस्तनुः स्यात्' ॥ (जातकाभरण)

मकरलग्नफल

अधः कृशः सत्त्वयुतो गृहीतवाक्योऽलसोऽगम्यजराङ्गनेष्टः।
धर्मध्वजो भाग्ययुतोऽटनश्च वातार्दितो नक्रभवो विलज्जः ॥१०॥

मकर राशि के लग्न में जन्म धारण करने वाले व्यक्ति के शरीर का अधोभाग दुर्बल होता है किन्तु ऐसे व्यक्ति में पर्याप्त आत्मबल होता है। दूसरों की बात को ग्रहण करने वाला, आलसी, अपने से अधिक वय की स्त्री में अनुरक्त होता है। ऐसा व्यक्ति परम धार्मिक, भाग्यवान् और यायावर होता है। यह वातज व्याधियों से पीड़ित और निर्लज्ज होता है ॥१०॥

'कठिनमूर्तिरतीव शठः पुमात्रिजमनोगतकृद् बहुसन्ततिः ।
सुचतुरोऽपि च लुब्धतरो वरो यदि नरो मकरोदयसम्भवः' ॥ (जातकाभरण)

कुम्भलग्नफल

प्रच्छन्नपापो घटतुल्यदेहो विघातदक्षोऽध्वसहोऽल्पवित्तः ।
लुब्धः परार्थी क्षयवृद्धियुक्तो घटोद्भवः स्यात्प्रियगन्धपुष्पः ॥११॥

जो व्यक्ति कुम्भ लग्न में जन्म लेता है वह गोपनीय रूप से पाप कर्म में लिप्त होता है। उसके शरीर की आकृति घड़े के समान गोलाकार होती है। वह आघात करने में पटु, यात्रा के कष्टों को सहन करने में सक्षम, अल्प धनिक, लोभी, परार्थी (परार्थी = उपकारी या दूसरों के धन का इच्छुक) होता है। उसके जीवन में क्षय और वृद्धि का क्रम चलता रहता है तथा वह सुगन्धि और पुष्पों का प्रेमी होता है ॥११॥

'लोलस्वान्तोऽत्यन्तसञ्जातकामश्चञ्चद्देहः स्नेहकृन्मित्रवर्गे ।
सस्यारम्भः सम्भवैर्युक्सदम्भश्चेत्स्यात्कुम्भे सम्भवो यस्य लग्ने' ॥

मीनलग्नफल

अत्यम्बुपानः समचारुदेहः स्वदारगस्तोयजवित्तभोक्ता ।
विद्वान्कृतज्ञोऽभिभवत्यमित्रान् शुभेक्षणो भाग्ययुतोऽन्त्यराशौ ॥१२॥

मीन राशि के लग्न में जन्म लेने वाला व्यक्ति अधिक जल पीता है। उसके शरीर की बनावट सम (संतुलित अनुपात में) और सुन्दर होती है। वह अपनी पत्नी में अनुरक्त होता है। वह जलीय पदार्थों के व्यवसाय से अर्जित धन का भोग करने वाला, विद्वान्, कृतज्ञ, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाला, शुभ और सुन्दर नेत्रों से युक्त एवं भाग्यशाली व्यक्ति होता है ॥१२॥

'दक्षोऽल्पभक्षोऽल्पमनोभवश्च सद्रत्नहेमा चपलोऽतिधूर्तः ।
स्यात्रा च नानारचनाविधाने मीनाभिधाने जनने विलग्ने' ॥ (जातकाभरण)

लग्नवत् चन्द्रराशि फल

राशेः स्वभावाश्रयरूपवर्णान् ज्ञात्वाऽनुरूपाणि फलानि तस्य ।
युक्त्या वदेदत्र फलं विलग्ने यच्चन्द्रलग्नेऽपि तदेव वाच्यम् ॥१३॥

लग्नस्थ राशि के स्वभाव, स्थान, स्वरूप, वर्ण आदि का सम्यग् परिज्ञान कर उसके अनुसार जातक के विषय में फल निर्धारित करना चाहिए। जो फल जन्मलग्न की राशि के लिए कहे गये हैं वही फल जन्मराशि (जिस राशि में चन्द्रमा स्थित हो उससे भी) से भी समझना चाहिए ॥१३॥

उच्चराशिगत ग्रहफल

ग्रहे सति निजोच्चगे भवति रत्नगर्भाधिपो
महीपतिकृतस्तुतिर्महितसम्पदामालयः

उदारगुणसंयुतो जयति विक्रमार्को यथा
नये यशसि विक्रमे वितरणे धृतौ कौशले ॥१४॥

जिसके जन्मकाल में कोई ग्रह यदि अपनी उच्चराशि में स्थित हो तो वह अनेक राजाओं से उपहार और प्रशस्ति प्राप्त करने वाला राजा होता है तथा वह अतुल धन-सम्पदा, वैभवादि का स्वामी, उदार और गुणवान् होता है तथा राजा विक्रमार्क के समान, कुटनीतिज्ञ, यश, पराक्रम, साहस और कौशल में उसकी ख्याति राजा विक्रमार्क के समान दिग्दिगन्त में व्याप्त होती है ॥१४॥

ऊपर के श्लोक में उच्चस्थ ग्रह के जो फल कहे हैं वे ग्रह के मात्र उच्च राशि में स्थिति से ही नहीं प्राप्त होते । उसके लिए उच्चस्थ ग्रह का शुभ स्थान में और शुभ वर्गों में होना और शुभग्रहों की दृष्टि से युत होना, शुभग्रहों की युति आदि का होना भी आवश्यक है । उक्त स्थिति में यदि उनका पापग्रहों से सम्बन्ध हो तो उक्त फल बाधित होगा ।

ग्रन्थान्तर से उच्चस्थ ग्रहों के फल

'महाधनी बलाढ्यश्च तुङ्गस्थे भास्करे नरः । सुभूषणो महाभोगी धनी तुङ्गे निशाकरः ॥
उच्चे भौमे सुपुत्रश्च तेजस्वी गर्वितो नरः । मेधावी दृढवाक्यश्च बलाढ्यश्च बुधे भवेत् ॥
राजपूज्यश्च विख्यातो विद्वानार्यो गुरौ नरः । स्वोच्चे शुक्रे विलासी च हास्यगीतादिसंयुतः ॥
स्वोच्चगे रविपुत्रे च चक्रवर्ती धनी भवेत् । राजलब्धनियोगश्च राहुः शनिसमो मतः' ॥

स्वराशिस्थ ग्रहफल

स्वमन्दिरगते ग्रहे प्रभुपरिग्रहादायतिं
प्रभुत्वमपि वा गृहस्थितिमचञ्चलां प्राप्नुयात् ।
नवं भुवनमुर्वराक्षितिमुपैति काले स्वके
जने बहुमतिं पुनः सकलनष्टवस्तून्यपि ॥१५॥

जन्माङ्ग में यदि ग्रह स्वगृही हो तो जातक बड़े लोगों से बल और शक्ति प्राप्त करता है अथवा स्वयं राजा होता है । वह स्थायी रूप से अपने आवास में निवास करता है । उसे नवीन भवन, उर्वरा भूमि और भूसम्पदादि का लाभ होता है तथा विनष्ट वस्तु की भी प्राप्ति होती है । वह सभी के द्वारा सम्मानित होता है ॥१५॥

अन्य जातक-ग्रन्थों में स्वगृही ग्रहों के फल आचार्यों द्वारा कहे गये हैं—

'स्वगृहस्थे रवौ लोके महोग्रश्च सदोद्यमी । चन्द्रे कर्मरतः साधुर्मनस्वी रूपवानपि ॥
स्वगृहस्थे कुजे चापि चपलो धनवानपि । बुधे नानाकलाभिज्ञः पण्डितो धनवानपि ॥
धनी काव्यश्रुतिज्ञश्च स्वचेष्टः स्वगृहे गुरौ । स्फीतः कृषिबलः शुक्रे शनौ मान्यः सुलोचनः' ॥

मित्रगृहगत ग्रहफल

ग्रहः सुहृत्क्षेत्रगतः सुहृद्भिः कार्यस्य सिद्धिं नवसौहृदं च ।
सत्पुत्रजायाधनधान्यभाग्यं ददात्ययं सर्वजनानुकूल्यम् ॥१६॥

यदि ग्रह अपने मित्र के घर में स्थित हो तो जातक के सभी कार्य उसके मित्रों के सहयोग से सिद्ध होते हैं। अपने कार्यक्षेत्र में वह नये मित्रों को बनाता है। जातक सत्पुत्र, सच्चरित्र स्त्री, धन-धान्यादि से सुखी और सर्वजनप्रिय होता है ॥१६॥

अन्य जातक-ग्रन्थ में—

'सूर्ये मित्रगृहे ख्यातः शास्त्रज्ञः स्वस्थसौहृदः। चन्द्रे नरो भाग्ययुक्तश्चतुरो धनवानपि ॥
भौमे शस्त्रोपजीवी च बुधे रूपधनान्वितः। गुरौ मित्रगृहे पूज्यः सतां सत्कर्मसंयुतः ॥
शुक्रे मित्रगृहे लोके धनी बन्धुजनप्रियः। शनौ रुजाकुलो देहे कुकर्मनिरतो भवेत्' ॥

शत्रुगृही ग्रहफल

गते ग्रहे शत्रुगृहं निकृष्टतां परान्नवृत्तिं परमन्दिरस्थितिम्।
अकिञ्चनत्वं रिपुपीडनं सदा स्निग्धोऽपि तस्यातिरिपुत्वमाप्नुयात् ॥१७॥

जन्माङ्ग में ग्रह यदि शत्रुगृही हो तो अत्यन्त निकृष्ट फल देते हैं। जातक दरिद्र, दूसरों के अन्न पर जीवित रहने वाला, दूसरे के भवन में निवास करने वाला, सदैव शत्रुओं से पीड़ित होता है। उसके मित्र भी शत्रु के समान आचरण करते हैं ॥१७॥

शत्रुगृहस्थ ग्रहों के अलग-अलग फल अन्य जातक-ग्रन्थों में कहे गये हैं—

'सूर्ये रिपुगृहे निःस्वो विषयैः पीडितो नरः। चन्द्रे हृदयरोगी च भौमे जायाजडोऽधनः ॥
बुधे रिपुगृहे मूर्खो वाग्धीनो दुःखपीडितः। जीवेऽरिभे नरः क्लीबो नाप्तवृत्तिर्बुभुक्षितः ॥
शुक्रे शत्रुगृहे भृत्यः कुबुद्धिर्दुःखितो नरः। शनौ व्याध्यर्थशोकेन सन्तप्तो मलिनो भवेत्' ॥

नीचस्थ ग्रहफल

नीचे ग्रहेऽधः पतनं स्ववृत्तेर्दैन्यं दुराचारमृणाप्तिमाहुः।
नीचाश्रयं कीकटदेशवासं भृत्यत्वमध्वानमनर्थकार्यम् ॥१८॥

जन्माङ्ग में यदि नीचराशिगत ग्रह हो तो जातक के व्यवसाय में ह्रास, दरिद्रता, भ्रष्टाचरण तथा ऋणग्रस्तता होती है। ऐसा जातक नीच व्यक्तियों का आश्रित, चाकर, मार्ग के श्रम से व्यथित, निरर्थक कार्यों में संलग्न एवं निन्दित देश का निवासी होता है ॥१८॥

अन्य जातक-ग्रन्थ के अनुसार—

'नीचे सूर्ये भवेत्प्रेष्यो बन्धुभिर्वर्जितो नरः। चन्द्रे रोगी स्वल्पपुण्यो दुर्भगो नीचराशिगे ॥
नीचे भौमे भवेन्नीचः कुत्सितो व्यसनातुरः। बुधे क्षुद्रो बन्धुवैरी गुरौ दीनो मलान्वितः ॥
शुक्रे नीचे नष्टदारः स्वतन्त्रः शीलवर्जितः। शनौ काणो दरिद्रश्च नीचराशिगतो यदि' ॥

ग्रहो मौढ्यं प्राप्तो मरणमचिरात् स्त्रीसुतधनैः
प्रहीणत्वं व्यर्थे कलहमपवादं परिभवम्।
समर्क्षस्थः खेटो न कलयति वैशेषिकफलं
सुखं वा दुःखं या जनयति यथापूर्वमचलम् ॥१९॥

जन्माङ्ग में यदि कोई ग्रह सूर्य-सान्निध्य में अस्तंगत हो तो (उस अस्त ग्रह की दशा प्राप्त होने पर) जातक शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होता है। उसकी पत्नी और बच्चों के सहित उसका धन विनष्ट हो जाता है। वह अनायास, अकारण विवादग्रस्त होकर अपवाद और तिरस्कार का पात्र बनता है। समराशि (सम ग्रह की राशि) में स्थित ग्रह कुछ विशिष्ट फल नहीं देता अपितु सुख अथवा दुःख जो भी हो उसी को यथास्थिति बनाये रखता है ॥१९॥

वक्रं गतः स्वोच्चफलं विदध्यात् सपत्ननीचर्क्षगतोऽपि खेटः ।
वर्गोत्तमांशस्थितखेचरोऽपि स्वक्षेत्रगस्योक्तफलानि तद्वत् ॥२०॥

इति श्रीमन्त्रेश्वरविरचितायां फलदीपिकायां लग्नफलभेदो
नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥
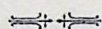
नीचराशिगत अथवा शत्रुराशिगत ग्रह उच्चस्थ ग्रह के समान फल देता है। यदि वर्गोत्तमांश में ग्रह स्थित हो तो वह स्वगृही ग्रह के समान फल देता है ॥२०॥

चरराशि का प्रथम नवांश, स्थिरराशि का पाँचवाँ नवांश और द्विस्वभाव राशि का अन्तिम नवांश वर्गोत्तम संज्ञक होता है।

इस प्रकार मन्त्रेश्वरकृत फलदीपिका में लग्नफलभेद
नामक नवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥९॥

दशमोऽध्याय:

सप्तमभावफलभेदः

शुभाधिपयुतेक्षिते सुतकलत्रभे लग्नतो
विधोरपि तयोः शुभं त्वितरथा न सिद्धिस्तयोः ।
सिताद्व्ययसुखाष्टगैः खरखगैरसन्मध्यगे
सितेऽप्यथ शुभेतरेक्षितयुते च जायावधः ॥१॥

लग्न से पञ्चम और सप्तम भाव तथा चन्द्रमा से भी पञ्चम और सप्तम भाव यदि शुभाधिप (नवम भाव के स्वामी) से युत हो अथवा दृष्ट हो तो इन दोनों भावों के शुभ फल होते हैं। यदि ऐसा न हो तो विपरीत फल होता है।

पञ्चम और सप्तम भाव यदि शुभग्रहों अथवा अपने-अपने स्वामियों से युत या दृष्ट हों तब भी इन दोनों भावों के फल शुभद होते हैं। इसके विपरीत यदि इन भावों में पापग्रह स्थित हों अथवा पापग्रहों से दृष्ट हों तो उनके शुभ फल का विनाश होता है।

(१) शुक्र से व्यय (द्वादश), सुख (चतुर्थ) और अष्टम भावों में पापग्रह स्थित हों; (२) शुक्र पापकर्तरी योग में अवस्थित हो अर्थात् शुक्र दो पापग्रहों के मध्य स्थित हो अथवा (३) शुक्र पापग्रहों से युत या दृष्ट हो तो उपर्युक्त तीनों योगों में जातक की पत्नी का नाश होता है ॥१॥

स्त्री-विनाशक योग

दारेशे सुतगे प्रणष्टवनितोऽपुत्रोऽथवा धीश्वरो
द्यूने वा निधनेश्वरोऽपि कुरुते पत्नीविनाशं ध्रुवम् ।
क्षीणेन्दौ सुतगे व्ययास्ततनुगैः पापैरदारात्मजः
स्त्रीसङ्गाद्धननाशनं मदगयोः स्वर्भानुभान्वोर्वदेत् ॥२॥

यदि सप्तमेश पंचम भाव में स्थित हो तो जातक की पत्नी का नाश होता है तथा वह निःसन्तान होता है। यदि पंचम भाव का स्वामी सप्तम भाव में स्थित हो अथवा अष्टम भाव का स्वामी सप्तम भाव में स्थित हो तो पत्नी का विनाश होता है।

यदि क्षीण चन्द्रमा पंचम भाव में तथा द्वादश, सप्तम और लग्न भावों में पापग्रह स्थित हों तो जातक स्त्री-पुत्रादि से हीन होता है।

यदि सूर्य और राहु सप्तम भाव में स्थित हों तो स्त्री के संसर्ग से जातक के धन का नाश होता है ॥२॥

शुक्रे वृश्चिकगे मदे मृतवधूः कामे वृषस्थे बुधे
स्त्रीनाशस्त्वथ नीचगे सुरगुरौ द्यूनाधिरूढे तथा।
जामित्रे झषगे शनौ सति तथा भौमेऽथवा स्त्रीमृति-
श्चन्द्रक्षेत्रगयोर्मदेऽर्किकुजयोः पत्नी सती शोभना ॥३॥

यदि (१) वृश्चिक राशि का शुक्र, (२) वृष राशि का बुध, (३) नीच राशि (मकर) का बृहस्पति अथवा (४) मीन राशि का मंगल या शनि सप्तम भाव में स्थित हों तो पत्नी का विनाश करते हैं।

यदि कर्क राशि के मंगल और शनि की सप्तम भाव में युति हों तो जातक की पत्नी सती-साध्वी और सुन्दर होती है ॥३॥

अस्ते वास्तपतावसद्ग्रहयुते दृष्टेऽप्यसन्मध्यगे
नीचारातिगृहेऽर्ककान्त्यभिहते ब्रूयात्कलत्रच्युतिम्।
कामे वा सुतभाग्ययोर्विकलदारोऽसौ सपापे भृगौ
शुक्रे वा कुजमन्दवर्गसहिते दृष्टे परस्त्रीरतः ॥४॥

सप्तम भाव अथवा सप्तमभावाधिपति यदि (१) पापग्रहों से युत या दृष्ट हों, (२) पापग्रहों के मध्य स्थित हों अथवा (३) नीच या शत्रु राशि में स्थित हों या सूर्य-सान्निध्य में अस्त हों तो उक्त तीनों स्थितियाँ पत्नी की विनाशक होती हैं।

सप्तम, पंचम या नवम भाव में यदि पापग्रहों से युत होकर शुक्र स्थित हो तो ऐसे जातक की पत्नी रुग्णा होती है। यदि शुक्र मंगल या शनि के वर्ग में स्थित हो और इनसे दृष्ट हो तो जातक परस्त्री में अनुरक्त होता है ॥४॥

स्त्रियों की संख्या

भौमार्क्यस्ते भृगुजशशिनोर्दाररहीनोऽसुतो वा
क्लीबेऽस्ते वा भवति भवगौ द्वौ ग्रहौ स्त्रीद्वयं स्यात्।
द्वन्द्वर्क्षांशे मदपतिसितौ तस्य जायाद्वयं स्यात्
ताभ्यां युक्तैर्गगननिलयैर्दारसंख्यां वदन्तु ॥५॥

शुक्र और चन्द्रमा से सप्तम भाव में मंगल और शनि स्थित हों तो जातक स्त्री या पुत्रों से हीन होता है।

यदि सप्तम भाव में नपुंसक ग्रह और एकादश भाव में दो ग्रह स्थित हों तो जातक की दो स्त्रियाँ होती हैं। सप्तम भाव का स्वामी शुक्र के साथ यदि द्विस्वभाव राशि में अथवा द्विस्वभाव राशि के नवांश में स्थित हों तो जातक की दो स्त्रियाँ होती हैं। सप्तम भाव के स्वामी या शुक्र के साथ जितने ग्रह संयुक्त हों उतनी स्त्रियों की संख्या होती है ॥५॥

स्त्रीसंख्यां मदगैर्ग्रहैर्मृतिमसत्खेटैश्च सद्भिः स्थितिं
द्यूनेशे सबले शुभे सति वधूः साध्वी सुपुत्रान्विता।

पापोऽपि स्वगृहं गतः शुभकरः पत्न्याश्च कामस्थिता
हित्वा षड्व्ययरन्ध्रपान्मदनगाः सौम्यास्तु सौख्यावहाः ॥६॥

सप्तम भाव में जितने ग्रह अवस्थित हों उतनी संख्या तुल्य स्त्रियों से जातक का सम्बन्ध होता है। उन सप्तमस्थ ग्रहों में पापग्रहों की संख्या तुल्य स्त्रियों का विनाश होता है तथा शुभग्रहों की संख्या तुल्य स्त्रियाँ जीवित होती हैं।

सप्तम भाव का स्वामी शुभग्रह हो और बलवान् हो तो जातक की पत्नी साध्वी और सत्पुत्रों की जननी होती है। सप्तम भाव का स्वामी यदि पापग्रह हो और सप्तम भाव में ही स्थित हो तो भी जातक की पत्नी साध्वी होती है। सप्तम भाव में स्थित शुभग्रह शुभद ही होते हैं यदि वे त्रिकेश (छठे, आठवें या बारहवें) भाव के स्वामी न हों ॥६॥

स्त्री-नाशक योग

भार्यानाशस्त्वशुभसहितौ वीक्षितौ वार्थकामौ
तत्र प्राहुस्त्वशुभफलदां क्रूरदृष्टिं विशेषात्।
एवं पत्न्या अपि सति मदे चाष्टमे वास्ति दोषः
सौम्यैर्दृष्टे सति शुभयुते दम्पती भाग्यवन्तौ ॥७॥

जन्माङ्ग में यदि द्वितीय और सप्तम भाव पापग्रहों से संयुक्त हों या उनसे दृष्ट हों तो स्त्री की मृत्यु होती है। इन भावों पर यदि पापग्रह की दृष्टि भी हो तो वे विशेष रूप से अनिष्ट फल देते हैं। स्त्री के जन्माङ्ग में यदि सप्तम और अष्टम भाव पापग्रहों से युत या दृष्ट हो तो वे पति के लिए मारक होते हैं। किन्तु यदि उक्त दोनों भाव (पति के जन्माङ्ग में द्वितीय और सप्तम भाव तथा स्त्री के जन्माङ्ग में सप्तम और अष्टम भाव) शुभग्रहों से युत हों या देखे जाते हों तो पति-पत्नी दोनों सुख-सौभाग्यादि से युक्त होते हैं ॥७॥

चन्द्रे समन्दे मदगे पुनर्भूः पतिर्भवेद्वाऽप्यसुतो विदारः।
नीचारिभस्थैरशुभैर्मदे स्त्रीपुंसोर्मृतिः स्यान्निधने धने वा ॥८॥

स्त्री के जन्माङ्ग में यदि चन्द्रमा शनि के साथ सप्तम भाव में स्थित हो तो उस स्त्री का पुनर्विवाह होता है। यदि यह योग पुरुष के जन्माङ्ग में उपस्थित हो तो जातक स्त्री और सन्तान से हीन होता है। यदि सप्तम, अष्टम और द्वितीय भावों में नीच या शत्रु राशिगत पापग्रह स्थित हो तो यह योग यदि पुरुष जन्माङ्ग में स्थित हो तो स्त्री की और यदि यह योग स्त्री के जन्माङ्ग में हो तो पति की मृत्यु होती है ॥८॥

स्त्री-पुत्र लाभ योग

लग्नात्कलत्रभवने समराशिसंज्ञे
भावाधिपेऽपि च तथैव गतेऽसुरेड्ये।
सूर्याभितप्तरहिते सुतदारनाथे
वीर्यान्विते तु जननं ससुतं कलत्रम् ॥९॥

लग्न से सप्तम भाव में सम राशि (वृष, कर्क, कन्या आदि) हो तथा सप्तम भाव का स्वामी और शुक्र भी समराशि में ही स्थित हों, पंचम भाव और सप्तम भाव के स्वामी बलवान् हों तथा सूर्य-सान्निध्य में अस्त न हों तो जातक सत्स्त्री और सत्पुत्रों से युक्त होता है ॥९॥

इस योग में तीन प्रधान बिन्दु हैं। प्रथमत: सप्तम भाव में समराशि हो, द्वितीयत: शुक्र और सप्तम भाव के स्वामी दोनों ही सम राशिगत हों और तृतीयत: सप्तम और पंचम भाव के स्वामी बलवान् हों और सूर्य से पर्याप्त अन्तर से स्थित हों तो जातक स्त्री और सन्तान सुख से सम्पन्न होता है।

कुटुम्बदारव्ययराशिनाथा जीवेक्षिताः कोणचतुष्टयस्थाः।
दारेश्वराद्वित्तकलत्रलाभे सौम्याः कलत्रं ससुतं सुखाढ्यम् ॥१०॥

द्वितीय, सप्तम और द्वादश भावों के स्वामी त्रिकोण (५।९) या चतुष्टय (१।४।७।१०वें) भावों में स्थित हों तथा बृहस्पति से पूर्ण दृष्ट हो अथवा सप्तम भाव के स्वामी जिस भाव में स्थित हो उससे द्वितीय, द्वादश और सप्तम भावों में शुभग्रह स्थित हों तो जातक की पत्नी परमसुखी और पुत्रवती होती है ॥१०॥

लग्नास्तनाथस्थितभांशकोणे नीचोच्चभे स्त्रीजननं च पत्युः।
चन्द्राष्टवर्गेऽधिकबिन्दुराशौ कलत्रजन्मेति तथा धवस्य ॥११॥

लग्न और सप्तम भाव के स्वामी जिस राशि अथवा जिस राशि के नवांश में स्थित हों उससे पाँचवीं या नवीं राशि पत्नी की जन्मराशि होती है अथवा लग्नाधिपति और सप्तमाधिपति की उच्चराशि या नीचराशि स्त्री की जन्मराशि होती है अथवा पुरुष के चन्द्राष्टक वर्ग में सर्वाधिक बिन्दुओं से युक्त राशि पत्नी की जन्मराशि होती है ॥११॥

विवाह की दिशा और समय

कामस्थकामाधिपभार्गवानामृक्षं दिशं शंसति तस्य पत्न्याः।
शुक्रोऽस्तपो वा तनुनाथभांशत्रिकोणमायाति तदा विवाहः ॥१२॥

सप्तम भाव में स्थित ग्रह, सप्तम भाव के स्वामी और शुक्र जिस राशि में स्थित हों उस राशि की दिशा में जातक का विवाह होता है।

तनुभाव के स्वामी की राशि से अथवा उसकी नवांश राशि से पंचम या नवम राशि में जब गोचर का शुक्र या सप्तमेश आता है तब जातक का विवाह सम्भव होता है ॥१२॥

कलत्रसंस्थस्य कलत्रदृष्टेर्दशागमेवाथ कलत्रपस्य।
यदा विलग्नाधिपतिः प्रयाति कलत्रभं तत्र कलत्रलाभः ॥१३॥

सप्तम भाव में स्थित ग्रह, सप्तम भाव के द्रष्टाग्रह और सप्तमभावाधिपति की दशा में जब सप्तमभावस्थ राशि में गोचरवश शुक्र के आने पर विवाह सम्भव होता है।

कलत्रनाथस्थितभांशकेशयोः सितक्षपानायकयोर्बलीयसः।
दशागमे द्यूनपयुक्तभांशकत्रिकोणगे देवगुरौ करग्रहः ॥१४॥

सप्तम भाव के स्वामी जिस राशि, जिस राशि के नवांश में स्थित हों उनके स्वामियों में जो बलवान् हो अथवा चन्द्रमा और शुक्र में जो बलवान् हो उस सर्वतो बलवान् ग्रह की दशान्तर्दशा में जातक का पाणिग्रहण संस्कार होता है। उस कथित दशा में सप्तमेशाधिष्ठित राशि से पाँचवीं या नवीं राशि में जब गोचर का बृहस्पति आता है तब पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न होता है ॥१५॥

कलत्रनाथे रिपुनीचसंस्थे मूढेऽथवा पापनिरीक्षिते वा।
कलत्रभे पापयुतेऽथ दृष्टे कलत्रहानिं प्रवदन्ति सन्तः ॥१५॥

इति श्रीमन्त्रेश्वरविरचितायां फलदीपिकायां सप्तमभावफलभेदो नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

सप्तम भाव का स्वामी यदि अपनी नीचराशि में अथवा शत्रुराशि में स्थित हो अथवा सूर्य-रश्मिजाल में निस्तेज हो अथवा सप्तम भाव पापग्रह से युत हो या दृष्ट हो तो उक्त स्थितियों में जातक के पत्नी की हानि होती है। ऐसी विज्ञजनों की सम्मति है ॥१५॥

इस प्रकार मन्त्रेश्वरकृत फलदीपिका में सप्तमभावफलभेद नामक दसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥१०॥

एकादशोऽध्यायः

स्त्रीजातकभेदः

स्त्रीजन्माङ्ग

यद्यत्पुंप्रसवे क्षमं तदखिलं स्त्रीणां प्रिये वा वदे-
न्माङ्गल्यं निधनात् सुतांश्च नवमाल्लग्नात्तनोश्चारुताम्।
भर्तारं सुभगत्वमस्तभवनात्सङ्ग सतीत्वं सुखात्
सन्तस्तेषु शुभप्रदास्त्वशुभदाः क्रूरास्तदीशं विना ॥१॥

पुरुष-जन्माङ्ग के लिए जो फल कहे गये हैं वे सभी फल स्त्री के जन्माङ्ग के लिए भी उपयुक्त होते हैं। जो कथित फल उन पर घटित नहीं होते; जैसे उच्चपद का लाभ, व्यावसायिक उत्कर्ष, पतन आदि के योगफल उनके पति पर घटित होंगे। स्त्री के जन्माङ्ग में लग्न और चन्द्रमा में जो बली हो उससे उसके सुख-माङ्गल्यादि का विचार अष्टम भाव से, सन्तति का विचार नवम भाव से तथा शारीरिक सौन्दर्य, लावण्य आदि का विचार लग्न से करना चाहिए। पति और सौभाग्य का विचार सप्तम भाव से, सतीत्व और परपुरुष से सम्पर्क आदि का विचार चतुर्थ भाव से करना चाहिए। इन भावों में यदि शुभग्रह स्थित हों तो उनसे सम्बन्धित विषयों का शुभ फल और यदि वे भाव पापाक्रान्त हों तो अशुभ फल देते हैं। किन्तु इन कथित भावों में पापग्रह स्वगृही हों तो वे शुभ फल ही देते हैं ॥१॥

चरित्र-स्वभावादि विचार

उदयहिमकरौ द्वौ युग्मगौ सौम्यदृष्टौ
सुतनयपतिभूषासम्पदुत्कृष्टशीला ।
अशुभसहितदृष्टौ चोजगौ पुंस्वभावा
कुटिलमतिरवश्या भर्तुरुग्रा दरिद्रा ॥२॥

यदि लग्न और चन्द्रराशि समराशि हों और उन पर शुभग्रहों की दृष्टि हो तो जातक सत्पुत्रवती, सुन्दर आभूषणों से शोभित, सुन्दर पति से युक्त, सम्पन्न और शील आदि उत्कृष्ट गुणों से युक्त होती है। यदि लग्न और चन्द्रराशि विषम राशि हो और वह पापग्रह से युत या दृष्ट हो तो स्त्री पुरुषोचित स्वभाव वाली, कुटिल बुद्धि, निरङ्कुश, उग्र स्वभाव की दरिद्रा होती है ॥२॥

पति-विचार

सद्राश्यंशयुते मदे द्युतियशोविद्यार्थवांस्तत्पति-
र्व्यत्यस्ते कुतनुर्जडश्च कितवो निःस्वो वियोगस्तयोः ।

आग्नेयैर्मदनस्थितैश्च विधवा मिश्रै: पुनर्भूर्भवेत्
क्रूरेष्वायुषि भर्तृहन्त्र्यपि धने सन्त: स्वयं स्त्रीमृति: ।।३।।

स्त्री के जन्माङ्ग में सप्तम भाव में शुभग्रह की राशि और नवमांश हो तो उस स्त्री का पति उज्ज्वल यश और विद्या से युक्त धनवान् होता है। इसके विपरीत स्थिति में अर्थात् सप्तम भाव में पापग्रह की राशि और नवमांश हो तो उस स्त्री का पति कुरूप, मूर्ख, धोखेबाज, धूर्त और दरिद्र होता है। दोनों का परस्पर वियोग हो जाता है। यदि सप्तम भाव में मंगल स्थित हो तो स्त्री विधवा होती है। यदि सप्तम भाव में शुभ और पाप दोनों ग्रह हों तो स्त्री का पुनर्विवाह होता है। यदि अष्टम भाव में पापग्रह स्थित हों तो स्त्री के पति का निधन होता है। यदि द्वितीय भाव में शुभग्रह स्थित हों तो स्वयं स्त्री के लिए घातक होता है ।।३।।

सुतस्थेऽलिस्त्रीगोहरिषु हिमगौ चाल्पतनया
यमारार्कांशर्क्षे मदनसदने सामयभगा ।
सुखे पापैर्युक्ते भवति कुलटा मन्दकुजयो-
र्गृहेंऽशे लग्नेन्दू भृगुरपि च पुंश्चल्यभिहिता ।।४।।

वृश्चिक, कन्या, वृष या सिंह राशिगत चन्द्रमा यदि पंचम भाव में स्थित हो तो जातका अल्प सन्तति से युक्त होती है।

यदि मंगल या शनि की (१,८,१०,११वीं) राशि अथवा इनका नवमांश सप्तम भाव में हो तो स्त्री की योनि में रोग होता है। चतुर्थ भाव में पापग्रह युत हों तो स्त्री कुलटा होती है। मंगल या शनि की राशि में अथवा उनके नवांश में लग्न, चन्द्रमा और शुक्र स्थित हों तो स्त्री दुराचारिणी होती है ।।४।।

शुभक्षेत्रांशेऽस्ते सुभगजघना मङ्गलवती
विधो: सत्सम्बन्धेऽप्युदयसुखयो: साध्व्यतिगुणा ।
त्रिकोणे सौम्याश्चेत्सुखसुतसम्पद्गुणवती
बलोना: क्रूराश्चेद्यदि भवति वन्ध्या मृतसुता ।।५।।

यदि सप्तम भाव में शुभग्रह की राशि और नवांश हो तो स्त्री सुन्दर जघन (पेडू प्रदेश) से शोभित मङ्गलमयी होती है। चन्द्रमा, लग्न और चतुर्थ भाव शुभग्रहों से सम्बन्धित हों तो वह स्त्री साध्वी और गुण-सम्पन्न होती है। यदि जन्माङ्ग के त्रिकोण भाव (पंचम और नवम भाव) शुभग्रह से युत हों तो वह स्त्री सन्तान, सुख-सम्पदादि और सद्गुणों से युक्त होती है। उपर्युक्त स्थानों में यदि निर्बल पापग्रहों का सम्बन्ध हो तो सम्बन्धित स्त्री वन्ध्या और मृतवत्सा होती है ।।५।।

चन्द्रलग्न-त्रिंशांश फल

चन्द्रे भौमगृहे कुजादिकथितत्रिंशांशकेषु क्रमात्
दुष्टा दास्यसती सुशीलविभवा मायाविनी दूषणी ।

शुक्रर्क्षे बहुदूषणान्यपतिगा पूज्या सुधीर्विश्रुता
ज्ञर्क्षे च्छद्मवती नपुंसकसमा साध्वी गुणाढ्योत्सुका ॥६॥

मंगल की राशि का चन्द्रमा यदि (१) मंगल के त्रिंशांश में स्थित हो तो स्त्री दुष्ट स्वभाव की, (२) शनि के त्रिंशांश में स्थित हो तो दासी और चरित्रहीन, (३) यदि बृहस्पति के त्रिंशांश में स्थित हो तो सती-साध्वी और सम्पन्न, (४) बुध के त्रिंशांश में स्थित हो तो धूर्त, मायाविनी और दुश्चरित्रा, (५) यदि शुक्र के त्रिंशांश में स्थित हो तो दुराचारिणी होती है।

शुक्र की राशि वृष या तुला का चन्द्रमा यदि (१) भौम के त्रिंशांश में हो तो दुराचारिणी, (२) शनि के त्रिंशांश में स्थित हो तो परपुरुषरती, (३) बृहस्पति के त्रिंशांश में स्थित हो तो परम पूजनीया, (४) बुध के त्रिंशांश में स्थित हो तो विदुषी, (५) शुक्र के त्रिंशांश में स्थित हो तो स्त्री विख्यात होती है।

मिथुन या कन्या का चन्द्रमा यदि (१) मंगल के त्रिंशांश में स्थित हो तो धूर्त, (२) शनि के त्रिंशांश में हो तो नपुंसका, (३) बृहस्पति के त्रिंशांश में हो तो साध्वी, (४) बुध के त्रिंशांश में हो तो गुणवती और यदि (५) शुक्र के त्रिंशांश में स्थित हो तो विलासोत्सुका होती है ॥६॥

स्वच्छन्दा भर्तृघातिन्यतिमहितगुणा शिल्पिनी साधुवृत्ता
चान्द्रे जैवे गुणाढ्या विरतिरतिगुणा ज्ञातशिल्पातिसाध्वी।
मान्दे दास्यन्यसक्ताश्रितपतिरसती निष्प्रजार्थार्किभे स्याद्
दुर्भार्या हीनवृत्ता धरणिपतिवधूः पुंविचेष्टान्यसक्ता ॥७॥

कर्क राशि का चन्द्रमा यदि (१) भौम के त्रिंशांश में स्थित हो तो स्त्री स्वेच्छाचारिणी, (२) शनि के त्रिंशांश में स्थित हो तो पति के लिए घातक, (३) बृहस्पति के त्रिंशांश में स्थित हो तो महान गुणों से युक्त, (४) बुध के त्रिंशांश में स्थित हो तो शिल्पकला में प्रवीण, (५) शुक्र के त्रिंशांश में स्थित हो तो साध्वी सद्गुणों से युक्त होती है।

धनु या मीन राशि का चन्द्रमा यदि (१) मंगल के त्रिंशांश में स्थित हो तो गुणवती, (२) शनि के त्रिंशांश में स्थित हो तो समागम से अल्परुचि, (३) बृहस्पति के त्रिंशांश में स्थित हो तो अत्यन्त सद्गुणी, (४) बुध के त्रिंशांश में स्थित हो तो विख्यात कलाकार, (५) और शुक्र के त्रिंशांश में हो तो अति साध्वी होती है।

मकर या कुम्भ राशि का चन्द्रमा यदि (१) भौम के त्रिंशांश में स्थित हो तो स्त्री दासी होती है, (२) शनि के त्रिंशांश में स्थित हो तो परपुरुष में आसक्त, (३) बृहस्पति के त्रिंशांश में स्थित हो तो उसका पति उसका आश्रित होता है, (४) बुध के त्रिंशांश में स्थित हो तो चरित्रहीन (५) और यदि शुक्र के त्रिंशांश में स्थित हो तो स्त्री सन्तानहीन होती है।

यदि सिंह राशिगत चन्द्रमा (१) मंगल के त्रिंशांश में स्थित हो तो स्त्री दुष्ट स्वभाव की, (२) शनि के त्रिंशांश में स्थित हो तो हीन मनोवृत्ति वाली, (३) बृहस्पति के त्रिंशांश में स्थित

हो तो राजमहिषी, (४) बुध के त्रिंशांश में स्थित हो तो पुरुष के समान आचरण करने वाली और यदि (५) शुक्र के त्रिंशांश में स्थित हो तो परपुरुष में आसक्त होती है ।।७।।

शशिलग्नसमायुक्तैः फलं त्रिंशांशकैरिदम् ।
बलाबलविकल्पेन तयोरेवं विचिन्तयेत् ।।८।।

चन्द्रलग्न से युक्त अन्य ग्रहों के त्रिंशांश फल यह कहा गया। इसमें ग्रहों के बलाबल और सम्बन्धादि का विचार कर फल का विचार करना चाहिए ।।८।।

घातक नक्षत्र

ज्येष्ठभ्रातरमम्बिकां च पितरं भर्तुः कनिष्ठं क्रमात्
ज्येष्ठा ह्यासुरशूर्पजाश्च वनिता घ्नन्तीति तज्ज्ञा विदुः ।
चित्रार्द्राभुजगस्वराट्च्छतभिषङ्मूलाग्नितिष्योद्भवा
वन्ध्या वा विधवाथवा मृतसुता त्यक्ता प्रियेणाधना ।।९।।

स्त्री का जन्म यदि ज्येष्ठा, श्लेषा, मूल और विशाखा में हो तो विवाह के अनन्तर क्रमशः अपने जेठ, सास, श्वसुर तथा देवर के लिए घातक होती है। चित्रा, आर्द्रा, श्लेषा, शतभिष, ज्येष्ठा, मूल, कृत्तिका और पुष्य नक्षत्रों में जन्म हो तो स्त्री वन्ध्या, विधवा, मृतवत्सा, निर्धन अथवा परित्यक्ता होती है ।।९।।

श्रेष्ठ स्थिति

चन्द्रास्तोदयभाग्यपाः सह शुभैः सुस्थानगा भास्वराः
पूज्या बन्धुषु पुण्यकर्मकुशला सौन्दर्यभाग्यान्विता ।
भर्तुः प्रीतिकरी सुपुत्रसहिता कल्याणशीला सती
तावद्भाति सुमङ्गली च सुतनुर्यावच्छुभाढ्येऽष्टमे ।।१०।।

चन्द्रराशि, लग्न, सप्तम और नवम भाव के स्वामी यदि शुभग्रहों से युत या दृष्ट होकर सुस्थान में स्थित हों और अस्त न हों तो स्त्री स्वजनों में श्रेष्ठ, पुण्यवती, सौन्दर्य और भाग्य सुख से सम्पन्न, पति का हित साधन करने वाली, सत्सन्तति सुख से सुखी, सभी का कल्याण करने वाली एवं सच्चरित्रवती होती है। उसके सुखी और मंगलमय जीवन की अवधि अष्टम भाव के शुभता की मात्रा पर निर्भर होता है। अष्टम भाव से यदि अधिक शुभ-ग्रहों का सम्बन्ध हो तो सुख की अवधि लम्बी होती है ।।१०।।

गर्भ-सम्भव

शीतज्योतिषि योषितोऽनुपचयस्थाने कुजेनेक्षिते
जातं गर्भफलप्रदं खलु रजः स्यादन्यथा निष्फलम् ।
दृष्टेऽस्मिन् गुरुणा निजोपचयगे कुर्यान्निषेकं पुमान्
अत्याज्ये समये शुभाधिकयुते पर्वादिकालोज्झिते ।।११।।

इति श्रीमन्त्रेश्वरविरचितायां फलदीपिकायां स्त्रीजातको नामैकादशोऽध्यायः ।।११।।

स्त्री के रजस्वला होने के समय मंगल से दृष्ट चन्द्रमा यदि अनुपचय (लग्न, द्वितीय, चतुर्थ, पंचम, सप्तम, अष्टम, नवम या द्वादश) भावों में अवस्थित हो तो वह मास गर्भ धारण के उपयुक्त होता है। इनके अतिरिक्त निष्फल होता है।

पुरुष के जन्माङ्ग के उपचय (तृतीय, षष्ठ, अष्टम और एकादश) भावों में गोचर का चन्द्रमा यदि बृहस्पति से दृष्ट हो तो ऐसे समय में पर्वकाल को छोड़कर पुत्रार्थियों को गर्भाधान करना चाहिए ॥११॥

इस प्रकार मन्त्रेश्वरकृत फलदीपिका में स्त्रीजातकभेद
नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥११॥

○

द्वादशोऽध्याय:

सन्तानचिन्ता

सन्तान-प्राप्ति योग

सुस्था विलग्नशशिनोः सुतभेशजीवाः
सुस्थाननाथशुभदृष्टियुते सुतर्क्षे ।
लग्नात्मपौ यदि युतौ च मिथः सुदृष्टौ
क्षेत्रे परस्परगतौ यदि पुत्रसिद्धिः ॥१॥

लग्न और चन्द्रमा से पञ्चम भाव के स्वामी और बृहस्पति शुभ स्थान में स्थित हों और पञ्चम भावों (लग्न और चन्द्रराशि से पञ्चम भाव) पर शुभग्रहों और शुभस्थानाधिपतियों की दृष्टि वा युति हो (त्रिकेशों से उनका सम्बन्ध न हो), लग्न और पञ्चम भाव के स्वामी संयुक्त होकर लग्न या पञ्चम भाव में स्थित हो, परस्पर दृष्टि सम्बन्ध हो या परस्पर स्थान व्यत्यय हो (लग्नेश पञ्चम में और पञ्चमेश लग्न में स्थित हो) तो जातक को सन्तान का लाभ होता है ॥१॥

सन्तानहीन योग

लग्नामरेड्यशशिनां सुतभेषु पापै-
र्युक्तेक्षितेष्वथ शुभैरयुतेक्षितेषु ।
पापोभयेषु सुतभेषु सुतेश्वरेषु
दुस्थानगेषु न भवन्ति सुताः कथञ्चित् ॥२॥

लग्न, चन्द्रमा और बृहस्पति से पञ्चम भाव यदि पापग्रहों से युत अथवा दृष्ट हों, शुभग्रहों से युत या दृष्ट न हों, तीनों पञ्चम भाव पापग्रहों के मध्य (पापकर्तरी) स्थित हों तथा उनके स्वामी त्रिक (छठे, आठवें या बारहवें) भावों में स्थित हों तो जातक सन्तानहीन होता है ॥२॥

पापे स्वर्क्षगते सुते तनयभाक् तस्मिन् सपापे पुनः
पुत्राः स्युर्बहुलाः शुभस्वभवने सोग्रे सुते पुत्रहा ।
संज्ञां चाल्पसुतर्क्षमित्यलिवृषस्त्रीसिंहभानां विदुः
तद्राशौ सुतभावगेऽल्पसुतवान् कालान्तरेऽसाविति ॥३॥

पापग्रह स्वगृही होकर यदि पञ्चम भाव में स्थित हो तो जातक को सन्तान-सुख का लाभ होता है। वह स्वगृही पञ्चमेश यदि अन्य पापग्रह से युत हो तो उसे अनेक संताने होती हैं। शुभग्रह यदि स्वगृही होकर या अपनी उच्चराशि का होकर यदि पञ्चम भाव में स्थित हो तो जातक सन्तान-सुख से वंचित होता है।

शास्त्र के मर्मज्ञ विज्ञों ने वृश्चिक, वृष, कन्या और सिंह राशियों को अल्पसुत राशियाँ कहा है। इन राशियों में से कोई यदि पञ्चम भाव में स्थित हो तो जातक दीर्घावधि के अनन्तर पुत्रलाभ करता है ॥३॥

सूर्ये चाल्पसुतर्क्षगे निधनगे मन्दे कुजे लग्नगे
लग्नाष्टव्ययगैः शनीड्यरुधिरैश्चाल्पात्मजर्क्षे सुते।
चन्द्रे लाभगते गुरुस्थितसुतस्थाने सपापे भवे-
ल्लग्नेऽनेकखगान्विते तनयभाक्कालान्तरे यत्नतः ॥४॥

(१) अल्पसुत संज्ञक राशिस्थ सूर्य यदि पञ्चम भाव में स्थित हो, अष्टम भाव में शनि और लग्न में मङ्गल हो; (२) लग्न में शनि, अष्टम भाव में बृहस्पति और द्वादश भाव में मङ्गल स्थित हों और अल्पसुत संज्ञक राशि पञ्चम भाव में स्थित हो; (३) एकादश भाव में चन्द्रमा स्थित हो और बृहस्पति जिस राशि में स्थित हो उससे पञ्चम राशि पापाक्रान्त हो, लग्न में अनेक ग्रह स्थित हों—उक्त तीनों स्थितियों में जातक को अनेक प्रयत्न से लम्बे अन्तराल के अनन्तर सन्तान लाभ होता है ॥४॥

सूर्ये नान्ययुते सुतर्क्षसहिते चन्द्रस्य गेहे स्थिते
भौमे वा भृगुजेऽपि वा सति सुतप्राप्तिर्द्वितीयस्त्रियाम्।
मन्दे वा बहुपुत्रवाञ्च्छशिनि वा सौम्येऽपि वाल्पात्मजो
देवेड्ये बहुदारिका शशिगृहे तद्वत्सुताधिष्ठिते ॥५॥

एकाकी सूर्य यदि कर्कस्थ होकर पञ्चम भाव में स्थित हो तो जातक को दूसरी पत्नी से पुत्र-प्राप्ति होती है। मङ्गल या शुक्र यदि उक्त स्थिति में हों तब भी वही फल होता है। उक्त स्थिति में यदि शनि स्थित हो तो जातक को अनेक पुत्र देता है। यदि चन्द्रमा या बुध उक्त स्थिति में अवस्थित हो तो अधिक सन्तान का लाभ नहीं होता। उक्त स्थिति में यदि बृहस्पति (कर्क का बृहस्पति) पञ्चम भाव में स्थित हो तो जातक को कन्याओं का लाभ होता है ॥५॥

सुखास्तदशमस्थितैरशुभकाव्यशीतांशुभि-
र्व्ययाष्टतनयोदयेष्वशुभगेषु वंशक्षयः।
मदे कविविदौ मतौ गुरुरसद्भिरम्बुस्थितैः
सुते शशिनि नैधनव्ययतनुस्थपापैरपि ॥६॥

(१) चतुर्थ, सप्तम और दशम भावों में क्रमशः पापग्रह, शुक्र और चन्द्रमा स्थित हों; (२) द्वादश, अष्टम, पञ्चम और लग्न में पापग्रह स्थित हों; (३) सप्तम भाव में शुक्र और बुध स्थित हों, पञ्चम भाव में बृहस्पति हो और चतुर्थ भाव पापाक्रान्त हो; (४) पञ्चम भाव में चन्द्रमा, अष्टम भाव, द्वादश भाव और लग्न में पापग्रह स्थित हों—उक्त चारों योगों में से कोई एक जन्माङ्ग में उपस्थित हो तो जातक का वंशोच्छेद होता है अर्थात् वंशवृद्धि समाप्त हो जाती है ॥६॥

वंशोच्छेद के अन्य योग

'दशमे शीतगुद्यूने भृगुजः पापिनः सुखे । तस्य सन्ततिविच्छेदो भविष्यति न संशयः ॥
षष्ठाष्टमस्थो लग्नेशः पापयुक्तः सुताधिपः । इष्टो वा शत्रुनीचस्थैः पुत्रहानिं वदेद् बुधः ॥
लग्नसप्तमधर्मान्त्यराशिगाः पापखेचराः । सपत्नराशिवर्गस्था वंशविच्छेदकारिणः' ॥
(जातकपारिजात)

पापे लग्ने लग्नपे पुत्रसंस्थे धीशे वीर्ये वेश्मनीन्दावपुत्रः ।
ओजर्क्षेशे पुत्रगे सूर्यदृष्टे चन्द्रे पुत्रक्लेशभाक् स्यादसूनुः ॥७॥

लग्न में पापग्रह, लग्नेश पञ्चम भाव में, पञ्चम भाव का स्वामी तृतीय भाव में और चन्द्रमा चतुर्थ भाव में स्थित हो तो-जातक सन्तानहीन होता है। विषम राशि का अर्थात् विषम राशि के नवमांशगत चन्द्रमा पञ्चम भाव में सूर्य से दृष्ट हो तो जातक पुत्र के कारण दुःखी रहता है ॥७॥

दत्तकपुत्र योग

मान्दं सुतर्क्षं यदि वाऽथवौधं मान्द्यर्कपुत्रान्वितवीक्षितं चेत् ।
दत्तात्मजः स्यादुदयास्तनाथसम्बन्धहीनो विबलः सुतेशः ॥८॥

मिथुन, कन्या, मकर या कुम्भ राशि पञ्चम भाव में स्थित होकर मान्दि और शनि से युत या दृष्ट हो तो जातक दत्तक पुत्रवान् होता है। यदि पञ्चम भाव का स्वामी निर्बल हो और लग्न और सप्तमभावाधिपति से असम्बद्ध हो तब भी वही फल होता है ॥८॥

'पुत्रस्थाने बुधक्षेत्रे मन्दक्षेत्रेऽथवा यदि ।
मान्दि मन्दयुते दृष्टे तदा दत्तादयः सुताः' ॥ (जातकपारिजात)

जातकपारिजात में इसके अतिरिक्त भी कुछ अन्य दत्तक पुत्र के योग दिये गये हैं जिनका अवलोकन लाभप्रद होगा—

'पुत्रस्थानगतः कश्चित्परिपूर्णबलान्वितः । अदृष्टः पुत्रनाथेन तदा दत्तकादयः सुताः ॥
पापक्षेत्रगते चन्द्रे पुत्रेशे धर्मराशिगे । दत्तपुत्रस्य सम्प्राप्तिर्लग्नेशस्तु त्रिकोणगः ॥
युग्मोदये पुत्रनाथश्चतुर्थस्थानगोऽपि वा । मन्दांशकसमारूढो दत्तपुत्रो भविष्यति ॥
युग्मांशे भानुजांशे वा पुत्रेशोऽर्केन्दुजान्वितः । दत्तपुत्रस्य सम्प्राप्तिस्तस्मिन्योगे भविष्यति ॥
मन्दांशे पुत्रराशीशः स्वराशौ गुरुभार्गवौ । पूर्वं दत्तसुतप्राप्तिः पुनर्नार्याः पुनः सुतः ॥
मन्दांशकस्थिताः खेटाः शुक्लपक्षबलाधिकाः । गुरुर्यदि सुखस्थाने दत्तपुत्रेण सन्ततिः' ॥
(जातकपारिजात)

नीचारिमूढोपगते सुतेशे रिःफारिरन्ध्राधिपसंयुते वा ।
सुतस्य नाशः कथितोऽत्र तज्ज्ञैः शुभैरदृष्टे सुतभे सुतेशे ॥९॥

पञ्चम भाव का स्वामी नीचराशि या शत्रुराशि में अथवा सूर्य-सान्निध्य में अस्त हो; षष्ठ, अष्टम या द्वादश भावाधिपति से युक्त हो तो जातक सन्तति-विहीन होता है। पञ्चम

भाव का स्वामी यदि पञ्चम भावगत हो और शुभग्रहों की दृष्टि से हीन हो तब भी वही फल दैवज्ञों ने कहा है ॥९॥

बहुपुत्र योग

सुतनाथजीवकुजभास्करेषु वै
पुरुषांशकेषु च गतेषु कुत्रचित् ।
मुनयो वदन्ति बहुपुत्रतां तदा
सुतनाथवीर्यवशतः सुपुत्रताम् ॥१०॥

पञ्चमभावाधिपति, बृहस्पति और मङ्गल यदि पुरुष राशि (विषम राशि) के नवांश में स्थित होकर किसी भाव में अवस्थित हों तो पूर्व मनीषियों के अनुसार जातक अनेक पुत्रों से युक्त होता है । पञ्चम भाव के स्वामी के बलाबल के अनुसार सुपुत्र या कुपुत्र का निर्णय करना चाहिए ॥१०॥

पुत्र-कन्या जन्म-निर्णय

पुंराश्यंशेऽधीश्वरे पुंग्रहेन्द्रैर्युक्ते दृष्टे पुंग्रहे पुंप्रसूतिः ।
स्त्रीराश्यंशे स्त्रीग्रहैर्युक्तदृष्टे स्त्रीणां जन्म स्यात्सुतर्क्षे सुतेशे ॥११॥

यदि पञ्चम भाव का स्वामी पुरुष राशि में और पुरुष राशि के नवमांश में स्थित हो, पुरुष-ग्रहों (सूर्य, मङ्गल और बृहस्पति पुरुष ग्रह हैं) से युत और दृष्ट हों तो पुत्र का जन्म होता है ।

यदि पञ्चमभावाधिपति स्त्रीराशि (समराशि) में, स्त्रीराशि के नवमांश में स्थित हो और स्त्रीग्रहों (शुक्र और चन्द्रमा स्त्रीग्रह हैं) से युत और दृष्ट हो तो कन्या का जन्म होता है ॥११॥

'पुत्रस्थानपतौ तु वा नवमपे लग्नात्कलत्रेऽथवा
युग्मर्क्षे शशिशुक्रवीक्षितयुते पुत्रजनो जायते ।
पुंवर्गे पुरुषग्रहेक्षितयुते जातस्तु पुत्राधिको
जीवात्पञ्चमराशितश्च तनयप्राप्तिं वदेद्दैशिकः' ॥ (जातकपारिजात)

आधान काल

बलयुक्तौ स्वगृहांशेष्वर्कसितावुपचयर्क्षगौ पुंसाम् ।
स्त्रीणां वा कुजचन्द्रौ यदा तदा सम्भवति गर्भः ॥१२॥

पुरुष के जन्माङ्ग में सूर्य और शुक्र अपनी राशि और अपने नवमांश में स्थित हों तथा स्त्री के जन्माङ्ग में मङ्गल और चन्द्रमा उक्त स्थिति में बलवान् हों और गोचर में ये ग्रह उपचय (तृतीय, षष्ठ, दशम और एकादश भावस्थ) राशियों में स्थित हों तो गर्भस्थिति सम्भव होती है ॥१२॥

उक्त श्लोक के द्वितीय चरण में 'सितावुपचय' पद प्रयुक्त है । फलदीपिका की एक प्रति में 'सितावपचय' पाठ मिला है जिसके अनुसार पुरुष-जन्माङ्ग में सूर्य और शुक्र स्वगृही

और स्वनवांशस्थ होकर बलवान् हों और गोचर से अपचय भावों में स्थित हों तो गर्भ सम्भव होता है—ऐसा अर्थ होता है। ऐसा अर्थ अनुपयुक्त है, क्योंकि इसी ग्रन्थ के एकादश अध्याय के ११वें श्लोक में कहा गया है—दृष्टेऽस्मिन् गुरुणा निजोपचयगे कुर्यान्निषेकं पुमान्'। अत: अपचय शब्द यहाँ युक्तियुक्त नहीं है।

सन्तानसंख्या-निर्णय

अशत्रुनीचारिनवांशकैः सुते सुतेशयुक्तैरपि तैस्तथाविधैः।
सुतर्क्षगैर्वा गुरुभादिनांशकात् सुते फलैः पुत्रमिति विचिन्त्यते ॥१३॥

पञ्चम भाव और पञ्चम भाव के स्वामी के साथ जितने ग्रह संयुक्त हों उनमें से कितने ग्रह मित्रनवांश के, कितने शत्रु या नीच नवांश के हैं। इसी प्रकार बृहस्पति और सूर्य स्थित राशि (भाव) से पञ्चम भाव और उसके स्वामी से युत ग्रहों में कितने मित्रनवांश में, शत्रु या नीच नवांश के हैं। इनमें जितने ग्रह मित्रनवांश के हों उस संख्या तुल्य जातक को सन्तान-लाभ होता है ॥१३॥

'संख्या नवांशतुल्या सौम्यांशे तावती सदा दृष्टा।
शुभदृष्टे तद्द्विगुणा क्लिष्टा पापांशकेऽथवा दृष्टम्' ॥ (सारावली)

सन्तान संख्या के सम्बन्ध में पराशर ने अनेक योग बतलाये हैं। उनमें से कुछ यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

'चतुर्थे पापसंयुक्ते षष्ठे चैव तथैव हि। सुतेशे परमोच्चस्थे लग्नेशेन समन्विते ॥
कारके शुभसंयुक्ते दशसंख्यास्तु सूनवः। पञ्चमात्पञ्चमे मन्दे सुतस्थे च चदीश्वरे ॥
सूनवः सप्तसंख्याश्च द्विगर्भे यमलं भवेत्। वित्तेशे पञ्चमस्थे च सुतस्थे पञ्चमाधिपे ॥
षट्संख्या च सुतप्राप्तिस्तेषां च त्रिप्रजामृतिः। लग्नात्पञ्चमगे जीवे जीवात्पञ्चमगे शनौ ॥
मन्दात्पञ्चमगे राहौ पुत्रमेकं विनिर्दिशेत्' ॥ (पराशर)

पुरुष-स्त्री की सन्तानोत्पादकता

जीवेन्दुक्षितिजस्फुटैक्यभवने युग्मे च युग्मांशके
स्त्रीणां क्षेत्रबलं वदन्ति सुतदं मिश्रे प्रयासात्फलम्।
भास्वच्छुक्रगुरुस्फुटैक्यभवनेऽप्योजांशकेऽप्योजभे
पुंसां बीजबलं सुतप्रदमिमं मिश्रे तु मिश्रं वदेत् ॥१४॥

स्त्री के जन्माङ्ग में बृहस्पति, चन्द्रमा और मङ्गल के राश्यादि भोगों के योग यदि सम राशि के हों और समराशि का ही नवमांश हो तो स्त्री सन्तान उत्पन्न करने में सक्षम होती है। यदि योगफल में विषम राशि और नवांश में समराशि हो अथवा समराशि और विषमराशि का नवांश हो तो बहुत प्रयास से सन्तान-सुख होता है।

पुरुष के जन्माङ्ग में सूर्य, शुक्र और बृहस्पति के राश्यादि भोगों के योग यदि विषम-राशि और विषमनवांश में हो तो पुरुष की सन्तानोत्पादकता उत्तम होती है। राशि और

नवांश राशियाँ यदि मिश्रित हों अर्थात् एक समराशि और दूसरी विषमराशि हो तो मिश्रफल अर्थात् बहुत प्रयास के बाद ही सन्तान-सुख सम्भव होगा ॥१४॥

उदाहरणस्वरूप यहाँ एक दम्पति के जन्माङ्ग दिये जाते हैं जिन्हें आजीवन सन्तान सुख से वंचित रहना पड़ा।

पति		पत्नी	
जन्मदिनाङ्क/समय		जन्मदिनाङ्क/समय	
२५।४।१९३२/८।३२ रात्रि।		२१।७।१९३५/११।४८ रात्रि	
लग्न	७रा।१०°।४'।२७"	लग्न	०रा।११°।५'।१७"
सूर्य	०रा।१२°।१५'।३९"	सूर्य	३रा।५°।५'।१९"
चन्द्र	८रा।१७°।२५'।१६"	चन्द्र	११रा।२१°।१४'।३१"
भौम	११रा।२४°।१९'।३९"	भौम	६रा।२°।५१'।१८"
बुध	११रा।२१°।३२'।११"	बुध	२रा।१७°।१९'।५७"
गुरु	३रा।२०°।८'।५२"	गुरु	६रा।२°।३७'।३८"
शुक्र	१रा।२७°।४१'।५९"	शुक्र	४रा।१८°।२३'।३६"
शनि	९रा।११°।३२'।४६"	शनि	१०रा।१६°।३२'।१३"
राहु	११रा।१°।१४'।३६"	राहु	८रा।२८°।३६'।५६"

जन्माङ्ग (पति)

जन्माङ्ग (पत्नी)

पुरुष-जन्माङ्ग में सूर्य, शुक्र और बृहस्पति के स्पष्ट राश्यादि का योग = ६।०।६।३०

इस योगज राश्यादि की राशि तुला है जो विषम राशि है। नवांश राशि वृश्चिक है जो समराशि है। यह सम-विषम योग होने से पति में पुत्रोत्पादक क्षमता निर्बल है।

स्त्री के जन्माङ्ग में चन्द्रमा, बृहस्पति और मङ्गल के राश्यादि भोगों का योग ११रा।२६°।४३'।२७" है जो सम राशि मीन है और मिथुन के नवांश में है जो सम राशि है। स्पष्ट है कि स्त्री में सन्तानोत्पादक क्षमता निर्बल है।

यत: पुरुष के जन्माङ्ग में पञ्चम भाव का स्वामी बृहस्पति उच्चराशिस्थ होकर नवम भाव में स्थित है और पञ्चम भाव पर पूर्ण दृष्टि प्रक्षिप्त करता है अत: दो बार गर्भस्थिति होकर स्रवित हो गया। आज भी वे सन्तानाभाव से ग्रस्त है।

सन्तानतिथिस्फुट

पञ्चाघ्नाच्छशिनः स्फुटादिषुहतं भानुस्फुटं शोधये-
न्नीत्वा तत्र तिथिं सिते शुभतिथौ पुत्रोऽस्त्ययत्नादपि।
कृष्णे नास्ति सुतस्तिथेर्बलवशाद् ब्रूयाद् द्वयोः पक्षयोः
दर्शे च्छिद्रतिथौ च विष्टिकरणे न स्यात् स्थिराख्ये सुतः ॥१५॥

सूर्य के राश्यादि भोग को पाँच से गुणा कर चन्द्रमा के पञ्चगुणित राश्यादि भोग से हीन करने पर जो राश्यादि प्राप्त हो वह सन्तान-तिथि स्पष्ट होती है। इस राश्यादि शेष से उत्पन्न तिथि शुक्लपक्ष की शुभ तिथि हो तो सन्तानोत्पत्ति सहज सम्भव होती है। कृष्णपक्ष की शुभ तिथि हो तो सोपाय सन्तान-सुख होता है। दोनों पक्षों में तिथि और विष्टि आदि करण के बलाबल का निर्णय कर फल कहना चाहिए। अमावास्या और दोनों पक्षों की छिद्र तिथियाँ अनुत्पादक होती हैं अर्थात् यदि उक्त शेष राश्यादि से ये तिथियाँ (अमावास्या और छिद्र तिथियाँ) प्राप्त हों तो सन्तान-सुख का अभाव होता है। विष्टि और स्थिर करण भी अनुत्पादक होते हैं ॥१५॥

पञ्चगुणित चन्द्रमा और सूर्य के अन्तर के राश्यादि को अंशादि बनाकर उसमें १२ से भाग देने पर लब्धि गत तिथि होती है। दोनों पक्षों की चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी, नवमी, द्वादशी और चतुदर्शी ये छिद्र तिथियाँ हैं। शुभ कर्मों में इनका त्याग करना चाहिए।

तिथ्यर्द्ध को करण कहते हैं। इस प्रकार एक तिथि में दो करण होते हैं। करण के चर और स्थिर दो भेद होते हैं। शकुनि, चतुष्पद, नाग और किंस्तुघ्न ये चार स्थिर करण हैं। कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के उत्तरार्द्ध में शकुनी की प्रवृत्ति होती है। अमावास्या के पूर्वार्द्ध में चतुष्पद उत्तरार्द्ध में नाग और शुक्लपक्ष की प्रतिपदा का पूर्वार्द्ध किंस्तुघ्न करण होता है।

बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज और विष्टि (भद्रा)—ये सात चर करण हैं। शुक्लपक्ष की प्रतिपदा के उत्तरार्द्ध में बव करण की प्रवृत्ति होकर सभी तिथियों में क्रमशः शेष करण होते हैं। इस प्रकार कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के पूर्वार्द्ध में विष्टि पर्यन्त इनकी ८ आवृतियाँ होती हैं।

पूर्वोक्त उदाहरण में पति के जन्माङ्ग के अनुसार सूर्य के पञ्चगुणित स्पष्ट राश्यादि भोग ०।१२।१५।३९ × ५ = २।१।१८।१५ को चन्द्रमा के पञ्चगुणित स्पष्ट राश्यादि भोग ८।१७।२५।१६ × ५ = ४२।२७।६।२० में हीन करने पर शेष ४०।२५।४८।५ = ४।२५।४८।५ बचा। इसके अंशादि १४५।४८।५ को १२ से भाग देने पर लब्धि १२ गत तिथि और वर्तमान सन्तान तिथि त्रयोदशी हुई।

स्त्री के जन्माङ्ग के अनुसार पञ्चगुणित चन्द्रमा के राश्यादि—११।२१°१४'।३१" × ५ = ५८।१६।१२।३५ में पञ्चगुणित सूर्य के राश्यादि भोग १५।२५°।२५'।४५" को हीन करने से शेष ४२।२०।४६।५० = ६।२०°।४६'।५०" = २००°।४६'।५०" को १२ से भाग देने लब्धि १६ गत तिथिसंख्या और १७ अमावास्या से वर्तमान तिथिसंख्या हुई।

इसमें शुक्लपक्ष की १५ तिथि घटा देने से कृष्णपक्ष की द्वितीया वर्तमान सन्तान स्फुट तिथि हुई। कृष्णपक्ष की तिथियाँ सन्तानोत्पत्ति के लिए निर्बल होती हैं। सप्रयास सन्तान-प्राप्ति की सम्भावना बनती है।

सन्तानदोष-परिहार

विष्टिः स्थिरं वा करणं यदि स्यात् कृष्णं यजेत् पौरुषसूक्तमन्त्रैः।
षष्ठ्यां गुहाराधनमत्र कार्यं यजेच्चतुर्थ्यां किल नागराजम् ॥१६॥
रामायणस्य श्रवणं नवम्यां यद्यष्टमी चेच्छ्रवणव्रतं च।
चतुर्दशी चेद्यदि रुद्रपूजा स्याद्द्वादशी चेत्स्मृतमन्नदानम् ॥१७॥
तृप्तिं पितृणामिह पञ्चदश्यां कृष्णे दशम्याः परतोऽतियत्नात्।
पक्षत्रिभागेष्वपि नागराजं स्कन्दं च सेवेत हरिं क्रमेण ॥१८॥

उक्त प्रकार से सन्तान तिथि स्फुट से विष्टि (भद्रा) या चतुष्पदादि स्थिर करण आये तो पुरुषसूक्त से श्रीकृष्ण की अर्चना करनी चाहिए। यदि षष्ठी तिथि प्राप्त हो तो गुहराज कार्तिक की, चतुर्थी तिथि प्राप्त हो तो नागराज की उपासना से, नवमी तिथि प्राप्त हो तो रामायण के श्रवण से, अष्टमी तिथि प्राप्त हो तो (धार्मिक कथाओं के) श्रवण व्रत आदि से, चतुर्दशी तिथि प्राप्त हो तो भगवान् शङ्कर के पूजन आदि से, द्वादशी तिथि प्राप्त हो तो अन्नदान से, अमावास्या या पूर्णिमा प्राप्त हो तो पितरों की तुष्टि से दोष का परिहार होता है। यदि कृष्णपक्ष की दशमी से अमावास्या पर्यन्त कोई तिथि प्राप्त हो तो विशेष रूप से यजनादि करने से दोष का शमन होता है।

कृष्णपक्ष की कुल तिथियाँ दूषित हैं। यदि कृष्ण प्रतिपदा से पञ्चमी पर्यन्त तिथि प्राप्त हो तो नागराज की, षष्ठी से दशमी पर्यन्त यदि कोई तिथि प्राप्त हो तो स्कन्द (कार्तिक) की और यदि अन्तिम पाँच तिथियों में से कोई तिथि प्राप्त हों तो हरि की उपासना-अर्चना से दोष का परिहार होता है ॥१६-१८॥

पुत्रेशो रिपुनीचगोऽस्तमयगो रिःफाष्टमारिस्थित-
स्तद्वत्पुत्रगृहस्थितोऽपि यदि वा दुःस्थानपस्तद्वशात्।
पुत्राभावनिदानमेव कथयेत् तत्खेचराक्रान्तभ-
प्रोक्तैर्दैवतभूरुहैरपि मृगैः सन्तानहेतुं वदेत् ॥१९॥

पञ्चम भाव का स्वामी यदि शत्रु या नीच राशि में स्थित हो या सूर्यरश्मि से अस्त हो; षष्ठ अष्टम या द्वादश भाव में स्थित हो, पञ्चम भाव में स्थित ग्रह उन्हीं स्थितियों (शत्रु या नीच राशि में) अथवा सूर्य-सान्निध्य से अस्त हो अथवा षष्ठ, अष्टम या द्वादश भाव के स्वामी हों तो अनपत्यता प्रायः निश्चित होती है।

बाधक ग्रह द्वारा अधिष्ठित राशि से सम्बन्धित देवता, वृक्ष या पशु की उपासना से दोष का निवारण होता है ॥१९॥

द्रोहाच्छम्भुसुपर्णयोर्नहि सुतः शापात्पितृणां रवे-
रिन्दोर्मातृसुवासिनीभगवतीकोपान्मनोदोषतः ।
स्वग्रामस्थितदेवतागुहरिपुज्ञात्युत्थदोषात्कुजे
शापाद्बालकृताद्बिडालवधतः श्रीविष्णुकोपाद् बुधे ॥ २०॥
पारम्पर्यसुरप्रियद्विजगुरुद्रोहात्फलाढ्यद्रुम-
च्छेदाद्देवगुरौ तथा सति भृगौ पुष्पद्रुमच्छेदनात् ।
साध्वीगोकुलजातदोषवशतो यक्ष्मादिकामेन सा
मन्देऽश्वत्थवधाद्रुषा पितृपतेः प्रेतैः पिशाचादिभिः ॥२१॥
स्वर्भानौ सुतगे सुतेशसहिते सर्पस्य शापात्तथा
केतौ ब्राह्मणशापतश्च गुलिके प्रेतोत्थशापं वदेत् ।
शुक्रेन्दू गुलिकान्वितौ यदि वधूगोहत्तिमाहुः सुते
जीवो वाथ शिखी समान्दिरिह चेद्भूदेवहत्याऽसुतः ॥२२॥

यदि दोषकारक ग्रह सूर्य हो तो शिव और गरुड के कोप से अथवा पितरों के शाप से; चन्द्रमा हो तो मातृ अथवा सधवा स्त्री के कोप से; मंगल हो तो ग्रामदेवता, कार्तिक, शत्रु या स्वजनों के शाप से; बुध हो तो बिडाल हत्या से, मछलियों अथवा अन्य प्राणी के अण्डों को नष्ट करने से अथवा बालक-बालिकाओं के या विष्णु के कोप के कारण; बृहस्पति दोष-कारक हो तो गुरुद्रोह अथवा फलदार वृक्षों के उच्छेदन से शुक्र दोषकारक हो तो किसी सम्भ्रान्त महिला के प्रति कृत अभद्रता के कारण, गौ के प्रति अपराध के फलस्वरूप अथवा यक्षिणी आदि के शाप से; शनि हो तो पिप्पल वृक्षोच्छेदन या यम-प्रेतादि के कोप से; राहु बाधक हो तो सर्प के प्रति कृत किसी अपराध के फलस्वरूप शापित होने से और यदि केतु दोषकारक हो तो किसी ब्राह्मण के शाप से अनपत्यता (सन्तानहीनता) होती है। पञ्चम भाव में यदि मान्दी अवस्थित हो तो किसी मृतात्मा के कोप से और यदि शुक्र एवं चन्द्रमा मान्दी के साथ पञ्चम भाव में स्थित हों तो किसी युवती या गोहत्या के पाप से अनपत्यता होती है। मान्दी के साथ बृहस्पति अथवा केतु पञ्चम भाव में स्थित हो तो ब्रह्महत्या के पाप से अनपत्यता होती है ॥२०-२२॥

एवं हि जन्मसमये बहुपूर्वजन्म-
कर्मार्जितं दुरितमस्य वदन्ति तज्ज्ञाः ।
तत्तद्ग्रहोक्तजपदानशुभक्रियाभि-
स्तद्दोषशान्तिमिह शंसतु पुत्रसिद्ध्यै ॥२३॥

इस प्रकार पूर्वाचार्यों ने जन्माङ्ग के आधार पर मनुष्यों द्वारा अनेक पूर्वजन्मों में सञ्चित पाप का वर्णन किया है जिसके कारण उन्हें सन्तानहीनता का दुःख भोगना होता है। उन बाधाकारक ग्रहों के लिए कथित जप-दानादि शुभकर्मों के करने से उन दोषों का शमन हो जाता है और सन्तान की प्राप्ति होती है ॥२३॥

सेतुस्नानं कीर्तनं सत्कथायाः पूजां शम्भोः श्रीपतेः सद्व्रतानि ।
दानं श्राद्धं कर्जनागप्रतिष्ठां कुर्यादेतैः प्राप्नुयात्सन्ततिं सः ।।२४।।

समुद्रस्नान, कीर्तन (नागकीर्तन), सुन्दर कथाओं का श्रवण, विष्णु और शिव का अर्चन, व्रतोपवास आदि का आचरण, दान-श्राद्धादि कर्म, नागप्रतिमा की स्थापना-पूजन-अर्चनादि के अनुसरण करने से सन्तान-प्राप्ति सम्भव होती है ।।२४।।

पराशर ने अपने होराशास्त्र में मातृ, पितृ, भ्रातृ, मातुलादि, ब्राह्मण, प्रेतादि के शाप से सम्बन्धित अनेक योगों को कहा है और उनकी शान्ति के उपाय भी बतलाये हैं।

सर्पशापवशात् अनपत्यता—

'पुत्रस्थागते राहौ कुजेनापि निरीक्षिते। कुजक्षेत्रगते वाऽपि सर्पशापात्सुतक्षयः ।।
पुत्रेशे राहुसंयुक्ते पुत्रस्थे भानुनन्दने। चन्द्रदृष्टे युते वाऽपि सर्पशापात्सुतक्षयः ।।
पुत्रस्थाने कुजक्षेत्रे पुत्रे राहुसमन्विते। सौम्यदृष्टे युते वाऽपि सर्पशापात्सुतक्षयः' ।।

दोष-निवारण—

'ग्रहयोगवशादेवं योगं ज्ञात्वा सुधीमता। तद्दोषपरिहारार्थं नागपूजां समाचरेत् ।।
स्वगृह्योक्तविधानेन प्रतिष्ठां कारयेत्सुधीः । नागमूर्तिं सुवर्णेन कृत्वा पूजां समाचरेत् ।।
गोभूमितिलहिरण्यादि दद्याद्वित्तानुसारतः । एवं कृते तु नागेन्द्रप्रसादाद्वर्धते कुलम्' ।।

पितृशापवशात् अनपत्यता—

'पुत्रस्थानाधिपे भानौ त्रिकोणे पापसंयुते। क्रूरेऽन्तरे पापदृष्टे पितृशापात्सुतक्षयः ।।
लग्नेशे दुर्बले पुत्रे पुत्रेशे भानुसंयुते। पुत्रे लग्ने पापयुते पितृशापात्सुतक्षयः ।।
पितृस्थानाधिपे पुत्रे पुत्रेशे च तथास्थिते। लग्ने पुत्रे पापयुते पितृशापात्सुतक्षयः ।।
रोगेशे पुत्रभावस्थे पितृस्थानाधिपे तथा। कारके राहुसंयुक्ते पितृशापात्सुतक्षयः' ।।

दोष-परिहार—

'तद्दोषपरिहारार्थं गयाश्राद्धं च कारयेत् । ब्राह्मणान् भोजयेत्तत्र अयुतं वा सहस्रकम् ।।
कन्यादानं ततः कृत्वा गां च दद्यात्सवत्सकाम् । एवं कृते पितुः शापान्मुच्यते नात्र संशयः' ।।

मातृशापवशात् अनपत्यता—

'पुत्रस्थानाधिपे चन्द्रे नीचे वा पापमध्यगे । हिबुफे पञ्चमे वाऽपि मातृशापात्सुतक्षयः ।।
पुत्रस्थानाधिपे चन्द्रे मन्दराह्वारसंयुते। भाग्ये वा पुत्रराशौ वा कारके पुत्रनाशनम् ।।
नाशस्थानाधिपे पुत्रे पुत्रेशे नाशराशिगे। चन्द्रमातृपतौ दुःस्थे मातृशापात्सुतक्षयः ।।
लग्ने पुत्रे रन्ध्ररिःफे आरराहुरविः शनिः । मातृलग्नाधिपे दुःस्थौ मातृशापात्सुतक्षयः' ।।

दोष-निवारण—

'सेतुस्नानं प्रकुर्वीत गायत्री लक्षसंज्ञके । ग्रहदानं च कर्तव्यं रौप्यपात्रे पयःस्थितिः ।।
ब्राह्मणान् भोजयेत्तद्वदश्वत्थस्य प्रदक्षिणाम् । कर्तव्यं भक्तियुक्तेन चाष्टविंशसहस्रकम्' ।।

भ्रातृशापवशात् अनपत्यता—

'भ्रातृस्थानाधिपे पुत्रे कुजराहुसमन्विते। पुत्रलग्नेश्वरौ रन्ध्रे भ्रातृशापात्सुतक्षयः ॥
लग्ने सुते कुजे मन्दे भ्रातृपे भाग्यराशिगे। कारके नाशराशिस्थे भ्रातृशापात्सुतक्षयः ॥
मूर्त्तिस्थानाधिपे रि:फे भौमः पञ्चमगो यदि। पुत्रेशे रन्ध्रभावस्थे भ्रातृशापात्सुतक्षयः ॥
भ्रात्रीशे नाशराशिस्थे पुत्रस्थे कारके तथा। राहुमान्दियुते दृष्टे भ्रातृशापात्सुतक्षयः' ॥

दोष-परिहार—

'भ्रातृशापविमोक्षार्थं श्रवणं विष्णुकीर्तनम्। चान्द्रायणं चरेत्पश्चात्कौबेर्यां विष्णुसन्निधौ ॥
अश्वत्थस्थापनं कार्यं दशधेनुं प्रदापयेत्। प्राजापत्यं चरेत्तत्र भूमिं दद्यात्फलान्वितम्' ॥

मातुलशापवशात् अनपत्यता—

'पुत्रस्थाने बुधे जीवे कुजराहुसमन्विते। लग्ने मन्दसमायोगे मातुलात्सुतनाशनम्।
लग्नपुत्रेश्वरौ पुत्रे शनिभौमबुधान्विते। ज्ञेयो मातुलशापत्वात्पुत्रसन्ततिनाशनम् ॥
लुप्ते पुत्राधिपे लग्ने सप्तमे भानुनन्दने। लग्नेशे बुधसंयुक्ते तस्य सन्ततिनाशनम् ॥
ज्ञातिस्थानाधिपे लग्ने व्ययेशेन समन्विते। शशिसौम्यकुजे पुत्रे तस्य सन्ततिनाशनम्' ॥

दोष-परिहार—

'तद्दोषपरिहारार्थं विष्णुस्थापनमुच्यते। वापीकूपतडागादेर्निर्माणं सेतुबन्धनम् ॥
पुत्रवृद्धिर्भवेत्तस्य सम्पद्वृद्धिः प्रजायते। एवं योगग्रहेणैव फलं ब्रूयाद्विचक्षणैः' ॥

ब्राह्मणशापवशात् अनपत्यता—

'गुरुक्षेत्रे यदा राहुः पुत्रे जीवारभानुजाः। धर्मस्थानाधिपे नाशे ब्रह्मशापात्सुतक्षयः ॥
धर्मेशे पुत्रभावस्थे पुत्रेशे नाशराशिगे। जीवारराहुमृत्युस्थे ब्रह्मशापात्सुतक्षयः ॥
मन्दांशे मन्दसंयुक्ते जीवे भौमसमन्विते। पुत्रेशे व्ययराशिस्थे ब्रह्मशापात्सुतक्षयः ॥
जीवे नीचगते राहुर्लग्ने वा पुत्रराशिगे। पुत्रस्थानाधिपे दुःस्थे ब्रह्मशापात्सुतक्षयः' ॥

दोष-परिहार—

'तस्य दोषस्य परिहारार्थं कुर्याच्चान्द्रायणं नरः। ब्रह्मकूर्चत्रयं कृत्वा धेनुर्दद्यात्सदक्षिणाम् ॥
पञ्चरत्नानि देयानि सुवर्णेन समन्वितम्। अन्नदानं ततः कुर्यादयुतं च सहस्रकम्' ॥

प्रेत शब्द उन पितरों के लिए आचार्य ने प्रयोग किया है जिनकी श्राद्धादि प्रेतकर्म में त्रुटि के कारण सद्गति नहीं हुई है। ऐसी असन्तुष्ट आत्माओं को प्रेत कहते हैं। इन असन्तुष्ट आत्माओं के शाप के कारण वंशवृद्धि बाधित हो जाती है। आचार्य ने स्वयं कहा है—

'मन्त्रशापमिदं मर्त्यः पिशाचं बाध्यते सदा।
कर्मलोपं पितृभ्यश्च तच्छापाद्वंशनाशनम्' ॥

जन्माङ्ग में निम्न योगों में से यदि कोई उपस्थित हो और अनपत्यता हो तो उसका कारण प्रेतबाधा ही समझना चाहिए—

'पुत्रस्थितौ मन्दसूर्यौ क्षीणचन्द्रस्तु सप्तमे । लग्ने व्यये राहुजीवौ प्रेतशापात्सुतक्षयः ॥
पुत्रस्थानाधिपे मन्दे नाशस्थे लग्नगे कुजे । कारके नाशराशिस्थे प्रेतशापात्सुतक्षयः ॥
लग्ने पापे व्यये भानौ सुते चारार्किसोमजाः । पुत्रेशे रन्ध्रभावस्थे प्रेतशापात्सुतक्षयः ॥
लग्ने मन्दे सुते राहौ रन्ध्रे भानुसमन्विते । व्यये भौमे समायोगे प्रेतशापात्सुतक्षयः' ॥

दोष-परिहार—

'तद्दोषस्य शान्त्यर्थं विष्णुश्राद्धं समाचरेत् । रुद्राभिषेकं कुर्वीत ब्रह्ममूर्तिं प्रदापयेत् ॥
धेनुं रजतपात्रञ्च नीलं चैव प्रदापयेत् । एतत्कर्मकृते तत्र शापमोक्षः प्रजायते' ॥
(पराशर)

सन्तान-प्राप्तिकाल

लग्नास्तपुत्रपतिजीवदशापहारे
पुत्रेक्षकस्य सुतगस्य च पुत्रसिद्धिः ।
पुत्रेशराशिमथवा यमकण्टकर्क्षे
जीवे गते तनयसिद्धिरथांशभे वा ॥२५॥

लग्न, सप्तम, पञ्चम भावों के स्वामियों, बृहस्पति, पञ्चम भाव के द्रष्टा ग्रह तथा पञ्चम भाव में स्थित ग्रह—इन सब ग्रहों की दशान्तर्दशा सन्तान को जन्म देने वाली होती हैं। पञ्चम भाव का स्वामी जिस राशि में अथवा जिस राशि के नवमांश में स्थित हो उस राशि में तथा यमघण्ट नामक उपग्रह की राशि या उसकी नवमांश राशि में जब गोचर का बृहस्पति आता है तब सन्तान-प्राप्ति होती है ॥२५॥

इस श्लोक में उन सभी ग्रहों की चर्चा की गई है जिनकी दशाएँ और अन्तर्दशाएँ सन्तान-सुखप्राप्ति के अनुकूल होती हैं। सन्तान-प्राप्ति के लिए गोचरजन्य परिस्थितियों की भी चर्चा की गई है। यमघण्ट बृहस्पति का उपग्रह है। इसकी स्थिति जानने की विधि अध्याय ३ के श्लोक सं. १६ की टीका में बतलाई गई है। गुलिक-आनयन की उक्त विधि से ही यमघण्ट का आनयन होगा। अन्तर केवला इतना है कि दिनमान के अष्टमांश में गुलिक के ध्रुवाङ्क के स्थान पर यमघण्ट के ध्रुवाङ्क से गुणा करना होगा। शेष क्रिया गुलिक-साधन की क्रिया के समान ही है।

लग्नाधीशः पुत्रनाथेन योगं स्वोच्चे स्वर्क्षे चारगत्या समेति ।
पुत्रप्राप्तिः स्यात्तदा लग्ननाथः पुत्रर्क्षं वा याति धीशाप्तभं वा ॥२६॥

जब लग्नेश गोचर से (१) पञ्चमाधिपति से संयुक्त हो, (२) उच्चराशि में, (३) अपनी राशि में, (४) पञ्चमभावस्थ राशि में तथा (५) पञ्चमेशाधितिष्ठित राशि में गोचर से लग्नेश के योग करने पर पुत्रप्राप्ति की सम्भावना होती है ॥२६॥

विलग्नकामात्मजनायकानां योगात्समानीय दशां महाख्याम् ।
सुतस्थतद्वीक्षकतत्पतीनां दशापहारेषु सुतोद्भवः स्यात् ॥२७॥

(१) लग्नेश, (२) सप्तमेश और (३) पञ्चमेश के स्पष्ट राश्यादि भोग का योग जिस नक्षत्र में पड़ता हो उसके स्वामी की महादशा में (१) पञ्चमभावस्थ ग्रह, (२) पञ्चम भाव के द्रष्टा ग्रह और (३) पञ्चमेश, इनकी अन्तर्दशाओं में पुत्रलाभ होता है ॥२७॥

सुतपतिगुर्वोरथवा तद्युक्तराश्यंशकाधिपानां वा।
बलसहितस्य दशायामपहारे वा सुतप्राप्तिः ॥२८॥

(१) पञ्चमेश, (२) बृहस्पति और (३) मङ्गल जिस राशि में स्थित हों उनके स्वामियों अथवा उनके नवांशपतियों में जो अधिक बलवान् हो उसकी दशान्तर्दशाएँ पुत्रप्रद होती हैं ॥२८॥

जीवे तु जीवात्मजनाथभांशकत्रिकोणगे पुत्रजनिर्भवेन्नृणाम्।
अथान्यशास्त्रेण च जन्मकालतो निरूपयेत्सन्ततिलक्षणं बुधः ॥२९॥

बृहस्पति से पञ्चम भाव का स्वामी जिस राशि या जिस राशि के नवांश में स्थित हो उससे त्रिकोण राशि में गोचर से बृहस्पति के आने के समय सन्तान-प्राप्ति होती है।

सन्तान-प्राप्तिकाल जानने की यह गोचर विधि है। किन्तु कतिपय पूर्वाचार्यों के मतानुसार सन्तान-प्राप्तिकाल का निर्णय जन्माङ्ग पर से ही करना चाहिए ॥२९॥

जन्मनक्षत्रनाथस्य प्रत्यर्यार्क्षाधिपस्य[1] च।
स्फुटयोगं गते जीवे त्रिकोणे वा सुतोद्भवः ॥३०॥

जन्मनक्षत्र और उससे पञ्चम नक्षत्र के स्वामियों के स्पष्ट राश्यादि का योग करने से उत्पन्न राश्यादि अथवा उससे पञ्चम या नवम राशि में बृहस्पति के आने पर मनुष्यों को सन्तान-लाभ होता है ॥३०॥

निषेकलग्नाद्दिनपस्तृतीये राशौ यदा चारवशादुपैति।
आधानलग्नादथवा त्रिकोणे रवौ यदा जन्म वदेन्नराणाम् ॥३१॥

आधानलग्न से तृतीयभावस्थ राशि में अथवा आधानलग्न से पञ्चम या नवम राशि में जब गोचर का सूर्य आता है तब सन्तान-सुख की प्राप्ति होती है ॥३१॥

आधानलग्नात्सुतभेशजन्म भाग्येऽपि वा पुण्यवशाच्च वाच्यम्।
आधानलग्ने शुभदृष्टियोगे दीर्घायुरैश्वर्ययुतो नरः स्यात् ॥३२॥

आधानलग्न से पञ्चम अथवा नवम राशि में यदि पुत्रजन्म हो तो उसे पिता के द्वारा पूर्वजन्म में कृत पुण्य कर्मों का फल समझना चाहिए।

आधानलग्न में यदि शुभग्रहों की युति अथवा शुभग्रहों की दृष्टि का योग हो तो जातक दीर्घायु और ऐश्वर्यवान् होता है ॥३२॥

---

१. 'प्रत्युरक्षाधिपस्य' इति पाठान्तरम्।

तत्कालेन्दुद्वादशांशे मेषात्तावति भेऽपि वा।
तस्मात्तावति भे वाऽपि जन्मचन्द्रं वदेद्बुधः ॥३३॥

आधानकालिक चन्द्रमा जिस राशि के, जिस द्वादशांश में स्थित हो मेष से द्वादशांश तुल्य जो राशि हो वही जातक की जन्मराशि होती है। अथवा आधानकालिक चन्द्रराशि से द्वादशांश तुल्य राशि जातक की जन्मराशि होती है ॥३३॥

जैसे मान लीजिए—आधानकालिक चन्द्रमा (१०^रा^।१८°।५३'।२०") कुम्भराशि में १८°।५३'।२०" पर अवस्थित है। कुम्भ राशि का आठवाँ द्वादशांश १७°३०' से २०° तक कन्या राशि का होता है। अतः उक्त आधानकालिक चन्द्रमा मकर के आठवें कन्या राशि के द्वादशांश में स्थित है। मेष से गिनने से ८वीं वृश्चिक राशि होती है। अतः उक्त गर्भ से उत्पन्न जातक की जन्मराशि वृश्चिक होगी अथवा कुम्भ से गिनने से आठवीं राशि कन्या राशि जातक की जन्मराशि होगी।

प्रश्नात्मजस्वीकरणोपनीतिकन्याप्रदानाभिनवार्तवेषु ।
आधानकालेऽपि च जन्मतुल्यं फलं वदेज्जन्मविलग्नतश्च ॥३४॥

इति श्रीमन्त्रेश्वरविरचितायां फलदीपिकायां सन्तानचिन्ता
नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥
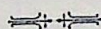
(१) प्रश्नकालिक लग्न, दत्तक पुत्र के गोद लेने के समय का लग्न, (३) यज्ञोपवीत कालिक लग्न, (४) कन्यादानकालिक लग्न, (५) प्रथम रजोदर्शनकालिक लग्न तथा (६) आधानकालिक लग्न से भी जन्मकालिक लग्न के समान ही फल का विचार करना चाहिए ॥३४॥

इस प्रकार मन्त्रेश्वरकृत फलदीपिका में सन्तानचिन्ता
नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥१२॥

त्रयोदशोऽध्यायः

अरिष्टचिन्ता

जाते कुमारे सति पूर्वमार्यैरायुर्विचिन्त्यं हि ततः फलानि।
विचारणीया गुणिनि स्थिते तद् गुणाः समस्ताः खलु लक्षणज्ञैः ॥१॥

बालक का जन्म होने पर पूर्व पुरुष प्रथमतः उसके आयुष्य का विचार करते थे। उसके अनन्तर अन्य फल का विचार करते थे। जातक के जन्माङ्ग के शुभाशुभ फल का अन्वेषण ज्योतिषज्ञों द्वारा कराना चाहिए ॥१॥

जन्माङ्ग में आयुष्य-विचार को सर्वाधिक वरीयता देनी चाहिए। क्योंकि आयुष्य के बिना राजयोगादि समस्त फल व्यर्थ हो जाते हैं। श्रीकल्याण वर्मा ने भी कहा है—

'आयुर्ज्ञानाभावे सर्वं विफलं प्रकीर्तितं यस्मात्।
तस्मात्तज्ज्ञानार्थेऽरिष्टाध्यायं प्रवक्ष्यामि' ॥

जन्मकाल-निर्णय

केचिद्यथाधानविलग्नमन्ये शीर्षोदयं भूपतनं हि केचित्।
होराविदश्चेतनकाययोन्योर्वियोगकालं कथयन्ति लग्नम् ॥२॥

कतिपय विज्ञजन आधान काल को, कुछ शीर्षोदय काल (जब बालक का शिर माता के शरीर से बाहर निकल आये उस काल) को, कुछ लोग जब बालक भूस्पर्श करे उस काल को तथा कुछ नालोच्छेद काल को जन्मकाल के रूप में ग्रहण करते हैं, क्योंकि नालोच्छेद से ही जातक माता के गर्भ से पूर्णतः विलग हो जाता है ॥२॥

द्वादश वर्ष पर्यन्त आयु-विचार

आद्वादशाब्दान्नरयोनिजन्मनामायुष्कला निश्चयितुं न शक्यते।
मात्रा च पित्रा कृतपापकर्मणा बालग्रहैर्नाशमुपैति बालकः ॥३॥

जन्म से बारह वर्ष पर्यन्त मनुष्यों की आयु का विचार निश्चयपूर्वक करना कठिन है, क्योंकि इन बारह वर्षों में बालक माता-पिता द्वारा पूर्वजन्म में किये गये पापों के फलस्वरूप या बालारिष्ट के कारण मृत्यु को प्राप्त होता है ॥३॥

'आद्वादशाब्दाज्जन्तूनामायुर्ज्ञातुं न शक्यते।
जपहोमचिकित्साद्यैर्बालरक्षां तु कारयेत्' ॥ (सर्वार्थचिन्तामणि)

आद्ये चतुष्के जननीकृताघैर्मध्ये च पित्रार्जितपापसङ्घैः।
बालस्तदन्त्यासु चतुःशरत्सु स्वकीयदोषैः समुपैति नाशम् ॥४॥

जन्म से चार वर्ष तक जातक माता के द्वारा पूर्वजन्म में किये गये पापों के फलस्वरूप मृत्यु को प्राप्त होता है। द्वितीय चतुष्क अर्थात् पाँचवें वर्ष से आठवें वर्ष पर्यन्त पिता के द्वारा पूर्वजन्म के पापों के फलस्वरूप और अन्तिम चतुष्क अर्थात् नवें वर्ष से बारहवें वर्ष पर्यन्त स्वार्जित पूर्वजन्मों के पाप के फलस्वरूप मृत्यु को प्राप्त होता है।

'पित्रोर्दोषैर्मृताः केचित्केचिद्बालग्रहैरपि ।
अपरेऽरिष्टयोगाच्च त्रिविधा बालमृत्यवः' ।। (सर्वार्थचिन्तामणि)

तद्दोषशान्त्यै प्रतिजन्मतारमाद्वादशाब्दं जपहोमपूर्वम् ।
आयुष्करं कर्म विधाय ताता बालं चिकित्सादिभिरेव रक्षेत् ।।५।।

चान्द्रगणनानुसार बालक के जन्मदिवस पर उक्त दोषों के शमन हेतु जप-होमादि आयुष्य प्रदान करने वाले विहित कर्मों का आयोजन और औषधि आदि के द्वारा पिता को जातक की रक्षा के उपाय करना चाहिए। ऐसा उसकी बारह वर्ष की आयु पर्यन्त करना चाहिए ।।५।।

आयुभेद : अल्प-मध्य-पूर्णायु

अष्टौ बालारिष्टमादौ नराणां योगारिष्टं प्राहुराविंशतिः स्यात् ।
अल्पं चाद्वात्रिंशतं मध्यमायुश्चासप्तत्याः पूर्णमायुः शतान्तम् ।।६।।

जन्मकाल से आठ वर्ष पर्यन्त बालारिष्ट, नवें वर्ष से बीस वर्ष पर्यन्त योगारिष्ट होता है। बत्तीस वर्ष तक अल्पायु, सत्तर वर्ष तक मध्यायु और इकहत्तरवें वर्ष से सौ वर्ष तक पूर्णायु होती है ।।६।।

'त्रिविधाश्चायुषां योगाः स्वल्पायुर्मध्यमोत्तमाः । द्वात्रिंशत्पूर्वमल्पं स्यात्तदूर्ध्वं मध्यमं भवेत् ।।
आसप्ततेस्तदूर्ध्वं तु दीर्घायुरिति सम्मतम्। उत्तमायुः शतादूर्ध्वमिह शंसन्ति तद्विदः' ।।
(सर्वार्थचिन्तामणि)

नृणां वर्षशतं ह्यायुस्तस्मिंस्त्रेधा विभज्यते ।
अल्पं मध्यं दीर्घमायुरित्येतत्सर्वसम्मतम् ।।७।।

मनुष्यों की पूर्णायु सौ वर्ष को तीन से भाग देने पर प्राप्त तीन खण्डों (प्रत्येक खण्ड ३३ वर्ष ४ मास) में प्रथम खण्ड अल्पायु, द्वितीय खण्ड मध्यायु और तृतीय खण्ड दीर्घायु कहलाती है। आयुष्य की यह व्यवस्था सर्वमान्य है ।।७।।

मनुष्य की पूर्णायु सौ वर्ष मानी गई है। इसके तीन तुल्य खण्ड करने से प्रत्येक खण्ड ३३ वर्ष ४ मास का होगा। ३३ वर्ष ४ मास अथवा इससे अल्प जीवन काल होने से अल्पायु, ३३ वर्ष ४ मास से अधिक ६६ वर्ष ८ मास तक मध्यायु और उसके बाद दीर्घायु होती है।

मृत्युः स्याद्दिनमृत्युरुग्विषघटीकालेऽथ तिष्येऽम्बुभे
तताम्बासुतमातुलान् पदवशात्त्वाष्ट्रे च हन्यात्तथा ।

मूलर्क्षे पितृमातृवंशविलयं तस्यान्त्यपादे श्रियं
सार्पे व्यस्तमिदं फलं न शुभसम्बन्धं विलग्नं यदि ॥८॥

जन्मकाल में दिनमृत्यु, दिनरोग या विषघटी संज्ञक कुयोग उपस्थित हो तो जातक शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होता है। पुष्य, पूर्वाषाढा और चित्रा नक्षत्रों के प्रथम चरण में यदि जन्म हो तो पिता के लिए, द्वितीय चरण में जन्म हो तो माता के लिए, तृतीय चरण में जन्म हो तो स्वयं बालक के लिए और यदि चतुर्थ चरण में जन्म हो तो मामा के लिए अरिष्ट-कारक होता है।

जन्मलग्न यदि शुभग्रह से युत-दृष्ट न हो और जन्म के समय मूल नक्षत्र का प्रथम चरण हो तो पिता का, द्वितीय चरण हो तो माता का और यदि तृतीय चरण हो तो समस्त कुल का नाश होता है। किन्तु यदि मूल के चतुर्थ चरण में जन्म हो तो धन-सम्पदादि की वृद्धि होती है। आश्लेषा नक्षत्र में इसके विपरीत फल होता है अर्थात् प्रथम चरण में जन्म हो तो श्रीवृद्धि, द्वितीय चरण में जन्म हो तो कुलनाश, तृतीय चरण में जन्म हो तो माता का और चतुर्थ चरण में जन्म हो तो पिता का नाश होता है ॥८॥

दिनरोग और दिनमृत्यु के सम्बन्ध में कालप्रकाशिका में निम्न वचन प्राप्त है—

'वसुहस्तौ विशाखार्द्रे बुध्न्याही याम्यनैर्ऋते। द्वन्द्वेषु च चतुर्ष्वंशाः क्रमशो मृत्यवो हि चेत् ॥
सार्पबुध्न्यौ याम्यमूले श्रोणार्यम्णेऽनिलेन्दुभे। रोगास्तद्वद्द्वयेऽपीन्दोः काले तु बलिनो शुभाः' ॥
(कालप्रकाशिका)

अर्थात् धनिष्ठा और हस्त के प्रथम चरण को, विशाखा और आर्द्रा के द्वितीय चरण को, उत्तराभाद्रपद और आश्लेषा के तृतीय चरण को तथा भरणी और मूल के चतुर्थ चरण को दिनमृत्यु कहते हैं। यदि दिवाजन्म के समय इनमें से कोई योग उपस्थित हो तो जातक की शीघ्र मृत्यु होती है।

आश्लेषा और उत्तराभाद्रपद के प्रथम चरण को, भरणी और मूल के द्वितीय चरण को, उत्तराफाल्गुनी और श्रवण के तृतीय चरण को, स्वाती और मृगशिरा के चतुर्थ चरण को दिनरोग कहते हैं। यह योग भी यदि दिवाजन्म के समय उपस्थित हो तभी जातक को अल्पायु प्रदान करता है। रात्रि में ये दोनों योग निष्प्रभ होते हैं।

प्रत्येक नक्षत्र की चार विभिन्न घटिकाएँ विषघटी कहलाती हैं—

'पञ्चाशज्जिनखाग्नयश्च खकृताऽखण्डला मूर्च्छनाः।
त्रिंशद्विंशरदाः खरामनखधृत्येकाश्विनौ विंशतिः ॥
शक्रेन्दौ दश वासवा रसशराः सिद्धा नखाऽऽशा दिशो
धृत्यष्टी जिनखाग्नयोऽश्वित इमाभ्योऽग्रेऽब्धिनाड्यो विषम्।
नक्षत्रस्य गतैष्ययोगगुणितः स्वस्वध्रुवः षष्ठिहृत्
स्पष्टः स्यादत ऊर्ध्वमब्धिघटिकाः स्पष्टाः स्युरेवं कृताः' ॥ (मु.मा.)

१. अश्विनी – ५०	१०. मघा – ३०	१९. मूल – ५६
२. भरणी – २४	११. पूर्वाफाल्गुनी – २०	२०. पूर्वाषाढा – २४
३. कृत्तिका – ३०	१२. उत्तराफाल्गुनी – १८	२१. उत्तराषाढा – २०
४. रोहिणी – ४०	१३. हस्त – २१	२२. श्रवण – १०
५. मृगशिर – १४	१४. चित्रा – २०	२३. धनिष्ठा – १०
६. आर्द्रा – २१	१५. स्वाती – १४	२४. शतभिष – १८
७. पुनर्वसु – ३०	१६. विशाखा – १४	२५. पू. भाद्रपद – १६
८. पुष्य – २०	१७. अनुराधा – १०	२६. उ. भाद्रपद – २४
९. आश्लेषा – ३२	१८. ज्येष्ठा – १४	२७. रेवती – ३०

उपर्युक्त तालिका में प्रत्येक नक्षत्रों की ध्रुवाएँ दी गई हैं। जन्मनक्षत्र के भभोग को उसकी ध्रुवा से गुणा कर ६० से भाग देने पर जो लब्धि प्राप्त हो उससे ४ घटिका पर्यन्त विषघटी होती है। उस काल में जन्म होने से जातक अल्पायु होता है।

उदाहरणार्थ—जन्मनक्षत्र मघा, भयात् ३२।२०, भभोग ६२।३४

६२।३४ × ३० (मघा की ध्रुवा ३०)

= १८७७

= १८७७ ÷ ६० = ३१।१७

अत: मघा नक्षत्र की ३१।१७ घट्यादि से ३५।१७ घट्यादि पर्यन्त विषघटी रहेगी। यत: बालक का जन्म मघा के ३२।२० घट्यादि गत होने पर जन्म है। स्पष्टत: जन्म विषघटी में हुआ है, इसलिये बालक अल्पायु होगा।

पापाप्तेक्षितराशिसन्धिजनने सद्यो विनाशं ध्रुवं
गण्डान्ते पितृमातृहा शिशुमृतिर्जीवेद्यदि क्ष्मापतिः।
जातः सन्धिचतुष्टयेऽप्यशुभसंयुक्तेक्षिते स्यान्मृति-
मृत्योर्भागगते च सा सति विधौ केन्द्रेऽष्टमे वा मृतिः ॥९॥

लग्न के अन्तिम अंशों में जन्म हो और लग्न के उक्त अंश पापग्रह से युत या दृष्ट हो तो जातक सद्य: मृत्यु को प्राप्त होता है। गण्डान्त काल में जन्म होने से पिता, माता और स्वयं जातक के लिए मृत्युकारक होता है। यदि बालक जीवित रह जाये तो राजा के समान ऐश्वर्यशाली होता है। चतु:सन्धियों (मीन-मेष, मिथुन-कर्क, कन्या-तुला, धनु-मकर—ये चतु:सन्धियाँ है) में जन्मलग्न यदि पापग्रह से युत या दृष्ट हो तब भी जातक की शीघ्र मृत्यु होती है। यदि मृत्युभागस्थ चन्द्रमा दशम या अष्टम भाव में स्थित हो तब भी जातक शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होता है ॥९॥

गण्डान्त तीन प्रकार के होते हैं—१. नक्षत्रगण्डान्त, २. लग्नगण्डान्त और ३. तिथिगण्डान्त। ये तीनों ही गण्डान्त अशुभ होते हैं—

'ज्येष्ठापौष्णसार्पभान्त्यघटिकायुग्मं च मूलाश्विनी-
पित्र्यादौ घटिकाद्वयं निगदितं तद्गस्य गण्डान्तकम् ।
कर्काल्यण्डजभान्ततोऽर्धघटिका सिंहाश्वमेषादिगा
पूर्णान्ते घटिकात्मकत्वशुभदं नन्दातिथेश्चादिमम्' ॥ (मुहूर्तचिन्तामणि)

ज्येष्ठा, रेवती और आश्लेषा नक्षत्रों की अन्तिम २ घटियाँ तथा मूल, अश्विनी और मघा नक्षत्रों की प्रारम्भिक २ घटियाँ गण्डान्त कहलाती हैं।

इसी प्रकार कर्क के अन्त की आधी घटी और सिंह के आदि की आधी घटी, वृश्चिक के अन्त की आधी घटी और धनुराशि के आदि की आधी घटी, मीन के अन्त की आधी घटी और मेष के प्रारम्भ की आधी घटी गण्डान्त कहलाती है।

पूर्णा तिथियों (पञ्चमी, दशमी और पूर्णिमा) के अन्त की एक घटी और नन्दा तिथियों (प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी) के आदि की १ घटी तिथिगण्डान्त कहलाती हैं।

ये गण्डान्त सभी शुभ कर्मों में त्याज्य हैं।

यदि चन्द्रमा पूर्ण बली हो तो नक्षत्रगण्डान्त निष्प्रभ होता है। बृहस्पति के बलवान् होंने पर लग्नगण्डान्त दोष नहीं होता। अभिजित् नामक मुहूर्त्त में किसी भी गण्डान्त का दोष नहीं होता।

मृत्युभाग के सम्बन्ध में आगे के दो श्लोकों में कहा गया है।

मृत्युभाग

**चान्द्रं रूपं लोकशूरो वरज्ञः कुड्ये चित्रं भाग्यलोके मुखानाम् ।
मेने राज्यं मृत्युभागाः प्रदिष्टा मेषादीनां वर्णसंख्यैर्हिमांशोः ॥१०॥**

मेषादि राशियों में चन्द्रमा का क्रमशः २६,१२,१३,२५,२४,११,२६,१४, १३,२५,५ और १२वाँ अंश मृत्युप्रद होता है ॥१०॥

**दानं धेनो रुद्र रौद्री मुखेन भाग्या भानुर्गोत्र जाया नखेन ।
पुत्री नित्यं मृत्युभागाः क्रमेण मेषादीनां तेषु जातो गतायुः ॥११॥**

कतिपय अन्य शास्त्रकारों के अनुसार मेषादि राशियों में चन्द्रमा के क्रमशः ८,९, २२,२२,२५,१४,४,२३,१८,२०,२१ और १०वाँ अंश मृत्युभाग होता है ॥११॥

चन्द्रमा के मृत्युभाग के सम्बन्ध में शास्त्रकार एकमत नहीं है। यहाँ कतिपय ग्रन्थों के मत उद्धृत किये जाते हैं।

'तनुः शरा रारिखराः किरीटिनो घना गुरुर्हेयनखा नरा नुकाः ।
शशाङ्कभागा यदि तुम्बुरादिके मुहूर्त्तजन्मादिषु मृत्युसूचकाः' ॥ (जातकपारिजात)

'कुम्भे विंशतिभागे स्यान्मृत्युं दद्यान्निशाकरः। एकविंशतिभागैस्तु सिंहे तत्त्वैस्तु गोवृषे ॥
अष्टमे मेषचन्द्रस्तु त्रयोविंशतिकोऽलिगः। द्वाविंशतिः कुलीरे तु तुलायां वेदभागकः ॥

विंशतिर्मकरे चन्द्रः कन्यायां प्रथमांशकः। धन्विन्यष्टादशो भागो मीने दशमभागयुक्॥
द्वाविंशतिर्नृयुग्मे तु चन्द्रोऽप्येवं मृतिप्रदः। ये ये निशाकरांशास्तु मृत्युभागा विवक्षिताः॥
तावद्भिर्वत्सरैर्जातो मृत्युमेति न संशयः'। (सर्वार्थचिन्तामणि)

'कुम्भे दिशति शशाङ्को भागो मृत्युं तथैकविंशाख्ये।
सिंहे च पञ्चमेंऽशे वृषे च नवमे तथैवोक्तः॥
अलिनि त्रिविंशयुक्ते मेषे च तथाष्टमे दिशति मृत्युम्।
कर्कटके द्वाविंशे तुलिनि चतुर्थे मृगे विंशे॥
कन्यायां प्रथमेंऽशे धनुर्धरेऽष्टादशे झषे दशमे।
मिथुने च द्वाविंशे शशी प्रसूतस्य मरणकरः॥
ये भुक्ताः शशिनोंऽशा जन्मनि वर्षैर्गतैस्तु तावद्भिः।
मरणं हि जन्मभाजामप्यन्तकबद्धरक्षाणाम्'॥ (सारावली)

चन्द्रभाग में मतान्तर

राशि	अंश			
	जातकपारिजात	सारावली	बृहत्प्राजापत्य	फलदीपिका
मेष	८	८	२६	२६
वृष	२५	९	१२	१२
मिथुन	२२	२२	१३	१३
कर्क	२२	१२	२५	२५
सिंह	२१	५	२४	२४
कन्या	१	१	११	११
तुला	४	४	२६	२६
वृश्चिक	२३	२३	१४	१४
धनु	१८	१८	१३	१३
मकर	२०	२०	२५	२५
कुम्भ	२०	२१	५	५
मीन	१०	१०	१२	१२

चन्द्रमा के कतिपय अंश अत्यन्त शुभद होते हैं जो पुष्कर भाग कहलाते हैं। मुहूर्त और जन्म आदि में इनका विशेष महत्त्व होता है।

'पुत्रो बटुर्दिव्यजनाधिको धनी विराटयो गोत्रवयोधिको धुना।
मेषादिके पुष्करभागसंज्ञिका मुहूर्तजन्मादिषु शोभनप्रदा'॥

मेष राशि का २१वाँ, वृष का १४वाँ, मिथुन का १८वाँ, कर्क का ८वाँ, सिंह का

१९वाँ, कन्या का ९वाँ, तुला का २४वाँ, वृश्चिक का ११वाँ, धनु का २३वाँ, मकर का १४वाँ, कुम्भ का १९वाँ और मीन का ९वाँ अंश शुभ पुष्कर भाग कहलाता है।

रन्ध्रे केन्द्रेषु पापैरुदयनिधनगैर्वाथ लग्नास्तयोर्वा
लग्नेऽब्जेवोग्रमध्ये व्ययमृतिरिपुगे दुर्बले शीतभानौ।
क्षीणेन्दौ साशुभे वा तनुमदगुरुधीभाजि रन्ध्रास्तगोग्रै-
र्मृत्युः स्यादाशु केन्द्रे न यदि शुभखगाः सद्युतिर्वीक्षणं वा ॥१२॥

यदि पापग्रह (१) केन्द्र (१।४।७।१०वें) भाव में अथवा अष्टम भाव में स्थित हों, (२) लग्न और अष्टम भावों में स्थित हों, (३) लग्न और सप्तम भाव में स्थित हों, (४) लग्न या चन्द्रमा पाप ग्रहों के मध्य स्थित हों, (५) बलहीन चन्द्रमा के साथ त्रिक (६।८।१२वें) भावों में स्थित हों, (६) पापग्रहों से युक्त चन्द्रमा यदि लग्न, सप्तम, नवम या पञ्चम भावों में स्थित हों अथवा (७) सप्तम और अष्टम भाव पापग्रहों से युक्त हों और शुभग्रहों से युत या दृष्ट न हों तो जातक शीघ्र मृत्यु को प्राप्त होता है ॥१२॥

अरिष्टकारक ग्रहस्थिति जातकपारिजात में निम्न शब्दों में कही गयी है—

'विलग्नजातस्त्वपि देवमन्त्री विनाशरिःफारिगते शशाङ्के।
विलोकिते पापवियच्चरेण विभानुना मृत्युमुपैति बालकः'॥ (जातकपारिजात)

मृत्यु काल

जन्मेशोऽथ विलग्नपो यदि भवेद्दुस्थोऽबलो वत्सरै-
स्तद्राशिप्रमितैश्च मारयति तन्मासैर्दृगाणाधिपः।
अंशेशो दिवसैस्तथा यदि मृतिर्द्वित्र्यादियोगान्बहू-
नालोच्य प्रवदेत्सुताष्टमगतैः पापैररिष्टं शिशोः ॥१३॥

जन्मराशीश अथवा जन्मलग्नेश निर्बल होकर दुःस्थान (छठे, आठवें, बारहवें भाव) में जिस राशि में स्थित हों, मेषादि क्रम में उसकी संख्या तुल्य वर्ष में जिस राशि के द्रेष्काण में स्थित हों, यदि द्रेष्काणपति उक्त स्थानों में दुर्बल होकर स्थित हो उस राशि के संख्या तुल्य मास में तथा जिस राशि के नवांश में स्थित हो उस राशि के संख्या तुल्य दिन में—इनमें (लग्नेश, चन्द्रमा की राशियाँ, उनके द्रेष्काणेश और उनके नवांशेश में) जो सर्वाधिक बलवान् हो उसके अनुसार वर्ष में, मास में अथवा दिनों में जातक पञ्चम और अष्टम भावगत पापग्रह के अनुरूप अरिष्ट (व्याधि) से मृत्यु को प्राप्त होता है ॥१३॥

यदि लग्नेश या जन्मराशीश निर्बल होकर त्रिकस्थ हो तो उस राशि (जिसमें लग्नेश या जन्मराशीश स्थित हो) के संख्या तुल्य वर्ष में, लग्न या चन्द्रमा जिस राशि के द्रेष्काण में स्थित हो उसका स्वामी यदि निर्बल हो और दुःस्थान में स्थित हो तो उस राशि (जिसमें द्रेष्काणपति स्थित हो) के संख्या तुल्य मास में, लग्न या चन्द्रमा जिस राशि के नवमांश में स्थित हो उसका स्वामी यदि बलहीन होकर दुःस्थानगत हो तो नवमांशेशाधिष्ठित राशि के संख्या तुल्य दिनों में जातक मृत्यु को प्राप्त होता है। इन तीनों (लग्नेश या जन्मराशीश,

लग्न या चन्द्रमा के द्रेष्काणेश और उनके नवांशेश) और पंचम एवं अष्टम भावस्थ पापग्रहों का विचार कर जातक की आयुष्य का निर्णय करना चाहिए।

संलग्न जन्माङ्ग में लग्नेश नीच राशि में सूर्य के सान्निध्य में अस्त है और द्वितीय भाव में स्थित है। कृष्णपक्ष की अष्टमी में जन्म होने से चन्द्रमा क्षीण है और द्वादश भाव में अपनी नीच राशि में १२°।३८'।५१" पर स्थित है। यत: चन्द्रमा मीन के द्रेष्काण में है जिसका स्वामी बृहस्पति नीच राशि में अस्त होकर अत्यन्त निर्बल है। चन्द्रनवांशेश शुक्र उच्चस्थ होकर चतुर्थ भावगत होने से स्थान और चेष्टा बलयुक्त है। शुक्र यत: मीन बारहवीं राशि में स्थित है इसलिए जातक बारह दिन तक ही जीवित रहेगा। पञ्चम भाव में पापग्रह स्थित है इसलिए मृत्यु का कारण वायु तथा श्लेष्मा जन्य व्याधि होगी।

इसी प्रकार लग्नेश यदि निर्बल होकर त्रिकस्थ हो तो उससे भी मृत्यु समय का विचार करना चाहिए।

ह्रस्व-मध्य-दीर्घायु

लग्नेन्द्वोस्तदधीशयोरपि मिथो लग्नेशरन्ध्रेशयो-
र्द्रेक्काणात्स्वनवांशकादपि मिथस्तद्द्वादशांशात्क्रमात्।
आयुर्दीर्घसमाल्पतां चरनगद्व्यङ्गैश्चरेऽथ स्थिरे
ब्रूयाद्द्वन्द्वचरस्थिरैरुभयभै: स्थास्नुद्विदेहाटनै: ॥१४॥

(१) लग्नद्रेष्काण और चन्द्रद्रेष्काण, (२) लग्नेश और जन्मराशीश की नवांश राशियाँ, (३) लग्नेश और अष्टमेश की द्वादशांश राशियाँ—इन तीनों राशियुग्मों की दोनों राशियाँ यदि चर राशियाँ हो तो जातक दीर्घायु, यदि एक चर और दूसरी स्थिर राशि हों तो जातक मध्यायु और यदि एक चर और दूसरी द्विस्वभाव राशि हों तो अल्पायु होता है।

उक्त तीन राशियुग्मों में एक स्थिर और दूसरी द्विस्वभाव हो तो जातक दीर्घायु, यदि एक राशि स्थिर और दूसरी चर हो तो जातक मध्यायु और यदि दोनों स्थिर राशियाँ हों तो जातक अल्पायु होता है।

उक्त राशियुग्मों में एक राशि द्विस्वभाव तथा दूसरी स्थिर राशि हो तो जातक दीर्घायु, दोनों राशियाँ द्विस्वभाव राशियाँ हों तो जातक मध्यायु और यदि एक द्विस्वभाव और दूसरी चर राशि हो तो जातक अल्पायु होता है ॥१४॥

लग्न, लग्नेश के द्रेष्काण/ नवांश/द्वादशांश राशि	जन्मराशि, जन्मराशीश के द्रेष्काण/ नवांश/अष्टमेश की द्वादशांश राशि	
चर	चर	दीर्घायु
चर	स्थिर	मध्यायु
चर	द्विस्वभाव	अल्पायु
स्थिर	द्विस्वभाव	दीर्घायु
स्थिर	चर	मध्यायु
स्थिर	स्थिर	अल्पायु
द्विस्वभाव	स्थिर	दीर्घायु
द्विस्वभाव	द्विस्वभाव	मध्यायु
द्विस्वभाव	चर	अल्पायु

लग्नाधीशशुभाः क्रमाद्बहुसमाल्पायूंषि केन्द्रादिगाः
रन्ध्रेशोग्रखगास्तथा यदि गता व्यस्तं विदध्युः फलम्।
जन्मेशाष्टमनाथयोरुदयपच्छिद्रेशयोर्मैत्रतो
भास्वल्लग्नपयोश्चिरायुरहितेऽल्पायुः समे मध्यमः ॥१५॥

लग्नेश और शुभग्रह यदि केन्द्र (लग्न, चतुर्थ, सप्तम और दशम) भावों में स्थित हों तो जातक दीर्घायु; यदि पणफर (द्वितीय, पञ्चम, अष्टम और एकादश) भावों में स्थित हो तो मध्यायु और यदि वे आपोक्लिम (तृतीय, षष्ठ, नवम और द्वादश) भावों में स्थित हों तो जातक अल्पायु होता है। उक्त स्थितियों में यदि अष्टम भाव के स्वामी और पापग्रह स्थित हों अर्थात् केन्द्र, पणफर और आपोक्लिम में स्थित हों तो जातक क्रमशः अल्पायु, मध्यायु और दीर्घायु होता है।

(१) जन्मराशीश (चन्द्राधितिष्ठित राशि के स्वामी) और चन्द्रमा से अष्टम भाव के स्वामी, (२) लग्नेश और लग्न से अष्टम भाव के स्वामी तथा (३) लग्नेश और सूर्य यदि परस्पर मित्र हों तो जातक दीर्घायु, यदि सम हों तो मध्यायु और यदि परस्पर शत्रुभाव रखते हों तो जातक अल्पायु होता है ॥१५॥

यहाँ ग्रहों की नैसर्गिक मित्रामित्रत्व एवं समत्व का ही विचार करना चाहिए पञ्चधा मैत्री आदि का नहीं।

लग्नाधिपो लग्ननवांशनायको जन्मेश्वरो जन्मनवांशनायकः।
स्वस्वाष्टमेशाद्यदि चेद्बलान्वितो दीर्घायुषः स्युर्विपरीतमन्यथा ॥१६॥

लग्नेश और लग्ननवांशेश लग्न से और नवांशराशि से अष्टम राशि के स्वामी की अपेक्षा अधिक बलवान् हों तो जातक दीर्घायु होता है। इसके विपरीत यदि उनके अष्टमेश बलवान् हों तो जातक अल्पायु होता है। इसी प्रकार जन्मराशीश और जन्मराशीश के

नवांशपति यदि जन्मराशि और अपनी नवांशराशि से अष्टम राशि के स्वामी की अपेक्षा अधिक बलवान् हों तो जातक दीर्घायु अन्यथा अल्पायु होता है ।।१६।।

लग्नेश्वरादतिबली निधनेश्वरोऽसौ
केन्द्रस्थितो निधनरिःफगतैश्च पापैः ।
तस्यायुरल्पमथवा यदि मध्यमायु-
रुत्साहसङ्कटवशात्परमायुरेति ।।१७।।

अष्टम भाव का स्वामी लग्नेश की अपेक्षा अधिक बलशाली होकर केन्द्र में स्थित हो और अष्टम और द्वादश भावों में पापग्रह स्थित हों तो जातक अल्पायु होता है । यदि मध्यायु और दीर्घायु भी प्राप्त कर लें तब भी वह कष्टमय जीवन ही व्यतीत करता है ।।१७।।

नरोऽल्पायुर्योगे प्रथमभगणे नश्यति शने-
र्द्वितीये मध्यायुर्यदि भवति दीर्घायुषि सति ।
तृतीये निर्याणं स्फुटजशनिगुर्वर्कहिमगून्
दशां भुक्तिं कष्टामपि वदति निश्चित्य सुमतिः ।।१८।।

यदि जातक अल्पायु हो तो शनि, बृहस्पति, सूर्य और चन्द्रमा के स्पष्ट राश्यादि भोगों की योगज राशि में गोचर का शनि यदि अपने प्रथम चक्र में (भगण में) जब आता है तो जातक को मृत्यु देता है । यदि जातक मध्यायु हो तो द्वितीय भगण में उक्त योगज राशि में शनि के आने पर जातक मृत्यु को प्राप्त होता है । यदि जातक दीर्घायु हो तो अपने तृतीय भगण में शनि के उक्त योगज राशि में आने पर जातक की मृत्यु होती है । उक्त योगज राशि में शनि के प्रवेश के समय यदि अशुभ दशान्तर्दशा उपस्थित हो तभी मृत्यु सम्भव होती है ।।१८।।

सपापो लग्नेशो रविहतरुचिर्नीचरिपुगो
यदा दुःस्थानेषु स्थितिमुपगतो गोचरवशात् ।
तनौ वा तद्योगो यदि निधनमाहुस्तनुभृतां
नवांशाद्द्रेक्काणाच्छिशिरकरलग्नादपि वदेत् ।।१९।।

यदि लग्नेश शत्रु या स्वनीच राशि में पापग्रहों के साथ स्थित होकर सूर्य-सान्निध्य में अस्त हो तो उक्त स्थिति में गोचरवशात् लग्नेश यदि दुःस्थान (छठे, आठवें या बारहवें भाव की राशि) का संक्रमण करे अथवा लग्नराशि को संक्रमित करे अथवा लग्नराशि से सम्बन्ध करे तब जातक मृत्यु को प्राप्त होता है । इसी प्रकार चन्द्रराशि, नवांशराशि और द्रेष्काण-राशि से भी मृत्यु समय का विचार करना चाहिए ।।१९।।

शशी तदारूढगृहाधिपश्च लग्नाधिनाथश्च यदा त्रयोऽमी ।
गुणाधिकाः सद्ग्रहदृष्टियुक्ता गुणाधिकं तं कथयन्ति कालम् ।।२०।।

गोचर में चन्द्रमा, चन्द्रलग्नेश और लग्नाधिपति ये तीनों शुभ ग्रहों से युत-दृष्ट

हों, सुस्थान (केन्द्र या त्रिकोण भवनों) में स्थित हों और अधिक शुभ बिन्दुओं से युक्त हों तो वह समय जातक के लिए अत्यन्त शुभद होता है ॥२०॥

जन्माङ्ग में उक्त तीनों ग्रह शुभयुत और शुभदृष्ट हों तभी गोचर की उक्त स्थिति में अत्यन्त शुभ फल होगा। अन्यथा सामान्य शुभ फल ही प्राप्त होगा।

लग्नाधिपोऽतिबलवानशुभैरदृष्टः
केन्द्रस्थितः शुभखगैरवलोक्यमानः।
मृत्युं विहाय विदधाति स दीर्घमायुः
सार्द्धं गुणैर्बहुभिरूर्जितराजलक्ष्म्या ॥२१॥

पापग्रहों की दृष्टि-युति से हीन अत्यन्त बलवान् लग्नेश यदि केन्द्र में स्थित हो और शुभग्रहों से दृष्ट हो तो जातक अनेक सद्‌गुणों से युक्त धन-धान्यादि वैभव से सम्पन्न दीर्घायु होता है ॥२१॥

सर्वातिशाय्यतिबलः स्फुरदंशुजालो
लग्ने स्थितः प्रशमयेत् सुरराजमन्त्री।
एको बहूनि दुरितानि सुदुस्तराणि
भक्त्या प्रयुक्त इव चक्रधरे प्रणामः ॥२२॥

भगवान् विष्णु (चक्रधर) को समस्त मन से भक्तिपूर्वक प्रणाम करने से जैसे बहुत से पापों का नाश हो जाता है उसी प्रकार सभी प्रकार के बलों से सम्पन्न अतिशय बलवान् बृहस्पति यदि लग्न में अपनी सम्पूर्ण रश्मियों से युक्त होकर स्थित हो तो वह जातक के उन समस्त विपत्तियों का नाश करता है जिसे सामान्य स्थिति में पार करना कठिन होता है ॥२२॥

मूर्त्तेस्त्रिकोणागमकण्टकेषु रवीन्दुजीवर्क्षनवांशसंस्थः।
सुकर्मकृन्नित्यमशेषदोषान्मुष्णाति वर्द्धिष्णुरनुष्णरश्मिः ॥२३॥

सूर्य, चन्द्रमा या बृहस्पति की राशि (कर्क, सिंह, धनु या मीन) के नवांशगत शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा यदि लग्न से त्रिकोण (पञ्चम या नवम) केन्द्र (लग्न, चतुर्थ, सप्तम या दशम) या आगम (आय—एकादश) भावों में स्थित हों तो जातक के अनेक दोषों का संहारक और अत्यन्त शुभद होता है ॥२३॥

केन्द्रत्रिकोणनिधनेषु न यस्य पापा
लग्नाधिपः सुरगुरुश्च चतुष्टयस्थौ।
भुक्त्वा सुखानि विविधानि सुपुण्यकर्मा
जीवेच्च वत्सरशतं स विमुक्तरोगः ॥२४॥

जिसके जन्माङ्ग में केन्द्र (लग्न, चतुर्थ, सप्तम और दशम), त्रिकोण (पञ्चम और नवम) तथा अष्टम भावों में पापग्रह न हों, लग्नाधिपति और बृहस्पति केन्द्रभावों में स्थित हों

तो वह व्यक्ति पुण्यकर्म करने वाला अनेक सुखों को भोगने के बाद रोगमुक्त होकर सौ वर्ष तक जीता है ॥२४॥

श्रीपत्युदीरितदशाभिरथाष्टवर्गात्
यत्कालचक्रदशयोडुदशाप्रकारात् ।
सम्यक्स्फुटाभिहतया क्रिययाप्तवाक्या-
दायुर्बुधो वदतु भूरिपरीक्षया च ॥२५॥

इति श्रीमन्त्रेश्वरविरचितायां फलदीपिकायामरिष्टचिन्ता नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

श्रीपति द्वारा कथित दशा, अष्टकवर्ग दशा, कालचक्र दशा, उडुदशा, ग्रहों के स्पष्ट भोगादि पर सम्यग् विचारपूर्वक सूक्ष्म विवेचन के बाद ही बुद्धिमानों को जातक की आयुष्य का निर्णय करना चाहिए ॥२५॥

इस प्रकार मन्त्रेश्वरकृत फलदीपिका में अरिष्टचिन्ता नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥१३॥

○

चतुर्दशोऽध्यायः

रोगचिन्ता

रोगस्य चिन्तामपि रोगभावस्थितैर्ग्रहैर्वा व्ययमृत्युसंस्थैः ।
रोगेश्वरेणापि तदन्वितैर्वा द्वित्र्यादिसंवादवशाद्वदन्तु ॥१॥

रोग का विचार (१) रोगभाव (षष्ठ भाव) में स्थित ग्रह से, (२) अष्टम और द्वादश भावस्थ ग्रह से और (३) षष्ठेश और षष्ठेश से संयुक्त ग्रहों से करना चाहिए। दो अथवा तीन प्रकार से यदि एक ही रोग निर्दिष्ट हो तो वह रोग कहना चाहिए ॥१॥

सूर्यदोष से उत्पन्न व्याधियाँ

पित्तोष्णज्वरतापदेहतपनापस्मारहृत्क्रोडज-
व्याधीन्वक्ति रविर्दृगार्त्यरिभयं त्वग्दोषमस्थिस्रुतिम् ।
काष्ठाग्न्यस्त्रविषार्तिदारतनयव्यापच्चतुष्पाद्भयं
चोरक्ष्मापतिधर्मदेवफणभृद्भूतेशभूतं भयम् ॥२॥

(१) पित्त की विकृति, (२) तीव्र ज्वर, (३) शरीर में जलन, (४) अपस्मार (मृगी), (५) हृदयरोग, (६) नेत्रपीड़ा, (७) शत्रुभय, (८) चर्मरोग, (९) अस्थिस्रुति (Bone T.B.), (१०) काष्ठ, अग्नि, अस्त्र और विष से आघात, (११) पुत्र-स्त्री को कष्ट, (१२) चतुष्पद, चोर और सर्प से भय तथा (१३) राजा, धर्मराज (यम) और रुद्र कोप से भय आदि सूर्यदोष से होते हैं ॥२॥

चन्द्रदोष से उत्पन्न व्याधियाँ

निद्रालस्यकफातिसारपिटकाः शीतज्वरं चन्द्रमाः
शृङ्ग्यब्जाहतिमग्निमान्द्यमरुचिं योषिद्व्यथाकामिलाः ।
चेतःशान्तिमसृग्विकारमुदकाद्भीतिं च बालग्रहाद्
दुर्गाकिन्नरधर्मदेवफणभृद्यक्ष्याश्च भीतिं वदेत् ॥३॥

(१) निद्रा सम्बन्धी विकार (अतिनिद्रा अथवा निद्राभाव), (२) आलस्य, (३) कफविकृति, (४) अतिसार, (५) फोड़ा (कार्बंकल जैसा घातक फोड़ा), (६) शीतज्वर (मलेरिया, टायफायड आदि), (७) सींग वाले पशु अथवा जल में रहने वाले जीव (मगर आदि से) भय, (८) मन्दाग्नि, (९) अरुचि, (१०) स्त्रीजन्य व्याधि, (११) कामला रोग, (१२) मानसिक श्रान्ति, (१२) रक्तविकार, (१३) जल से भय तथा (१४) बालग्रह, दुर्गा, किन्नर, यम, सर्प और यक्षिणी आदि के कोप से भय आदि चन्द्रमा के दूषित होने से होते हैं ॥३॥

भौमदोष से उत्पन्न व्याधियाँ

तृष्णासृक्कोपपित्तज्वरमनलविषास्त्रार्तिकुष्ठाक्षिरोगान्
गुल्मापस्मारमज्जाविहतिपरुषतापामिकादेहभङ्गान् ।
भूपारिस्तेनपीडां सहजसुतसुहृद्वैरियुद्धं विधत्ते
रक्षोगन्धर्वघोरग्रहभयमवनीसूनुरूर्ध्वाङ्गरोगम् ॥४॥

(१) अत्यधिक प्यास, (२) रक्त-विकार, (३) पित्तज ज्वर, (४) अग्नि, विष और शस्त्राघात का भय, (५) कुष्ठरोग, (६) नेत्र-विकार, (७) गुल्मरोग (उदर स्फोट, अल्सर आदि), (८) अपस्मार (मृगी), (९) मज्जा सम्बन्धी विकार, (१०) शारीरिक रूक्षता, (११) पामिका (Psoriasis), (१२) अङ्गविकृति, (१३) राजा, शत्रु और मित्र से उत्पीड़न, (१४) भाई, पुत्र, शत्रु और मित्रों से विवाद-कलह, (१५) गन्धर्व आदि दुष्टात्माओं से कष्ट तथा (१६) शरीर के ऊपरी भाग में (फेफड़े, गले, मुख, नेत्र, कान की बीमारी आदि जातक को मङ्गल के दूषित होने से प्राप्त होता है ॥४॥

बुधदोष से उत्पन्न व्याधियाँ

भ्रान्तिं दुर्वचनं दृगामयगलघ्राणोत्थरोगं ज्वरं
पित्तश्लेष्मसमीरजं विषमपि त्वग्दोषपाण्ड्वामयान् ।
दुःस्वप्नं च विचर्चिकाग्निपतने पारुष्यबन्धश्रमान्
गन्धर्वक्षितिहर्म्यवाहिभिरपि ज्ञो वक्ति पीडां ग्रहैः ॥५॥

(१) मानसिक भ्रान्ति (विभ्रम), (२) वाणीदोष, (३) नेत्र, कण्ठ और नासिका में विकार, (४) ज्वर, (५) वात-पित्त-कफ के विकार जनित व्याधि, (६) विष-सेवन से रोग, (७) चर्मरोग, (८) पाण्डुरोग, (९) दुःस्वप्न, (१०) विचर्चिका, पामिका (Psoriasis), (११) अग्नि में गिरने का भय, (१२) बन्धन और कठोर व्यवहार से श्रान्ति, (१३) गन्धर्वादि कुटिल आत्माओं से कष्ट आदि बुध के कारण होते हैं ॥५॥

बृहस्पति-दोष से उत्पन्न व्याधियाँ

गुल्मान्त्रज्वरशोकमोहकफजान् श्रोत्रार्तिमोहामयान्
देवस्थाननिधिप्रपीडनमहीदेवेशशापोद्भवम् ।
रोगं किन्नरयक्षदेवफणभृद्विद्याधराद्युद्भवं
जीवः सूचयति स्वयं बुधगुरूत्कृष्टापचारोद्भवम् ॥६॥

(१) गुल्मरोग, (२) आन्त्र-विकृति (आँत की विकृति) जन्य ज्वर, (३) शोकजन्य व्याधियाँ, (४) मूर्च्छा (ये सभी व्याधियाँ कफ के असन्तुलन से उत्पन्न होती हैं), (५) कर्ण-विकार, (६) मोहग्रस्तता, देवस्थान सम्बन्धी विवाद से कष्ट, (७) ब्राह्मण- शाप से कष्ट, (८) यक्ष, किन्नर, विद्याधरादि द्वारा उत्पीड़न तथा (९) विद्वानों और गुरुजनों के प्रति किये गये दुर्व्यवहार-जनित व्याधियों से कष्ट—ये सभी बृहस्पति के दूषित होने पर जातक को प्राप्त होते हैं ॥६॥

शुक्रदोष से उत्पन्न व्याधियाँ

पाण्डुश्लेष्ममरुत्प्रकोपनयनव्यापत्प्रमेहामयान्
गुह्यस्यामयमूत्रकृच्छ्रमदनव्यापत्तिशुक्लस्रुतिम् ।
वारस्त्रीकृतदेहकान्तिविहतिं शोषामयं योगिनी-
यक्षीमातृगणाद्भयं प्रियसुहृद्भङ्गं सितः सूचयेत् ॥७॥

शुक्र के दूषण से (१) पाण्डुरोग, (२) वात-कफविकार जन्य व्याधियाँ, (३) नेत्र-विकार, (४) मूत्र-विकार (मूत्र का अधिक आना या उसमें अवरोध), (५) प्रमेह, (६) जननेन्द्रिय सम्बन्धी विकार, (७) मूत्रकृच्छ्र, (८) मैथुन में असमर्थता, (९) वीर्यस्राव या शीघ्रपतन, (१०) अधिक मैथुन से शारीरिक कान्तिहीनता, (११) सुखण्डी (क्षय), (१२) योगिनी, यक्षिणी आदि से उत्पीड़न तथा (१३) परमप्रिय मित्र से मैत्री भङ्ग आदि दोष होते हैं ॥७॥

शनिदोष से उत्पन्न व्याधियाँ

वातश्लेष्मविकारपादविहतिं चापत्तितन्द्राश्रमान्
भ्रान्तिं कुक्षिरुगन्तरुष्णभृतकध्वंसं च पार्श्वाहतिम् ।
भार्यापुत्रविपत्तिमङ्गत्रिहतिं हृत्तापमर्कात्मजो
वृक्षाश्मक्षतिमाह कश्मलगणैः पीडां पिशाचादिभिः ॥८॥

शनि के दूषण से (१) वात-कफविकार जन्य व्याधियाँ, (२) पादवैकल्य (पक्षाघात या चोट आदि के कारण), (३) विपत्ति, (४) थकान, तन्द्रा, (५) भ्रान्ति, (६) कुक्षिरोग, (७) अन्त:शूल (मार्मिक आघात या हृत्शूल), (८) सेवकों का विनाश, (९) पसली में कष्ट, (१०) स्त्री-पुत्रादि को कष्ट, (११) अङ्ग-वैकल्य (अङ्ग-भङ्ग हो जाना), (१२) मार्मिक वेदना, (१३) वृक्ष (काष्ठ) या पत्थर से आघात तथा (१४) पिशाचादि से उत्पीडन आदि जातक को भोगने होते हैं ॥८॥

राहु, केतु और मान्दि दोष से उत्पन्न व्याधियाँ

स्वर्भानुर्हृदि तापकुष्ठविमतिव्याधिं विषं कृत्रिमं
पादार्तिं च पिशाचपन्नगभयं भार्यातनूजापदम् ।
ब्रह्मक्षत्रविरोधशत्रुजभयं केतुस्तु संसूचयेत्
प्रेतोत्थं च भयं विषं च गुलिको देहार्तिमाशौचजम् ॥९॥

राहु के विकार से (१) हृत्ताप, (२) कुष्ठ, (३) बौद्धिक विभ्रम (विवेकशून्यता), (४) विषजन्य व्याधि, (५) पैरों में रोग, (६) स्त्री-पुत्रादि को कष्ट तथा (७) पिशाच एवं पन्नगादि से भय होता है।

केतु के विकार से (१) ब्राह्मण और क्षत्रियों के विरोध से कष्ट, (२) शत्रुजन्य भय होता है।

गुलिक के प्रकोप से प्रेतबाधा, विषभय, दैहिक पीडन और किसी निकट सम्बन्धी की मृत्यु से अशौच होता है ॥९॥

विभिन्न रोगों के योग

मन्दारान्वितवीक्षिते व्ययधने चन्द्रारुणौ चाक्षिरुक्
शौर्यायाङ्गिरसो यमारसहिता दृष्टा यदि श्रोत्ररुक्।
सोग्रे पञ्चमभे भवेदुदररुग्रन्ध्रारिनाथान्विते
तद्वत्सप्तमनैधने सगुदरुक्छुक्रे च गुह्यामयः ॥१०॥

द्वादश या द्वितीय भाव में सूर्य या चन्द्रमा स्थित होकर यदि मंगल और शनि से दृष्ट हो या युत हो तो **नेत्ररोग** होता है। तृतीय भाव, एकादश भाव और बृहस्पति यदि मंगल और शनि से युत या दृष्ट हो तो **कर्णरोग** होता है। षष्ठेश या अष्टमेश के साथ मंगल यदि पंचम भाव में स्थित हो तो जातक **उदरव्याधि** से पीडित होता है। उसी प्रकार षष्ठेश और अष्टमेश यदि सप्तम भाव में स्थित हों तो **गुदामार्ग** में रोग होता है। उक्त योग में यदि शुक्र हो तो जननेन्द्रिय सम्बन्धी व्याधि से जातक पीडित होता है ॥१०॥

द्वादश भाव से वाम नेत्र और द्वितीय भाव से दक्षिण नेत्र का विचार होता है। सूर्य या चन्द्रमा यदि द्वितीय भाव में मंगल और शनि दोनों से दृष्ट हों तो जातक को नेत्ररोग होता है। यदि सूर्य या चन्द्रमा के साथ मंगल हो और उन पर शनि की दृष्टि हो तो आपरेशन आदि की सम्भावना होती है। उनके (सूर्य या चन्द्रमा) के साथ यदि शनि युत हो और मंगल उनको देखता हो तो भी आपरेशन आदि उपचार से नेत्रज्योति प्राप्त हो सकती है। किन्तु यदि द्वितीय या द्वादशभावस्थ सूर्य और चन्द्रमा को शनि और मंगल दोनों की दृष्टि प्राप्त हो तो नेत्रज्योति का नाश होता है।

इसी प्रकार कर्णरोग का विचार करना चाहिए। तृतीय भाव से दक्षिण कर्ण और एकादश भाव से वाम कर्ण का विचार होता है। तृतीय भाव के पीडित होने से स्वजनों एवं बन्धु-बान्धवों, ज्येष्ठ भ्राता आदि को कष्ट और एकादश भाव के पापपीडित होने से किसी निकट सम्बन्धी की हानि होती है।

षष्ठेऽर्केऽप्यथवाष्टमे ज्वरभयं भौमे च केतौ व्रणं
शुक्रे गुह्यरुजं क्षयं सुरगुरौ मन्दे च वातामयम्।
राहौ भौमनिरीक्षिते च पिलकां सेन्दौ शनौ गुल्मजं
क्षीणेन्दौ जलभेषु पापसहिते तत्स्थेऽम्बुरोगं क्षयम् ॥११॥

यदि छठे या आठवें भाव में सूर्य स्थित हो तो ज्वरादि का भय होता है; मंगल या केतु हों तो व्रण, चोट आदि का भय होता है; शुक्र हो तो गुह्याङ्ग में रोग होता है; बृहस्पति हो तो क्षयरोग का भय होता है; शनि हो तो वातज व्याधियों का भय होता है। मंगल से दृष्ट राहु यदि छठे या आठवें भाव में स्थित हो तो कठिन व्रण (कार्बंकल आदि) की सम्भावमा होती है। उक्त भावों में यदि शनि के साथ चन्द्रमा स्थित हो तो प्लीहा (तिल्ली) शोथ से उत्पन्न व्याधि होती है। जलराशि (कर्क, मीन, वृश्चिक और मकर का उत्तरार्द्ध) का क्षीण चन्द्रमा (कृष्ण पंचमी से शुक्ल पंचमी तक का चन्द्रमा क्षीण होता है) पापग्रह के साथ यदि षष्ठ या अष्टम भाव में स्थित हो तो अम्बुरोग (जलोदर) या क्षयरोग होता है ॥११॥

मृत्यु के कारण

जातो गच्छति येन केन मरणं वक्ष्येऽथ तत्कारणं
रन्ध्रस्थैस्तदवेक्षकैर्बलवता तस्योक्तरोगैर्मृतिः ।
रन्ध्रर्क्षोक्तरुजाथवा मृतपतिप्राप्तर्क्षदोषेण वा
रन्ध्रेशेन खरत्रिभागपतिना मृत्युं वदेन्निश्चितम् ॥१२॥

अब मैं उन रोगों को कहता हूँ जो जातक के मृत्यु का कारण बनते हैं।

अष्टमभावस्थ ग्रह तथा अष्टम भाव के द्रष्टा ग्रह—इनमें बली ग्रहजन्य व्याधि से जातक की मृत्यु होती है। यदि अष्टम भाव ग्रहशून्य हो और उस पर किसी ग्रह की दृष्टि भी न हो तो अष्टम भावजन्य व्याधि से अथवा अष्टमेशाधितिष्ठित भावजन्य व्याधि से मृत्यु होती है। अष्टम भाव गृह्यप्रदेश का परिचायक है। अत: गुह्यांग सम्बन्धी व्याधि से मृत्यु होती है। इसी प्रकार अष्टमेश यदि चतुर्थ भाव में हो तो हृदयरोग से, पंचम भाव में हो तो उदरव्याधि से मृत्यु सम्भाव्य होती है (कालपुरुष के अंग-विभाग के अनुसार रोग की कल्पना करनी चाहिए) अथवा अष्टमेश ग्रहजनित व्याधि से मृत्यु होती है। अथवा लग्न से २२वें खरद्रेष्काण के स्वामी ग्रहजनित व्याधि से मृत्यु होती है। अष्टम भाव का प्रथम द्रेष्काण खर द्रेष्काण होता है (देखिए मेरे द्वारा सम्पादित जातकपारिजात अध्याय ५ श्लोक. ५६) ॥१२॥

ग्रहेण युक्ते निधने तदुक्तरोगैर्मृतिर्वाऽथ तदीक्षकस्य ।
ग्रहैर्विमुक्ते निधनेऽथ तस्य राशेः स्वभावोदितदोषजाता ॥१३॥

जो ग्रह अष्टम भाव में स्थित हो अथवा जो ग्रह उक्त भाव को देखते हों उनसे सम्बन्धित व्याधि के कारण जातक की मृत्यु होती है। यदि अष्टम भाव ग्रहशून्य हो और किसी ग्रह से दृष्ट भी न हो तो अष्टमभावस्थ राशि के गुणधर्मानुरूप व्याधि से जातक की मृत्यु होती है ॥१३॥

अग्न्युष्णाज्वरपित्तशस्त्रजमिनश्चन्द्रो विषूच्यम्बुरुग्
यक्ष्मादि क्षितिजोऽसृजा च दहनक्षुद्राभिचारायुधैः ।
पाण्ड्वादि भ्रमजं बुधो गुरुरनायासेन मृत्युं कफात्
स्त्रीसङ्गोत्थरुजं कविस्तु मरुता वा सन्निपातैः शनिः ॥१४॥

अग्नि, तीव्र ज्वर, पित्त और शस्त्राघात से सूर्य मृत्यु देता है। हैजा, जलोदर और फेफड़े की बीमारी से चन्द्रमा मृत्युदायक होता है। दुर्घटना से रक्तस्राव, उत्ताप, कुत्सित अभिचार और शस्त्राघात से मंगल मृत्यु करता है। बुध पाण्डु आदि व्याधि, रक्ताल्पता और स्नायुज विकार के कारण मृत्यु देता है। बृहस्पति सहज भाव से कफावरोध के कारण मृत्यु देता है। स्त्रीसंसर्गजनित व्याधियों के द्वारा शुक्र मृत्युदायक होता है। वायुप्रकोपजन्य व्याधि से अथवा सन्निपातज ज्वर के द्वारा शनि मृत्युकारक होता है ॥१४॥

कुष्ठेन वा कृत्रिमभक्षणाद्वा राहुर्विषाद्वाथ मसूरिकाद्यैः ।
कुर्याच्छिखी दुर्मरणं नराणां रिपोर्विरोधादपि कीटकाद्यैः ॥१५॥

यदि राहु मृत्युकारक हो तो कुष्ठ, विषाक्त भोजन करने से, विषैले कीटादि के दंश या मसूरिका रोग से मृत्यु होती है।

यदि केतु मृत्युकारक हो तो अपमृत्यु (दुर्घटना में अकस्मात् या अस्वाभाविक मृत्यु, आत्महत्या आदि), विवाद में हत्या आदि से जीवन का अन्त होता है ॥१५॥

लग्नादष्टमराशेः स्वभावदोषोद्भवं वदेन्मृत्युम् ।
निधनेशस्य नवांशस्थितराशिनिमित्तदोषजनितं वा ॥१६॥

अष्टम भाव (अष्टमेश, अष्टमभावस्थ अष्टमभावद्रष्टा ग्रहों के) स्वभावादि जन्य व्याधि से अथवा अष्टमेश की नवांश राशिजन्य दोष या रोग से मृत्यु होती है ॥१६॥

अगले तीन श्लोक में मेषादि राशियों के दोष से उत्पन्न व्याधियों को बतलाया गया है।

मेषादि द्वादश राशिजन्य दोष

पैत्त्यज्वरोष्णैर्जठराग्निनाजे वृषे त्रिदोषैर्दहनाच्च शस्त्रात् ।
युग्मे तु कालश्वसनोष्णशूलैरुन्मादवातारुचिभिः कुलीरे ॥१७॥

पिछले श्लोक में कथित राशि यदि **मेष** हो तो पित्तज ज्वर, दाह अथवा यकृत् आदि जन्य व्याधि से; **वृष** हो तो त्रिदोष (वायु-पित्त-कफ) के प्रकोप से उत्पन्न व्याधि से, दाह अथवा शस्त्राघात से; **मिथुन** राशि हो तो कास-श्वास, अस्थमा अथवा पित्तदोष जन्य शूल से तथा **कर्क** हो तो मानसिक असन्तुलन, वायुविकार जन्य रोग से जातक मृत्यु को प्राप्त होता है ॥१७॥

मृगज्वरस्फोटजशत्रुजं हरौ स्त्रियां स्त्रिया गुह्यरुजा प्रपातनात् ।
तुलाधरे धीज्वरसन्निपातजं प्लीहालिपाण्डुग्रहणीरुजालिनि ॥१८॥

यदि उक्त राशि **सिंह** हो तो वन्य पशुओं के आघात से, ज्वर, स्फोट, घातक फोड़े आदि से अथवा शत्रु द्वारा; **कन्या** हो तो स्त्रीजन्य व्याधि अथवा गुह्याङ्ग की व्याधि से अथवा उच्च स्थान से पतन से; **तुला** हो तो मस्तिष्कज्वर, सन्निपातादि से और **वृश्चिक** हो तो तिल्ली के विकार से, पाण्डु या संग्रहणी आदि से मृत्यु होती है ॥१८॥

वृक्षाम्बुकाष्ठायुधजं हयाङ्गे मृगे तु शूलारुचिधीभ्रमाद्यैः ।
कुम्भे तु कासज्वरयक्ष्मरोगैर्जले विपद्वा जलरोगतोऽन्त्ये ॥१९॥

उक्त राशि यदि **धनु** हो तो वृक्षपतन अथवा वृक्ष से पतन, काष्ठ या शस्त्राघात से; **मकर** हो तो शूल, अरुचि (मन्दाग्नि) और मानसिक असन्तुलन आदि से; **कुम्भ** हो तो श्वास-कास, यक्ष्मा (क्षयरोग), ज्वर से तथा **मीन** हो तो जल में डूबने से अथवा जलीय व्याधियों जलोदरादि से मृत्यु होती है ॥१९॥

पापर्क्षयुक्ते निधने सपापे शस्त्रानलव्याघ्रभुजङ्गपीडा।
अन्योन्यदृष्टौ द्व्यशुभौ सकेन्द्रौ कोपात्प्रभोः शस्त्रविषाग्निजैर्वा ॥२०॥

अष्टम भाव में पापराशि (शुभ-पाप भेद से या पापग्रह की राशि) हो और पापग्रह से युक्त हो तो शस्त्राघात से, अग्नि में जलने से, वन्य पशु (व्याघ्र आदि) के आघात या विषैले कीटादि के दंश से मृत्यु होती है।

दो पापग्रह केन्द्रस्थ होकर यदि परस्पर दृष्टि सम्बन्ध करते हों तो राजा या राज्य के प्रकोप से अथवा शस्त्र, विष, अग्नि से मृत्यु होती है ॥२०॥

सौम्यांशके सौम्यगृहेऽथ सौम्यसम्बन्धगे वा क्षयभे क्षयेशे।
अक्लेशजातं मरणं नराणां व्यस्ते तदा क्रूरमृतिं वदन्ति ॥२१॥

द्वादशभावस्थ राशि अथवा वह राशि जिसमें द्वादशेश स्थित हो, द्वादशेश की नवांश राशि—ये शुभग्रह की राशियाँ हों अथवा इनसे सौम्य ग्रह का सम्बन्ध हो तो बिना किसी कष्ट के सहज मृत्यु होती है। अन्यथा यदि द्वादश भाव में पापराशि हो, द्वादशेश पापग्रह की राशि में हो और उसका नवांशपति पापग्रह हो अथवा ये सभी यदि पापग्रह से सम्बन्ध करते हों तो कष्टभोग के अनन्तर मृत्यु होती है ॥२१॥

ऊर्ध्वाधः गति

स्वोच्चे स्वमित्रे सति सौम्यवर्गे व्ययाधिपे चोर्ध्वगतिं ससौम्ये।
विपर्ययेऽधोगतिमेव केचिदूर्ध्वास्यशीर्षोदयराशिभेदात् ॥२२॥

द्वादश भाव का स्वामी अपनी उच्च या मित्र राशि में स्थित हो, सौम्य ग्रह के वर्ग में हो, सौम्य ग्रह के साथ स्थित हो तो जातक की मरणोपरान्त ऊर्ध्वगति होती है। अर्थात् जीव को स्वर्ग की प्राप्ति होती है। इसके विपरीत स्थिति में अर्थात् द्वादशभावाधिपति यदि नीच या शत्रुराशि में स्थित हो, पापग्रह के वर्ग में हो और पापग्रह से युत हो तो मृत्यूपरान्त जीव की अधोगति होती है। कतिपय शास्त्रकारों के मतानुसार यदि द्वादशभाव में शीर्षोदय राशि हो तो जीव की ऊर्ध्वगति और यदि पृष्ठोदय राशि हो तो जीव की अधोगति होती है ॥२२॥

कैलासं रविशीतगू भृगुसुतः स्वर्गं महीजो महीं
वैकुण्ठं शशिजो यमो यमपुरं सद्ब्रह्मलोकं गुरुः।
द्वीपान् भोगिवरः शिखी तु निरयं सम्प्रापयेत्प्राणिनः
सम्बन्धाद्व्ययनायकस्य कथयेत्तत्रान्त्यराश्यंशतः ॥२३॥

मृत्यु के अनन्तर जीव किस लोक में निवास करेगा इसका निर्णय द्वादश भाव के स्वामी, द्वादशभावस्थ ग्रह, द्वादश भाव के नवांश राशि में स्थित ग्रह में जो बलवान् हो उससे करना चाहिए। उक्त ग्रह यदि सूर्य और चन्द्रमा हों तो जीव कैलास पर्वत पर (शिव-सान्निध्य में), यदि शुक्र हो तो स्वर्ग में, यदि मंगल हो तो पृथ्वी पर, बुध हो तो वैकुण्ठ में, शनि हो तो यमपुरी में, बृहस्पति हो तो ब्रह्मलोक में, यदि राहु हो तो किसी छोटे द्वीप में और यदि उक्त ग्रह केतु हो तो नरकलोक में निवास करता है ॥२३॥

पूर्वजन्म और भविष्य जन्म ज्ञान

धर्मेश्वरेणैव हि पूर्वजन्म वृत्तं भविष्यज्जननं सुतेशात्।
तदीशजातिं तदधिष्ठितर्क्षे दिशं हि तत्रैव तदीशदेशम् ॥२४॥

नवम भाव (धर्मभाव) के स्वामी से पूर्वजन्म और पंचम भाव के स्वामी से भविष्य जन्म का ज्ञान करना चाहिए। इन भावों के स्वामी की जाति में, उक्त भावों में स्थित राशि की दिशा में, उस देश में पूर्वजन्म या भविष्य जन्म होता है ॥२४॥

स्वोच्चे तदीशे सति देवभूमिं द्वीपान्तरं नीचरिपुस्थलस्थे।
स्वर्क्षे सुहृद्भे समभे स्थिते वा सम्प्राप्नुयाद्भारतवर्षमेव ॥२५॥

उक्त ग्रह (नवमेश और पंचमेश) यदि अपनी उच्चराशि में स्थित हों तो देवलोक का, यदि नीच या शत्रु राशि का हो तो अन्य द्वीप का और यदि मित्रराशि या समग्रह की राशि का हो तो भारतवर्ष का निवासी होता है। अर्थात् यदि नवमेश उच्चराशिगत हो तो जीव इस जन्म से पूर्व देवलोक का मिवासी होता है तथा यदि पंचमेश उच्चराशिगत हो तो मृत्यु के अनन्तर जीव देवलोक को प्राप्त होता है। इसी प्रकार यदि नवमेश मित्रराशि का हो तो उसका पूर्वजन्म भारतवर्ष में ही होता है और यदि नीच या शत्रु राशि का हो तो विदेश में पूर्वजन्म होता है ॥२५॥

आर्यावर्तं गीष्पतेः पुण्यनद्यः काव्येन्द्वोश्च ज्ञस्य पुण्यस्थलानि।
पङ्गोर्निन्द्या म्लेच्छभूस्तीक्ष्णभानोः शैलारण्यं कीकटं भूमिजस्य ॥२६॥

बृहस्पति का सम्बन्ध आर्यावर्त (हिमालय और विन्ध्य पर्वतों के मध्य तथा पूर्व एवं पश्चिम दिशाओं में समुद्र पर्यन्त अर्थात् पश्चिम में भूमध्यसागर और पूर्व में चीन सागर पर्यन्त भूभाग आर्यावर्त कहलाता है), शुक्र और चन्द्रमा का सम्बन्ध पुण्य नदियों से सिंचित भूभाग से, बुध का सम्बन्ध तीर्थस्थानों से, शनि का सम्बन्ध निन्दित भूमि से जहाँ म्लेच्छ जातियाँ निवास करती हों, सूर्य का सम्बन्ध पर्वतीय वनप्रदेश से तथा मंगल का सम्बन्ध कीकट प्रदेश (सम्भवत: बिहार) से है ॥२६॥

भाव यह है कि श्लोक २४ में निर्दिष्ट ग्रह नवमेश यदि बृहस्पति हो तो मृत्यु से पूर्व जीव का जन्म बृहस्पति से सम्बन्धित प्रदेश आर्यावर्त में हुआ था। यदि पंचमेश बृहस्पति हो तो पुनर्जन्म सम्बन्धित प्रदेश आर्यावर्त में होगा। इसी प्रकार अन्य के विषय में भी समझना चाहिए।

स्थिरे स्थिरांशाधिगतः सपापः पृष्ठोदयेऽधोमुखभे च संस्थः।
तदीश्वरो वृक्षलतादिजन्म स्यादन्यथा जीवयुतः शरीरी ॥२७॥

नवम अथवा पंचम भाव के स्वामी यदि स्थिर, अधोमुखी और पृष्ठोदयी राशि में अथवा उसके नवांश राशि में पापग्रह के साथ स्थित हो तो पूर्व या पर जन्म में जीव वृक्ष-लता आदि की योनि में था अथवा अगले जन्म में उस योनि में जायेगा। इससे भिन्न

स्थिति—यदि पंचमेश या नवमेश शीर्षोदयी और ऊर्ध्वमुख चरराशि में स्थित होने पर जीव मनुष्य योनि को प्राप्त होता है ॥२७॥

'अधोमुखा दिनेशस्य पूर्वषट्करस्थिता ग्रहा: ।
अपरार्द्धस्थिता: भानोरूर्ध्वस्था: सुखवित्तदा:' ॥ (जातकपारिजात)

सूर्य स्थित राशि से प्रथम, द्वितीय, तृतीय, द्वादश, एकादश और दशम इन छ: भावों में स्थित राशि और ग्रह अधोमुख और शेष चतुर्थ, पंचम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम और नवम भावों में स्थित राशि और ग्रह ऊर्ध्वमुख होते हैं।

लग्नेशितु: स्वोच्चसुहृत्स्वगेहान् तदीश्वरो याति मनुष्यजन्म ।
समे मृगा: स्युर्विहगा: परस्मिन् द्रेक्काणरूपैरपि चिन्तनीयम् ॥२८॥

पंचमेश अथवा नवमेश यदि अपनी उच्च अथवा अपने गृह में स्थित हो तथा वह लग्नेश का मित्र हो तो पूर्व या पुनर्जन्म में मनुष्य योनि प्राप्त होती है। उक्त ग्रह यदि लग्नेश की समराशि हो तो पशुयोनि और यदि लग्नेश शत्रु अथवा नीच राशि में स्थित हो तो पक्षियोनि जीव को प्राप्त होती है। नवमेश अथवा पंचमेश की द्रेष्काण राशि से भी इसी प्रकार विचार करना चाहिए ॥२८॥

तावेकराशौ जननं स्वदेशे तौ तुल्यवीर्यौ यदि तुल्यजातौ ।
वर्णो गुणस्तस्य खगस्य तुल्य: संज्ञोदितैरेव वदेत्समस्तम् ॥२९॥

इति श्रीमन्त्रेश्वरविरचितायां फलदीपिकायां रोगचिन्ता
नाम चतुर्दशोऽध्याय: ॥१४॥

उक्त दोनों ग्रह (नवमेश और पंचमेश) यदि एक ही राशि में स्थित हों तो स्वदेश में, यदि दोनों समान बलशाली हों तो उसी जाति में पूर्व या पुनर्जन्म होता है और उसके गुण-धर्म पूर्ववत् ही उन ग्रहों के गुण, वर्ण, प्रकृति आदि के अनुरूप होते हैं। संज्ञाध्याय में कथित ग्रहों के वर्ण-गुण-धर्मादि के अनुसार कहना चाहिए ॥२९॥

इस प्रकार मन्त्रेश्वरकृत फलदीपिका में रोगचिन्ता
नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥१४॥

पञ्चदशोऽध्यायः

भावशुभाशुभचिन्ता

भावफल के सिद्धान्त

भावाः सर्वे शुभपतियुता वीक्षिता वा शुभेशै-
स्तत्तद्भावाः सकलफलदाः पापदृग्योगहीनाः ।
पापाः सर्वे भवनपतयश्चेदिहाहुस्तथैव
खेटैः सर्वैः शुभफलमिदं नीचमूढारिहीनैः ॥१॥

जो भाव शुभग्रह, अपने स्वामी अथवा शुभ भवनों के स्वामियों से युत या दृष्ट हो और पापग्रह की युति या दृष्टि से हीन हो उन भावों के फल शुभ होते हैं। भावस्वामी यदि पापग्रह हो और अपने भाव में स्थित हो या उसे देखता हो और अन्य पापग्रह से असम्बद्ध हो तो भी उस भाव की वृद्धि होती है। इस प्रकार सभी ग्रह उक्त स्थितियों में यदि वे अपनी नीच या शत्रु राशि में न हों तथा सूर्यरश्मि से अस्त न हों तो अपने भाव की वृद्धि करते हैं ॥१॥

यह श्लोक तथा अगले चार श्लोक सर्वार्थचिन्तामणि में पठित है। इस सन्दर्भ में पराशर का वचन—

'यो यो भावः स्वामिदृष्टो युतो वा सौम्यैर्वा स्यात्तस्य तस्याभिवृद्धिः ।
पापैरेवं तस्य भावस्य हानिर्निर्दिष्टव्या जन्मतः प्रश्नतो वा' ॥

जातकपारिजात—

'ये ये भावाः सितज्ञामरगुरुपतिभिः संयुता वीक्षिता वा
नान्यैर्दृष्टा न युक्ता यदि शुभफलदा मूर्तिभावादिकेषु' ॥

तत्तद्भावात् त्रिकोणे स्वसुखमदनभे चास्पदे सौम्ययुक्ते
पापानां दृष्टिहीने भवनपसहिते पापखेटैरयुक्ते ।
भावानां पुष्टिमाहुः सकलशुभकरीमन्यथा चेत्प्रणाशं
मिश्रं मिश्रैर्ग्रहेन्द्रैः सकलमपि तथा मूर्तिभावादिकानाम् ॥२॥

किसी भाव से द्वितीय भाव, त्रिकोण (पंचम और नवम) और केन्द्र (लग्न, चतुर्थ, सप्तम और दशम भावों) में शुभग्रह और भावाधिपति पापग्रह की युति या दृष्टि से हीन हो तो भाव बलवान् होता है और उस भाव के फल की वृद्धि होती है। इससे भिन्न स्थिति में अर्थात् भाव से केन्द्र-त्रिकोण भवनों में पापग्रह स्थित हों या पापग्रह से भावेश दृष्ट हो या युत हो तो उस भाव के फल का नाश होता है। उक्त केन्द्रादि स्थानों में पाप-शुभ दोनों ग्रह स्थित हों और भावेश भी शुभाशुभ ग्रहों से युति या दृष्टि सम्बन्ध करता हो तो उस भाव का मिश्रित फल होता है ॥२॥

नाशस्थानगतो दिवाकरकरैर्लुप्तस्तु यद्भावपो
नीचारातिगृहं गतो यदि भवेत्सौम्यैरयुक्तेक्षितः ।
तद्भावस्य विनाशनं वितनुते तादृग्विधोऽन्योऽस्ति चेत्
तद्भावोऽपि फलप्रदो न हि शुभश्चेन्नाशमुग्रग्रहः ॥३॥

जिस भाव का स्वामी नाशस्थान (अष्टम भाव) में स्थित हो, सूर्य-सान्निध्य में अस्त हो अथवा नीच या शत्रु राशि में शुभग्रहों से अदृष्ट और अयुक्त हो तो उस भाव के फल का विनाश होता है। ऐसा ग्रह (शत्रु या नीच राशि का, सूर्य-सान्निध्य से अस्त शुभग्रह की युति या दृष्टि से हीन) जिस भाव में स्थित हो उस भाव के फल भी विनष्ट होते हैं। कोई शुभ-ग्रह यदि उक्त स्थिति में हो तो उसके भाव का कोई फल जातक को नहीं प्राप्त होता है ॥३॥

लग्नादिभावाद्रिपुरन्ध्ररिःफे पापग्रहास्तद्भवनादिनाशम् ।
सौम्यास्तु नात्यन्तफलप्रदाः स्युर्भावादिकानां फलमेवमाहुः ॥४॥

लग्नादि विचारणीय भाव से छठे, आठवें और बारहवें भावों में पापग्रहों की स्थिति सम्बन्धित भाव के फल का विनाशक होते हैं। भाव से उक्त स्थानों में यदि शुभग्रह स्थित हों तब भी भाव के पूर्ण फल का लाभ नहीं होता है ॥४॥

यद्भावनाथो रिपुरन्ध्ररिःफे दुःस्थानपो यद्भवनस्थितो वा ।
तद्भावनाशं कथयन्ति तज्ज्ञाः शुभेक्षितस्तद्भवनस्य सौख्यम् ॥५॥

जिस भाव का स्वामी छठे, आठवें या बारहवें भाव में स्थित हो अथवा इन (छठे, आठवें या बारहवें) भाव का स्वामी जिस भाव में स्थित हो उन भावों के फल विनष्ट होते हैं। यदि उन पर शुभग्रहों की दृष्टि हो तो उन भावों का सामान्य फल प्राप्त होता है ॥५॥

भावाधीशे च भावे सति बलरहिते च ग्रहे कारकाख्ये
पापान्तःस्थे च पापैररिभिरपि समेतेक्षिते नान्यखेटैः ।
पापैस्तद्बन्धुमृत्युव्ययभवनगतैस्तत्त्रिकोणस्थितैर्वा
वाच्या तद्भावहानिः स्फुटमिह भवति द्वित्रिसंवादभावात् ॥६॥

भाव अथवा उसके स्वामी और भावकारक ग्रह निर्बल हों, दो पापग्रहों के मध्य स्थित हों, पापग्रह से या शत्रुग्रह से युक्त हों, अन्य ग्रहों (शुभग्रहों या मित्रग्रहों) से युत या दृष्ट न हों; अथवा विचारणीय भाव से चतुर्थ, अष्टम, द्वादश और त्रिकोण भावों में पापग्रह स्थित हों तो उक्त विचारणीय भाव के फल का विनाश होता है। उक्त स्थितियों में से दो या तीन स्थितियाँ यदि जन्माङ्ग में विद्यमान हों तो भावफल का सम्पूर्ण विनाश होता है ॥६॥

भावनाशक ग्रह

तत्तद्भावपराभवेश्वरखरद्रेष्काणपा दुर्बला
भावार्यष्टमकामगा निजदशायां भावनाशप्रदाः ।

पापा भावगृहात् त्रिशत्रुभवगाः केन्द्रत्रिकोणे शुभाः
वीर्याढ्याः खलु भावनाथसुहृदो भावस्य सिद्धिप्रदाः ॥७॥

विचारणीय भाव से (१) अष्टम भाव के स्वामी, (२) उक्त भाव के २२वें द्रेष्काण (खर द्रेष्काण) के स्वामी, (३) छठे, सातवें और आठवें भाव में स्थित ग्रह निर्बल हों तो अपनी दशा प्राप्त होने पर सम्बन्धित भाव फल का विनाश करते हैं।

किसी भाव से तृतीय, शत्रु (षष्ठ) और भव (एकादश) भावों में पापग्रह स्थित हों और केन्द्र (१,४,७,१०वें भाव), त्रिकोण (५,९वें भाव) में बलवान् शुभग्रह स्थित हों, भावाधिपति के मित्रग्रह भी इन (केन्द्र-त्रिकोण) भावों में अवस्थित हों तो अपनी-अपनी दशा में उक्त विचारणीय भाव के फल की वृद्धि करते हैं ॥७॥

राश्योर्जन्मविलग्नयोर्धृतिपतिर्मृत्युस्थतद्वीक्षकौ
मन्दः क्रूरदृगाणपो गुलिकपस्तैर्युक्तराश्यंशपा।
राहुश्चैष सुदुर्बलः स जनने भावानभीष्टस्थितः
पापालोकितसंयुतो निजदशायां भावनाशावहाः ॥८॥

(१) जन्मलग्न या जन्मराशि से तृतीय भाव के स्वामी, (२) अष्टमभावस्थ ग्रह, (३) अष्टमभाव के द्रष्टा ग्रह, (४) शनि, (५) २२वें द्रेष्काण के स्वामी, (६) गुलिक राशि के स्वामी, (७) उक्त ग्रह जिस राशि और नवांश में बैठे हों उनके स्वामी और (८) राहु—ये ग्रह यदि त्रिकस्थ होकर अथवा पापाक्रान्त (युति और दृष्टि से) होने से निर्बल हों, इनमें से प्रत्येक ग्रह अपनी दशा में सम्बन्धित भाव के फल की हानि करते हैं ॥८॥

भावस्योदयपाश्रितस्य कुशलं यद्भावपेनोदय-
स्वामी तिष्ठति संयुतोऽपि कलयेत्तद्भावजातं फलम्।
दुःस्थाने विपरीतमेतदुदितं भावेश्वरे दुर्बले
दोषोऽतीव भवेद्बलेन सहिते दोषाल्पता जल्पिता ॥९॥

जिस भाव में जन्मलग्न का स्वामी स्थित हो उसके फल की वृद्धि होती है। लग्नेश से सम्बन्धित (युति अथवा दृष्टि से) ग्रह जिन भावों के स्वामी हों उनकी अभिवृद्धि लग्नेश के द्वारा होती है (लग्नेश के बलाबल के अनुसार उन भावों के फल प्राप्त होते हैं)।

यदि भावाधिपति दुःस्थान में अवस्थित हों तो भावफल की हानि होती है। भावेश यदि निर्बल हो तो अधिक हानि और यदि बलवान् हो तो भावफल की अल्पहानि होती है ॥९॥

लग्नेश की शुभता

यद्भावेष्वशुभोऽपि वोदयपतिस्तद्भाववृद्धिं दिशे-
द्दुःस्थानाधिपतिः स चेद्यदि तनोः प्राबल्यमन्यस्य न।
अत्रोदाहरणं कुजे सुतगते सिंहे झषे वा स्थिते
पुत्राप्तिं शुभवीक्षिते झटिति तत्प्राप्तिं वदन्त्युत्तमाः ॥१०॥

लग्न का स्वामी अशुभ ग्रह ही क्यों न हो जिस भाव में स्थित होता है उसके फल की वृद्धि करता है। लग्नेश यदि दु:स्थान (छठे, आठवें या बारहवें) भाव का स्वामी हो तब भी वह लग्नेश होने का ही शुभफल करेगा। दु:स्थानेश होने का फल नहीं होगा।

उदाहरणार्थ यदि मीन या सिंह राशि का मंगल लग्नेश होकर पंचम भाव में स्थित हो तो वह यत: मंगल लग्नेश और षष्ठेश या अष्टमेश है फिर भी पंचम भाव की हानि न कर वृद्धि ही करेगा। यदि भौम पर शुभग्रहों की दृष्टि हो तो जातक को शीघ्र सन्तान-सुख की प्राप्ति होगी ॥१०॥

दो भावों के स्वामी का फल

द्विस्थानाधिपतित्वमस्ति यदि चेन्मुख्यं त्रिकोणर्क्षजं
तस्यार्द्धं स्वगृहेऽथ पूर्णमुभयोर्यत्तद्दशादौ वदेत्।
पश्चाद्भावमिहापरार्द्धसमये युग्मे गृहे युग्मजं
त्वोजस्थे सति चौजभावजफलं शंसन्ति केचिज्जना: ॥११॥

दो भावों में से एक भाव यदि भावाधिपति की मूलत्रिकोण राशि हो तो मूलत्रिकोण-राशिस्थ भाव ही प्रमुख रूप से विकसित होगा। उसी भाव का पूर्ण फल जातक को प्राप्त होगा। भावेश के दूसरे भाव का आधा फल ही प्राप्त होगा। भावाधिपति की दशा में दोनों भावों के फल प्राप्त होते हैं। दोनों भावों में पहले पड़ने वाले भाव का फल दशा के पूर्वार्द्ध में तथा उससे आगे पड़ने वाले भाव का फल दशा के उत्तरार्द्ध में प्राप्त होता है। एक अन्य मत से यदि भावेश ओज (विषम) राशि में स्थित हो तो उसकी दशा के पूर्वार्द्ध में उस भाव की दशा का फल प्राप्त होगा जिस भाव में विषम राशि होगी। यदि उक्त भावेश समराशि में स्थित हो तो उस भाव, जिसमें समराशि हो, का फल पूर्वार्द्ध में प्राप्त होगा ॥११॥

असद्दशा

यद्भावेशस्याधिशत्रुग्रहो वा यो वा खेटो बिन्दुशून्यर्क्षयुक्त:।
तत्तत्पाके मूर्तिभावादिकानां नाशं ब्रूयाद्दैववित्प्राश्निकाय ॥१२॥

भावाधिपति के अतिशत्रु ग्रह की दशा में अथवा अष्टकवर्ग में शुभ बिन्दुरहित राशि में स्थित ग्रह की दशा में उस भाव की हानि कहना चाहिए ॥१२॥

सन्धिगत ग्रहफल

स्वोच्चे सुहृत्क्षेत्रगतो ग्रहेन्द्र: षड्भिर्बलैर्मुख्यबलान्वितोऽपि।
सन्धौ स्थित: सन्नफलप्रद: स्यात् एवं विचिन्त्यात्र वदेद्विपाके ॥१३॥

स्थान, दिग् आदि षड्बल से युक्त ग्रह यदि अपनी उच्चराशि अथवा मित्रराशि में स्थित हो तो अपनी महादशा और अन्तर्दशा में शुभ फल नहीं देता; यदि वह भावसन्धि में स्थित हो। इसलिए दशाफल कहने से पूर्व इसका विचार अवश्य कर लेना चाहिए ॥१३॥

भावफल-प्रमाण

भावेषु भावस्फुटतुल्यभागस्तद्भावजं पूर्णफलं विधत्ते।
सन्धौ फलं नास्ति तदन्तराले चिन्त्योऽनुपातः खलु खेचराणाम् ॥१४॥

किसी भाव में भावस्फुट तुल्य राश्यादि में स्थित ग्रह उस भाव का पूर्ण फल देता है। भावसन्धि में स्थित ग्रह निष्फल होते हैं। भावास्फुट और सन्धि के मध्य अंशादि में स्थित ग्रह से प्राप्त होने वाले फल के परिमाण का आकलन अनुपात से करना चाहिए ॥१४॥

सूर्यादि ग्रहों से विचारणीय विषय

सूर्यादात्मपितृप्रभावनिरुजां शक्तिं श्रियं चिन्तयेत्
चेतोबुद्धिनृपप्रसादजननीसम्पत्करश्चन्द्रमाः ।
सत्त्वं रोगगुणानुजावनिरिपुज्ञातीन्धरासूनुना
विद्याबन्धुविवेकमातुलसुहृद्वाक्कर्मकृद्बोधनः ॥१५॥

सूर्य से आत्मा, पिता, प्रभाव, नैरोग्यता, शक्ति और सौभाग्य का विचार करना चाहिए। **चन्द्रमा** से चेतनता, बुद्धि, राजकृपा, माता और सम्पदादि का विचार करना चाहिए। **मंगल** से सत्त्व (अधिकार), रोग, गुण, भ्राता, भू-सम्पत्ति, शत्रु और ज्ञाति (जाति) का विचार करना चाहिए। **बुध** से विद्या, बन्धु-बान्धव, विवेक, मामा, मित्र और वाक्शक्ति का आकलन करना चाहिए ॥१५॥

प्रज्ञावित्तशरीरपुष्टितनयज्ञानानि वागीश्वरात्
पत्नीवाहनभूषणानि मदनव्यापारसौख्यं भृगोः ।
आयुर्जीवनमृत्युकारणविपद्भृत्यांश्च मन्दाद्वदेत्
सर्पेणैव पितामहं तु शिखिना मातामहं चिन्तयेत् ॥१६॥

बुद्धि, धन, शरीर, शारीरिक पुष्टि, पुत्र और ज्ञान आदि का विचार **बृहस्पति** से; पत्नी, वाहन, आभूषण, कामेच्छा, व्यापारिक स्थिति और सुख आदि का विचार **शुक्र** से; आयुष्य, जीवन, मृत्यु हेतु, विपत्ति और नौकर आदि का विचार **शनि** से; पितामह का विचार **राहु** से और मातामह का विचार **केतु** से करना चाहिए ॥१६॥

द्वादश भावों के कारक

द्युमणिरमरमन्त्री भूसुतः सोमसौम्यौ
गुरुरिनतनयारौ भार्गवो भानुपुत्रः ।
दिनकरदिविजेज्यौ जीवभानुज्ञमन्दाः
सुरगुरुरिनसूनुः कारकाः स्युर्विलग्नात् ॥१७॥

(१) सूर्य, (२) बृहस्पति, (३) मंगल, (४) बुध और चन्द्रमा, (५) बृहस्पति, (६) शनि, (७) शुक्र, (८) शनि, (९) सूर्य और बृहस्पति, (१०) बृहस्पति, सूर्य, बुध और शनि, (११) बृहस्पति और (१२) शनि क्रमशः लग्नादि भावों के कारक होते हैं ॥१७॥

कारक चक्र

भाव	कारक	भाव	कारक
लग्न	: सूर्य	सप्तमभाव	: शुक्र
द्वितीयभाव	: बृहस्पति	अष्टमभाव	: शनि
तृतीयभाव	: मंगल	नवमभाव	: सूर्य और बृहस्पति
चतुर्थभाव	: बुध और चन्द्रमा	दशमभाव	: बृहस्पति, सूर्य, बुध और शनि
पंचमभाव	: बृहस्पति	एकादशभाव	: बृहस्पति
षष्ठभाव	: मंगल और शनि	द्वादशभाव	: शनि

श्लोक संख्या १५,१६ और १७ जातकपारिजात से उद्धृत हैं। पराशर ने अपने होराशास्त्र में प्रत्येक भाव के एक-एक ही कारक कहे हैं।

'सूर्यो गुरुः कुजः सोमो गुरुर्भौमः सितः शनिः।
गुरुश्चन्द्रसुतो जीवो मन्दश्च भावकारकाः' ॥ (बृहत्पाराशरहोराशास्त्र)

भावस्थ ग्रह का प्रभाव

सुहृदरिपरकीयस्वर्क्षतुङ्गस्थितानां
फलमनुपरिचिन्त्यं लग्नदेहादिभावैः।
समुपचयविपत्ती सौम्यपापेषु सत्यः
कथयति विपरीतं रिःफषष्ठाष्टमेषु ॥१८॥

लग्नादि द्वादश भावस्थित ग्रहों के प्रभाव का आकलन उन-उन भावों में स्थित राशियों की प्रकृति के निरीक्षण के आधार पर करना चाहिए। यथा भावस्थ राशि भावस्थ ग्रह के मित्र की राशि या शत्रु की राशि हैं अथवा उक्त राशि ग्रह की अपनी राशि है या उच्चराशि है। यदि भावस्थ ग्रह मित्रराशि का, स्वराशि या उच्चराशि का है तो भावफल की वृद्धि होगी। भावस्थ ग्रह नीच या शत्रु राशि का हो तो सम्बन्धित भावफल की हानि होगी। यदि समराशि का हो तो भावफल की न वृद्धि होगी और न हानि होगी। सत्याचार्य के मतानुसार शुभग्रह जिस भाव में स्थित हों उस भाव के फल की वृद्धि करते हैं तथा जिस भाव में पापग्रह स्थित हों उसके फल की हानि करते हैं। षष्ठ, अष्टम और द्वादश भाव के सम्बन्ध में इसके विपरीत फल होते हैं। अर्थात् यदि शुभग्रह अशुभ भावों में स्थित हों तो जातक के लिए शुभद नहीं होते। इन भावों में पापग्रह की स्थिति जातक के लिए शुभद होती है ॥१८॥

पापग्रहाः षष्ठमृतिव्ययस्थास्तद्भाववृद्धिं कलयन्ति दोषैः।
शुभास्तु तद्भावलयं हि तस्माच्छत्रवादि भावात्फलप्रणाशः ॥१९॥

षष्ठ, अष्टम और द्वादश भावों में स्थित पापग्रह उस भाव के पापफल को विनष्ट कर शुभफल को प्रशस्त करते हैं। इन अशुभ स्थानों में शुभग्रह की स्थिति से उनके पापत्व की वृद्धि और शुभफल की हानि करते हैं ॥१९॥

भावस्य यस्यैव फलं विचिन्त्यं भावं च तं लग्नमिति प्रकल्प्य ।
तस्माद्वदेद्द्वादशभावजानि फलानि तद्रूपधनादिकानि ॥२०॥

जिस भाव के फल का विचार करना हो उसे लग्न मान कर उसके सन्दर्भ में द्वादश भावस्थ ग्रहस्थिति, ग्रहों के परस्पर सम्बन्ध आदि का अध्ययन कर फल कहना चाहिए ॥२०॥

एवं हि तत्कारकतो विचिन्त्यं पितुश्च मातुश्च सहोदरस्य ।
तन्मातुलस्यापि सुतस्य पत्युर्भृत्यस्य सूर्यादिखगस्थितर्क्षात् ॥२१॥

पिता, माता, सहोदर, मामा, पुत्र, पति, सेवक आदि के सम्बन्ध में उनके कारक ग्रह जिस राशि में स्थित हों उसे लग्न कल्पना कर विचार करना चाहिए ॥२१॥

उदाहरणार्थ सूर्य जिस राशि में स्थित हो उस राशि को लग्न मान कर पिता के सम्बन्ध में, चन्द्र स्थित राशि से माता के सम्बन्ध में, बृहस्पति की राशि से पुत्र, धन, भाग्य, कर्म-व्यवसाय आदि के सम्बन्ध में विचार करना चाहिए ।

सूर्यस्थितर्क्षाज्जनकस्वरूपं वृद्धिं द्वितीयेन तु तत्प्रकाशम् ।
तद्भ्रातरं तस्य गुणं तृतीयात्तन्मातरं चापि सुखं चतुर्थात् ॥२२॥

सूर्य स्थित राशि के लग्न से जातक के पिता के स्वरूप आदि का, द्वितीय राशि से जातक के पिता की आर्थिक स्थिति और ख्याति आदि का विचार; जातक के पितृव्य, चरित्र आदि का विचार सूर्यराशि से तृतीय भाव से करना चाहिए। जातक के पिता की माता, शारीरिक सुख आदि का विचार सूर्यराशि से चतुर्थ भाव से करना चाहिए ॥२२॥

बुद्धिं प्रसादं सुतभाच्च षष्ठात्पीडा पितुर्दोषमरिं च रोगम् ।
कामं मदं तस्य तु सप्तमेन दुःखं मृतिं मृत्युगृहात्तदायुः ॥२३॥

सूर्यराशि से पञ्चम भाव से जातक के पिता की बौद्धिक क्षमता, षष्ठ भाव से पिता के कष्ट, विपत्ति, चोर, शत्रु और रोग आदि का विचार करना चाहिए। सूर्य से सप्तम जो भाव हो उससे जातक के पिता के काम, मद आदि का विचार; सूर्यराशि से जो अष्टम भाव हो उससे जातक के पिता के कष्ट और मृत्यु, आयुष्य आदि के सम्बन्ध में विचार करना चाहिए ॥२३॥

पुण्यं शुभं तत्पितरं शुभेन व्यापारमस्यैव हि कर्मभावात् ।
लाभं ह्युपान्त्यात् क्षयमन्त्यभावाच्चन्द्रादिकानां फलमेवमाहुः ॥२४॥

सूर्यराशि से जो नवम भाव हो उससे जातक के पिता के पुण्यकर्म, शुभ-सौभाग्यादि का विचार करना चाहिए। जातक के पिता के व्यवसाय-समृद्धि आदि का विचार सूर्यराशि से दशम भाव से करना चाहिए। जातक के पिता की आयादि का विचार जातक के जन्माङ्ग में सूर्यराशि से ग्यारहवीं राशि से और क्षय, हानि आदि का विचार द्वादश भाव से करना चाहिए। इसी प्रकार जातक के जन्माङ्ग में चन्द्रमा, भौमादि की राशि से माता, भाई आदि का विचार करना चाहिए। वैसे ही जातक के जन्मलग्न से जातक के सुख-समृद्धि आदि का विचार करते हैं ॥२४॥

तत्तद्भावात्कारकादेवमूह्यं तत्तन्मातृभ्रातृपित्रात्मजाद्यम् ।
तस्मिन् भावे कारके भावनाथे वीर्योपेते तस्य भावस्य सौख्यम् ॥२५॥

माता, पिता, भ्राता, पुत्र आदि का विचार जातक के जिन भावों (चतुर्थ, दशम, तृतीय, पञ्चम आदि) से और जिन ग्रहों से विचार करने को कहा गया है वे भाव, भावेश और उनके कारक ग्रह यदि बलवान् हों तो उन सम्बन्धित भावों की वृद्धि होती है ॥२५॥

भावबाधक ग्रह

धर्मे सूर्यः शीतगुर्बन्धुभावे शौर्ये भौमः पञ्चमे देवमन्त्री ।
कामे शुक्रश्चाष्टमे भानुपुत्रः कुर्यात्तस्य क्लेशमित्याहुरन्ये ॥२६॥

नवम भाव में सूर्य, चतुर्थ भाव में चन्द्रमा, तृतीय भाव में मङ्गल, पञ्चम भाव में बृहस्पति, सप्तम भाव में शुक्र और अष्टम भाव में शनि भावफल की हानि करते हैं ॥२६॥

'सभानुरिन्दुः शशिजश्चतुर्थे गुरुः सुते भूमिसुतः कुटुम्बे ।
भृगुः सपत्ने रविजः कलत्रे विलग्नतस्ते विफला भवन्ति' ॥

(जातकपारिजात)

जातकपारिजात के अनुसार सूर्य चन्द्रमा के साथ स्थित हो तो निष्फल होते हैं। मन्त्रेश्वर के मत से सूर्य नवम भाव में तथा चतुर्थ भाव में चन्द्रमा निष्फल होता है। वैद्यनाथ ने शनि को सप्तम भाव में और शुक्र को षष्ठ भाव में निष्फल कहा है। मन्त्रेश्वर के अनुसार शुक्र सप्तम में और शनि अष्टम भाव में फलद नहीं होता।

लग्नेश्वरो यद्भवनेशयुक्तो यद्भावगस्तस्य फलं ददाति ।
भावे तदीशे बलभाजि तेन भावेन सौख्यं व्यसनं बलोने ॥२७॥

लग्नेश जिस भावेश के साथ स्थित होता है और जिस भाव में स्थित होता है उन भावों के फल जातक को प्रदान करता है। भाव या भावाधिपति (उन भावों के स्वामी जिसके साथ या जिसमें लग्नेश स्थित हो) यदि बलवान् हो तो उस भाव का शुभ फल होता है, अन्यथा भावेश के निर्बल होने से भाव की हानि होती है ॥२७॥

यद्भावप्रभुणा युतो बलवता मुख्याङ्गगो लग्नप-
स्तद्भावानुभवं वितनुते यद्भावगस्तस्य च ।
संयुक्तो बलहीनभावपतिना निन्द्याङ्गभाजां फलं
कुर्यात्तद्विपरीतमेवमुदितं सर्वेषु भावेष्वपि ॥२८॥

लग्नेश के अष्टक वर्ग में जिन भावों में शुभ बिन्दुओं की संख्या अधिक हो और उनके स्वामी बलवान् होकर यदि लग्नेश के साथ संयुक्त हों तो उन भावों के फल की वृद्धि होती है। लग्नेश के अष्टक वर्ग में जिन भावों में शुभ बिन्दु अल्प हों यदि उनके स्वामी लग्नेश के साथ निर्बल होकर स्थित हों तो उन भावों के फल का नाश करते हैं। इसी प्रकार सभी भावों का विचार करना चाहिए ॥२८॥

दुःस्थानपस्तदितरस्वगृहस्थितश्चेत्
स्वेक्षत्रभावफलमेव करोति नान्यत्।
मन्दो मृगे सुतगृहे यदि पुत्रसिद्धिः
षष्ठाधिपत्यकृतदोषफलं च नात्र ॥२९॥

दुःस्थान का स्वामी अन्य किसी भाव में स्वराशिगत हो तो वह उसी भाव का फल अपनी दशा में देगा जिस भाव में वह स्वगृही है। जैसे यदि मकर का शनि पञ्चमेश और षष्ठेश होकर पञ्चम भाव में स्थित हो तो षष्ठेशकृत दोष से मुक्त होकर सन्तान-वृद्धि करेगा ॥२९॥

ग्रहों के परस्पर सम्बन्ध

राशौ स्थितिर्मिथो योगो दृष्टिः केन्द्रेषु संस्थितिः।
त्रिकोणे वा स्थितिः पञ्चप्रकारो बन्ध ईरितः ॥३०॥

इति श्रीमन्त्रेश्वरविरचितायां फलदीपिकायां जातकफलसारभूत-
भावशुभाशुभत्वं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

दो ग्रह (१) परस्पर एक-दूसरे की राशि में स्थित हों (व्यत्य सम्बन्ध), (२) दोनों एक ही राशि में स्थित हों (युति), (३) परस्पर एक-दूसरे को देखते हों (परस्पर दृष्टि सम्बन्ध), (४) परस्पर केन्द्रभावों में स्थित हों (कैन्द्रिक सम्बन्ध) तथा (५) परस्पर त्रिकोण में स्थित हों (त्रिकोणीय सम्बन्ध)—ये ५ प्रकार के सम्बन्ध होते हैं ॥३०॥

इस प्रकार मन्त्रेश्वर कृत फलदीपिका में भावशुभाशुभत्व
नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥१५॥

○

षोडशोऽध्यायः

भावसमुदायफलचिन्ता

तनुभावचिन्ता

लग्ननवांशपतुल्यतनुः स्याद्वीर्ययुतग्रहतुल्यतनुर्वा ।
चन्द्रसमेतनवांशपवर्णः कादिविलग्नविभक्तभगात्रः ॥१॥

लग्न जिस राशि के नवांश में स्थित हो उसके स्वामी ग्रह के समान अथवा सबसे बली ग्रह के समान जातक का शरीर, चन्द्रमा जिस राशि के नवांश में स्थित हो उसके स्वामी के वर्ण के अनुसार जातक का वर्ण (Comlexion) होता है। कालपुरुष के विभिन्न अङ्गों में स्थित राशियों के अनुसार जातक-शरीर के तत्तद् अङ्ग होते हैं ॥१॥

जातक के विभिन्न अङ्गों का विकास कालपुरुष के उन-उन अङ्गों में स्थित राशियों के अनुरूप ही होता है। कालपुरुष के जिस अङ्ग में ह्रस्व राशि हो जातक का वह अङ्ग अपेक्षया ह्रस्व और जिस अङ्ग में दीर्घ राशि हो वह अङ्ग (जातक का) अपेक्षाकृत दीर्घ होता है। कालपुरुष के जिस अङ्ग में स्थित राशि पापग्रह से युत हो वह अङ्ग दुर्बल और जिस अङ्ग में स्थित राशि शुभग्रहों से युक्त हो जातक का वह अङ्ग पुष्ट होगा।

लग्नेशे केन्द्रकोणे स्फुटकरनिकरे स्वोच्चभे वा स्वभे वा
केन्द्रादन्यत्र संस्थे निधनभवनपे सौम्ययुक्ते विलग्ने।
दीर्घायुष्मान्धनाढ्यो महितगुणयुतो भूमिपालप्रशस्तो
लक्ष्मीवान् सुन्दराङ्गो दृढतनुरभयो धार्मिकः सत्कुटुम्बी ॥२॥

यदि लग्न का स्वामी अपनी उच्च या स्व राशि का होकर केन्द्र या त्रिकोण भवनों में स्थित हो, सूर्य से पर्याप्त अन्तर से स्थित हो, अष्टम भाव का स्वामी शुभग्रहों के साथ केन्द्र से भिन्न स्थान में स्थित हो तथा लग्न शुभग्रह से युक्त हो तो जातक दीर्घायु, धनवान्, अत्यन्त सुखी, प्रशंसित राजा, सद्गुणी, वैभव-सम्पन्न, पुष्ट और सुन्दर शरीर युक्त, निर्भय, धार्मिक तथा सत्कुटुम्ब का स्वामी होता है ॥२॥

सत्सम्बन्धयुते कलेवरपतौ सद्ग्रामवासोऽथवा
सत्सङ्गः प्रबलग्रहेण सहिते विख्यातभूपाश्रयः।
स्वोच्चस्थे नृपतिः स्वयं स्वगृहगे तज्जन्मभूमौ स्थितिः
सञ्चारश्चरभे स्थितिः स्थिरगृहे द्वन्द्वं द्विरूपं फलम् ॥३॥

लग्न का स्वामी यदि शुभग्रहों से सम्बन्धित हो तो जातक अच्छे ग्राम में सज्जनों के साथ निवास करता है। यदि लग्न का स्वामी बलवान् ग्रह के साथ स्थित हो तो जातक

विख्यात होता है और उसे राजाश्रय प्राप्त होता है। लग्न का स्वामी यदि अपनी उच्चराशिगत हो तो जातक राजा होता है। यदि वह स्वगृही हो तो जातक अपनी जन्मभूमि में ही निवास करता है। लग्नेश यदि चर राशि में स्थित हो तो जातक के निवास में स्थिरता का अभाव होता है। यदि वह स्थिर राशि में स्थित हो तो जातक का स्थायी आवास होता है तथा यदि लग्नेश द्विस्वभाव राशि में स्थित हो तो मिश्रित फल—कभी स्थिर, कभी चल आवास—होता है; जैसे किराये पर लिये गये भवन में निवास ॥३॥

विख्यातः किरणोज्ज्वले तनुपतौ सुस्थे सुखी वर्धनो
दुःस्थे दुःख्यसदृक्षनीचभवने वासो निकृष्टस्थले।
स्वस्थो जीवति शक्तिमत्युदयभे वर्द्धिष्णुरूर्जस्वलो
निःशक्तौ निहतो विपद्भिरसकृत्खिन्नो भवेदातुरः ॥४॥

यदि लग्न का स्वामी उज्ज्वल किरणों से युक्त हो और शुभस्थान (केन्द्र या त्रिकोण भाव) में स्थित हो तो जातक विख्यात, सुखी और निरन्तर विकास करने वाला होता है। यदि वह (लग्नेश) दुःस्थान में, पापग्रह की राशि, नीच या शत्रु राशि में स्थित हो तो जातक दुःखी, निन्दित स्थान में निवास करने वाला होता है। यदि लग्न बलवान् हो तो जातक दीर्घायु, विकासशील एवं प्रसन्नचित्त होता है। किन्तु यदि लग्न निर्बल हो तो जातक दुःखी, विपत्तिग्रस्त और खिन्न रहता है ॥४॥

द्वितीय भावचिन्ता

अर्थस्वामिनि मुख्यभावजुषि सत्स्वर्थे कुटुम्बश्रिया
सर्वोत्कृष्टगुणो धनी च सुमुखी स्याद्दूरदर्शी नरः।
सम्बन्धे सवितुर्द्वितीयपतिना लोकोपकारक्षमां
विद्यामर्थमवाप्नुयादथ शनेः क्षुद्राल्पविद्यारतः ॥५॥

द्वितीय भाव का स्वामी मुख्य भाव (लग्न) में शुभग्रहों के साथ स्थित हो तो जातक पारिवारिक सम्पन्नता, उत्कृष्ट गुणों से युक्त, धनिक, मृदुभाषी और दूरदर्शी होता है।

इसके विपरीत यदि लग्नेश द्वितीय भाव में स्थित होकर बलवान् हो तब भी जातक धनसम्पन्न होता है।

'धनस्थे यदि लग्नेशे निधिमान् बलसंयुते।
दुर्बले पापसंयुक्ते वञ्चनादि फलं वदेत्' ॥ (जातकपारिजात)

यदि द्वितीय भाव का स्वामी सूर्य से सम्बन्ध करता हो तो जातक लोक का उपकार करने वाला, विद्या और धन से सम्पन्न होता है। यदि द्वितीयेश शनि से सम्बन्धित हो तो जातक हीन या निकृष्ट विद्या में पारंगत होता है ॥५॥

जैवे वैदिकधर्मशास्त्रनिपुणो बौधेऽर्थशास्त्रे पटुः
शृङ्गारोक्तिपटुर्भृगोर्हिमरुचेः किञ्चित्कलाविद्भवेत्।

कौजे क्रूरकलापटुश्च पिशुनो राहौ स्थिते लोहलः
केतौ भ्रश्यदलीकवाग्धनगतैः पापैश्च मूढोऽधनः ॥६॥

यदि द्वितीय भाव का स्वामी बृहस्पति से सम्बन्धित हो तो जातक वेद और धर्मशास्त्र में निष्णात होता है; बुध से सम्बन्धित हो तो जातक अर्थशास्त्रविद् होता है; शुक्र से सम्बन्ध हो तो जातक शृङ्गारिक उक्तियाँ बोलने में पटु होता है; यदि चन्द्रमा से सम्बन्धित हो तो जातक कलाविद् होता है; यदि मङ्गल से सम्बन्ध हो तो जातक क्रूरता में पटु होता है अर्थात् ऐसा जातक क्रूर कर्म में निरत एवं चुगलखोर होता है; राहु के साथ युत हो अथवा राहु द्वितीय भाव में स्थित हो तो जातक तुतला होता है; यदि केतु के साथ हो अथवा द्वितीय भाव में केतु स्थित हो तो जातक हकला या हकलाकर बोलने वाला होता है। द्वितीय भाव में यदि पापग्रह स्थित हों तो जातक मूर्ख और निर्धन होता है ॥६॥

तृतीय भावचिन्ता

बन्धो यदि स्यात्तनुशौर्यनाथयोरन्योन्यराशिस्थितयोर्बलाढ्ययोः ।
धैर्यं च शौर्यं सहजानुकूलतां प्राप्नोत्ययं साहसकार्यकर्तृताम् ॥७॥

तृतीय और लग्न भावों के स्वामी परस्पर एक-दूसरे की राशि में स्थित हों (व्यत्यय सम्बन्ध) तथा बलवान् हों तो जातक धीर-वीर और बन्धु-बान्धवों का सहयोगी होता है तथा जातक साहसिक कार्यों के सम्पादन में सक्षम होता है ॥७॥

शौर्यपे बलिनि सद्ग्रहयुक्ते कारकेऽपि शुभभावमुपेते ।
भ्रातृवृद्धिरथ वीर्यविहीने दुःस्थिते भवति सोदरनाशः ॥८॥

तृतीय भाव का अधिपति यदि बलवान् हो, शुभग्रहों से युत हो तथा तृतीय भाव का कारक भी बली हो और शुभ ग्रहों से युत हो एवं शुभस्थान में हो तो जातक के भाइयों की वृद्धि होती है। ये दोनों ग्रह यदि निर्बल हों, दुःस्थान में स्थित हों तथा पापग्रहों से युत हों तो जातक के भाइयों का नाश होता है ॥८॥

'भ्रातृपे कारके वाऽपि शुभयोगनिरीक्षिते ।
भावे वा बलसम्पूर्णे भ्रातॄणां वर्धनं भवेत् ॥
केन्द्रत्रिकोणगे वाऽपि स्वोच्चमित्रस्ववर्गगे ।
नाथे वा कारके वाऽपि भ्रातृलाभमुदीरयेत्' ॥

उक्त विचार सर्वार्थचिन्तामणि के हैं। भाव-विचार के सम्बन्ध में इस ग्रन्थ में एक सामान्य नियम का प्रतिपादन किया गया है जो इस प्रकार है—

'सौम्यग्रहान्विते वाऽपि सौम्यानामांशके यदि ।
नाथे वा कारके वाऽपि भावे सोदरवर्धनम्' ॥

यदि सहज भाव सौम्य ग्रहों से युत हो अथवा सौम्य ग्रह के नवांश में स्थित हो, भावस्वामी अथवा भावकारक भाव में स्थित हो तो भाइयों की वृद्धि होती है।

यद्यपि उक्त बातें भ्रातृभाव के सम्बन्ध में कही गई हैं किन्तु यह सभी भावों पर लागू होती हैं। इसके विपरीत यदि कोई भाव पापग्रहों से युत या दृष्ट हो अथवा पापग्रह के नवांश में स्थित हो, भावस्वामी और भावकारक दुःस्थान में स्थित हों तो भावफल का नाश होता है।

सहोदर-नाश के सम्बन्ध में उक्त ग्रन्थ के निम्न योग द्रष्टव्य हैं—

'नाशस्थितौ सोदरनाथभौमौ पापेक्षितौ सोदरनाशमाहुः ।
पापर्क्षगौ पापसमागमौ वा भ्रातॄन् समासाद्य विनाशहेतुः ॥
नीचर्क्षगौ सोदरकारकाख्यौ नीचांशगौ पापसमागमौ वा ।
क्रूरादिषष्ट्यंशयुतौ तदानीं भ्रातॄन्समासाद्य विनाशमाहुः' ॥

अयुग्मराशौ यदि कारकेशौ गुर्वर्कभूसूनुनिरीक्षितौ चेत् ।
ओजो गृहः स्याद्यदि विक्रमाख्यः पुंभ्रातरस्त्वंशवशाद्भवेयुः ॥९॥

तृतीय भाव के स्वामी और उसके कारक (भौम) दोनों यदि विषम राशि में स्थित हों और उन पर बृहस्पति, सूर्य एवं मङ्गल की दृष्टि हो तथा तृतीय भाव में भी विषम राशि हो तो तृतीय भाव में उदित नवांश की संख्या तुल्य भाइयों की संख्या होती है ॥९॥

यह श्लोक थोड़े अन्तर के साथ सर्वार्थचिन्तामणि में पठित है—

'अयुग्मभांशे यदि कारकेशौ गुर्वर्कभूसूनुनिरीक्षितौ चेत् ।
ओजे गृहे स्युर्यदि विक्रमाख्ये पुंभ्रातरस्तस्य वदन्ति तज्ज्ञाः ॥
युग्मांशके युग्मगृहे तदीशे भावे तथा कारकखेचरेन्द्रे ।
सहोदरीलाभमिहाहुरार्याः नपुंसकांशे किल तत्तथैव' ॥

भाइयों की संख्या के सम्बन्ध में प्राप्त वचन इस प्रकार हैं—

'भ्रातृराश्यंशकवशात् भ्रातृसंख्यां विनिर्दिशेत् । नाथकारकसंयुक्तराश्यंशाद्वा भवेत् तथा ॥
भ्रातृराशिसमायुक्तखेचरस्यांशकाद्वदेत् । सोत्थेशयुक्तराश्यंशात्कारकान्वितभावतः' ॥

चतुर्थ भावचिन्ता

दुःस्थाने सुखपे शशिन्यपि सतां योगेक्षणैर्वर्जिते
पापान्तःस्थितिमत्यसद्ग्रहयुते दृष्टे जनन्या मृतिः ।
एतौ द्वावपि वीर्यगौ शुभयुतौ दृष्टौ शुभैर्बन्धुगै-
र्मातुः सौख्यकरौ विधोश्च सुखगैः सौम्यैर्वदेत्तत्सुखम् ॥१०॥

सुखभाव (चतुर्थ भाव) का स्वामी और चन्द्रमा दुःस्थान (छठे, आठवें या बारहवें भाव) में स्थित हों, शुभग्रह से युत या दृष्ट न हों, पापग्रह से युत-दृष्ट हों, पापकर्तरी (पाप ग्रहों के मध्य) में स्थित हों तो माता के लिए मृत्युकारक होता है। ये दोनों ही ग्रह (चतुर्थेश और चन्द्रमा) यदि बलवान् हों, शुभग्रह से युत और दृष्ट हों, चतुर्थ भाव में शुभग्रह स्थित हों तो माता सुखी होती है। चन्द्रमा से शुभ स्थानों (केन्द्र-त्रिकोण भवनों) में यदि शुभग्रहों का योग हो अथवा उनमें दृष्टि सम्बन्ध हो तब भी माता का सुख कहना चाहिए ॥१०॥

इस श्लोक के चतुर्थ चरण में 'सुभगैः' के स्थान पर कुछ प्रतियों में 'सुखगैः' पाठान्तर देखने को मिलता है। उस स्थिति में अर्थ 'चन्द्रमा से चतुर्थ भाव यदि शुभग्रहों से युत हो तब भी माता सुखी होती है' ऐसा होगा।

लग्नेशे सुखगेऽथवा सुखपतौ लग्ने तयोरीक्षणे
योगे वा शशिनस्तथा यदि करोत्यन्त्यां स्वमातुः क्रियाम्।
अन्योन्यं यदि शत्रुनीचभवने षष्ठाष्टमे वा तयो-
र्मातुर्नोपकरोति नाशसमये बन्धस्तयोर्वा न चेत् ॥११॥
मातृभावोक्तवद्वाच्यं पितृभ्रातृसुतादिषु।
भावकारकभावेशलग्नलग्नेश्वरैर्वदेत् ॥१२॥

यदि लग्नेश चतुर्थ भाव में अथवा चतुर्थेश लग्न में स्थित हो और इनमें से कोई (लग्नेश अथवा चतुर्थेश) चन्द्रमा से दृष्ट हो तो जातक निश्चय ही अपनी माता का अन्तिम संस्कार सम्पन्न करता है। उक्त दोनों ग्रह (लग्नेश और चतुर्थेश) यदि परस्पर शत्रुराशि या नीच राशि (लग्नेश चतुर्थेश के शत्रुराशि या नीचराशि में और चतुर्थेश लग्नेश के शत्रु या नीच राशि में) में स्थित हों, षष्ठ और अष्टम भावों में स्थित हों तथा वे दोनों परस्पर सम्बन्ध न करते हों तो जातक अपनी माता का अन्तिम संस्कार नहीं कर पाता है॥११॥

मातृभाव (चतुर्थ भाव) के समान ही पिता, भ्राता और पुत्र भावों का भी विचार कर फल कहना चाहिए। इन भावों के स्वामी, उनके कारक, लग्न और लग्नेश आदि की स्थिति के अनुसार उनके विषय में फल का निर्णय करना चाहिए॥१२॥

सामान्यतः किसी भी भाव से शुभ स्थानों (त्रिकोण और केन्द्र भावों) में शुभग्रह और त्रिक (छठे, आठवें और बारहवें) भावों में यदि पापग्रह स्थित हों तो उस भाव की वृद्धि करते हैं। लग्न और लग्नेश भी यदि बलयुक्त हो तो उक्त भाव का अत्युत्तम फल प्राप्त होता है।

सुस्थौ सुखेशभृगुजौ तनुबन्धुयुक्ता-
वान्दोलिकां जनपतेश्वरतां विधत्तः।
स्वर्णाद्यनर्घ्यमणिभूषणपट्टशय्या-
कामोपभोगकरणानि च गोगजाश्वान् ॥१३॥

यदि चतुर्थ भाव का स्वामी लग्न में और शुक्र चतुर्थ भाव में सुखपूर्वक स्थित हों अथवा दोनों शुभस्थानस्थ हों तो जातक को पालकी आदि का सुख और राजतुल्य वैभवादि का सुख, स्वामित्व, स्वर्णरत्नादि खचित आभूषण, रेशमी वस्त्र और शय्या, गौ, हाथी और अश्वादि का सुख होता है॥१३॥

'चतुर्थेश और शुक्र क्रमशः लग्न और चतुर्थ भाव में सुखपूर्वक स्थित हों' ऐसा कहा गया है। ग्रहों की सुखद स्थिति कब होती है ? ग्रह स्वराशि में, उच्चराशि में, मित्रराशि में, सूर्य-सान्निध्य से अस्त न होने की स्थिति में, शुभग्रहों अथवा मित्रग्रहों के योग में, शुभग्रहों

और मित्रग्रहों की दृष्टि के योग होने पर तथा शुभवर्गस्थ होने पर ग्रहों की सुखद स्थिति होती है। इसके अतिरिक्त तरुण और युवा अवस्था में भी ग्रह सुखी होते हैं।

इनके विपरीत स्थितियों में ग्रह विकल होते हैं। सुखद स्थिति में स्थित ग्रह सुखद फल देता है और अनिष्टकर ग्रह अल्प अनिष्ट करता है।

दुःस्थे सुखेशे कुजसूर्ययुक्ते सुखेऽपि वा जन्मगृहं प्रदग्धम्।
जीर्णं तमोमन्दयुतेऽरियुक्ते परैर्हृतं गोक्षितिवाहनाद्यम् ॥१४॥

चतुर्थ भाव का स्वामी यदि दुःस्थान (छठे, आठवें या बारहवें भाव) में सूर्य और मङ्गल के साथ स्थित हो, अथवा चतुर्थ भाव सूर्य और मङ्गल से युक्त हो तो जातक का जन्म स्थान जलकर नष्ट हो जाता है। दुःस्थानस्थ चतुर्थेश यदि राहु और शनि से युत हो तो जातक का जन्मगृह जीर्ण-शीर्ण होता है! उक्त स्थिति में चतुर्थेश यदि शत्रुग्रह के साथ युत हो तो जातक के शत्रु द्वारा उसकी भूसम्पदा, वाहन और चौपायों का विनाश होता है ॥१४॥

पञ्चम भावचिन्ता

सौम्यर्क्षांशे सौम्ययुक्ते पञ्चमे वा तदीश्वरे।
वैशेषिकांशे सद्भावे धीमान्निष्कपटी भवेत् ॥१५॥

पञ्चम भाव में बुध की राशि और बुध का ही नवमांश हो, पञ्चम भाव में स्वयं बुध स्थित हो अथवा पञ्चम भाव का स्वामी वैशेषिकांश से युक्त होकर शुभ भाव में स्थित हो तो जातक बुद्धिमान् और निष्कपट होता है ॥१५॥

षष्ठ भावचिन्ता

स्थितिः पापानां वा, द्विषति बलयुक्तारिपतिना
युतो वा दृष्टो वा, यदि रिपुगृहे वा तनुपतिः।
अरीशः केन्द्रे वाऽप्यशुभखगसंवीक्षितयुतो
रिपूणां पीडां द्राग्भृशमपरिहार्यां वितनुते ॥१६॥

(१) षष्ठ भाव में पापग्रह स्थित हों, (२) लग्नेश बलवान् षष्ठेश से युत हो अथवा दृष्ट हो अथवा (३) लग्नेश षष्ठ भाव में स्थित हो, (४) षष्ठभावाधिपति केन्द्र में पापग्रह से युत-दृष्ट होकर स्थित हो, (५) षष्ठभावाधिपति पापग्रह से युत हो अथवा दृष्ट हो; उक्त पाँचों योग में जातक निरन्तर शत्रु से पीड़ित होता है ॥१६॥

षष्ठेश्वरादतिबलिन्युदयाधिनाथे
सौम्यग्रहांशसहिते शुभदृष्टियुक्ते।
सौख्येश्वरेऽपि सबले यदि केन्द्रकोणे-
ष्वारोग्यभाग्यसहितो दृढगात्रयुक्तः ॥१७॥

षष्ठभावाधिपति से लग्नेश यदि बलवान् हो, शुभग्रह के नवांश में हो, शुभग्रह की दृष्टि से युक्त हो तथा चतुर्थ भाव का स्वामी बलयुक्त होकर केन्द्र (१।४।७।१०वें भाव) में

अथवा कोण (५।९वें) भाव में स्थित हो तो जातक नीरोग, पुष्ट शरीर और भाग्यवान् होता है ॥१७॥

शत्रुनाथे तु दुःस्थाने नीचमूढारिसंयुते।
तस्माद्बलाढ्ये लग्नेशे शत्रुनाशं रवौ शुभे ॥१८॥

अपनी नीच या शत्रु राशि का होकर अथवा सूर्य-सान्निध्य में अस्त होकर षष्ठेश दुःस्थानगत हो, लग्नेश अपेक्षाकृत बलशाली हो और सूर्य नवम भाव में स्थित हो तो जातक के शत्रुओं का विनाश होता है ॥१८॥

श्लोक के अन्तिम चरण में 'शत्रुनाशं रवौ शुभे' के स्थान पर कुछ प्रतियां में 'शत्रुनाशो रिपौ शुभे' पाठान्तर मिलता है जिसका अर्थ इस प्रकार होगा—'शत्रुभाव में यदि शुभग्रह स्थित हो तो शत्रुओं का विनाश होता है'।

यद्भावेशयुतो वैरिनाथो यद्भावसंश्रितः।
षष्ठस्थितो यद्भावेशस्ते भावाः शत्रुतां ययुः ॥१९॥

षष्ठ भाव का स्वामी जिस भाव के स्वामी से संयुक्त हो उस भाव के फल का नाश करता है। षष्ठेश जिस भाव में स्थित हो उसके फल का भी विनाशक होता है। जिस भाव का अधिपति षष्ठभाव में स्थित हो उस भाव के फल भी विनष्ट होते हैं ॥१९॥

कुछ पुस्तकों में श्लोक के अन्तिम चरण में प्रयुक्त 'शत्रुतां' के स्थान पर 'शुभता' पाठ मिलता है। षष्ठ भाव और उसका स्वामी ग्रह अत्यन्त अनिष्टकारी कहे गये हैं। अनुभव में भी देखा जाता है कि इन दोनों—षष्ठ भाव और उसके स्वामी—से युत भाव के फल जातक के लिए अनिष्टकारी ही होते हैं। इनसे शुभता की अपेक्षा नहीं की जा सकती है। षष्ठेश यदि पञ्चमेश से संयुक्त हो या पञ्चमेश यदि षष्ठ भावस्थ हो तो पुत्र से, सप्तमेश से संयुक्त हो तो स्त्री (पत्नी) से, दशमेश या नवमेश से संयुक्त हो तो पिता, भाग्य और कर्म से शत्रुता होती है अर्थात् ये सभी जातक से विपरीत होते हैं।

सप्तम भाव चिन्ता

सत्सम्बन्धयुते सप्तर्क्षे तदीशे बलान्विते।
पतिपुत्रवती साध्वी भार्या सर्वगुणैर्वृता ॥२०॥

शुभग्रह यदि सप्तम भाव से सम्बन्धित हों (सप्तम भाव में शुभग्रह स्थित हों अथवा शुभग्रह की दृष्टि सप्तम भाव पर हो) और सप्तम भाव का स्वामी बलवान् हो तो जातक की पत्नी साध्वी, पति और पुत्रों से सुखी होती है ॥२०॥

ग्रहों के परस्पर सम्बन्ध के विषय में १५ अध्याय के ३०वें श्लोक में कहा जा चुका है। इन पाँच प्रकार के सम्बन्धों में कोई सम्बन्ध सप्तम भाव और शुभग्रह में हों तो उक्त फल होता है।

अष्टम भाव चिन्ता

केन्द्रादन्यत्र रन्ध्रेशे लग्नेशाद्दुर्बले सति।
नाधिर्न विघ्नो न क्लेशो नृणामायुश्चिरं भवेत् ॥२१॥

यदि लग्न की अपेक्षा अष्टम भाव का स्वामी दुर्बल होकर केन्द्रेतर (लग्न, चतुर्थ, सप्तम और दशम भावों के अतिरिक्त अन्य) भाव में स्थित हो तो जातक निरोग, विघ्न-बाधाओं से और दुःख से रहित दीर्घायु प्राप्त करता है ॥२१॥

नवम भाव चिन्ता

धर्मे कुजे वा सूर्ये वा दुःस्थे तन्नायके सति।
पापमध्यगते वाऽपि पितुर्मरणमादिशेत् ॥२२॥

यदि नवम भाव सूर्य अथवा मङ्गल से युत हो और नवम भाव का अधिपति दुःस्थान (छठे, आठवें या बारहवें भाव) में स्थित हो अथवा नवम भाव का स्वामी पापग्रहों के मध्य स्थित हो तो यह योग जातक के पिता की मृत्यु का कारण होता है ॥२२॥

दक्षिण भारत में पिता के सम्बन्ध में नवें भाव से विचार किया जाता है जबकि उत्तर भारत में दशम भाव से। उक्त स्थिति यदि दशम भाव के साथ हो तब भी पिता के लिए अरिष्टकारक होता है। पिता की मृत्यु यदि तत्काल सम्भव न हो तो सूर्य या मङ्गल की दशा प्राप्त होने पर मृत्यु होती है।

दिवा सूर्ये निशा मन्दे सुस्थे शुभनिरीक्षिते।
धर्मेशे बलसंयुक्ते चिरं जीवति तत्पिता ॥२३॥

दिवा जन्म हो तो सूर्य और रात्रि जन्म हो तो शनि यदि शुभ स्थान में शुभग्रहों से दृष्ट हों तथा नवम भाव का स्वामी बलसंयुक्त हो तो जातक का पिता दीर्घायु होता है ॥२३॥

मन्दारयोः शीतरुचौ च सूर्ये त्रिकोणगे तज्जननीपितृभ्याम्।
त्यक्तो भवेच्छक्रपुरोहितेन दृष्टे तनूजोऽस्ति सुखी चिरायुः ॥२४॥

यदि मङ्गल और शनि से सूर्य एवं चन्द्रमा पञ्चम तथा नवम भावों में स्थित हों तो जातक अपने माता और पिता के द्वारा परित्यक्त होता है। किन्तु यदि उन पर बृहस्पति की दृष्टि हो तो जातक सुखी और दीर्घायु होता है ॥२४॥

शनिर्भाग्याधिपः स्याच्चेच्चरस्थो न शुभेक्षितः।
सूर्ये दुःस्थानगेऽप्यन्यपितरं ह्युपजीवति ॥२५॥

भाग्यस्थान का अधिपति यदि शनि हो और वह शुभग्रहों की दृष्टि से हीन होकर चर राशि में स्थित हो तथा सूर्य दुःस्थान में स्थित हो तो जातक का पालन-पोषण दूसरे व्यक्ति द्वारा होता है ॥२५॥

धर्मे तदीशे वा मन्दयुक्ते दृष्टेऽपि वा चरे।
जातो दत्तो भवेन्नूनं व्ययेशे बलशालिनि ॥२६॥

यदि नवम भाव अथवा उसका अधिपति चरराशि के शनि से युत अथवा दृष्ट हो तथा द्वादशभावाधीश बलवान् हो तो जातक दूसरों के द्वारा पालित होता है अर्थात् दूसरे के द्वारा गोद लिया जाता है ॥२६॥

दशम भावचिन्ता

नभसि शुभखगे वा तत्पतौ केन्द्रकोणे
बलिनि निजगृहोच्चे कर्मगे लग्नपे वा।
महितपृथुयशाः स्याद्धर्मकर्मप्रवृत्तिः
नृपतिसदृशभाग्यं दीर्घमायुश्च तस्य ॥२७॥

दशम भाव में शुभग्रह स्थित हों और (१) दशम भाव का स्वामी अपनी राशि या अपनी उच्चराशि का होकर केन्द्र या त्रिकोण में बलयुक्त होकर स्थित हो अथवा (२) लग्न का स्वामी दशम भाव में स्थित हो तो ऐसे योग में उत्पन्न जातक धार्मिक वृत्ति और बुद्धि का, सत्कीर्तियुक्त, राजा के समान भाग्यशाली और दीर्घायु होता है ॥२७॥

ऊर्जस्वी जनवल्लभो दशमगे सूर्ये कुजे वा महत्
कार्यं साधयति प्रतापबहुलं खेशश्च सुस्थो यदि।
सद्व्यापारवतीं क्रियां वितनुते सौम्येषु सच्छ्लाघितां
कर्मस्थेष्वहिमन्दकेतुषु भवेद्दुष्कर्मकारी नरः ॥२८॥

दशम भाव में यदि सूर्य अथवा मंगल स्थित हों तो जातक अनन्त ऊर्जासम्पन्न और सर्वजनप्रिय होता है। दशम भाव का स्वामी भी यदि शुभ स्थान में (पञ्चम, नवम स्थान में) स्थित हो तो जातक स्वपराक्रम से अनेक महान् कार्यों का साधन करने वाला होता है। दशम भाव में यदि अनेक शुभग्रह स्थित हों तो जातक अनेक लाभकर और सज्जनों द्वारा श्लाघनीय कार्य का सम्पादन करता है। किन्तु यदि दशम भाव में शनि, राहु या केतु स्थित हों तो जातक नीचकर्म या दुष्कर्म करने वाला होता है ॥२८॥

एकादश भाव चिन्ता

लाभेशो यद्भावनाथयुक्ते यद्भावगेऽपि वा।
भावं तदनुरूपस्य वस्तुनो लाभगैरपि ॥२९॥

एकादश भाव का स्वामी (१) जिस भाव के स्वामी के साथ संयुक्त हो, (२) जिस भाव में स्थित हो तथा (३) जिस भाव का स्वामी एकादश भाव में स्थित हो उन भावों से सम्बन्धित पदार्थों से जातक को लाभ होता है ॥२९॥

द्वादश भाव चिन्ता

व्ययस्थितो यद्भावेशो व्ययेशो यत्र तिष्ठति।
तस्य भावस्यानुरूपवस्तुनो नाशमादिशेत् ॥३०॥

(१) जिस भाव का स्वामी व्यय भाव (द्वादश भाव) में स्थित हो, (२) जिस भाव में व्यय भाव का स्वामी स्थित हो उन भावों से सम्बन्धित वस्तुओं से जातक की हानि होती है ॥३०॥

उपर्युक्त दोनों श्लोकों (२९-३० श्लोकों) में जिन भावों से सम्बन्धित पदार्थों से लाभ या हानि कही गई है उन भावों से सम्बन्धित व्यक्तियों के सहयोग से लाभ अथवा हानि समझनी चाहिए। जैसे यदि एकादशेश पञ्चम या तृतीय भाव में स्थित हो अथवा इन भावों के स्वामियों से युत हो तो क्रमशः पुत्र अथवा स्वजनों एवं बन्धु-बान्धवों के सहयोग से जातक को द्रव्यलाभ होता है। इसी प्रकार यदि व्ययेश पञ्चम या तृतीय भाव में स्थित हो अथवा इन भावों के स्वामियों से संयुक्त हो तो पुत्र या स्वजनों के माध्यम से जातक की हानि होती है।

भावसिद्धि काल

भावेशस्थितभांशकोणमपि वा भावं तु वा लग्नपो
लग्नेशस्थितभांशकोणमुदयं वाऽऽयाति भावाधिपः।
संयोगेऽपि विलोकनेऽपि च तयोस्तद्भावसिद्धिं तदा
ब्रूयात्कारकयोगतस्तनुपतेर्लग्नाच्च चन्द्रादपि ॥३१॥

भावाधिपति (विचारणीय भाव के स्वामी) जिस राशि और नवांश में स्थित हो उन राशियों से पञ्चम और नवम राशि और उक्त भावगत राशि (इस प्रकार कुल ७ राशियों) लग्नेश द्वारा गोचरवश इन ७ राशियों के संक्रमण काल में सम्बन्धित भावफल की सिद्धि होती है। इसी प्रकार लग्नेशाधिष्ठित राशि और उसकी नवांशराशियों से पञ्चम और नवम राशियों तथा लग्नराशि (कुल ७ राशियों) में जब गोचरवश भावेश संक्रमित होता है तब सम्बन्धित भावफल की सिद्धि होती है। गोचरवश लग्नेश और सम्बन्धित भावेश जब परस्पर दृष्टि या युति सम्बन्ध करें तब भी भावफल की सिद्धि के योग बनते हैं। किसी भाव का कारक ग्रह भी यदि लग्नेश से गोचरवश परस्पर दृष्टि या युति सम्बन्ध करें तब भी भाव-फल की सिद्धि सम्भव होती है ॥३१॥

इस प्रकार भावसिद्धि के अनेक अवसर बनते हैं—१. भावगत राशि, २. भावेशाधिष्ठित राशि, ३. भावेशाधिष्ठित राशि से पञ्चम राशि, ४. भावेशाधिष्ठित राशि से नवम राशि, ५. भावेश की नवांश राशि, ६. भावेश नवांश राशि से पञ्चम राशि, ७. भावेश नवांश राशि से नवम राशि, ८. लग्नेशाधिष्ठित राशि, ९. लग्नेशाधिष्ठित राशि से पञ्चम राशि, १०. लग्नेशाधिष्ठित राशि से नवम राशि, ११. लग्नगत राशि, १२. लग्नेश की नवांश राशि, १३. लग्नेश नवांश राशि से पञ्चम, १४. लग्नेश नवांश राशि से नवम राशि। इन सभी राशियों में भावपति के संक्रमण काल में सम्बन्धित भावफल की सिद्धि की सम्भावना होती है। इनके अतिरिक्त १५. गोचरवश भावकारक ग्रह और लग्नेश में परस्पर दृष्टि या युति सम्बन्ध हो तब भी भावफल सिद्धि की सम्भावनाएँ बनती हैं।

इसी प्रकार चन्द्रराशि से भी विचार करना चाहिए। लग्नेश भावेश के तथा संक्रमित होने वाली राशियों के बलाबल के सन्दर्भ में विचार कर भावफलसिद्धि का समय निर्धारित करना चाहिए।

यद्भावेशस्थितर्क्षांशत्रिकोणस्थे गुरुर्यदा ।
गोचरे तस्य भावस्य फलप्राप्तिं विनिर्दिशेत् ॥३२॥

किसी भाव के स्वामी जिस राशि में स्थित हो उस राशि में उससे पञ्चम और नवम राशियों में, भावाधिपति की नवांश राशि और उससे पञ्चम और नवम राशियों में गोचरवश बृहस्पति के संक्रमित होने पर सम्बन्धित भाव के फल का लाभ होता है ॥३२॥

लग्नारिनाथयोगे तु लग्नेशाद्दुर्बले रिपौ ।
तदा तद्वशगः शत्रुर्विपरीतमतोऽन्यथा ॥३३॥

गोचरवश लग्नेश और षष्ठेश यदि संयुक्त हों और लग्नेश षष्ठेश से बलवान् हो तो दोनों के युतिकाल में शत्रु पर जातक विजय प्राप्त करता है। इसके विपरीत अर्थात् षष्ठेश यदि लग्नेश से बलवान् हो तो शत्रु विजयी होता है ॥३३॥

यद्भावपस्य तनुपस्य भवत्यरित्वात्
तत्कालशत्रुवशतोऽरिमृतिस्थितो वा ।
स्पर्धां तदा वदतु तेन च गोचरस्थ-
स्तद्वत्सुहृत्त्वमपि संयुतिमैत्रतश्च ॥३४॥

यदि कोई भावाधिपति लग्नेश का नैसर्गिक या तात्कालिक शत्रु हो और लग्नेश से षडाष्टक सम्बन्ध (परस्पर छठे-आठवें में स्थित हो) बनाता हो तो गोचरवश लग्नेश और भावेश के युतिकाल में उक्त भाव से सम्बन्धित व्यक्ति और जातक में शत्रुतापूर्ण सम्बन्ध होते हैं। किन्तु यदि भावेश और लग्नेश परस्पर नैसर्गिक या तात्कालिक मित्र हों और उनमें षडाष्टक सम्बन्ध न हो तो गोचरवश इनके युतिकाल में भाव से सम्बन्धित व्यक्ति और जातक के मध्य नूतन माधुर्य का विकास होता है ॥३४॥

लग्नेशयद्भावपयोस्तु योगो यदा तदा तत्फलसिद्धिकालः ।
भावेशवीर्ये शुभमन्यथान्यल्लग्नाच्च चन्द्रादपि चिन्तनीयम् ॥३५॥

इति श्रीमन्त्रेश्वरविरचितायां फलदीपिकायां लग्नादिद्वादशभावानां
समुदायफलं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

लग्न का स्वामी गोचरवश जब-जब किसी भावेश से योग करता है उस भाव का स्वामी यदि बलवान् है तो उस भाव के फल की सिद्धि होती है। यदि सम्बन्धित भावेश निर्बल हो तो विपरीत फल होता है। इसी प्रकार चन्द्रमा और चन्द्रराशि से भी फल का विचार करना चाहिए ॥३५॥

इस प्रकार मन्त्रेश्वरकृत फलदीपिका में लग्नादि भावों के समुदायफल
नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥१६॥

सप्तदशोऽध्यायः

निर्याणविचारः

तत्तद्भावादष्टमेशस्थितांशे तत्त्रिकोणगे ।
व्ययेशस्थितभांशे वा मन्दे तद्भावनाशनम् ॥१॥

विचारणीय भाव से अष्टम अथवा द्वादश भाव के स्वामी जिस राशि और नवांश में स्थित हो उन राशियों में, उनसे पंचम और नवम राशि में जब गोचरवश शनि संक्रमित होता है तब सम्बन्धित विचारणीय भावफल का नाश होता है ॥१॥

शनि-निर्याण

रन्ध्रेशो गुलिको मन्दः खरद्रेक्काणपोऽपि वा ।
यत्र तिष्ठति तद्भांशत्रिकोणे रविजे मृतिः ॥२॥

१. अष्टम भाव का स्वामी, २. गुलिक, ३. शनि और खरद्रेष्काण का स्वामी जिस राशि और नवांश में स्थित हों उन राशियों और उनसे पंचम और नवम राशियों में जब गोचरवश शनि संक्रमण करता है तो जातक के लिए मृत्युदायक होता है ॥२॥

लग्नस्थ द्रेष्काण से २२वाँ द्रेष्काण खर संज्ञक होता है ।

गुरु-निर्याण

उद्यद्दृगाणनाथस्य तथा रन्ध्राधिपस्य च ।
रन्ध्रद्रेक्काणपस्यापि भांशकोणे गुरौ मृतिः ॥३॥

१. लग्नद्रेष्काण का स्वामी, २. अष्टमभाव का स्वामी और ३. खरद्रेष्काण का स्वामी—इनके द्वारा अधिगृहीत राशि (जिन राशियों में ये स्थित हों उनमें) में तथा इनकी नवांश राशियों में गोचर के बृहस्पति के संक्रमित होने पर जातक मृत्यु को प्राप्त होता है। उक्त ग्रह की नवांश राशियों से पंचम और नवम राशियों में बृहस्पति के संक्रमित होने पर भी जातक की मृत्यु सम्भव होती है ॥३॥

रवि-निर्याण

स्वस्फुटद्वादशांशे वा रन्ध्रेशस्थनवांशके ।
लग्नेशस्थनवांशेऽर्केव तत्त्रिकोणेऽपि वा मृतिः ॥४॥

१. सूर्य जिस राशि के द्वादशांश में अथवा उससे पंचम और नवम राशि में, २. अष्टमभाव का स्वामी जिस राशि के नवांश में स्थित हो उस राशि और उससे पंचम और नवम राशि में तथा ३. लग्न का स्वामी जिस राशि के नवांश में स्थित हो उस राशि और उससे पंचम एवं नवम राशि में गोचर से सूर्य का संक्रमण काल जातक के लिए मृत्युकारक होता है ॥४॥

कुछ पुस्तकों में इस श्लोक के तृतीय चरण में 'नवांशे वा' ऐसा पाठ भी मिलता है तब अर्थ होगा—'उक्त राशियों में बृहस्पति का संक्रमण काल मृत्युकारक होता है'।

चन्द्र-निर्याण

रन्ध्रप्रभोर्वा भानोर्वा भांशकोणं गते विधौ।
मृतिं वदेत्सर्वमेतल्लग्नाच्चद्राच्च चिन्तयेत् ॥५॥

अष्टमभाव का स्वामी जिस राशि में, जिस राशि के नवांश में अथवा सूर्य जिस राशि में, जिस राशि के नवांश में स्थित हो उस राशि में अथवा उससे पंचम और नवम राशियों में चन्द्रमा के संक्रमित होने पर जातक की मृत्यु सम्भव होती है। उक्त राशियों का विचार लग्न या चन्द्रमा से करना चाहिए ॥५॥

पितृ-भ्रातृ-अरिष्टयोग

लग्नेशहीनयमकण्टकभांशकोणं
प्राप्तेऽथवा शनिविहीनहिमांशुभांशम्।
याते गुरौ स्वमरणन्त्वथ राहुहीन-
भूसूनुभांशकगुरौ सहजप्रणाशः ॥६॥

(१) यमकण्टक[1] के राश्यादि भोग को लग्नेश के राश्यादि भोग में घटाने से अवशिष्ट राशि और उसकी नवांश राशि में तथा इनसे पंचम और नवम राशियों में गोचरवश बृहस्पति के संक्रमणकाल में जातक को मृत्युभय होता है।

(२) शनि के राश्यादि भोग में चन्द्रमा के राश्यादि भोग को घटाने से जो राश्यादि अवशिष्ट हो उस राशि में, उससे नवम और पंचम राशियों में, अवशिष्ट राश्यादि की नवांश राशि में और उससे पाँचवीं और नवीं राशियों में गोचरवश बृहस्पति के संक्रमणकाल में जातक की मृत्यु होती है।

(३) भौम के राश्यादि भोग से हीन राहु के राश्यादि भोग में तथा उससे पंचम और नवम राशियों में, अवशिष्ट राशि के नवांश राशि और उससे पंचम और नवम राशियों में गोचरवश बृहस्पति के संक्रमणकाल में सहोदर भाई का विनाश होता है ॥६॥

पितृ-मातृ-अरिष्टयोग

भानोः कण्टकवर्जितस्य भवनांशे वा त्रिकोणे गुरौ
तातो नश्यति कण्टकोनगुलिकर्क्षांशत्रिकोणे शनौ।
अर्कोनेन्दुगृहांशकोणगगुरौ चन्द्रोनमन्दात्मज-
क्षेत्रेंऽशेऽप्यथवा त्रिकोणगृहगे मन्दे जनन्या मृतिः ॥७॥

यमकण्टक से हीन सूर्य के राश्यादि में और उससे पाँचवीं और नवीं राशियों में गोचरवश बृहस्पति के संक्रमणकाल में जातक के पिता के लिए अरिष्ट होता है तथा

१. यमकण्टक और गुलिक साधन के लिए इसी पुस्तक का २५वाँ अध्याय देखें।

यमकण्टक से हीन सूर्य राशि की नवांश राशि और उससे त्रिकोण राशि में बृहस्पति के संक्रमित होने पर भी जातक के पिता को अरिष्ट होता है।

यमकण्टक से हीन गुलिक के राश्यादि में और उसकी नवांश राशि और उनसे त्रिकोण राशियों में गोचरवश शनि के आगमन से भी जातक के पिता के लिए मृत्युभय होता है।

चन्द्रमा के राश्यादि में सूर्य के राश्यादि को हीन करने से अवशिष्ट राशि में और उसकी नवांश राशि में तथा इन दोनों राशियों की त्रिकोण राशियों में बृहस्पति के संक्रमणकाल में जातक की माता के लिए मृत्युभय होता है।

गुलिकराश्यादि से हीन चन्द्रमा की राशि में और उसकी नवांश राशि में तथा उससे पंचम और नवम राशियों में गोचरवश जब शनि संक्रमित होता है तब जातक की माता के निधन की सम्भावना होती है ।।७।।

'मार्तण्डस्फुटतो विशोध्य शशिनं तच्छेषराश्यंशके
जीवे भानुसुते च मातृमरणं तत्कोणगे वा नृणाम्।
संशोध्य यमकण्टकं हिमकराद्रन्ध्राधिपस्य स्फुटं
तद्राशौ रविनन्दने मृतिमुपैत्यम्बा तदंशे रवौ' ।। (जातकपारिजात)

पुत्र-अरिष्टयोग

वदेत्प्रत्यरिनक्षत्रनाथाच्च यमकण्टकम्।
त्यक्त्वा तद्भवने कोणे गुरौ पुत्रविनाशनम् ।।८।।

जन्मनक्षत्र से पाँचवें नक्षत्र के स्वामी ग्रह के राश्यादि भोग में यमकण्टक के राश्यादि को घटाने से अवशिष्ट राशि और उसकी नवांश राशि में तथा उन राशियों से पंचम और नवम राशियों में जब गोचरवश बृहस्पति संक्रमित होता है तब जातक को पुत्रशोक की सम्भावना होती है ।।८।।

स्वमृत्युयोग

लग्नार्कमान्दिस्फुटयोगराशेरधीश्वरो यद्भवनोपगस्तु।
तद्राशिसंस्थे पुरुहूतवन्द्ये तत्कोणगे वा मृतिमेति जातः ।।९।।

लग्न, सूर्य, मान्दि (गुलिक) के स्पष्ट राश्यादि भोगों की योगज राशि के स्वामी जिस राशि में स्थित हों बृहस्पति के उस राशि में संक्रमित होने पर जातक की मृत्यु होती है; अथवा उक्त राशि से पंचम और नवम राशियों में बृहस्पति के संक्रमित होने पर जातक की मृत्यु की सम्भावना होती है ।।९।।

मान्दिस्फुटे भानुसुतं विशोध्य राश्यंशकोणे रविजे मृतिः स्यात्।
धूमादिपञ्चग्रहयोगराशिद्रेक्काणयातेऽर्कसुते च मृत्युः ।।१०।।

गुलिक के राश्यादि भोग में शनि के राश्यादि को घटाने से अवशिष्ट राशि और उसके नवांश राशि में तथा इन दोनों राशियों से त्रिकोण राशियों में गोचरवश शनि के संक्रमण काल में जातक की मृत्यु होती है।

धूमादि (धूम, अर्धयाम, यमकण्टक, कोदण्ड या चाप और गुलिक) उपग्रहों के स्पष्ट राश्यादि के योग तुल्य राश्यादि जिस राशि के द्रेष्काण में हो उस राशि में शनि के संक्रमण काल में जातक मृत्यु को प्राप्त होता है ॥१०॥

विलग्नमान्दिस्फुटयोगभांशं निर्याणमासं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ।
निर्याणचन्द्रो गुलिकेन्दुयोगो लग्नं विलग्नार्किसुतेन्दुयोगः ॥११॥

लग्न और मान्दि के स्पष्ट राश्यादि के योग से उत्पन्न राशि और नवांश निर्याण मास का निर्धारण करती है तथा गुलिक और चन्द्रमा के स्पष्ट राश्यादि भोगों के योग से उद्भूत राशि मृत्युकालिक चन्द्रराशि का तथा चन्द्रमा लग्न और गुलिक के स्पष्ट राश्यादि योग से उद्भूत राशि मृत्युकालिक लग्न का निर्धारण करती है। ऐसा पूर्वाचार्यों का कथन है ॥११॥

जैसे स्पष्ट चन्द्रमा ६।२४।१९।३७ राश्यादि
स्पष्ट गुलिक १।१०।२३।५७ राश्यादि
और स्पष्ट लग्न ४।२१।५८।५२ राश्यादि है।

गुलिक और लग्न के राश्यादि भोगों का योग = ६।२।२२।४९ अर्थात् तुला राशि के २°२२'४९" पर जिस मास में सूर्य आयेगा और गुलिक तथा चन्द्रमा के भोगों के योग ८।४।४३।३४ अर्थात् धनु राशि के ४°४३'३४" पर चन्द्रमा होगा, उस दिन इन तीनों—गुलिक, चन्द्रमा और लग्न—के स्पष्ट राश्यादि भोगों के योग ०।२६।४२।२५ तुल्य लग्न अर्थात् मेष लग्न के २६°४२'२५" गत होने पर जातक की मृत्यु होगी।

मान्दिस्फुटोदितनवांशगतेऽमरेड्ये
तद्द्वादशांशसहिते दिननाथसूनौ ।
द्रेक्काणकोणभवने दिनपे च मृत्यु-
र्लग्नेन्दुमान्दियुतभेशगतोदये स्यात् ॥१२॥

मान्दि के स्पष्ट राश्यादि की नवांश राशि में बृहस्पति, उसकी द्वादशांश राशि में शनि, द्रेष्काण राशि से पंचम या नवम राशि में सूर्य गोचरवश जब आये तब लग्न, चन्द्रमा और मान्दि के स्फुटों के योग तुल्य राशि के स्वामी जिस राशि में स्थित हों उस राशि के लग्न में जातक की मृत्यु सम्भव होती है।

पूर्वोक्त उदाहरण में गुलिक स्फुट = १।१०।२३।५७ है। यह मेष के नवमांश, कन्या के द्वादशांश तथा कन्या के द्रेष्काण में स्थित है। चन्द्रमा, मान्दि और लग्न के राश्यादि भोगों का योग ०।२६°।४२'।२५" है। इस श्लोक के अनुसार गोचर में जब बृहस्पति मान्दि (गुलिक) की नवमांश राशि मेष में, द्वादशांश राशि कन्या में शनि तथा द्रेष्काण राशि कन्या से पंचम मकर या नवम राशि वृष में जब सूर्य हो तब चन्द्रमा, मान्दि और लग्न की योगज राशि मेषलग्न में जातक की मृत्यु सम्भव होगी।

ग्रन्थान्तरों में इस श्लोक का चतुर्थ पाद 'मान्दियुतभांशगतो यदि स्यात्' पाठ भी

मिलता है। तब इस श्लोक का 'लग्न, चन्द्रमा और मान्दि के स्फुटों के योग तुल्य राशि में जब गोचरवश सूर्य आवे' ऐसा अर्थ होगा।

गुलिकं रविसूनुं च गुणित्वा नवसंख्यया।
उभयोरैक्यराश्यंशगृहगे रविजे मृतिः ॥१३॥

गुलिक और सूर्य के ९ गुणित स्फुटों के योग तुल्य राशि और नवांश में गोचरवश शनि के संक्रमण काल में मृत्यु सम्भव होती है ॥१३॥

पूर्वोक्त उदाहरण में यदि शनि का स्पष्ट भोग ७।२३°।३६'।४७" हो तो ९ गुणित शनि १०।२°।३१'।३" और ९ गुणित मान्दि ०।३°।३५'।३३" होगा। इन दोनों के योग १०।६°।६'।३६" अर्थात् कुम्भ के ६°।६'।३६" पर गोचरवश शनि के आने पर मृत्युभय होगा।

स्फुटे विलग्ननाथस्य विशोध्य यमकण्टकम्।
तद्राशिनवभागस्थे जीवे मृत्युर्न संशयः ॥१४॥

यमकण्टक के स्पष्ट राश्यादि भोग को लग्नाधिपति के राश्यादि स्पष्ट भोग में घटाने से अवशिष्ट राशि और नवांश राशि में बृहस्पति के संक्रमित होने पर निश्चय ही जातक की मृत्यु होती है ॥१४॥

षष्ठावसानरन्ध्रेशस्फुटैक्यभवनं गते।
तत्त्रिकोणोपगे वाऽपि मन्दे मृत्युभयं नृणाम् ॥१५॥

षष्ठेश, अष्टमेश और द्वादशेश के स्पष्ट राश्यादि भोगों के योग तुल्य राशि में अथवा उससे पंचम और नवम राशियों में गोचरवश शनि का संक्रमणकाल जातक के लिए मृत्युभय कारक होता है ॥१५॥

उद्यद्दृगाणपतिराशिगते सुरेड्ये
तस्य त्रिकोणमपि गच्छति वा विनाशम्।
रन्ध्रत्रिभागपतिमन्दिरगेऽथ मन्दे
प्राप्ते त्रिकोणमथवास्य वदन्ति मृत्युम् ॥१६॥

लग्न में जिस राशि का द्रेष्काण हो उस राशि के स्वामी जिस राशि में स्थित हो उस राशि में अथवा उससे पंचम या नवम राशि में गोचरवश बृहस्पति के संक्रमणकाल में जातक को मृत्युभय होता है। अष्टमभाव के द्रेष्काण का स्वामी जिस राशि में स्थित हो गोचरवश शनि के उस राशि में अथवा उससे पंचम या नवम राशियों में संक्रमित होने पर जातक की मृत्यु आचार्यों द्वारा कही गई है ॥१६॥

विलग्नजन्माष्टमराशिनाथयोः खरत्रिभागेश्वरयोस्तयोरपि।
शशाङ्कमान्द्योरपि दुर्बलांशकत्रिकोणगे सूर्यसुते मृतिर्भवेत् ॥१७॥

जन्मलग्न से अथवा चन्द्रराशि से (१) अष्टम भाव के स्वामी और (२) खरद्रेष्काण (२२वें द्रेष्काण) के स्वामियों में तथा चन्द्रमा और गुलिक में जो सर्वाधिक निर्बल ग्रह हो उसकी नवांश राशि में अथवा उससे पंचम और नवम राशि में गोचरवश शनि के आगमन पर जातक की मृत्यु सम्भव होती है ॥१७॥

लग्नाधिपस्थितनवांशकराशितुल्यं
रन्ध्राधिपस्य गृहमापतिते घटेशे।
तस्मिन्वदेन्मरणयोगमनेकशास्त्र-
संक्षुण्णखिन्नतिभिः परिकीर्तितं तत् ॥१८॥

लग्नाधिपति जिस राशि के नवांश में स्थित हो वह राशि मेष राशि से जितने राशियों के अन्तर पर हो अष्टमाधिपति द्वारा अधिष्ठित राशि से उतने ही राशियों के अन्तर पर स्थित राशि में जब गोचरवश शनि (घटेश) संक्रमित होता है तब जातक की मृत्यु सम्भव होती है। ऐसा उन आचार्यो का कथन है जिन्होंने अनेक शास्त्रों की रचना की है ॥१८॥

शशाङ्कसंयुक्तदृगाणपूर्वतः खरत्रिभागेशगृहं गतेऽपि वा।
त्रिकोणगे वा मरणं शरीरिणां शशिन्यथ स्यात्तनुरन्ध्ररिःफगे ॥१९॥

चन्द्रमा जिस राशि के द्रेष्काण में स्थित हो उससे २२वें द्रेष्काण के स्वामी जिस राशि में स्थित हो उस राशि में अथवा उससे पंचम या नवम राशि में चन्द्रमा के संक्रमित होने पर जातक की मृत्यु सम्भव होती है। लग्नराशि, अष्टमस्थ और द्वादशभावस्थ राशियों में भी चन्द्रमा का संक्रमण मृत्युदायक होता है ॥१९॥

निधनेश्वरगतराशौ भानाविन्दौ तु भानुगतराशौ।
निधनाधिपसंयुक्ते नक्षत्रे निर्दिशेन्मरणम् ॥२०॥

अष्टम भाव का स्वामी जिस राशि में स्थित हो उस राशि में सूर्य के संक्रमित होने पर, सूर्य जिस राशि में स्थित हो उस राशि में चन्द्रमा के संक्रमित होने पर अथवा अष्टमेश जिस नक्षत्र में स्थित हो चन्द्रमा द्वारा उस नक्षत्र के संक्रमित होने पर जातक की मृत्यु सम्भव होती है ॥२०॥

यो राशिर्गुलिकोपेतः तत्त्रिकोणगते शनौ।
मरणं निशिजातानां दिविजानां तदस्तके ॥२१॥

रात्रि में जन्म हो तो गुलिकयुक्त राशि से त्रिकोण (पंचम, नवम) राशियों में शनि के संक्रमित होने पर जातक की मृत्यु होती है। यदि दिवा जन्म हो तो उक्त राशि से सप्तम राशि में शनि के संक्रमणकाल में मृत्यु सम्भव होती है ॥२१॥

गुरुराहुस्फुटैक्यस्य राशिं यातो गुरुर्यदा।
तदा तु निधनं विद्यात्तत्त्रिकोणगतोऽथवा ॥२२॥

बृहस्पति और राहु के स्पष्ट राश्यादि भोगों के योग तुल्य राशि अथवा उससे पंचम और नवम राशियों में गोचरवश बृहस्पति के संक्रमित होने पर जातक के मृत्यु की सम्भावना होती है ॥२२॥

अष्टमस्य त्रिभागांशपतिस्थितगृहं शनौ ।
तदीशनवभागर्क्षं गते वा मरणं भवेत् ॥२३॥

अष्टमभावगत द्रेष्काण के स्वामी से युक्त राशि में गोचरवश शनि के संक्रमणकाल में जातक की मृत्यु सम्भव होती है। अष्टम भाव के स्वामी से युक्त राशि और नवांश राशि में जब गोचरवश संक्रमित होता है तब भी जातक के मृत्यु की सम्भावना बनती है ॥२३॥

जन्मकाले शनौ यस्य जन्माष्टमपतेरपि ।
राशेरंशकराशेर्वा त्रिकोणस्थे शनौ मृतिः ॥२४॥

जन्मकाल में (१) शनि से युक्त राशि और उसकी नवांश राशि में अथवा उससे पंचम और नवम राशियों में गोचरवश शनि के संक्रमित होने पर, (२) चन्द्रमा से युक्त राशि के स्वामी द्वारा अधिष्ठित राशि और नवांश राशि तथा उनसे पंचम और नवम राशियों में, (३) अष्टमेश से युक्त राशि और नवांश राशि एवं उनसे पंचम और नवम राशियों में गोचरवश शनि के संक्रमित होने पर जातक की मृत्यु सम्भावित होती है ॥२४॥

निशीन्दुराशौ चेज्जन्म मान्दिभेंऽशे शनौ मृतिः ।
दिवार्कभे चेत्तद्द्यूनत्रिकोणे वा शनौ मृतिः ॥२५॥

यदि रात्रिजन्म हो तो चन्द्रमा या मान्दि से युक्त राशि और नवांश राशि में गोचरवश शनि के संक्रमणकाल में जातक को मृत्युभय होता है। यदि दिवाजन्म हो तो सूर्य से युक्त राशि और नवांश राशि तथा उनसे पंचम, सप्तम और नवम राशियों में गोचरवश शनि का संक्रमणकाल जातक के लिए मृत्युकारक होता है ॥२५॥

रन्ध्रेश्वराद्यावति भे मान्दिस्तावति भे ततः ।
शनिश्चेन्मरणं ब्रूयादिति सद्गुरुभाषितम् ॥२६॥

जन्मकाल में अष्टमेश मान्दि (गुलिक) से जितने राश्यादि अन्तर पर स्थित हो गोचरवश उतने ही राश्यादि अन्तर पर जब शनि आता है तब जातक के लिए मृत्युदायक होता है ॥२६॥

जन्मकालीनभृगुजात्कामशत्रुव्यये रवौ ।
मरणं निश्चितं ब्रूयादिति सद्गुरुभाषितम् ॥२७॥

जन्मकालिक शुक्र से छठे, सातवें और बारहवें भावगत राशियों में गोचरवश जब सूर्य संक्रमित होता है तब जातक मृत्यु को प्राप्त होता है। ऐसा सद्गुरुजनों का कथन

तिष्ठन्त्यष्टमरिःफषष्ठपतयो रन्ध्रत्रिभागेश्वरो
मान्दिर्यद्भवनेषु तेष्वपि गृहेष्वार्कीड्यसूर्येन्दवः।
सर्वे चारवशात्प्रयान्ति हि यदा मृत्युस्तदा स्यान्नृणां
तेषामंशवशाद्वदन्तु निधनं तत्तत्त्रिकोणेऽपि वा ॥२८॥

इति श्रीमन्त्रेश्वविरचितायां फलदीपिकायां निर्याणविचारो
नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

जन्म के समय (१) षष्ठेश, (२) अष्टमेश, (३) द्वादशेश, (४) २२वें द्रेष्काण के स्वामी और (५) मान्दि जिन राशियों में स्थित हों—गोचरवश शनि, बृहस्पति, सूर्य और चन्द्रमा उन राशियों में जब संक्रमण करते हैं तब जातक को मृत्युभय होता है। इन पाँच ग्रहों की नवांश राशियों में या उनसे पंचम और नवम राशियों में उक्त ग्रहों (शनि, बृहस्पति, सूर्य और चन्द्रमा) के संक्रमणकाल में मृत्युभय होता है ॥२८॥

इस प्रकार मन्त्रेश्वर विरचित फलदीपिका नामक ग्रन्थ में निर्याणविचार
नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥१७॥

○

अष्टादशोऽध्यायः

द्विग्रहयोगफलम्

सूर्य से चन्द्रादि ग्रहों के युतिफल

तिग्मांशुर्जनयत्युषेशसहितो यन्त्राश्मकारं नरं
भौमेनाघरतं बुधेन निपुणं धीकीर्तिसौख्यान्वितम् ।
क्रूरं वाक्पतिनान्यकार्यनिरतं शुक्रेण रङ्गायुधै-
र्लब्धस्वं रविजेन धातुकुशलं भाण्डप्रकारेषु वा ।।१।।

चन्द्रमा के साथ यदि सूर्य स्थित हो तो जातक यान्त्रिक या पत्थर आदि का शिल्पकार होता है । यदि सूर्य भौम के साथ स्थित हो तो जातक पापकर्म-निरत होता है । यदि सूर्य और बुध की युति हो तो जातक चतुर, बुद्धिमान्, कीर्ति से युक्त सुखी होता है । सूर्य यदि बृहस्पति के साथ संयुक्त हो तो जातक क्रूरमना, दूसरों के कार्य करने वाला परोपकारी होता है । जन्मकाल में यदि सूर्य और शुक्र की युति हो तो जातक रंगमंच कला में पटुता से और शस्त्रादि के संचालन स धनार्जन करता है । यदि सूर्य और शनि की युति हो तो जातक धातु सम्बन्धी कार्य में दक्ष तथा बर्तन आदि के निर्माण में कुशल होता है ।।१।।

द्विग्रह योग के विस्तृत फल अन्य जातक-ग्रन्थों में उपलब्ध हैं । यहाँ जातकपारिजात से द्विग्रह योग के फल उद्धृत किये गये हैं—

'जातः स्त्रीवशगः क्रियासु निपुणश्चन्द्रान्विते भास्करे
तेजस्वी बलसत्त्ववाननृतवाक् पापी सभौमे रवौ ।
विद्यारूपबलान्वितोऽस्थिरमतिः सौम्यान्विते पूषणि
श्रद्धाकर्मपरो नृपप्रियकरो भानौ सजीवे धनी ।।
स्त्रीमूलार्जितबन्धुमाननियुतः प्राज्ञः सशुक्रेऽरुणे
मन्दप्रायमतिः सपत्नवशगो मन्देन युक्ते रवौ' । (जातकपारिजात)

चन्द्रमा से भौमादि ग्रहों के योगफल

कूटस्त्र्यासवकुम्भपण्यमशिवं मातुः सवक्रः शशी
सज्ञः प्रश्रितवाक्यमर्थनिपुणं सौभाग्यकीर्त्यान्वितम् ।
विक्रान्तं कुलमुख्यमस्थिरमतिं वित्तेश्वरं साङ्गिरा
वस्त्राणां ससितः क्रियादिकुशलं सार्किः पुनर्भूसुतम् ।।२।।

यदि जन्मकाल में चन्द्रमा के साथ भौम युत हो तो जातक स्थूल उपकरण, हथौड़ा, हल, फावड़ा आदि, स्त्री, आसव (मद्य आदि नशीले पदार्थ), मिट्टी के बर्तन, सङ्कर धातु-निर्मित बर्तन आदि का व्यवसायी होता है । इस योग में उत्पन्न व्यक्ति माता की अवज्ञा करने

वाला होता है। चन्द्रमा के साथ बुध हो तो जातक मिष्टभाषी, कुशल व्याख्याकार, भाग्यशाली और सत्कीर्ति से युक्त होता है। यदि चन्द्रमा बृहस्पति के साथ युत हो तो जातक शत्रुञ्जय, अपने कुल का प्रधान, चंचल बुद्धि वाला एवं धनिक होता है। चन्द्रमा यदि शुक्र से संयुक्त हो तो इस योग में उत्पन्न व्यक्ति वस्त्रों की सिलाई, बुनाई, रंगाई आदि में कुशल होता है। यदि चन्द्रमा और शनि का योग हो तो ऐसे योग में उत्पन्न जातक पुनर्विवाहित विधवा का पुत्र होता है ॥२॥

'शूरः सत्कुलधर्मवित्तगुणवानिन्दौ धराजान्विते
धर्मी शास्त्रपरो विचित्रगुणवान् चन्द्रे सतारासुते।
जातः साधुजनाश्रयोऽतिमतिमानार्येण युक्ते विधौ
पापात्मा क्रयविक्रयेषु कुशलः शुक्रे सशीतद्युतौ।
कुस्त्रीकः पितृदूषको गतधनस्तारापतौ सार्कजे' (जातकपारिजात)

भौम के साथ अन्य ग्रहों के योगफल

मूलादिस्नेहकूटैर्व्यवहरति वणिग्बाहुयोद्धा ससौम्ये
पुर्यध्यक्षः सजीवे भवति नरपतिः प्राप्तवित्तो द्विजो वा।
गोपो मल्लोऽथ दक्षः परयुवतिरतो द्यूतकृत्सासुरेज्ये
दुःखार्तोऽसत्यसन्धः ससवितृतनये भूमिजे निन्दितश्च ॥३॥

जिसके जन्मकाल में भौम और बुध की युति हो वह व्यक्ति जड़ी-बूटियों, तैल एवं औषधियों का व्यवसाय करने वाला, बाहुयोद्धा (मल्लयुद्ध में पारंगत) होता है। जन्माङ्ग में यदि भौम के साथ बृहस्पति संयुक्त हो तो जातक पुर या नगर का अध्यक्ष (नेता या नायक), राजा अथवा श्रीमन्त ब्राह्मण होता है। यदि भौम शुक्र के साथ संयुक्त हो तो जातक गोप (गोपालक), मल्लयोद्धा, परायी स्त्री में अनुरक्त और जुआड़ी होता है। यदि भौम शनि से संयुक्त हो तो जातक दुःखी, असत्यवाक् और समाज में तिरस्कृत होता है ॥३॥

'वाग्मी चौषधशिल्पशास्त्रकुशलः सौम्यान्विते भूसुते ॥
कामी पूज्यगुणान्वितो गणितविद् भौमे सदेवार्चिते
धातोर्वादरतः प्रपञ्चरसिको धूर्तः सभौमो भृगौ।
वादी गानविनोदविज्जडमतिः सौरेण युक्ते कुजे' (जातकपारिजात)

बुध के साथ अन्य ग्रहों के योगफल

सौम्ये रङ्गचरो बृहस्पतियुते गीतप्रियो नृत्यविद्
वाग्मी भूगणपः सितेन मृदुना मायापटुर्लम्पटः[1]।
सद्विद्यो धनदारवान् बहुगुणः शुक्रेण युक्ते गुरौ
ज्ञेयः श्मश्रुकरोऽसितेन घटकृज्जातोऽन्नकारोऽपि वा ॥४॥

जन्मकाल में बुध यदि बृहस्पति से संयुक्त हो तो जातक रङ्गकर्मी, संगीत और

१. 'लङ्घकः' इति पाठान्तरम्।

नृत्यादि कलाओं में कुशल होता है। बुध यदि शुक्र से युत हो तो जातक भूपति या गणाध्यक्ष होता है। बुध यदि शनि के साथ संयुक्त हो तो जातक मायावी और इन्द्रियलोलुप होता है। बृहस्पति और शुक्र की युति हो तो जातक विद्वान्, धन और स्त्री से सम्पन्न तथा अनेक सद्‌गुणों से युक्त होता है। जन्माङ्ग में यदि बृहस्पति से शनि संयुक्त हो तो जातक नापित, कुम्भकार या पाकपटु (रसोइया) होता है ।।४।।

'वाग्मी रूपगुणान्वितोऽधिकधनी वाचस्पतौ सेन्दुजे ।।
शास्त्री गानविनोदहास्यरसिकः शुक्रे सचन्द्रात्मजे
विद्यावित्तविशिष्टधर्मगुणवानर्कात्मजे सेन्दुजे ।
तेजस्वी नृपतिप्रियोऽतिमतिमान् शूरः सशुक्रे गुरौ
शिल्पी मन्त्रिणि सार्कजे—' (जातकपारिजात)

शुक्र और शनि युतिफल

असितसितसमागमेऽल्पचक्षु-
र्युवतिसमाश्रयसम्प्रवृद्धवित्तः ।
भवति च लिखिपुस्तकचित्रवेत्ता
कथितफलैः परतो विकल्पनीयाः ।।५।।

जिसके जन्मकाल में शुक्र और शनि एक ही राशि में संयुक्त हों तो जातक निकट दृष्टिदोष युक्त (Short sighted), स्त्री के आश्रय से धनसम्पन्न, लेखक या चित्रकार होता है।

'पशुपतिमल्लः सिते सासिते' ।। (जातकपारिजात)

दो ग्रह से अधिक ग्रहों के योग में पूर्व कथित द्विग्रह योगफल के आधार पर द्व्याधिक ग्रहयोग के फल की कल्पना करनी चाहिए ।।५।।

मेष-वृष राशिगत चन्द्रमा पर ग्रहदृष्टिफल

भूपो विद्वान् भूपतिर्भूपतुल्यश्चन्द्रे मेषे मोषको निर्धनश्च ।
निस्स्वः स्तेनो लोकमान्यो महीशः स्वाढ्यः प्रेष्यश्चापि दृष्टे कुजाद्यैः ।।६।।

मेष राशिगत चन्द्रमा पर—(१) यदि भौम की दृष्टि हो तो जातक राजा होता है, (२) यदि बुध की दृष्टि हो तो जातक विद्वान्, (३) यदि बृहस्पति की दृष्टि हो तो जातक राजा, (४) यदि शुक्र की दृष्टि हो तो जातक राजा के समान, (५) यदि शनि की दृष्टि हो तो जातक चौरवृत्ति का तथा (६) यदि सूर्य की दृष्टि हो तो जातक निर्धन होता है।

वृष राशिगत चन्द्रमा पर—(१) यदि मङ्गल की दृष्टि हो तो जातक धनहीन, (२) यदि बुध की दृष्टि हो तो जातक चौर प्रवृत्ति का, (३) यदि बृहस्पति की दृष्टि हो तो जातक लोकमान्य, (४) यदि शुक्र की दृष्टि हो तो जातक राजा, (५) यदि शनि की दृष्टि हो तो धनिक और (६) यदि सूर्य की दृष्टि हो तो जातक भृत्य होता है ।।६।।

मिथुन-कर्क राशिगत चन्द्र पर ग्रहदृष्टिफल

युग्मस्थेऽयोजीविभूपज्ञधृष्टाश्चन्द्रे दृष्टे तन्तुवायोऽधनी च।
स्वर्क्षे योधप्राज्ञसूरिक्षितीशा लोहाजीवो नेत्ररोगी क्रमेण ॥७॥

मिथुन राशिगत चन्द्रमा यदि (१) भौम से दृष्ट हो लौह-निर्मित यन्त्रादि का व्यवसायी, (२) यदि बुध की दृष्टि हो तो राजा, (३) यदि बृहस्पति से दृष्ट हो तो विद्वान्, (४) यदि शुक्र से दृष्ट हो तो धृष्ट, (५) यदि शनि से दृष्ट हो तो जातक तन्तु-व्यवसायी बुनकर तथा (६) यदि सूर्य से दृष्ट हो तो निर्धन होता है।

कर्क राशिगत चन्द्रमा यदि (१) मङ्गल से दृष्ट हो तो जातक योद्धा, (२) बुध से दृष्ट हो तो विद्वान्, (३) यदि बृहस्पति से दृष्ट हो तो बुद्धिमान्, (४) यदि शुक्र से दृष्ट हो तो राजा, (५) यदि शनि से दृष्ट हो तो लौह-निर्मित वस्तुओं का व्यवसायी और (६) यदि सूर्य से उक्त चन्द्रमा दृष्ट हो तो जातक नेत्ररोगी होता है ॥७॥

सिंह-कन्या राशिस्थ चन्द्रमा पर दृष्टिफल

राजा ज्योतिर्विद्धनाढ्यो नरेन्द्रः सिंहे चन्द्रे नापितः पार्थिवेन्द्रः।
दक्षो भूपः सैन्यपः कन्यकायां निष्णातः स्याद्भूमिनाथश्च भूपः ॥८॥

सिंहस्थ चन्द्रमा पर यदि (१) मङ्गल की दृष्टि हो तो जातक राजा, (२) बुध की दृष्टि हो तो जातक ज्योतिर्विद्, (३) बृहस्पति की दृष्टि हो तो धनिक, (४) यदि शुक्र की दृष्टि हो तो जातक राजा, (५) यदि शनि की दृष्टि हो तो जातक नाई और (६) यदि उक्त चन्द्रमा पर सूर्य की दृष्टि हो तो जातक राजा होता है।

कन्यागत चन्द्रमा यदि (१) मङ्गल से दृष्ट हो तो जातक कुशल, (२) बुध से दृष्ट हो तो भूपति, (३) बृहस्पति से दृष्ट हो तो सेनापति, (४) यदि शुक्र से दृष्ट हो तो सभी कार्यों में निष्णात, (५) शनि से दृष्ट हो तो विशिष्ट भूस्वामी और यदि (६) उक्त चन्द्रमा पर सूर्य की दृष्टि हो तो जातक राजा होता है ॥८॥

तुला-वृश्चिक राशिस्थ चन्द्रमा पर दृष्टिफल

शठो नृपस्तौलिनि रुक्मकारश्चन्द्रे वणिक् स्यात्पिशुनः खलश्च।
कीटे नृपो युग्मपिता महीशः स्याद्वस्त्रजीवी विकृताङ्गवित्तः ॥९॥

तुला राशिस्थ चन्द्रमा पर यदि (१) भौम की दृष्टि हो तो जातक शठ या दुष्ट प्रकृति का, (२) यदि बुध की दृष्टि हो तो राजा, (३) यदि बृहस्पति की दृष्टि हो तो स्वर्णकार, (४) यदि शुक्र की दृष्टि हो तो जातक व्यवसायी, (५) यदि शनि की दृष्टि हो तो पिशुन (चुगलखोर) और यदि उक्त चन्द्रमा पर (६) सूर्य की दृष्टि हो तो जातक दुष्ट होता है।

वृश्चिक राशिस्थ चन्द्रमा यदि (१) मङ्गल से दृष्ट हो तो जातक राजा, (२) बुध से दृष्ट हो तो जातक जुड़वा सन्तान का पिता, (३) बृहस्पति से दृष्ट हो तो जातक भूपति, (४) यदि शुक्र से दृष्ट हो तो कपड़े का व्यवसायी, (५) यदि शनि से दृष्ट हो तो विकृताङ्ग और यदि (६) उक्त चन्द्रमा पर सूर्य की दृष्टि हो तो जातक निर्धन होता है ॥९॥

धनु-मकर राशिस्थ चन्द्रमा पर दृष्टिफल

धूर्तो हयाङ्गे स्वजनं जनेशं नरौघमाश्रित्य शठः सदम्भः ।
भूपो नरेशः क्षितिपो विपश्चिद्धनी दरिद्रो मकरे हिमांशौ ॥१०॥

धनु राशिस्थ चन्द्रमा यदि (१) मङ्गल से देखा जाता हो तो जातक धूर्त होता है, (२) यदि बुध से देखा जाता हो तो जातक स्वजनों एवं परिजनों में प्रधान, (३) यदि बृहस्पति से देखा जाता हो तो जातक जनसमूह का पालक, (४) यदि शुक्र से देखा जाता हो तो जातक जनसमूह का आश्रयदाता, (५) शनि से देखा जाता हो तो जातक दुष्ट प्रकृति का और यदि (६) सूर्य से देखा जाता हो तो जातक दम्भी होता है ।

मकर राशिगत चन्द्रमा को यदि (१) मङ्गल देखता हो तो जातक राजा, (२) यदि बुध देखता हो तो नरेश, (३) यदि बृहस्पति देखता हो तो जातक भूस्वामी, (४) यदि शुक्र देखता हो तो जातक विद्वान्, (५) यदि शनि देखता हो तो जातक धनवान् होता है और (६) यदि सूर्य से दृष्ट हो तो जातक निर्धन होता है ॥१०॥

कुम्भ-मीन राशिस्थ चन्द्रमा पर दृष्टिफल

कुम्भेऽन्यदारनिरतः क्षितिपो नरेन्द्रो
वेश्यापतिर्नृपवरो हिमगौ नृमान्यः ।
अन्त्येऽघकृत्पटुमतिर्नृपतिश्च विद्वान्
दोषैकदृग्दुरितकृच्च कुजादिदृष्टे ॥११॥

यदि चन्द्रमा कुम्भ राशि में स्थित हो और उस पर (१) मङ्गल की दृष्टि हो तो जातक परस्त्रीरत, (२) बुध की दृष्टि हो तो जातक भूस्वामी, (३) बृहस्पति की दृष्टि हो तो राजा, (४) शुक्र की दृष्टि हो तो वेश्यागामी, (५) शनि से दृष्ट हो तो नृपश्रेष्ठ और यदि सूर्य की दृष्टि हो तो जातक जनसमूह द्वारा समादरित होता है ।

यदि चन्द्रमा मीन राशि में स्थित होकर (१) मङ्गल से देखा जाता हो तो जातक पापाचारी, (२) बुध से देखा जाता हो तो चतुर, (३) बृहस्पति से देखा जाता हो तो राजा, (४) यदि शुक्र से देखा जाता हो तो जातक विद्वान्, (५) शनि से दृष्ट हो तो दोषों को ही देखने वाला छिद्रान्वेषी होता है और यदि (६) सूर्य से दृष्ट हो तो जातक पापात्मा होता है ॥११॥

विभिन्न ग्रहों के नवांश में स्थित चन्द्रमा पर दृष्टिफल

आरक्षको वधरुचिः कुशलश्च युद्धे
भूपोऽर्थवान्कलहकृत्क्षितिजांशसंस्थे ।
मूर्खोऽन्यदारनिरतः सुकविः सितांशे
सत्काव्यकृत्सुखपरोऽन्यकलत्रगश्च ॥१२॥

भौमनवांशस्थ चन्द्रमा यदि (१) सूर्य से दृष्ट हो तो जातक नगररक्षक होता है, (२) भौम से दृष्ट हो तो वधिक अथवा वधिक प्रवृत्ति का होता है, (३) बुध की दृष्टि हो तो मल्ल-युद्ध में पारंगत, (४) बृहस्पति से दृष्ट हो तो राजा, (५) शुक्र से दृष्ट हो तो धनिक और यदि (६) शनि से दृष्ट हो तो जातक कलही प्रवृत्ति का होता है ।

शुक्रनवांशस्थ चन्द्रमा पर यदि (१) सूर्य की दृष्टि हो तो जातक मूर्ख होता है, (२) मङ्गल की दृष्टि हो तो जातक परस्त्री में अनुरक्त होता है, (३) बुध की दृष्टि हो तो जातक काव्य-रचयिता होता है, (४) यदि बृहस्पति की दृष्टि हो तो जातक सत्साहित्यकार होता है, (५) शुक्र की दृष्टि हो तो जातक सुख की कामना से युक्त होता है, (६) शनि की दृष्टि हो तो जातक परस्त्रीगामी होता है ॥१२॥

बौधे हि रङ्गचरचोरकवीन्द्रमन्त्रि-
गेयज्ञशिल्पनिपुणः शशिनि स्थितेंऽशे ।
स्वांशेऽल्पगात्रधनलुब्धतपस्विमुख्यः
स्त्रीप्रेष्यकृत्यनिरतश्च निरीक्ष्यमाणे ॥१३॥

बुधनवांशगत चन्द्रमा पर यदि सूर्य की दृष्टि हो तो जातक रंगमंच का कलाकार, (२) भौम की दृष्टि हो तो चौरकर्मी, (३) बुध की दृष्टि हो तो कवियों में प्रमुख, (४) बृहस्पति की दृष्टि हो तो राजमन्त्री, (५) यदि शुक्र की दृष्टि हो तो सङ्गीतज्ञ और यदि उक्त चन्द्रमा पर शनि की दृष्टि हो तो शिल्पकार होता है ।

यदि चन्द्रमा स्वयं के नवांश में स्थित होकर (१) सूर्य से दृष्ट हो तो जातक क्षीणकाय होता है, (२) मङ्गल से दृष्ट हो तो जातक धन का लोभी, (३) बुध से दृष्ट हो तो जातक तपस्वियों में प्रमुख होता है, (४) बृहस्पति से दृष्ट हो तो जातक विख्यात, (५) शुक्र से दृष्ट हो तो जातक स्त्रियों का दास और यदि शनि से दृष्ट हो तो कर्मनिष्ठ होता है ॥१३॥

सक्रोधो नरपतिसम्मतो निधीशः
सिंहांशे प्रभुरसुतोऽतिहिंस्रकर्मा ।
जीवांशे प्रथितबलो रणोपदेष्टा
हास्यज्ञः सचिवविकामवृद्धशीलः ॥१४॥

यदि जन्मकालिक चन्द्रमा सूर्य के नवांश में स्थित होकर (१) सूर्य से दृष्ट हो तो जातक क्रोधी, (२) मङ्गल से दृष्ट हो तो राजा का मित्र, (३) बुध की दृष्टि हो तो धनपति, (४) बृहस्पति की दृष्टि हो तो समूह का स्वामी, (५) यदि शुक्र से दृष्ट हो तो जातक निःसन्तान और यदि उक्त चन्द्रमा (६) शनि से दृष्ट हो तो हिंसक होता है ।

यदि चन्द्रमा बृहस्पति के नवांश में स्थित हो और वह (१) सूर्य से दृष्ट हो तो विख्यात योद्धा (बलशाली), (२) मङ्गल से दृष्ट हो तो युद्धकुशल, (३) बुध से दृष्ट हो तो परिहासपटु (प्रसन्नवदन), (४) बृहस्पति से दृष्ट हो तो राजमन्त्री, (५) शुक्र से दृष्ट हो तो कामेच्छा-विहीन और यदि उक्त चन्द्रमा (६) शनि से दृष्ट हो तो जातक वृद्धों जैसा आचरण करने वाला होता है ॥१४॥

अल्पापत्यो दुःखितः सत्यपि स्वे मानासक्तः कर्मणि स्वेऽनुरक्तः ।
दुष्टस्त्रीष्टः कोपनश्चार्किभागे चन्द्रे भानौ तद्वदिन्द्वादिदृष्टे ॥१५॥

जन्मकालिक चन्द्रमा यदि शनि के नवांश में स्थित होकर (१) सूर्य से दृष्ट हो तो

जातक अल्प सन्तति, (२) मङ्गल से दृष्ट हो तो दुःखी, (३) बुध से दृष्ट हो तो अहङ्कारी, (४) बृहस्पति से दृष्ट हो तो स्वकर्म में अनुरक्त, (५) शुक्र से दृष्ट हो तो दुराचारिणी स्त्रियों का अभिलाषी, (६) शनि से दृष्ट हो तो क्रोधी होता है।

इसी प्रकार विभिन्न ग्रहों के नवांश में स्थित सूर्यादि ग्रहों पर चन्द्रादि ग्रहों की दृष्टि के फल की कल्पना करना चाहिए ॥१५॥

सूर्यादितोऽत्रांशफलं प्रदिष्टं ज्ञेयं नवांशस्य फलं तदेव।
राशीक्षणे यत्फलमुक्तमिन्दोस्तद्द्वादशांशस्य फलं हि वाच्यम् ॥१६॥

इन श्लोकों में सूर्यादि ग्रहों के नवांशगत चन्द्रमा पर चन्द्रेतर ग्रहों के जो अंशफल कहे गये हैं उसे नवमांश फल समझना चाहिए। पूर्व में कहे गये विभिन्न राशिगत चन्द्रमा पर चन्द्रेतर ग्रहों के जो दृष्टिफल कहे गये हैं उसको उसका द्वादशांश फल ही समझना चाहिए ॥१६॥

वर्गोत्तमस्वपरगेषु शुभं यदुक्तं
तत्पुष्टमध्यलघुताऽशुभमुत्क्रमेण ।
वीर्यान्वितोंऽशकपतिर्निरुणद्धि पूर्वं
राशीक्षणस्य फलमंशफलं ददाति ॥१७॥

इति श्रीमन्त्रेश्वरविरचितायां फलदीपिकायां द्विग्रहयोगफलं
नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

चन्द्रमा के जो शुभ फल उपर्युक्त श्लोकों में कहे गये हैं वे परिमाण में क्रमशः अत्यधिक शुभ, मध्यम शुभ और अल्प शुभ होते हैं; यदि चन्द्रमा वर्गोत्तमांश में, अपने नवांश में और अन्य ग्रह के नवांश में स्थित हो। अशुभ फल इसके विपरीत क्रम से होते हैं। अर्थात् यदि चन्द्रमा अन्य ग्रह के नवांश में स्थित हो तो पाप फल सर्वाधिक, अपने नवांश में स्थित हो तो पाप फल मध्यम और यदि वर्गोत्तमांश में स्थित हो तो अल्प पाप फल होता है।

यदि चन्द्रमा का नवांशेश बलवान् हो तो विभिन्न राशियों में स्थित चन्द्रेतर ग्रहों के दृष्टिफल बाधित होकर केवल नवांश का ही फल जातक को प्राप्त होता है ॥१७॥

इस प्रकार मन्त्रेश्वरकृत फलदीपिका में द्विग्रहयोगफल
नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥१८॥

एकोनविंशोऽध्यायः

दशाफलनिरूपणम्

भक्त्या येन नवग्रहा बहुविधैराराधितास्ते चिरं
सन्तुष्टाः फलबोधहेतुमदिशन्सानुग्रहं निर्णयम्।
ख्यातां तेन पराशरेण कथितां संगृह्य होरागमात्
सारं भूरिपरीक्षयातिफलितां वक्ष्ये महाख्यां दशाम् ॥१॥

जिन नवग्रहों की भक्तिपूर्वक अनेक प्रकार से बहुत काल तक आराधना से सन्तुष्ट होकर महर्षि पराशर को उनके (नवग्रहों) द्वारा प्रदत्त फलों के ज्ञान को, जिसे महर्षि द्वारा होराशास्त्र में संग्रहीत किया गया, उसके सार तत्त्व को अनेक परीक्षणों के अनन्तर घटित होते पाया उसी महादशा फल को कहता हूँ ॥१॥

दशास्वरूप-कथन

अग्न्यादितारपतयो रविचन्द्रभौम-
सर्पामरेड्यशनिचन्द्रजकेतुशुक्राः ।
तेने नटः सनिजया चटुधान्यसौम्य-
स्थाने नखा निगदिताः शरदस्तु तेषाम् ॥२॥

कृत्तिकादि नव नक्षत्रों में क्रमशः सूर्य, चन्द्रमा, मङ्गल, राहु, बृहस्पति, शनि, बुध, केतु और शुक्र दशापति होते हैं (उत्तराफाल्गुनी से पूर्वाषाढा पर्यन्त तथा उत्तराषाढा से भरणी पर्यन्त वे ही ग्रह क्रम से दशापति होते हैं)। सूर्यादि उपर्युक्त ग्रहों के क्रमशः ६,१०, ७,१८,१६,१९,१७,७ और २० वर्ष दशावर्ष होते हैं ॥२॥

दशाचक्र

नक्षत्रस्वामी (दशापति)	सूर्य	चन्द्रमा	मंगल	राहु	बृहस्पति	शनि	बुध	केतु	शुक्र
नक्षत्र	कृत्तिका उ.फा. उ.षाढा	रोहिणी हस्त श्रवण	मृगशिर चित्रा धनिष्ठा	आर्द्रा स्वाती शतभिष	पुनर्वसु विशाखा पू.भाद्रपद	पुष्य अनु. उ.भा.	श्लेषा ज्येष्ठा रेवती	मघा मूल अश्विनी	पू.फाल्गुनी पू.षाढा भरणी
दशावर्ष	६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२०

कृत्तिका, उत्तराफाल्गुनी और उत्तराषाढा नक्षत्रों में जन्म हो तो ६ वर्षीय सूर्य की दशा जन्म के समय होती है। रोहिणी, हस्त और श्रवण नक्षत्रों में यदि जन्म हो तो जन्म के समय १० वर्षीय दशा चन्द्रमा की होती है। इसी प्रकार अन्य नक्षत्रों में भी दशा समझनी चाहिए।

दशानयन-प्रकार

ऋक्षस्य गम्या घटिका दशाब्दनिघ्ना नताप्ता स्वदशाब्दसंख्या ।
रूपैर्नगैः सङ्गुणयेन्नतेन हृतास्तु मासा दिवसाः क्रमेण ॥३॥

जन्मनक्षत्र के गम्य (भोग्य) घटिका को उस नक्षत्र के दशापति के दशावर्ष से गुणाकर गुणनफल में ६० से भाग देने पर लब्धि दशा का भोग्य वर्ष, शेष को १२ से गुणा कर पुनः ६० से भाग देने पर लब्धि भोग्य दशा के मास, पुनः जो शेष हो उसे ३० से गुणाकर ६० से भाग देने पर लब्धि भोग्य दशा के दिनों की संख्या होती है ॥३॥

उदाहरण के लिए यदि किसी का जन्म १६ जून १९९४ के दिन पूर्वाह्न १० बजकर १० मिनट पर हुआ हो तो भोग्य दशा क्या होगी ? उस दिन का पंचाङ्ग इस प्रकार है—

श्री सं. २०५१ शाके १९१६ ज्येष्ठमासे शुक्लपक्षे सप्तम्यां तिथौ २३।४८ गुरु-वासरे पूर्वाफाल्गुनीभे २९।१० सिद्धियोगे ५०।५३ वणिजकरणे २२।४८ दिनमानं ३३।५५ सूर्योदयः घं. ५ मि. ९ श्रीसूर्योदयादिष्टं १२।३२.५ ।

मन्त्रेश्वर की दशावर्ष का भोग्यांश जानने की यह विधि किञ्चिद् स्थूल जान पड़ती है । इन्होंने नक्षत्र का मध्यम भोग ६० घटी ही ग्रहण किया है जबकि प्रत्येक नक्षत्र का भोगकाल ६० घटी नहीं होता । यह कभी ६० घटी से अधिक और कभी ६० घटी से कम होता है । अतः मध्यम भोग ६० घटी से आनीत भोग्य दशावर्षादि स्थूल होगा । सम्भवतः क्रिया के लाघव की दृष्टि से ही आचार्य ने नक्षत्र का मध्यम मान ग्रहण किया है । पूरी क्रिया आगे दर्शायी गई है ।

उपर्युक्त तालिका के अनुसार पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में जन्म होने से जन्मकालिक दशापति शुक्र होंगे जिनकी दशा २० वर्ष की होती है । जन्म से पूर्व दिन मघा का अन्त ३०।४३ घट्यादि पर होता है । अतः ६० घटी – ३०।४३ घट्यादि = २९।१७ घट्यादि पूर्व दिन पूर्वाफाल्गुनी गत हुआ । जन्म के दिन जन्मकाल तक १२।३२।३० घट्यादि और गत हुआ । इस प्रकार जन्म से पूर्व पूर्वाफाल्गुनी के कुल ४१।४९।३० घट्यादि गत हो चुके थे । इस कालखण्ड को भयात् कहते हैं तथा जन्म से पूर्व दिन पूर्वाफाल्गुनी के २९।१७ घट्यादि और जन्म के दिन २९।१० घट्यादि कुल ५८।२७ घट्यादि सम्पूर्ण भोगकाल हुआ । इसे भभोग कहते हैं । भभोग – भयात् = ५८।२७ – ४१।४९।३० = १६।३७।३० = भोग्य नक्षत्रभोग । किन्तु मन्त्रेश्वर के अनुसार ६० – ४१।४९।३० = १८।१०।३० घट्यादि पूर्वाफाल्गुनी का भोग्य काल हुआ । अतः $\frac{१८।१०।३०\times२०}{६०}$ = ६ वर्ष ० मास २१ दिन जन्मकालिक दशा के भोग्य वर्षादि हुए ।

उत्तर भारत में प्रचलित दशानयन की पद्धति के अनुसार यदि भोग्य दशा का आनयन करें तो ५८।२७ – ४१।४९।३० = १६।३७।३० इस भोग्य घट्यादि नक्षत्रमान में २० दशावर्ष से गुणाकर भभोग ५८।२७ से भाग देने से $\frac{२०\times१६।३७।३०}{५८।२७}$ = ५ वर्ष ८ मास और ८ दिन दशा के भोग्य वर्षादि लब्ध होते हैं । इस प्रकार मन्त्रेश्वर की दशानयन पद्धत्यनुसार ० वर्ष ४ मास १३ दिन की स्थूलता आती है ।

रविस्फुटं तज्जनने यदासीत् तथाविधश्चेत्प्रतिवर्षमर्कः।
आवृत्तयः सन्ति दशाब्दकानां भागक्रमात्तद्दिवसाः प्रकल्प्याः ॥४॥

जन्म के समय जिस राशि के जितने अंशादि पर सूर्य स्थित हो पुनः उस राशि के उतने ही अंशादि पर जब सूर्य लौटता है तो उस अवधि को वर्ष तथा उसके अन्तर्विभाग (१२वाँ भागमास और मास का ३०वाँ भाग दिन) समझना चाहिए। इसी वर्षमान को ग्रहों की दशा जानने के लिए ग्रहण करना चाहिए ॥४॥

जन्मकालिक भोग्य दशा के वर्षादि में जन्मकालिक सूर्य के राश्यादि को जोड़ने पर योगफल दशा का समाप्तिकाल होता है। उदाहरण में शुक्रदशा का भोग्यकाल ५।८।७।५४।१५ वर्षादि में तात्कालिक संवत् २०५१ और सूर्यराश्यादि ५।१।२।३१ जोड़ने से २०५६। १०।८।५६।४६ होता है। अर्थात् सं. २०५६ में कुम्भ राशि में सूर्य जब ८°।५६′।४६″ पर आयेगा तब शुक्र की महादशा समाप्त होगी। इसमें सूर्य, चन्द्रमा, राहु आदि दशाक्रम से उनके दशावर्ष जोड़ने से तत्तद् ग्रहों की दशा का समाप्तिकाल होगा।

• दशाफल •

सूर्यमहादशाफल

भानुः करोति कलहं क्षितिपालकोप-
माकस्मिकं स्वजनरोगपरिभ्रमं च।
अन्योन्यवैरमतिदुःसहचित्तकोपं
गुप्त्यर्थधान्यसुतदारकृशानुपीडाम् ॥५॥

जन्माङ्ग में सूर्य यदि दुःस्थान में स्थित हो तो वह अपनी दशा प्राप्त होने पर विवाद, आकस्मिक राजकोप, स्वजनों को रोग, यायावरी (निरर्थक यात्राएँ), परस्पर शत्रुता और दुस्सह मानसिक सन्ताप, गुप्त धनकोश और धान्यादि का विनाश, स्त्री-पुत्रादि को पीड़ा आदि करता है ॥५॥

क्रौर्याध्वभूपैः कलहैर्धनाप्तिं वनाद्रिसञ्चारमतिप्रसिद्धिम्।
करोति सुस्थो विजयं दिनेशस्तैक्ष्ण्यं सदोद्योगरतिं सुखं च ॥६॥

जन्माङ्ग में सूर्य यदि सुस्थान में स्थित हो तो वह अपनी दशावधि में क्रूरकर्म द्वारा, यात्रा से, राजा से अथवा विग्रह (कलह) से धनोपार्जन कराता है। इस महादशा में जातक वन और पर्वतीय प्रदेशों में विचरण करता है, विवादादि में विजयी, सदुद्योग में निरत और सुखी होता है ॥६॥

'भानोर्दशायां हि विदेशवासो भवेत्कदाचिन्ननु मानवानाम्।
भूवह्निभूपद्विजवर्यशस्त्रभैषज्यतोऽतीव धनागमः स्यात् ॥
मन्त्राभिचारेऽभिरुचिर्विचित्रा धात्रीपतेः संख्यविधिर्विशेषात्।
विख्यातकर्माभिरतिर्मतिः स्यादनल्पजल्पे चरणेन चिन्ता ॥
व्ययश्च दन्तोदरनेत्रबाधा कान्तासुताभ्यां वियुतिश्च चिन्ता।

नृपाग्निचौराहितबन्धुवर्गैः स्वगोत्रजैर्वा प्रबलः कलिः स्यात्' ॥ (जातकाभरण)

चन्द्रमहादशाफल

मनःप्रसादं प्रकरोति चन्द्रः सर्वार्थसिद्धिं सुखभोजनं च ।
स्त्रीपुत्रभूषाम्बररत्नसिद्धिं गोक्षेत्रलाभं द्विजपूजनं च ॥७॥

चन्द्रमहादशा में मानसिक सुख, प्रसन्नता, व्यावसायिक सफलता, सुखद सन्तोषजनक सुन्दर भोजन, स्त्री-पुत्र-आभूषण और वस्त्रादि का लाभ, गोधन और भू-सम्पदादि की प्राप्ति और सुख, ब्राह्मण और गुरुजनों में आस्था होती है ॥७॥

बलेन सर्वं शशिनस्तु वाच्यं पूर्वे दशाहे फलमत्र मध्यम् ।
मध्ये दशाहे परिपूर्णवीर्यं तृतीयभागेऽल्पफलं क्रमेण ॥८॥

उपर्युक्त फल चन्द्रमा के बलाबल के अनुसार मध्यम, पूर्ण और अल्प समझना चाहिए । चान्द्रमास के प्रथम दश दिनों तक चन्द्रमा मध्यम बली होने से मध्यम फलकारक होता है, मध्य में दस दिनों पर्यन्त चन्द्रमा पूर्ण बली होने से पूर्ण फल देता है । अन्तिम दस दिनों में क्षीणबल होने से उसकी फल देने की क्षमता में क्रमशः ह्रास होता है ॥८॥

इसके अतिरिक्त चन्द्रमा की आरोही राशियों और अवरोही राशियों में स्थिति से भी उसकी फलदातृत्व क्षमता प्रभावित होती है । ग्रह जब अपनी नीचराशि के आगे उच्चराशि की ओर अग्रसर होता है तब उसे आरोही और उसकी दशा आरोही दशा होती है । अपनी उच्चराशि का त्याग कर ग्रह जब अपनी नीच राशि की ओर अग्रसर होता है तब उसे अवरोही और उसकी दशा को अवरोही दशा कहते हैं ।

'आरोहिणी चन्द्रदशा नराणां सर्वार्थसिद्ध्यै कथिता विशेषात् ।
तथावरोहात्कुरुते विलम्बं सर्वेषु कार्येषु च बुद्धिमान्द्यम् ॥
नक्षत्रनाथस्य दशाप्रवेशे भवेन्नराणां महती प्रतिष्ठा ।
मन्त्रित्वमुच्चैर्नृपतेः प्रसादो भूदेवदेवार्चनताप्रवृत्तिः ॥
सन्मन्त्रविद्या विविधा धनाप्तिर्नानाकलाकौशलशालिता च ।
गन्धैस्तिलैश्चापि फलैः प्रसूनैर्वृक्षैरलं वा द्रविणोपलब्धिः ॥
ख्यातिः सुकीर्तिर्विनयाधिकत्वं परोपकाराय मतिर्यशश्च ।
इतस्ततः सञ्चलनप्रियत्वं कन्याप्रजासञ्जननं मृदुत्वम् ॥
जलस्य कर्मण्यतिसादरत्वमालस्यनिद्राकुलता क्षमा च ।
कृष्यादिकर्माभिरुचिः शुचित्वं कफानिलाधिक्यमतीव सत्त्वम् ॥
भवेद्विरोधः स्वजनेन नूनं कलिप्रसङ्गो बहुजल्पता च ।
चित्तस्थितिर्नैव च साधुकार्ये सामान्यतः कीर्तितमेतदत्र' ॥ (जातकाभरण)

भौममहादशाफल

भौमस्य स्वदशाफलानि हुतभुग्भूपाहवाद्यैर्धनं
[illegible] विविधैः क्रौर्यैर्धनस्यागमः ।

पित्तासृग्ज्वरबाधितश्च सततं नीचाङ्गनासेवनं
विद्वेषः सुतदारबन्धुगुरुभिः कष्टोऽन्यभाग्ये रतः ॥९॥

मंगल की महादशा में जातक अग्निक्रिया, राजा, शस्त्रादि के प्रयोग से, औषधि के प्रयोग या उसके व्यवसाय से, असत्य सम्भाषण से, धोखा-धड़ी के द्वारा तथा क्रूर कर्म के द्वारा धनोपार्जन करता है। वह पित्त-प्रकोप, रक्त-विकार तथा ज्वर आदि से पीड़ित रहता है। नीच जाति की स्त्री में उसकी आसक्ति होती है। स्त्री-पुत्र, स्वजन और गुरुजनों से विरोध होने से दुःखी होता है। जातक दूसरों के भाग्योदय में सहायक होता है ॥९॥

'ताराग्रहाः स्वोच्चगृहादिसंस्था वक्रास्तमानातुगता यदि स्युः।
मिश्रं फलं ते निजपाककाले यच्छन्ति नूनं सुधिया विचिन्त्यम् ॥
स्यात्पाके क्षितिनन्दनस्य च धनं शस्त्राच्च धात्रीपते-
र्भैषज्याच्च चतुष्पदादपि तथा नानाविधैरुद्यमैः।
पित्तासृग्ज्वरपीडनं क्षितिपतेर्भीतिं च नीतिच्युतिं
मूर्च्छाद्यं च निजालये कलिरिति प्रोक्तं फलं सूरिभिः ॥
मूलत्रिकोणोपगतस्य पाके क्षोणीसुतस्यात्मजदारसौख्यम्।
अर्थोपलब्धिः खलु साहसेन रणाङ्गणे चारुयशो विशेषात्' ॥ (जातकाभरण)

बुधमहादशाफल

सौम्यः करोति सुहृदागममात्मसौख्यं
विद्वत्प्रशंसितयशश्च गुरुप्रसादम्।
प्रागल्भ्यमुक्तिविषयेऽपि परोपकारं
जायात्मजादिसुहृदां कुशलं महत्त्वम् ॥१०॥

अपनी महादशा में बुध जातक को मित्रों के आगमन और समागम का सुख, विद्वानों के द्वारा प्रशंसित होने का सुख तथा गुरुजनों की कृपा का सुख प्रदान करता है। वह वाक्पटुता, श्रेष्ठ अभिव्यञ्जना शक्ति प्राप्त करता है। उसमें परोपकार की भावना प्रबल होती है। स्त्री-पुत्रादि और स्वजनों को सुख होता है तथा उनका भी उत्कर्ष होता है ॥१०॥

'विद्याविवेकप्रभुतासमेतः कृषिक्रियायज्ञविधानचित्तः।
महोद्यमावाप्तधनश्च नूनं भवेन्मनुष्यो शशिजस्य पाके ॥
शिल्पादिकर्मण्यतिकौशलं स्यान्नित्योत्सवोत्कर्षविशेष एव।
सद्वाद्यगीताभिरुचिर्नवीनसद्द्राण्डभूषागृहनिर्मितत्वम् ॥
कुतूहलैर्भाषणहास्यहर्षैः कालक्रमत्वं विनयोपलब्धिः।
आचार्यविद्वद्गुरुसम्मतत्वं कलत्रपुत्रादिसुखोपलब्धिः ॥
पीडापि गाढा कफवातपित्तैरसञ्चयोर्थस्य च सौम्यपाके।
बलाबलत्वं प्रविचार्य सर्वं शुभाशुभत्वं सुधिया विचिन्त्यम्' ॥ (जातकाभरण)

बृहस्पतिमहादशाफल

धर्मक्रियाप्तिममरेन्द्रगुरुर्विधत्ते
सन्तानसिद्धिमवनीपतिपूजनं च ।
श्लाघ्यत्वमुन्नतजनेषु गजाश्वयान-
प्राप्तिं वधूसुतसुहृद्युतिमिष्टसिद्धिम् ॥११॥

अपनी दशा प्राप्त होने पर देवगुरु बृहस्पति जातक को धार्मिक क्रिया में अभिरुचि, सन्तान-सुख की प्राप्ति, राजसम्मान, सम्भ्रान्त तथा उच्चवर्गीय पुरुषों से समादर, हाथी-घोड़े आदि वाहन, स्त्री-पुत्रादि सुख, मित्रों से अनुकूलता और अभीष्ट कार्य में सफलता देता है ॥११॥

'दशाप्रवेशे त्रिदशार्चितस्य भूपप्रधानाप्तमनोरथः स्यात् ।
सत्कर्मधर्मागमशास्त्रवेत्ता भवेन्मनुष्यः सततं विनीतः ॥
यज्ञादिकर्मण्यतिसादरत्वं भवेत्प्रवृत्तिर्द्विजदेवभक्तौ ।
अत्यर्थमर्थो विभुताविशेषः पुत्रादितोषः पुरुषस्य नूनम् ॥
भूम्यम्बराश्वादिसुखोपलब्धिर्बलोपपन्नः कुलधुर्यता च ।
गतागतागामिविचारणोच्चैः सत्सङ्गतिश्चारुमतिर्धृतिश्च ॥
दाहादिपीडापि गले कदाचिद्विरुद्धभावस्थितितो विचिन्त्यम् ।
सामान्यमेतत्फलमुक्तमार्यैर्वक्ष्येऽधुना यत्प्रतिराशियुक्तम्' ॥ (जातकाभरण)

शुक्रमहादशाफल

क्रीडासुखोपकरणानि सुवाहनाप्तिं
गोरत्नभूषणनिधिप्रमदाप्रमोदम् ।
ज्ञानक्रियां सलिलयानमुपैति शौक्र्यां
कल्याणकर्मबहुमानमिलाधिनाथात् ॥१२॥

शुक्र की महादशा में जातक को आमोद-प्रमोद और सुख के साधन प्राप्त होते हैं। सुन्दर वाहन, रत्नादिजटित आभूषण, धन-सम्पदादि और सुन्दर रमणी से रमण-सुख की प्राप्ति होती है। जातक में ज्ञानार्जन की प्रवृत्ति और जलयात्रा एवं कल्याणकारी कार्य सम्पादन करने के अवसर शुक्र अपनी महादशा में जातक को प्रदान करता है तथा मान-सम्मान में वृद्धि करता है ॥१२॥

'दैत्यामात्यः स्वीयपाकप्रवेशे योषाभूषारत्नवस्त्रोपलब्धिम् ।
नानामानं मानवानां प्रकुर्यात्कन्दर्पस्याभ्युद्‌गमात्सौख्यमुच्चैः ॥
गीते नृत्येऽत्यन्तसञ्जातहर्षो विद्याभ्यासप्रीतिकृच्चारुशीलः ।
बुद्ध्याधिक्यश्चात्रदानप्रवृत्तिर्दक्षो मर्त्यो विक्रये वा क्रये वा ॥
गोवाहनेभ्यो ननु नन्दनेभ्यः सौख्यं भवेन्नन्दननन्दनेभ्यः ।
पूर्वार्जितस्य द्रविणस्य लब्धिः कलिः कुले स्याच्चलनात्स्थलाच्च ॥

कफानिलाभ्यां किल निर्बलं स्यात्कलेवरं नीचतरैश्च वैरम् ।
विप्रादिचिन्तापरितप्तमेव चित्तं च सख्यं कुजनैः कदाचित्' ॥ (जातकाभरण)

शनिमहादशाफल

पाकेऽर्कजस्य निजदारसुतातिरोगान्
वातोत्तरान्कृषिविनाशमसत्प्रलापम् ।
कुस्त्रीरतिं परिजनैर्वियुतिं प्रवास-
माकस्मिकं स्वजनभूमिसुखार्थनाशम् ॥१३॥

शनि की महादशा में जातक की पत्नी और पुत्र वातज व्याधियों से कष्ट प्राप्त करते हैं, उसके कृषि-उत्पादों का विनाश होता है तथा जातक असद् वाक्यों का प्रयोग करता है। दुष्टा चरित्रहीन स्त्रियों के प्रति उसकी आसक्ति होती है। परिजनों का वियोग होता है, अकस्मात् प्रवास तथा स्वजन, भू-सम्पदा, सुख और धन की हानि होती है ॥१३॥

'भवेद्दशायां हि शनैश्चरस्य नरः पुरग्रामकृताधिकारः ।
धीमांश्च दानादिकृतातिशाली नानाकलाकौशलसंयुतश्च ॥
तुरङ्गहेमाम्बरकुञ्जराद्यैः सम्पन्नतां याति विनीततां च ।
देवद्विजार्चाभिरतो विशेषात्पुरातनस्थानकलब्धसौख्यः ॥
देवद्विजेन्द्रालयकृत्सुशीलो विशालकीर्तिः स्वकुलावतंसः ।
आलस्यनिद्राकफवातपित्तजनाङ्गनादद्रुविचर्चिकार्तः ॥
सामान्यमेतत्फलमुक्तमत्र शनेर्दशायां गदितं हि पूर्वैः' । (जातकाभरण)

राहुमहादशाफल

कुर्यादहिः क्षितिपचोरविषाग्निशस्त्र-
भीतिं सुतार्तिमतिविभ्रमबन्धुनाशम् ।
नीचावमाननमतिक्रमतोऽपवादं
स्थानच्युतिं पदहतिं कृतकार्यहानिम् ॥१४॥

राहु की महादशा में राजा से उत्पीडन, चोर-विष-अग्नि-शस्त्रादि से भय, सन्तान को कष्ट, बौद्धिक विभ्रम, स्वजनों और बन्धु-बान्धवों का विनाश, मर्यादा भङ्ग होने से अपमान, पैरों में क्षत और स्थानच्युति तथा पूर्वकृत कार्यों की क्षति होती है ॥१४॥

विधुन्तुदे शुभान्विते प्रशस्तभावसंयुते
दशा शुभप्रदा तदा महीपतुल्यभूतिदा ।
अभीष्टकार्यसिद्धयो गृहे सुखस्थितिर्भवे-
दचञ्चलार्थसञ्चयाः क्षितौ प्रसिद्धकीर्तयः ॥१५॥

शुभग्रह से युक्त तथा शुभभावस्थ राहु की महादशा शुभप्रद होती है। राजा के समान वैभवादि देने वाली होती है। अभीष्ट कार्य की सिद्धि, घर में सुख-शान्ति, स्थायी धनसंचय और ख्याति का लाभ होता है ॥१४॥

पाथोनमीनालिगतस्य राहोर्दशाविपाके महितं च सौख्यम् ।
देशाधिपत्यं नरवाहनाप्तिर्दशावसाने सकलस्य नाशः ।।१६।।

कन्या, मीन और वृश्चिक राशिगत राहु की महादशा में महत् सुख की प्राप्ति होती है। जातक को किसी स्थान या देश का अधिकार प्राप्त होता है, पालकी आदि वाहन का सुख होता है। किन्तु उसकी इन सब उपलब्धियों का दशा के अन्तिम भाग में विनाश हो जाता है ।।१६।।

'कुलीरगोमेषयुतस्य राहोर्दशाविपाके धनलाभमेति ।
विद्याविनोदं नृपमाननं च कलत्रभृत्यात्मसुखं प्रयाति ।।
पाथोनमीनाश्वयुतस्य राहोर्दशाविपाके सुतदारलाभम् ।
देशाधिपत्यं नरवाहनञ्च दशावसाने सकलं विनाशम् ।।
पापर्क्षसंयुक्तफणीन्द्रदाये देहस्य कार्श्यं स्वकुलस्य नाशम् ।
भूपाद्भयं वञ्चनतोऽरिभीतिः प्रमेहकासक्षयमूत्रकृच्छ्रम् ।।
शुभदृष्टियुतो राहुः करोति सफलं क्रियाम् । राजमाननमर्थाप्तिं बन्धूनां मरणं ध्रुवम् ।।
पापदृष्टियुतो राहुः कर्मनाशं करोति च । उद्योगभङ्गं देहार्तिं चौराग्निनृपपीडनम् ।।
उच्चग्रहयुतो राहू राज्यलाभं करोति च । स्त्रीपुत्रधनसम्पत्तिवस्त्राभरणलेपनम् ।।
नीचग्रहयुतो राहुर्नीचवृत्त्यानुजीवनम् । कुभोजनं कुदारं च कुपुत्रं लभते तदा ।।
दशादौ दुःखमाप्नोति दशामध्ये सुखं यशः । दशान्ते स्थाननाशं च गुरुपुत्रादिनाशनम्' ।।
(सर्वार्थचिन्तामणि)

केतुमहादशाफल

केतोर्दशायामरिचोरभूपैः पीडा च शस्त्रक्षतमुष्णरोगः ।
मिथ्यापवादः कुलदूषितत्वं वह्नेर्भयं प्रोषणमात्मदेशात् ।।१७।।

केतु की महादशा में शत्रु, चोर और राजा से भय, शस्त्रादि से कष्ट, घाव और उष्णरोग (जलन या अधिक ऊष्माबोध) होता है। अपवाद, स्वकुल की अपकीर्ति, अनेक प्रकार से अग्निभय और स्वदेश का परित्याग करना होता है ।।१७।।

'भार्यापुत्रविनाशनं नरपतेर्भ्रान्तिर्महत्कष्टतां
विद्याबन्धुधनाप्तिमित्ररहितं रोगाग्निमित्रैर्भयम् ।
यानारोहणपातनं विषजलैः शस्त्रादिभिर्वा भयं
देशादेशविवासनं कलिरुचिं देहादिभिर्वा भयम् ।।
केतोर्दशायां सम्प्राप्तौ दारपुत्रविनाशनम् ।
राजकोपं मनस्तापं चौराग्निकृषिनाशनम्' ।। (सर्वार्थचिन्तामणि)

सूर्य की अनिष्ट दशाफल

अथ तरणिदशायां क्रौर्यभूपालयुद्धै-
र्धनमनलचतुष्पात्पीडनं नेत्रतापः ।

उदरदशनरोगः पुत्रदारार्तिरुच्चै-
र्गुरुजनविरहः स्याद्भृत्यनाशोऽर्थहानिः ॥१८॥

सूर्य की महादशा में क्रूरकर्म, राजा अथवा युद्ध के द्वारा धनागम होता है। अग्नि, पशुओं और नेत्रव्याधि से कष्ट, उदरशूल, स्त्री-पुत्रादि को कष्ट, गुरुजनों का वियोग तथा नौकरों और धन की हानि होती है ॥१८॥

'भृत्यार्थचोरचक्षुःशस्त्राग्न्युदकक्षितीशश्वराद्बाधाः।
सुतपत्नीबन्धुजनैर्निपीडतः स्याच्च पापरतिः॥
क्षुत्तृष्णार्तिः शोको हृत्पीडा पैत्तिकास्तथा रोगाः।
गात्रच्छदो भवति हि सूर्यदशायामनिष्टायाम्' ॥ (सारावली)

चन्द्रमहादशाफल

शिशिरकरदशायां मन्त्रदेवद्विजोर्वी-
पतिजनितविभूतिः स्त्रीधनक्षेत्रसिद्धिः।
कुसुमवसनभूषागन्धनानारसाप्ति-
र्भवति खलविरोधः स्वक्षयो वातरोगः ॥१९॥

चन्द्रमा की महादशा में मन्त्राचार, देव-द्विज और राजा की प्रसन्नता से वैभवादि की प्राप्ति और स्त्री, धन और भूसम्पदादि का लाभ होता है। चन्द्र की महादशा में पुष्प, वस्त्र, आभूषण, सुगन्धि और अनेक प्रकार के रसमय पदार्थों का लाभ होता है। दुष्टजनों से विरोध, धननाश और वातादि रोगजन्य कष्ट होता है ॥१९॥

'चन्द्रदशायां वित्तं स्त्रीसङ्गममार्दवात्पथि विहारात्।
जलतुहिनक्षीररसैरिक्षुविकारैस्तथा क्रीडा॥
द्विजमन्त्राणां लब्धिः पुष्पाम्बरसेवनं मधुरता च।
तैक्ष्ण्यादवाप्तसिद्धिः पूजां प्राप्नोति गुरुनृपाभ्यां च॥
मेधाधृतिपुष्टिकरी चन्द्रदशा शोभना नित्यम्।
कुरुते भयं कुलस्य च चन्द्रदशा स्वकुलविग्रहं कष्टम्॥
अर्थविनाशमकस्माद्भूपसदो द्वेष्यतां लभते।
निद्रालस्यं स्त्रीणां भयजननी शोकदा त्वशुभा' ॥ (सारावली)

भौममहादशाफल

क्षितितनयदशायां क्षेत्रवैरक्षितीश-
प्रतिजनितविभूतिः स्यात्पशुक्षेत्रलाभः।
सहजतनयवैरं दुर्जनस्त्रीषु सक्ति-
र्दहनरुधिरपित्तव्याधिरर्थोपहानिः ॥२०॥

मंगल की महादशा में जातक क्षेत्र (कृषि योग्य भूमि) के व्यवसाय (क्रय-विक्रय) द्वारा

या राजा (राज्य) से विवाद (मुकदमेबाजी) से लाभान्वित अथवा धन प्राप्त करता है। उसके पशुधन और क्षेत्र (कृषि योग्य भूमि) का विस्तार होता है। इस महादशा में जातक के बन्धु-बान्धवों और पुत्र से विरोध, दुर्जनों और दुष्टा रमणी में जातक की आसक्ति होती है। जलन (उत्ताप) तथा रक्तदूषण-जनित व्याधियों से कष्ट होता है तथा धन-सम्पदादि की क्षति होती है ॥२०॥

'भौमदशायां लभते नृपाग्निचोरप्रयोगरिपुमर्दैः ।
व्यालविषशस्त्रबन्धनसुतैक्ष्ण्यकूटैश्च धनबहुलम् ॥
क्षित्याजाविकताम्रकसुवर्णवेश्यादिभिस्तथा द्यूतैः ।
आसवकषायकटुकै रसैश्च धनधान्यभाग्यवति ॥
मित्रकलत्रविरोधो भ्रातृसुतैर्विग्रहश्च तृष्णा च ।
मूर्च्छा शोणितदोषः शाखाच्छेदो व्रणश्चापि ॥
परदाररतिर्द्वेष्यो गुरुसत्यानामधर्मनिरतश्च ।
पित्तकृतैरपि दोषैरभिभूतो मानवो भवति' ॥ (सारावली)

राहुमहादशाफल

असुरवरदशायां दुःस्वभावोऽथवा स्या-
दतिगहनगदार्तिः सूनुनार्योर्विनाशः ।
विषभयमरिपीडावीक्षणोर्ध्वाङ्गरोगः
सुहृदि कृषिविरोधो भूपतेर्द्वेषलाभः ॥२१॥

राहु की महादशा में जातक में दुष्ट प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव, गहन व्याधि (ऐसी व्याधि जिसका निदान चिकित्सकों के लिए दुरूह हो) से पीड़ा, स्त्री-पुत्रादि का क्षय, विषादि के प्रयोग का भय, शत्रु से कष्ट, नेत्र और ऊर्ध्वाङ्ग में रोग, मित्रों से विरोध, कृषि के प्रति उपेक्षा तथा राजा से विद्वेषण आदि फल होते हैं ॥२१॥

बृहस्पतिमहादशाफल

अमरगुरुदशायामम्बराद्यर्थसिद्धिः
परिजनपरिवारप्रौढिरत्यर्थमानः ।
सुतधनसुहृदाप्तिः साधुवादाप्तपूजा
भवति गुरुवियोगः कर्णरोगः कफार्तिः ॥२२॥

देवगुरु बृहस्पति की महादशा में जातक को वस्त्रादि का लाभ और धन-वैभवादि की वृद्धि होती है, स्वजनों एवं परिजनों की स्थिति सुदृढ़ होती है; पुत्र, धन और मित्रों की प्राप्ति होती है। जातक लोगों के द्वारा प्रशंसा प्राप्त करता है तथा सम्मान प्राप्त करता है। गुरुजनों का बिछोह, कर्णरोग और कफादि के प्रकोप से जातक पीडित होता है ॥२२॥

'त्रिदशपतिगुरुदशायां मन्त्रिनरपनृत्यनीतिभिर्वित्तम् ।
मानगुणानां लब्धिरतिप्रतापः सुहृद्विवृद्धिश्च ॥

कान्तासुवर्णविसरगजाश्वभोगी सदा पुरुषः ।
माङ्गल्यपौष्टिकानां लाभो द्विषतां विनाशश्च ॥
लाभो भवति नराणां प्रीतिः सद्भूमिपैः सार्धम् ।
जनताया नृपवक्त्रात्पण्याग्राद्गुरुजनाच्च धनलाभः ॥
गात्रश्वथपृथुशोकं पङ्गुत्वं गुल्मकर्णरोगांश्च ।
पुंस्त्वविनाशं मेदःक्षयं नृपतितो भयं समाप्नोति' ॥ (सारावली)

शनिमहादशाफल

रवितनयदशायां राष्ट्रपीडाप्रहार-
प्रतिजनितविभूतिः प्रेष्यवृद्धाङ्गनाप्तिः ।
पशुमहिषवृषाप्तिः पुत्रदारप्रपीडा
पवनकफगुदार्तिः पादहस्ताङ्गतापः ॥२३॥

शनि की महादशा में जातक को किसी राष्ट्रीय आपदा के माध्यम से धन का लाभ होता है। दास और वृद्धा स्त्री की प्राप्ति होती है। गौ, भैंस और बैल आदि की प्राप्ति होती है। स्त्री-पुत्रादि को कष्ट होता है। वायु-कफ के प्रकोप से गुदामार्ग में पीड़ा होती है तथा हाथ और पैर में जलन से परेशानी होती है ॥२३॥

'सौरेर्दशां प्रपन्नः प्राप्नोति पुमान्खरोष्ट्रमहिषाद्यान् ।
कुलटां जरदङ्गीं वा कुलित्थतिलकोद्रवादींश्च ॥
वृन्दग्रामपुराणामधिकारभवं च सत्कारम् ।
लोहत्रपुकादीनां स्वकीयपक्षस्थिरास्पदं चैव ॥
वाहननाशोद्वेगस्त्वरतिः स्त्रीस्वजनविप्रयोगश्च ।
युद्धेष्वपजयदोषो मद्यद्यूतोद्भवो मरुत्कोपः ॥
पुण्येष्वसिद्धिकलहं बन्धनतन्द्राश्रमं तथा व्यङ्गम् ।
भृत्यापत्यविरोधो भवति च कष्टा यदा दशा सौरेः' ॥ (सारावली)

बुधमहादशाफल

शशितनयदशायां शश्वदाचार्यसिद्धि-
र्द्विजजनितधनाप्तिः क्षेत्रगोवाजिलाभः ।
मनुवरसुरपूजा वित्तसङ्घातसिद्धिः
प्रभवति मरुदुष्णश्लेष्मरोगप्रपीडा ॥२४॥

बुध की महादशा में जातक आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त करता है। उसे ब्राह्मणों द्वारा अर्जित धन, कृषियोग्य भूमि, गौ और घोड़ों की प्राप्ति होती है। श्रेष्ठ मनुष्यों और देवता में आस्था होती है तथा अतुल धन-सम्पदादि का लाभ होता है। वायु, कफ के कुपित होने से उत्पन्न रोग एवं ताप से पीड़ित रहता है ॥२४॥

'सौम्यदशायां पुत्रान् मित्रादाढ्याद्धनस्य सम्प्राप्तिः ।
दीक्षितनृपतेर्द्यूताद्वणिग्जनाच्चापि सम्भवति ।।
वेसरमहीसुवर्णं शुक्तिद्रव्यं यशः प्रशंसा च ।
दौत्यं सौख्यमतुल्यं सौभाग्यं मतिचयख्यातिः ।।
धर्मक्रियासु सिद्धिर्हास्यरतिः शत्रुसंक्षयो भवति ।
गणितालेख्यलिपीनां कौतुकभागी सदा पुरुषः ।।
पीडां धातुत्रितयात्पारुष्यं बन्धनं तथोद्वेगम् ।
मानसशोकं वाऽपि बुधस्य कष्टा दशा कुरुते' ।। (सारावली)

केतुमहादशाफल

शिखिजनितदशायां शोकमोहोऽङ्गनाभिः
प्रभुजनपरिपीडा वित्तनाशोऽपराधः ।
प्रभवति तनुभाजां प्रोषणं स्वीयदेशा-
द्दशनचरणरोगः श्लेष्मसन्तापनं च ।।२५।।

स्त्रीजनित शोक और व्यामोह, श्रेष्ठजनों से कष्ट, धन की हानि तथा अपराध कर्मों में प्रवृत्ति होती है। जातक स्वदेश से बहिष्कृत होता है तथा दाँत और पैरों के रोग से पीड़ित होता है ।।२५।।

शुक्रमहादशाफल

भृगुतनयदशायामङ्गनारत्नवस्त्र-
द्युतिनिधिधनभूषावाजिशय्यासनाप्तिः ।
क्रयकृषिजलयानप्राप्तवित्तागमो वा
भवति गुरुवियोगो बान्धवार्तिर्मनोरुक् ।।२६।।

इति श्रीमन्त्रेश्वरविरचितायां फलदीपिकायां दशाफलनिरूपणं नामैकोनविंशोऽध्यायः ।।१९।।

शुक्र की महादशा में जातक को स्त्री, रत्नाभूषण, वस्त्र, अतुल धनकोश, अश्ववाहन, सुन्दर सुखद शय्या और आसनादि का सुख होता है। क्रय-विक्रय के व्यवसाय, कृषि तथा जलयान के द्वारा धनागम, गुरुजनों का वियोग, बन्धु-बान्धवों को कष्ट और मानसिक सन्ताप होता है ।।२६।।

'शुक्रदशायां विजयः क्ष्माभवनविलासशयनपत्नीनाम् ।
माल्याच्छादनभोजनयशःप्रमोदो निधिप्राप्तिः ।।
गेयरतिः स्त्रीसङ्गो नृपतेः कृषितो धनस्य सम्प्राप्तिः ।
ज्ञानेष्टसौख्यसुहृदां मन्मथयोग्योपकरणानाम् ।।

कुलगुणवृद्धैर्वादो यानासनसम्भवानि कष्टानि ।
स्त्रीनृपन्यक्कृतवश्यं लोकविरुद्धैः सह प्रीतिः' ॥ (सारावली)

महादशाओं के उपर्युक्त फल अति सामान्य हैं। ग्रहों की राशिगत स्थिति और भावगत स्थिति, उच्च, नीच, आरोही, अवरोही राशियों, मूलत्रिकोण, शत्रु और मित्र राशियों में ग्रह स्थिति से उक्त दशाफल में पर्याप्त परिष्कार होता है। ग्रह किस भाव का स्वामी है इसका भी प्रभाव उसकी दशाफल पर पड़ता है। इसके अतिरिक्त ग्रह पर पड़ने वाली शुभाशुभ दृष्टि एवं उसके नवांश भी उसके दशाफल को विशेषरूप से प्रभावित करती है। अतः दशाफल कथन में इन बिन्दुओं पर भी विचार करना चाहिए।

इस दिशा में सारावली में दिये गये निर्देश उपयोगी सिद्ध होंगे—

'लग्नगृहगस्य हि दशा मण्डललाभं तथोच्चगस्यापि ।
केन्द्रस्थितस्य कुरुते धनवाहनदेशसम्प्राप्तिम् ॥
षष्ठदशा व्यसनकरी मरणं च करोति नैधनस्थदशा ।
अस्तमितग्रहपाको बन्धनमात्रेण पीडयति ॥
वक्रोपगस्य हि दशा भ्रमयति च कुलालचक्रवत्पुरुषम् ।
व्यसनानि रिपुविरोधं करोति पापस्य न शुभस्य ॥
रिक्तातिरिक्तनिम्नातिनिम्नरिप्वतिरिपुगृहदशासु ।
पृथ्वीपतिरपि भूत्वा स्वभृत्यभृत्यो भवेत्पुरुषः ॥
देशत्यागो व्याधिर्भ्रंशोत्थानं महुर्मुहुः कलहः ।
बन्धनमरातिजनितं रिपुराशिगतस्य हि दशायाम् ॥
महितकरिगलितमदजलसेकक्ष्मापीठवारितरजस्कः ।
राजा कष्टसहायो रिक्तदशायां ध्रुवं भ्रमति ॥
अङ्गप्रत्यङ्गानां छेदं विदधाति षष्ठशत्रुदशा ।
कोणद्यूनारिदशा निधनारिदशा शिरश्छेदम् ॥
रिपुभयविदेशगमनं बन्धनरोगादिपीडनं भवति ।
नीचस्थग्रहपाके राजाभिभवो ध्रुवं पुंसाम् ॥
चिन्ता स्वप्नानुभवैः परिणमति फलं विहीनवीर्यस्य ।
पञ्चमहापुरुषोक्ताध्यायांस्तान्नियोजयेदत्र ॥
आदौ दशासु फलदः शीर्षोदयराशिसंस्थितो विहगः ।
उभयोदये च मध्ये स्वान्त्ये पृष्ठोदये च नीचर्क्षे' ॥ (सारावली)

इस प्रकार मन्त्रेश्वरकृत फलदीपिका में दशाफलनिरूपण
नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥१९॥

○

दशापहारफलम्

भावेश के बलाबल के अनुसार दशाफल

भावेश्वरेण प्रबलेन येन यद्यत्फलं हीनबलेन येन।
यदानुभोक्तव्यमनन्यसम्यक्संसूचयिष्यत्यथ संग्रहेण ॥१॥

सबल और निर्बल भावेशों के जो फल कहे गये हैं वास्तव में जातक को वे कब प्राप्त होंगे वही सब इस अध्याय में संग्रहीत है ॥१॥

लग्नेश दशाफल

लग्ने बलिष्ठे जगति प्रभुत्वं सुखस्थितिं देहबलं सुवर्चः।
उपर्युपर्यभ्युदयाभिवृद्धिं प्राप्नोति बालेन्दुवदेष जातः ॥२॥

लग्न यदि पूर्ण बलशाली हो तो लग्नाधिपति की दशा में जातक को प्रभुता, सुखद स्थिति, शारीरिक उत्तम स्वास्थ्य, वर्चस्व तथा बालचन्द्र के समान निरन्तर अभ्युत्थान क्रम की प्राप्ति होती है ॥२॥

द्वितीयभावाधिपति की दशाफल

पाकेऽर्थनाथस्य कुटुम्बसिद्धिं सत्पुत्रिकाप्तिं सुखभोजनं च।
प्राप्नोति वाग्जीविकया धनानि वक्ता सदुक्तिं सदसि प्रशस्ताम् ॥३॥

धनपति (द्वितीयेश) की महादशा में कुलाभिवृद्धि होती है तथा श्रेष्ठ कन्याओं का जन्म, सुस्वादु भोजन का सुख, वाणी द्वारा आजीविका, तार्किक सम्भाषण से जनमानस की प्रशंसा प्राप्त होती है ॥३॥

तृतीयभावाधिपति की महादशाफल

शौर्ये सवीर्ये सहजानुकूल्यं सन्तोषवार्ताश्रवणं च शौर्यम्।
सेनापतित्वं लभतेऽभिमानं जनाश्रयं सद्गुणभाजनत्वम् ॥४॥

तृतीय भाव का स्वामी यदि बलवान् हो तो उसकी महादशा में भाइयों और बन्धु-बान्धवों की अनुकूलता होती है अर्थात् उनका सहयोग जातक को मिलता है। सन्तोषप्रद सुखकर समाचार सुनने को मिलता है। साहसिक कार्यों का सम्पादन होता है। जातक सेनानायक पद और विशिष्ट सम्मान प्राप्त करता है। जनसमूह का समर्थन मिलता है तथा जातक में सद्गुणों का विकास होता है ॥४॥

चतुर्थभावाधिपति-दशाफल

बन्धूपकारं कृषिकर्मसिद्धिं स्त्रीसङ्गमं वाहनलाभमेति।
क्षेत्रं गृहं नूतनमर्थसिद्धिं स्थानं प्रशस्तं च सुखेशदाये ॥५॥

चतुर्थेश यदि बलवान् हो तो उसकी दशा में स्वजनों और बन्धु-बान्धवों का उपकार होता है। कृषिकर्म में सफलता प्राप्त होती है, स्त्री से सुखद समागम होता है तथा वाहनादि का सुख प्राप्त होता है। कृषि योग्य भूमि का लाभ होता है, गृह-निर्माण तथा धनप्राप्ति के नये स्रोत मिलते हैं तथा सामाजिक स्तर में वृद्धि होती है ॥५॥

पञ्चमभावाधिपति-दशाफल

पुत्रप्राप्तिं बन्धुविलासं नृपतीनां
साचिव्यं वा धीशदशायां बहुमानम्।
प्राज्यैर्भोज्यैर्मृष्टमिहाश्नाति ददाति
श्रेयस्कार्यं सज्जनशस्तं स विदध्यात् ॥६॥

पञ्चम भाव का स्वामी यदि बलवान् हो तो उसकी महादशा में जातक को पुत्रप्राप्ति का सुख, भाइयों से रति और सम्बन्धों में माधुर्य, राजमन्त्री पद का लाभ एवं सम्मान में वृद्धि होती है। सज्जनों से प्रंशसित महत् कार्यों का समापन जातक के द्वारा होता है तथा वह अनेक लोगों को सुस्वादु सुन्दर भोज्य पदार्थ खिला कर स्वयं भी भोजन करता है ॥६॥

षष्ठभावाधिपति-दशाफल

रिपून्निहन्ति साहसैररीश्वरस्य वत्सरे।
अरोगतामुदारतामधृष्यतामतिश्रियम् ॥७॥

छठे भाव का स्वामी यदि बलशाली हो तो उसकी महादशा प्राप्त होने पर जातक शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है। उसमें साहस की वृद्धि, नैरोग्यता, उदारता में वृद्धि होती है तथा वह वैभवादि से सम्पन्न सुखकर जीवन व्यतीत करता है[1] ॥७॥

सप्तमभावाधिपति-दशाफल

सम्पाद्य वस्त्राभरणानि शय्यां प्रीतो रमण्या रमतेऽतिवीर्यः।
करोति कल्याणमहोत्सवादीन् सन्तोषयात्रां च मदेशदाये ॥८॥

बलवान् सप्तमेश की महादशा में जातक को नूतन वस्त्राभूषण, सुन्दर सुखद शय्या का सुख प्राप्त होता है। स्त्रियों में रति, बल-शौर्यादि की सम्पन्नता होती है। जातक अच्छे कल्याणकारी कार्यों एवं उत्सवादि का आयोजन करता है और सन्तोषप्रद सार्थक यात्रा करता है ॥८॥

---

१. एक सामान्य अवधारणा प्रचलित है कि छठे भाव के स्वामी की महादशा सदैव कष्टप्रद होती है, किन्तु ऐसा समझना भ्रामक है। षष्ठेश के बलवान् होने पर वह सुखद फल ही देता है।

अष्टमभावाधिपति-दशाफल

ऋणविमोचनमुच्छ्रितिमात्मनः कलहकृत्यनिवृत्तिमुपैति सः ।
महिषपश्वजभृत्यजनागमं वयसि रन्ध्रपतेर्बलशालिनः ॥९॥

सबल अष्टमेश की दशा में जातक पूर्ण ऋणमुक्त होता है। उसका सर्वतोमुखी विकास होता है, विवाद से मुक्ति, गौ, भैंस और बकरी, नौकर आदि का सुख होता है ॥९॥

नवमभावाधिपति-दशाफल

स्त्रीपुत्रपौत्रैः सहबन्धुवर्गैर्भाग्यं श्रियं चानुभवत्यजस्त्रम् ।
श्रेयांसि कार्याण्यवनीशपूजां भाग्येशदाये द्विजदेवभक्तिम् ॥१०॥

नवम भाव का स्वामी यदि बलिष्ठ हो तो उसकी दशा में स्त्री-पुत्र-पौत्रादिकों एवं बन्धु-बान्धवों के साहचर्य का सुख, धनवृद्धि, सभी प्रकार की संवृद्धि और सुख की प्राप्ति जातक को होती है। राजा से सम्मान मिलता है तथा देवता और ब्राह्मणों में आस्था होती है ॥१०॥

दशमभावाधिपति-दशाफल

यत्कार्यमारब्धमुपैत्यनेन तस्यैव सिद्धिं सुखजीवनं च।
कीर्तिं प्रतिष्ठां कुशलप्रवृत्तिं मानोन्नतिं कर्मपतेर्दशायाम् ॥११॥

बलवान् दशमेश की महादशा में जातक के द्वारा प्रारम्भ किये गये सभी कार्य सफल होते हैं। उसका जीवन सुखपूर्वक व्यतीत होता है। यश, कीर्ति, सम्मान, प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। वह अपने कर्तव्यों का कुशलतापूर्वक सम्पादन करता है तथा उसके सम्मान में वृद्धि होती है ॥११॥

एकादशभावाधिपति-दशाफल

ऐश्वर्यमव्याहतमिष्टबन्धुसमागमं भृत्यजनांश्च दासान्।
संसारसौभाग्यमहोदयं च लभेत लाभाधिपतेर्दशायाम् ॥१२॥

एकादश भाव के स्वामी की दशावधि में जातक के ऐश्वर्यादि की निर्बाध वृद्धि होती है, प्रियजनों का समागम होता है, दास-दासियों द्वारा सेवित होता है तथा उसके सांसारिक सुख-सौभाग्यादि में अभिवृद्धि होती है ॥१२॥

व्ययभावाधिपति-दशाफल

व्ययेशितुर्वयस्यतिव्ययं करोति सज्जने।
अघौघनाशिनीं शुभक्रियां महीशमान्यताम् ॥१३॥

द्वादश भाव के बलवान् अधिपति की महादशा में जातक सन्मार्ग में धन का अत्यधिक व्यय करता है। पूर्व कृत अनेक पापों का नाश करने वाले अनेक शुभ कार्यों का सम्पादन करता है तथा राजा से सम्मान प्राप्त करता है ॥१३॥

वक्रगस्य निजतुङ्गसुहृत्सुस्थानगस्य दशाफलमेवम्।
शत्रुनीचगृहमौढ्यषडन्त्यछिद्रगस्य तु फलान्यपि वक्ष्ये॥१४॥

अब तक ग्रहों की दशाओं के जो फल कहे हैं वे ग्रहों के वक्रगत, स्वोच्चस्थ, स्वमित्रगृह तथा शुभस्थानगत अवस्थाओं के फल हैं। अब मैं अति नीचराशिगत, मूढग्रह, छठे, आठवें और बारहवें भावगत ग्रहों की दशाओं के फल कहता हूँ॥१४॥

सूर्य-सान्निध्य में अदृश्य रूप से स्थित ग्रह मूढ कहलाते हैं।

दुस्थानस्थ लग्नेश-द्वितीयेश नेष्ट दशाफल

दुःस्थे लग्नपतौ निरोधनमुपैत्यज्ञातवासं भयं
व्याध्याधीनपरक्रियाभिगमनं स्थानच्युतिं चापदम्।
जाड्यं संसदि वाक्कुटुम्बचलनं दुष्पत्रिकां दृग्रुजं
वाग्दोषं द्रविणव्ययं नृपभयं दुःस्थे द्वितीयाधिपे॥१५॥

यदि लग्न का स्वामी दुःस्थान (छठे, आठवें, बारहवें भाव) में स्थित हो तो उसकी महादशा प्राप्त होने पर जातक को बन्धन या कारागार का भय, किसी कारणवश अज्ञातवास, अनेकानेक व्याधियों और मानसिक सन्ताप से युक्त तथा मृत्यु के उपरान्त किये जाने वाले कर्मकाण्ड में सम्मिलित होना पड़ता है। वह स्थानच्युति और अनेक आपदाओं को झेलने के लिए विवश होता है।

यदि द्वितीय भाव का स्वामी दुःस्थान में स्थित हो तो बौद्धिक ह्रास, सभा में जड़ता, अपने वचन और कुटुम्ब के निर्वहन में असमर्थ, दुःखद समाचार-प्राप्ति, नेत्र और वाणी दोष, धन का अपव्यय तथा राजभय से जातक आक्रान्त रहता है॥१५॥

तृतीय-चतुर्थभावेश नेष्ट दशाफल

दुश्चिक्याधिपतौ सहोदरमृतिं कार्ये दुरालोचना-
मन्तःशत्रुनिपीडनं परिभवं तद्गर्वभङ्गं वदेत्।
मातृक्लेशमरिष्टमिष्टसुहृदां क्षेत्रगृहोपप्लुतिं
पश्वश्वादिविनाशनं जलभयं पातालनाथेऽबले॥१६॥

तृतीय भाव का स्वामी यदि उक्त दोषों (१४वें श्लोक में कथित दोषों) से युक्त हो तो उसकी दशा में जातक कटु आलोचना का पात्र होता है (उसके कार्यों की निन्दा होती है), शत्रुओं से उत्पीड़न और विफलता, भातृ-निधन, पराजय, हतश्री या मान-मर्दन होता है।

चतुर्थभावाधिपति यदि उक्त दोषों से युक्त हो तो मातृकष्ट, स्वजनों का अनिष्ट, कृषि-भूमि और गृहादि की क्षति, अश्वादि पशुओं का विनाश और जल से भय होता है॥१६॥

पञ्चम-षष्ठभावेश नेष्ट दशाफल

वीर्योने प्रतिभापतौ सुतमृतिर्बुद्धिभ्रमं वञ्चना-
मध्वानं ह्युदरामयं नरपतेः कोपं स्वशक्तिक्षयम्।

चोराद्भीतिमनर्थतां च दमनं रोगान् बहून्दुष्कृतिं
भृत्यत्वं लभतेऽवमानमयशः षष्ठेशदाये व्रणम् ॥१७॥

यदि प्रतिभापति (पञ्चमेश) वीर्यहीन (उक्त स्थिति में होने से) हो तो उसकी दशा में जातक के पुत्र का निधन, बौद्धिक विभ्रम या ह्रास, ठगी, निरर्थक थकाने वाली यात्राएँ, उदरव्याधि, राजकोप तथा उसकी शक्ति का क्षय होता है।

यदि छठे भाव का स्वामी उक्त स्थिति में हो तो उसकी दशा में जातक को चोरों से भय, अनर्थता (दरिद्रता या अनिष्ट), दूसरों के द्वारा दमित, अनेक रोगादि, दुष्कर्म में रुचि, दूसरों की चाकरी, अपमान, अपकीर्ति आदि झेलने होते हैं ॥१७॥

सप्तमेश-अष्टमेश नेष्ट दशाफल

जामातुर्व्यसनं कलत्रविरहं स्त्रीहेत्वनर्थागमं
द्यूनेशे विबलिन्यसत्यभिरतिं गुह्यामयं चाटनम्।
रन्ध्रेशायुषि शोकमोहमदमात्सर्यादिमूर्च्छोच्छ्रितिं
दारिद्र्यं भ्रमणं वदेदपयशोव्याधीनवज्ञां मृतिम् ॥१८॥

यदि सप्तम भाव का स्वामी उक्त अनिष्टकर स्थितियों में अवस्थित हो तो उसकी महादशा में जातक के जामाता को कष्ट, स्त्री-वियोग, स्त्री के कारण विपत्ति, असत् कार्यों में अभिरुचि, गुह्याङ्ग में रोग और उच्चाटन होता है।

अष्टम भाव का स्वामी यदि उक्त नेष्ट स्थानगत हो तो उसकी महादशा में जातक को शोकग्रस्तता, मोहग्रस्तता, प्रबल कामेच्छा, विद्वेष, मूर्च्छा, दारिद्र्य, अपमान आदि झेलने होते हैं। निरर्थक यात्राएँ, अपवाद, बीमारी और मृत्यु भी सम्भव होती है ॥१८॥

नवमेश-दशमेश नेष्ट दशाफल

पूर्वोपासितदेवकोपमशुभं जायातनूजापदं
दौष्कृत्यं स्वगुरोः पितुश्च निधनं दैन्यं शुभे दुर्बले।
यद्यत्कर्म करोति तत्तदफलं स्यान्मानभङ्गो नभो-
भावे दुर्गुणतां प्रवासमशुभं दुर्वृत्तिमापन्नताम् ॥१९॥

यदि नवम भाव का स्वामी उक्त निर्बलता से युक्त हो तो उसकी महादशा में पूर्व में उपासित देवता के (उपासना में व्यवधान होने से अथवा अन्य किसी कारण से) कोप से जातक के स्त्री-पुत्रादि को कष्ट होता है। जातक दुष्कर्म में निरत होता है, पिता और गुरुजन का निधन और निर्धनता होती है।

दशम भाव का स्वामी यदि उक्त स्थितियों में स्थिति से निर्बल हो तो जातक के द्वारा किये गये कार्य विफल होते हैं। समाज में उसको अप्रतिष्ठा मिलती है। उसमें अनेक दुर्गुणों का उदय होता है तथा सर्वत्र अशुभता होती है। उसका जीवन दुष्कृति और विपत्तियों से पूर्ण होता है तथा जातक प्रवासी होता है ॥१९॥

एकादशेश-द्वादशेश नेष्ट दशाफल

श्रवणमशुभवाचां भ्रातृकष्टं सुतार्तिं
भवपवयसि दैन्यं वञ्चनं कर्णरोगम्।
बहुरुजमपमानं बन्धनं सर्वसम्पत्-
क्षयमपरशशीवाऽऽयाति रि:फेशदाये ॥२०॥

यदि एकादश भाव के अधिपति में उक्त निर्बलता हो तो उसकी महादशा में जातक को अशुभ संवाद प्राप्त होते हैं, सहोदरों को कष्ट, सन्तति को पीड़ा, दीनता, धोखाधड़ी, कर्णरोग आदि कुफल भोगने होते हैं।

द्वादशभावाधिपति यदि उक्त स्थिति के कारण निर्बल हो तो उसकी महादशा में जातक अनेक व्याधियों से ग्रस्त, अपमान, कारागार आदि फल होते हैं। कृष्णपक्ष के निरन्तर ह्रासोन्मुख चन्द्रमा के समान उसकी समस्त सम्पदादि की हानि होती है ॥२०॥

दशाफल में विशेष

संज्ञायां यदगाच्च कारकविधिश्लोकेषु यज्जल्पितं
कर्माजीवनिरूपितं फलमिदं यद्रोगचिन्ताविधौ।
यद्यस्येक्षणयोगसम्भवफलं भावेशयोगोद्भवं
भावेशैरपि भावगैरपि फलं वाच्यं दशायामिह ॥२१॥

पिछले अध्यायों में राशियों और ग्रहों के जो गुण-धर्म—आवास-पदार्थादि—कहे गये हैं (अध्याय १-२), उनसे सम्बन्धित जो कर्म और आजीविका बतलाई गई है (अध्याय ५), उनके द्वारा उत्पन्न जिन रोगादि के विषय में बतलाया गया है (अध्याय १४), उनकी दृष्टि और योगों के जो फल कहे गये हैं (अध्याय १८) तथा ग्रहों के विभिन्न भावों में स्थिति अथवा भावेशों की विभिन्न भावों में स्थितिजन्य अथवा उनके योगजन्य जो फल कहे गये हैं (अध्याय १५-१७) उन सभी फलों का समावेश ग्रह की दशाफल में करना चाहिए ॥२१॥

वर्गोत्तमांशस्थ ग्रह की दशा

वर्गोत्तमांशस्थदशा शुभप्रदा मिश्रैव सा चास्तमिते च नीचगे।
मृत्युव्ययारीशदशापहारयोस्तत्र स्थितस्याप्यशुभं फलं भवेत् ॥२२॥

वर्गोत्तमांश में स्थित ग्रह की दशा अत्यन्त शुभद होती है। किन्तु यदि उक्त वर्गोत्तमांशस्थ ग्रह अपनी नीच राशि में अथवा सूर्य-सान्निध्य में अस्त हो तो उसकी दशा में शुभाशुभ (मिश्रित) फल होता है।

छठे, आठवें और बारहवें भावों में किसी एक भाव के स्वामी की महादशा में अन्य भावस्वामी की अन्तर्दशा हो अथवा इनमें से किसी एक भाव में स्थित ग्रह की महादशा में अन्य भाव में स्थित ग्रह की अन्तर्दशा हो तो अत्यन्त अनिष्ट फल होता है ॥२२॥

जिस राशि में ग्रह स्थित हो यदि उसी राशि के नवमांश में भी हो तो उसे वर्गोत्तमांश

में स्थित कहते हैं। बृहज्जातक के अनुसार—'वर्गोत्तमाश्चरगृहादिषु पूर्वमध्यपर्यन्तगाः शुभफला नवभागसंज्ञाः'। अर्थात् चर राशियों में प्रथम नवांश, स्थिर राशियों का पाँचवाँ नवांश और द्विस्वभाव राशि का अन्तिम नवांश वर्गोत्तम संज्ञक होता है।

पापग्रह की महादशा में कष्टप्रद अन्तर्दशाएँ

क्रूरग्रहस्यैव दशापहारे त्रिपञ्चसप्तर्क्षपतेर्विपाके।
तथैव जन्माष्टमनाथभुक्तौ चोरारिपीडां लभतेऽतिदुःखम् ॥२३॥

पापग्रह की महादशा में यदि जन्मनक्षत्र से तृतीय, पंचम और सप्तम नक्षत्रों के स्वामियों की अथवा जन्मराशि या उससे अष्टम राशि के स्वामी की अन्तर्दशा में जातक चोरभय और शत्रुभय से तथा अनेक आपदाओं से त्रस्त होता है ॥२३॥

उन्नीसवें अध्याय के श्लोक २ की व्याख्या में नक्षत्रों के स्वामी बतलाये गये हैं। रोहिणी जन्मनक्षत्र वाले व्यक्ति के लिए यदि सूर्य, मंगल और शनि की महादशा में जन्म नक्षत्र से तृतीय नक्षत्र आर्द्रा के स्वामी राहु, पंचम नक्षत्र पुष्य के स्वामी शनि तथा सप्तम नक्षत्र मघा के स्वामी केतु की अन्तर्दशाएँ कष्टप्रद होंगी। इसी प्रकार जन्मराशि वृष और उससे अष्टम राशि धनु के स्वामी शुक्र और बृहस्पति की अन्तर्दशाएँ भी कष्टप्रद होंगी।

अशुभ दशाएँ

शनेश्चतुर्थी च गुरोस्तु षष्ठी दशा कुजाह्योर्यदि पञ्चमी सा।
कष्टा भवेद्राश्यवसानभागस्थितस्य दुःस्थानपतेस्तथैव ॥२४॥

दशाक्रम में जन्मकालिक दशा चतुर्थ दशा यदि शनि की हो, पंचम दशा मंगल या राहु की हो अथवा छठी दशा बृहस्पति की हो तो ये दशाएँ कष्टप्रद होती हैं। इसके अतिरिक्त राशि के अन्तिम अंशों में स्थित या दुःस्थानस्थ ग्रह और उनके स्वामियों की दशा भी अनिष्टकारक होती है ॥२४॥

राज्यप्रद दशाएँ

ऊर्ध्वास्यतुङ्गभवनस्थितभूमिजस्य
कर्मायगस्य हि दशा विदधाति राज्यम्।
जित्वा रिपून्विपुलवाहनसैन्ययुक्तां
राज्यश्रियं वितनुतेऽधिकमन्नदानम् ॥२५॥

दशम या एकादश भाव में मंगल यदि ऊर्ध्वमुख राशि अथवा अपनी उच्चराशि में हो तो उसकी महादशा राज्यप्रद होती है। जातक शत्रु को पराभूत कर अनेक वाहन और विपुल सेना से युक्त, राज्यश्रीसम्पन्न, अन्नादि दान करने वाला विख्यात राजा होता है ॥२५॥

ऊर्ध्वमुख राशि के सम्बन्ध में अध्याय १ के आठवें श्लोक में बतलाया गया है।

स्वोच्चादि स्थित ग्रहफल

स्वोच्चस्थितो भृगुसुतो व्ययकर्मगो वा
लाभेऽपि वाऽस्तरहितो न च पापयुक्तः।

तस्याब्दपाकसमये बहुरत्नपूर्णो
धीमान्विशालविभवो जयति प्रशस्तः ॥२६॥

अपनी राशि अथवा अपनी उच्चराशिगत शुक्र यदि जन्मलग्न से दसवें, ग्यारहवें या बारहवें भाव में स्थित हो और सूर्य-सान्निध्य में अस्त या पापग्रह से युक्त न हो तो उसकी महादशा में जातक अनेक रत्नादि से युक्त, बुद्धिमान्, विपुल वैभवादि से सम्पन्न अनेक लोगों द्वारा प्रशंसित होता है ॥२६॥

नीचारिषष्ठव्ययसंश्रिता हि शुभाः प्रयच्छन्त्यशुभानि सर्वे।
शुभेतरास्त्वेषु गताः प्रयच्छन्त्यमोघदुःखानि दशासु तेषाम् ॥२७॥

अपनी नीच या शत्रुराशिस्थ अथवा छठे या बारहवें भाव में अवस्थित शुभग्रह की महादशा अनिष्टकर होती है। उक्त स्थितियों में अवस्थित शुभग्रह की महादशा भी विशेष रूप से अनिष्टकर होती है ॥२७॥

शुभाशुभ दशाफल

दशेशशत्रोररिगेहभाजो[१] लग्नेशशत्रोरपि वाऽथ भुक्तौ।
शत्रोर्भयं स्थानलयः तदास्य स्निग्धोऽपि शत्रुत्वमुपैति नूनम् ॥२८॥

किसी ग्रह की महादशा में, उस ग्रह (दशापति) के (१) शत्रुग्रह, (२) शत्रुस्थानगत (षष्ठभावगत) ग्रह अथवा (३) लग्नेश के शत्रुग्रह की अन्तर्दशा में जातक को शत्रुभय एवं स्थान या पदच्युति का भय होता है तथा उसके स्वजन भी शत्रुवत् आचरण करते हैं ॥२८॥

यद्भावगः पाकपतिर्दशेशात्तद्भावजातानि फलानि कुर्यात्।
विपक्षरिःफाष्टमभावगश्चेद्दुःखं विदध्यादितरत्र सौख्यम् ॥२९॥

अन्तर्दशा का स्वामी दशापति से जिस भाव में स्थित हो अपनी अन्तर्दशाकाल में वे उसी भाव के अनुरूप फल जातक को देते हैं। दशापति से छठे, आठवें और बारहवें भाव में स्थित ग्रह की अन्तर्दशा नेष्टफल देती है। अन्य भावों में (दशापति से) स्थित ग्रह की अन्तर्दशाएँ शुभद होती हैं ॥२९॥

फल-परिमाण

स्वोच्चत्रिकोणस्वहितारिनीचे पूर्णं त्रिपादार्द्धपदाल्पशून्यम्।
क्रमाच्छुभं चेदशुभं विलोमात् मूढे ग्रहे नीचसमं फलं स्यात् ॥३०॥

अपनी उच्चराशि में स्थित शुभग्रह पूर्ण फल देता है, मूलत्रिकोण राशि में स्थित $\frac{3}{4}$ शुभ फल, स्वगृह में आधा, मित्रगृह में $\frac{1}{4}$ फल, शत्रुराशिस्थ ग्रह अत्यल्प और नीच राशि में स्थित शुभग्रह शून्य फल अर्थात् निष्फल होता है। पापग्रह अपनी उच्चराशि में स्थित होकर शून्य पापफल अर्थात् निष्फल होता है। मूलत्रिकोण राशिगत पापग्रह अत्यल्प पाप-

१. 'अरिगेहभाजो' द्वयार्थक शब्द है। लग्न से षष्ठभाव को शत्रुगृह कहते हैं। दूसरा अर्थ शत्रुग्रह की राशि भी होता है।

फल, स्वराशिस्थ पापग्रह $\frac{१}{४}$ पापफल, मित्रराशिस्थ पापग्रह $\frac{१}{२}$ पापफल, शत्रुराशिगत पापग्रह $\frac{३}{४}$ फल और नीच राशिगत पापग्रह पूर्ण पापफल देता है ॥३०॥

फल-परिमाण

ग्रहस्थिति	शुभग्रहफल परिमाण	पापग्रहफल परिमाण
उच्चस्थ	पूर्ण	शून्य
मूलत्रिकोणस्थ	$\frac{३}{४}$	अत्यल्प
स्वराशि	$\frac{१}{२}$	$\frac{१}{४}$
मित्रराशि	$\frac{१}{४}$	$\frac{१}{२}$
शत्रुराशि	अत्यल्प	$\frac{३}{४}$
नीचराशि	शून्य	पूर्ण

अरिष्टकारक दशाएँ

मन्दमान्द्यगुखरेशरन्ध्रपास्तन्नवांशपतयोऽपि ये ग्रहाः ।
तेषु दुर्बलदशा मृतिप्रदा कष्टभे चरति सूर्यनन्दने ॥३१॥

शनि, मान्दि, राहु, खरद्रेष्काणपति (२२वें द्रेष्काण के स्वामी) और अष्टम भाव के स्वामी—इनके नवमांशों के स्वामी जो ग्रह हों उनमें से सर्वाधिक निर्बल ग्रह की महादशा के अन्तर्गत गोचरवश शनि द्वारा छठे, आठवें या १२वें भावस्थ राशि के संक्रमण काल जातक के लिए मृत्युप्रद होते हैं ॥३१॥

मृतीशनाथस्थितभांशकेशयोः खरत्रिभागेश्वरयोर्बलीयसः ।
दशागमे मृत्युपयुक्तभांशकत्रिकोणगे देवगुरौ तनुक्षयः ॥३२॥

(१) अष्टम भाव के स्वामी स्थित राशि के स्वामी, (२) अष्टम भाव के स्वामी के नवांशराशि के स्वामी, (३) लग्नस्थ द्रेष्काण के स्वामी और २२वें द्रेष्काण के स्वामी—इन चार ग्रहों में सर्वाधिक बलवान् ग्रह की महादशा में अष्टमेश स्थित राशि अथवा उसकी नवांश राशि अथवा इन दोनों राशियों से पञ्चम और नवम राशियों में गोचरवश बृहस्पति का संक्रमण काल जातक के लिए मृत्युकारक होते हैं ॥३२॥

अथ जन्माङ्गम्

मूलभे २ चरणे जन्म । केतु भोग्य दशा वर्षादि ३।९।३।४।५७

उदाहरणार्थ संलग्न जन्माङ्ग देखें। सं. २००७ शाके १८७२ वैशाख कृष्ण ६ तिथौ घट्यादि १६।५९ मूलर्क्षे घट्यादि ४५।० वरीयानयोगे घट्यादि १०।३० परं परिघ-

योगे तात्कालिके वणिजकरणे श्रीसूर्योदयादिष्टं १४।२१ एतत्समये मिथुनलग्ने यस्य कस्य-चिज्जन्म ।

स्पष्टग्रहाः—

सू. ११।२४।४५।३५-५८।५७
चं. ८।६।१०।२७-८४०।५२
मं. ४।२४।४०।५५-१२।१३ व.
बु. ०।६।२७।१४-९७।४०
बृ. १०।६।३४।५-१२।३९
शु. १०।७।५०।८-५५।११
श. ४।२३।५०।१०-३।४३
रा. ११।१३।४८।५-३।११
लग्नम् २।२५।३।५

(१) अष्टमेश शनि सिंह राशि में स्थित है जिसका स्वामी **सूर्य** है ।
(२) अष्टमेश शनि वृश्चिक राशि के नवांशस्थ है जिसका स्वामी **मङ्गल** है ।
(३) २२वें द्रेष्काण मकर का स्वामी भी **शनि** ही है ।
(४) लग्न में कुम्भराशि का द्रेष्काण है जिसका स्वामी भी **शनि** है ।

इस प्रकार इन चार ग्रहों में सूर्य अपेक्षाकृत बलवान् है । उक्त योग के अनुसार सम्बन्धित जातक के लिए सूर्य की महादशा मारक होगी । इस महादशा में अष्टमेश शनि द्वारा अधिष्ठित राशि सिंह में, उससे त्रिकोण राशि धनु या मेष राशि में अथवा अष्टमेश शनि की नवांश राशि वृश्चिक और उससे त्रिकोणस्थ राशियों—मीन और कर्क—में गोचरवश बृहस्पति के संक्रमित होने पर जातक की मृत्यु होगी ।

शुभदशाफल-परिपाक काल

चतुष्टयस्था गुरुजन्मलग्नपा भवन्ति मध्ये वयसः सुखप्रदाः ।
क्रमेण पृष्ठोभयमस्तकोदयस्थितोऽन्त्यमध्यप्रथमेषु पाकदः ॥३३॥

जन्मराशि और लग्न के स्वामी तथा बृहस्पति ये तीनों केन्द्रभावों में अवस्थित हों तो जातक की आयु का मध्य भाग सुखद होता है ।

पृष्ठोदय (मेष, कर्क, वृश्चिक, धनु और मकर) राशियों में स्थित ग्रह अपनी दशा के अन्तिम भाग में, उभयोदय (मिथुन और मीन) राशियों में स्थित ग्रह दशा के मध्य में तथा शीर्षोदय (वृष, सिंह, कन्या, तुला और कुम्भ) राशियों में स्थित ग्रह दशा के आरम्भ में ही शुभ फल देते हैं ॥३३॥

अन्य जातक ग्रन्थों (जातकपारिजातादि) में मिथुन राशि को शीर्षोदय कहा गया है । यदि शुभग्रह शीर्षोदयादि राशियों में स्थित हो तो दशा के आरम्भ, मध्य और अन्तिम

भाग में विशेष शुभ फल देते हैं। यदि पापग्रह हों तो शुभ फल अल्प और नेष्ट फल अधिक देते हैं।

यद्भावगो गोचरतो विलग्नाद्दशेश्वरः स्वोच्चसुहृद्गृहस्थः।
तद्भावपुष्टिं कुरुते तदानीं बलान्वितश्चेज्जननेऽपि तस्य ॥३४॥

दशापति जन्म के समय यदि बलसम्पन्न हो तो अपनी दशावधि में लग्न से उन-उन भावों के फल की वृद्धि करता है जिनमें उसकी स्वराशि, उच्चराशि या मित्रराशि स्थित होती है और गोचरवश उन भावों का वह संक्रमण करता है ॥३४॥

श्लोक ३२ के उदाहरण में मित्रराशि का होकर सूर्य केन्द्रस्थ होने से बली है। अतः यह अपनी दशा के ६ वर्ष की अवधि में; सिंह (स्वगृह), मेष (उच्चराशि), वृश्चिक, धनु, मीन और कर्क (मित्रराशि) राशियों के संक्रमण काल में उन भावों के फल की वृद्धि करेगा; जिन भावों में ये राशियाँ स्थित हैं। इस प्रकार गोचरवश सिंह के संक्रमण काल में तृतीय भाव के, वृश्चिक राशि के संक्रमण काल में षष्ठ भाव के, धनु राशि के संक्रमण काल में सप्तम भाव के, मीन राशि के संक्रमण काल में दशम भाव के, मेष राशि के संक्रमण काल में एकादश भाव के और कर्क राशि के संक्रमण काल में धनभाव के फल की वृद्धि करेगा।

बलोनितो जन्मनि पाकनाथो मौढ्यं स्वनीचं रिपुमन्दिरं वा।
प्राप्तश्च यद्भावमुपैति चारात्तद्भावनाशं कुरुते तदानीम् ॥३५॥

जन्माङ्ग में दशापति यदि निर्बल हो, अस्त हो, अपनी नीचराशि में स्थित हो या शत्रुराशिगत हो तो गोचर से दशापति जिन-जिन भावों में जायेगा उन-उन भावों के फल का विनाश करेगा ॥३५॥

दशेशस्य तुङ्गे सुहृद्भे दशेशात् त्रिषट्कर्मलाभत्रिकोणास्तभेषु।
यदा चारगत्या समायाति चन्द्रः शुभं संविधत्तेऽन्यथा चेदरिष्टम् ॥३६॥

दशापति की उच्चराशि, उसकी मित्रराशि तथा दशापति से तृतीय, षष्ठ, दशम, एकादश, पञ्चम, नवम और सप्तम भावों में गोचरवश चन्द्रमा के जाने पर उन भावों के शुभ फल प्रदान करता है। इनसे भिन्न भावों में स्थित गोचर का चन्द्रमा अरिष्टकारक होता है ॥३६॥

पाकप्रभुर्गोचरतः स्वनीचं मौढ्यं यदायाति विपक्षभं वा।
कष्टं विदध्यात्स्वगृहं स्वतुङ्गं वक्रं गतः सौख्यफलं तदानीम् ॥३७॥

गोचरवश यदि दशापति सूर्य-सान्निध्य में अस्त हो, अपनी नीचराशि या शत्रुराशि में गया हो तो कष्टप्रद होता है। दशापति यदि स्वराशि या स्वोच्चराशि में गोचरवश जाय तो शुभ फल करता है ॥३७॥

पाकेशस्य शुभप्रदस्य भवनं तुङ्गं प्रपन्ने यदा
सूर्ये तत्फलसिद्धिमेति गुरुणाऽप्येवं फलं चिन्तयेत्।

नीचं कष्टफलप्रदस्य च दशानाथस्य वैरिस्थलं
प्राप्ते भास्वति गोचरेण लभते तस्यैव कष्टं फलम् ॥३८॥

शुभप्रद दशापति की महादशा में गोचरवश सूर्य जब दशापति की उच्चराशि में जाये तब शुभ फल की वृद्धि होती है। बृहस्पति भी जब गोचरवश दशापति की उच्चराशि में जाये तब भी वैसा ही शुभ फल देता है। पाप फल देने वाले दशापति की महादशा में जब गोचरवश सूर्य दशापति की शत्रु या नीचराशि में संक्रमित हो तो अनिष्ट फल देता है ॥३८॥

येन ग्रहेण सहितो भुजगाधिनाथ-
स्तत्खेटजातगुणदोषफलानि कुर्यात्।
सर्पान्वितः स तु खगः शुभदोऽपि कष्टं
दुःखं दशान्त्यसमये कुरुते विशेषात् ॥३९॥

राहु जिस ग्रह के साथ युत हो उसके गुण-दोष के अनुसार ही राहु (अपनी दशा में) फल देता है। राहु के साथ यदि शुभग्रह संयुक्त हो तब भी वह अपनी दशा के अन्तिम भाग में विशेष कष्टप्रद होता है ॥३९॥

मृत्युप्रद महादशा

द्वावर्थकामाविह मारकाख्यौ तदीश्वरस्तत्र गतो बलाढ्यः।
हन्ति स्वपाके निधनेश्वरो वा व्ययेश्वरो वाऽप्यतिदुर्बलश्चेत् ॥४०॥

द्वितीय और सप्तम भाव को मारकस्थान कहते हैं। इनके स्वामी तथा इन भावों में स्थित ग्रह यदि बलवान् हों तो अपनी दशा में जातक के लिए मृत्युकारक होते हैं। अष्टमेश और द्वादशेश यदि अत्यन्त दुर्बल हों तो अपनी दशा में वे भी मृत्युकारक होते हैं ॥४०॥

ध्यान देने की बात यह है कि द्वितीयेश और द्वितीय भाव में स्थित ग्रह तथा सप्तमेश और सप्तमस्थ ग्रह बलवान् होने पर मारक होते हैं। जबकि अष्टमेश और द्वादशेश निर्बल होने पर मारक होते हैं।

केन्द्रेशस्य सतोऽसतोऽशुभशुभौ कुर्याद्दशा कोणपाः
सर्वे शोभनदास्त्रिवैरिभवपा यद्यप्यनर्थप्रदाः।
रन्ध्रेशोऽपि विलग्नपो यदि शुभं कुर्याद्रविर्वा शशी
यद्येवं शुभदः पराशरमतं तत्तद्दशायां फलम् ॥४१॥

केन्द्रेश यदि शुभग्रह हो तो अपनी दशा में अशुभ फल देता है तथा यदि केन्द्र का स्वामी पापग्रह हो तो वह अपनी दशा में शुभ फल प्रदान करता है।

त्रिकोणपति (लग्न, पञ्चम और नवम भाव के स्वामी) की दशा सदैव शुभद होती है। त्रिषडाय (तृतीय, षष्ठ और एकादश भाव) के स्वामी यदि शुभग्रह भी हों तब भी अपनी दशा में अनर्थ ही करते हैं।

अष्टमेश यदि लग्नेश भी हो तो उसकी दशा शुभ फल देती है। पराशर के मतानुसार सूर्य और चन्द्रमा यदि अष्टमेश हों तो अपनी दशा में शुभद होते हैं ॥४१॥

कोणाधीशः केन्द्रगः केन्द्रपो वा कोणस्थश्चेद् द्वौ च योगप्रदौ स्तः ।
द्वावप्येतौ भुक्तिकाले दशायामन्योन्यं तौ योगदौ सोपकारौ ॥४२॥

त्रिकोणपति यदि केन्द्रस्थ हों अथवा केन्द्राधिपति त्रिकोणगत हो तो वे योगकारक होते हैं। वे परस्पर एक-दूसरे की दशान्तर्दशा में (केन्द्रेश की महादशा में त्रिकोणेश की और त्रिकोणेश की महादशा में केन्द्रेश की अन्तर्दशा में) जातक के वैभवादि की अभिवृद्धि में परस्पर एक-दूसरे के सहयोगी होते हैं ॥४२॥

आगे श्लोक ४३ से ५४ तक लघुपाराशरी से किञ्चित् अन्तर के साथ उद्धृत हैं।

न दिशेयुर्ग्रहाः सर्वे स्वदशासु स्वभुक्तिषु ।
शुभाशुभफलं नृणामात्मभावानुरूपतः ॥४३॥

सभी ग्रह अपनी दशा में अपनी ही अन्तर्दशा में अपने भाव (जिसके वे स्वामी होते हैं) के अनुरूप फल नहीं देते ॥४३॥

आत्मसम्बन्धिनो ये च ये ये निजसधर्मिणः ।
तेषामन्तर्दशास्वेव दिशन्ति स्वदशाफलम् ॥४४॥

दशापति से सम्बन्ध करने वाले ग्रह तथा उसके समान गुण-धर्म वाले ग्रह की अन्तर्दशा में अपने भावानुरूप फल जातक को देते हैं ॥४४॥

इस ग्रन्थ के अध्याय १५ के ३०वें श्लोक में व्यत्ययादि सम्बन्धों के विषय में बतलाया गया है।

केन्द्रत्रिकोणनेतारौ दोषयुक्तावपि स्वयम् ।
सम्बन्धमात्राद्बलिनौ भवेतां योगकारकौ ॥४५॥

त्रिकोण और केन्द्र के स्वामी के स्वयं दोषयुक्त होने पर भी यदि उनमें सम्बन्ध हो जाय तो वे बलवान् योगकारक हो जाते हैं ॥४५॥

त्रिकोणाधिपयोर्मध्ये सम्बन्धो येन केनचित् ।
केन्द्रनाथस्य बलिनो भवेद्यदि स योगकृत् ॥४६॥

त्रिकोणपतियों (पञ्चमेश और नवमेश) में कोई एक ग्रह यदि बलवान् केन्द्राधिपति से सम्बन्ध करता हो तो वह योगकारक होता है ॥४६॥

केन्द्रत्रिकोणाधिपयोरैक्ये तौ योगकारकौ ।
अन्यत्रिकोणपतिना सम्बन्धो यदि किं पुनः ॥४७॥

केन्द्र और त्रिकोण के स्वामी यदि संयुक्त हों तो वे योगकारक होते हैं। अन्य त्रिकोण के स्वामी से भी यदि उनका सम्बन्ध हो जाय तो फिर क्या कहना ? ॥४७॥

योगकारकसम्बन्धात्पापिनोऽपि ग्रहाः स्वतः ।
तत्तद्भुक्त्यानुसारेण दिशेयुर्यौगिकं फलम् ॥४८॥

यदि कोई पापग्रह योगकारक ग्रह से सम्बन्ध करता हो तो अपनी अन्तर्दशा में वह भी योगानुरूप शुभ फल ही देता है ॥४८॥

स्वदशायां त्रिकोणेशो भुक्तौ केन्द्रपतेः शुभम् ।
दिशेत्सोऽपि तथा नो चेदसम्बन्धेऽपि पापकृत् ॥४९॥

त्रिकोण के स्वामी अपनी दशा में केन्द्र के स्वामी की अन्तर्दशा आने पर शुभ फल देता है । इसी प्रकार केन्द्रेश की दशा में त्रिकोणपति की अन्तर्दशा भी सुखद फल देती है । उनमें यदि सम्बन्ध न भी हो तो वे पाप फल नहीं देते ॥४९॥

केन्द्राधिपत्यदोषस्तु बलवान् गुरुशुक्रयोः ।
मारकत्वेऽपि च तयोर्मारकस्थानसंस्थितिः ॥५०॥

केन्द्र के स्वामित्व का दोष बृहस्पति और शुक्र में सर्वाधिक होता है । मारकस्थान का स्वामी होकर अथवा मारकस्थान में स्थित होकर केन्द्रेश प्रबल मारक होता है ॥५०॥

जैसा कि लघुपाराशरी में पूर्व में कहा गया है—

'न दिशन्ति शुभं नृणां सौम्या केन्द्राधिपा यदि ।
क्रूराश्चेद् शुभं ह्येते प्रयत्नाश्चोत्तरोत्तरम्' ॥

बृहस्पति और शुक्र दोनों ही शुभग्रह हैं । पाराशरी के उक्त वचनानुसार ये दोनों बृहस्पति और शुक्र यदि केन्द्र के स्वामी हों तो नेष्ट फल देंगे । यदि ये मारक हों (मारक स्थान के स्वामी हों) और मारकस्थान में स्थित हों तो इनकी मारक-क्षमता भी प्रबलतम होती है ।

बुधस्तदनु चन्द्रोऽपि भवेत्तदनु तद्विधः ।
पापाश्चेत्केन्द्रपतयः शुभदाश्चोत्तरोत्तरम् ॥५१॥

बुध का केन्द्रेशत्व दोष बृहस्पति और शुक्र की अपेक्षा दुर्बल होता है । उससे भी अल्प-दोष चन्द्रमा का होता है । यदि पापग्रह केन्द्राधिपति हों तो वे उत्तरोत्तर अधिक शुभ फल देते हैं ॥५२॥

बुध पापाक्रान्त होने से पाप फल और शुभाक्रान्त होने से शुभ फल देता है । अर्थात् बुध यदि केन्द्रेश होकर शुभग्रह से युत-दृष्ट हो तो उसका अनिष्ट फल अधिक नहीं होता । यदि वह केन्द्राधिपति होकर पापग्रहों से युत-दृष्ट हो तो उसमें पापत्व अधिक होने से नेष्ट फल ही देता है ।

क्षीण चन्द्रमा को पाप और पूर्ण चन्द्रमा को शुभ ग्रह कहा गया है । अतः यदि क्षीण चन्द्रमा केन्द्र का स्वामी हो तो वह शुभद और पूर्ण चन्द्रमा यदि केन्द्रेश हो तो साधारण अनिष्टकारक होता है ।

पापग्रह (सूर्य, मङ्गल और शनि) यदि केन्द्र के स्वामी हों तो वे शुभ फल देते हैं। इनके प्रभाव में भावानुसार उत्तरोत्तर अधिक प्रबलता होती है। प्रथम केन्द्र (लग्न) के स्वामी की अपेक्षा चतुर्थ भाव का स्वामी अधिक शुभद होता है। चतुर्थेश की अपेक्षा सप्तमेश, सप्तमेश की अपेक्षा दशमेश अधिक शुभ फल देते हैं। उत्तरोत्तर प्रबलता का यही अर्थ है। लघुपाराशरी में कहा भी है—

'न दिशन्ति शुभं नृणां सौम्या केन्द्राधिपा यदि। क्रूराश्चेत् शुभं ह्येते प्रबलाश्चोत्तरोत्तरम्' ॥

५१वें श्लोक का पूर्वार्द्ध लघुपाराशरी से उद्धृत है—

'बुधस्तदनु चन्द्रोऽपि भवेत्तदनु तद्विधः। न रन्ध्रेशत्वदोषस्तु सूर्याचन्द्रमसोर्भवेत्' ॥

(लघुपाराशरी)

यदि केन्द्रे त्रिकोणे वा निवसेतां तमोग्रहौ।
नाथेनान्यतरस्यैव सम्बन्धाद्योगकारकौ ॥५२॥

केन्द्र या त्रिकोण (४।५।७।९।१०।१ भावों में से किसी) भाव में यदि राहु या केतु स्थित होकर अन्य किसी केन्द्रेश या त्रिकोणेश के साथ सम्बन्ध करता हो तो उस सम्बन्धित ग्रह की दशा और अपनी अन्तर्दशा में राजयोग के समान शुभ फल देता है ॥५२॥

कर्क राशि का लग्न हो और दशम भाव में मङ्गल के साथ राहु स्थित हो तो यह प्रबल राजयोग बनाता है। इसी जन्माङ्ग में यदि राहु नवम भाव में शुक्र के साथ स्थित हो तो शुक्र की महादशा में राहु की अन्तर्दशा में राजयोग के समान ही फलद होता है।

राहुकृत राजयोग

इस श्लोक के तृतीय चरण में 'नाथेनान्यतरस्यैव' के स्थान पर कहीं-कहीं 'नाथेनान्यतरेणापि' पाठान्तर मिलता है।

तमोग्रहौ शुभारूढौऽसम्बद्धौ येन केनचित्।
अन्तर्दशानुरूपेण भवेतां योगकारकौ ॥५३॥

तमोग्रह—राहु और केतु यदि शुभग्रह की राशि में अथवा केन्द्र या त्रिकोण में स्थित होकर जिस किसी के साथ सम्बन्ध करते हों तो उनकी महादशा में अपनी अन्तर्दशा प्राप्त कर शुभ फल देते हैं ॥५३॥

इस श्लोक में भी पाठान्तर मिलता है जिससे श्लोक का भाव पूर्णतया बदल जाता

है। पाठभेद में इस श्लोक की प्रथम पंक्ति 'तमोग्रहौ शुभारूढावसम्बन्धेन केनचित्' पठित है। उस स्थिति में इसका अर्थ इस प्रकार होगा—

यदि राहु और केतु केन्द्र अथवा त्रिकोण भावों में स्थित हों और अन्य किसी ग्रह से सम्बन्ध न करते हों तो अपनी दशा में योगकारक ग्रह की अन्तर्दशा के अनुरूप फल देते हैं। अर्थात् यदि जन्माङ्ग में राजयोग है तो उक्त राहु या केतु की महादशा में योगकारक ग्रहों की अन्तर्दशा में राजयोग का फल जातक को प्राप्त होगा।

उक्त श्लोक का यही स्वरूप युक्तिसंगत प्रतीत होता है। क्योंकि यदि प्रथम स्वरूप 'सम्बद्धौ येन केनचित्' को ग्रहण करें तो उसके अनुसार केन्द्र-त्रिकोणगत राहु या केतु जिस किसी शुभ अथवा पाप ग्रह से सम्बन्ध करता हो तो सम्बन्धित ग्रह की अन्तर्दशा में राजयोग का फल देगा। किन्तु ऐसा सम्भव नहीं है, क्योंकि लघुपाराशरी में ही राहु-केतु के विषय में कहा गया है—

'यद्भावगतो वाऽपि यद्भावेशसंयुतौ। तत्तत्फलानि प्रबलौ प्रदिशेतां तमोग्रहौ' ॥

राहु और केतु जिस भाव में बैठे हों तथा जिस भावेश के साथ युत हों उसके अनुसार ही फल देते हैं।

यदि राहु या केतु शुभग्रह के साथ शुभ स्थान में स्थित हों तो अपनी दशान्तर्दशा में शुभ फल देगा। यदि अशुभ स्थान में शुभग्रह के साथ बैठा हो तो मिश्रफल (शुभ-पाप दोनों) देगा। यदि अशुभ स्थान में पापग्रह के साथ स्थित हो तो अत्यन्त नेष्टफल देगा। इस वचन के परिप्रेक्ष्य में उक्त श्लोक को यदि देखें तो 'सम्बद्धौ येन केनचित्' पाठ असङ्गत लगता है। क्योंकि शुभ स्थान में यदि पापग्रह से सम्बन्ध करता हो तो राजयोग का फल कैसे करेगा ? शुभग्रह से यदि सम्बन्ध करता हो तभी राजयोग का फल सम्भव हो सकता है।

आरम्भो राजयोगस्य भवेत्कारकभुक्तिषु।
प्रथयन्ति तमारभ्य क्रमशः पापभुक्तयः ॥५४॥

योगकारक ग्रह की महादशा और किसी कारक ग्रह की अन्तर्दशा में यदि राजयोग का प्रारम्भ होता हो तो आगे आने वाली पापग्रहों की अन्तर्दशाएँ भी क्रमशः राजयोग की वृद्धि ही करती हैं ॥५४॥

इस श्लोक से मिलता-जुलता एक श्लोक लघुपाराशरी में भी मिलता है। दोनों के स्वरूप में लगभग समानता है तथा भाव भी लगभग समान ही हैं।

'आरम्भो राजयोगस्य भवेन्मारकभुक्तिषु। प्रथयन्ति तारतम्यं क्रमशः पापभुक्तयः' ॥
(लघुपाराशरी)

लघुपाराशरी के इस श्लोक के द्वितीय और तृतीय चरणों में क्रमशः 'कारक' के स्थान पर 'मारक' और 'तमारभ्य' के स्थान पर 'तारतम्यं' का प्रयोग हुआ है। लघुपाराशरी के मत से राजयोगकारक ग्रह की महादशा और योगकारक ग्रह से सम्बन्धित मारकेश की अन्तर्दशा में यदि राजयोग का प्रारम्भ हो तो उसके बाद आने वाली पापग्रहों की अन्तर्दशाएँ क्रमशः

राजयोग के सुख को विस्तार देती हैं। लघुपाराशरी के कतिपय विद्वान् टीकाकारों के अनुसार मारक ग्रह की अन्तर्दशा में प्रारम्भ होने वाला राजयोग जातक को मात्र राजपद पर प्रतिष्ठित कर देता है। राजयोग के ऐश्वर्यादि सुखभोग से आगे की अशुभ अन्तर्दशाएँ जातक को वंचित करती हैं। यही अर्थ समीचीन है, क्योंकि योगकारक ग्रह की दशा और अशुभ मारक ग्रह की अन्तर्दशा में एक तो राजयोग प्रारम्भ की सम्भावना ही नहीं होती। किन्तु यदि योगकारक ग्रहों से सम्बन्धों की प्रगाढ़ता के कारण यदि राजपद की प्राप्ति हो भी जाय तो विवादादि के कारण राजसुख की प्राप्ति सन्दिग्ध ही होगी। राजा के रूप में जातक की प्रसिद्धि ही सम्भव है।

पापफलद दशाएँ

रन्ध्रस्थरन्ध्रेक्षकरन्ध्रनाथरन्ध्रत्रिभागाधिपमान्दिभेशाः ।
दुःखप्रदास्तेष्वपि दुर्बलो यः स नाशकारी स्वदशापहारे ॥५५॥

(१) अष्टम भाव में स्थित ग्रह, (२) अष्टम भाव के द्रष्टाग्रह, (३) अष्टम भाव के स्वामी, (४) अष्टम भाव के द्रेष्काणपति तथा (५) मान्दि स्थित राशि के स्वामी—ये सभी अपनी दशान्तर्दशा में कष्टप्रद होते हैं। इनमें जो अति निर्बल होता है उसकी दशा मृत्यु-दायक होती है ॥५५॥

आरोह्यवरोह्यादि दशा

भ्रष्टस्य तुङ्गादवरोहिसंज्ञा मध्या भवेत्सा सुहृदुच्चभागे ।
आरोहिणी निम्नपरिच्युतस्य नीचारिभांशेष्वधमा भवेत्सा ॥५६॥

जो ग्रह अपनी उच्चराशि का त्याग कर आगे बढ़ गये हों उनकी दशा को अवरोहिणी दशा कहते हैं। ग्रह यदि अपनी मित्रराशि या अपनी उच्चराशि के नवांश में हो तो उसकी अवरोही दशा मध्यमा कहलाती है। अपने नीच स्थान का परित्याग कर अपने उच्च स्थान की ओर अग्रसर ग्रह की दशा आरोहिणी कहलाती है। वह अपनी नीचराशि अथवा शत्रुराशि के नवांश में स्थित हो तो उसकी दशा अधमा कहलाती है ॥५६॥

महर्षि गार्गी कहते हैं—

'उच्चनीचान्तरस्थस्य दशा स्यादवरोहिणी। तस्यामल्पमवाप्नोति फलं क्लेशाच्छुभं नरः ॥
मित्रोच्चांशकस्थस्य मध्या मध्यफला हि सा। नीचोच्चमध्यगस्योक्ता श्रेष्ठा चारोहिणी दशा ॥
सैवाधमाख्या भवति नीचराश्यंशगस्य तु'।

यह श्लोक वराहमिहिर के बृहज्जातक नामक ग्रन्थ से उद्धृत है। इसका पूर्ववर्ती श्लोक भी इस सम्बन्ध में पठनीय है जो निम्नोद्धृत है—

'सम्यग्बलिनः स्वतुङ्गभागे सम्पूर्णा बलवर्जितस्य रिक्ता।
नीचांशगतस्य शत्रुभागे ज्ञेयाऽनिष्टफला दशा प्रसूतौ' ॥ (बृहज्जातक)

अर्थात् सभी बलों से युक्त अपनी परम उच्चराशि में स्थित ग्रह की दशा को सम्पूर्णा दशा कहते हैं। यह अत्यन्त शुभद दशा होती है तथा समस्त बल से हीन अपनी नीचराशि के या शत्रु के नवांश में स्थित ग्रह की दशा को रिक्ता दशा कहते हैं। यह दशा अत्यन्त नेष्ट फलप्रद होती है।

महर्षि गार्गी इसी तथ्य को और अधिक विस्तार देते हुए कहते हैं—

'सर्वैर्बलैरुपेतस्य परमोच्चगतस्य च। सम्पूर्णाख्या दशा ज्ञेया धनारोग्यविवर्धिनी ॥
स्वोच्चराशिगतस्याऽथ किञ्चिद्बलयुतस्य च। पूर्णा नाम दशा ज्ञेया धनवृद्धिकरी शुभा ॥
सर्वैर्बलैर्विहीनस्य नीचारिगतस्य च। रिक्ता नाम दशा ज्ञेया धनारोग्यविनाशिनी ॥
यः स्यात् परमनीचस्थस्तथा चारिनवांशके। तस्यानिष्टफला नाम व्याध्यनर्थविवर्धिनी' ॥
(महर्षि गार्गी)

आगे वराहमिहिर कहते हैं—

'नीचारिभांशे समवस्थितस्य शस्ते गृहे मिश्रफला प्रदिष्टा।
संज्ञानुरूपाणि फलान्यथैषां दशासु वक्ष्यामि यथोपयोगम्' ॥ (वराहमिहिर)

मिश्रफलद दशा

शस्तगृहे शस्तांशे नीचे रिपुभेऽस्तसंस्थिते वाऽपि।
तस्य दशा मिश्रफला दशापरार्धे फलप्रदा ज्ञेया ॥५७॥

सूर्य-सान्निध्य में अस्त अथवा शत्रुराशि स्थित ग्रह यदि शुभ स्थान में और शुभग्रह के नवांश में स्थित हो तो उसकी दशा मिश्रित फल अर्थात् शुभाशुभ दोनों प्रकार के फल देने वाली होती है। दशा के प्रारम्भ में अशुभ और उत्तरार्ध में शुभ फल देती है ॥५७॥

सम्बन्धियों के लिए मृत्युप्रद दशा

तत्तद्भावात् व्ययस्थस्य तद्भावव्ययपस्य च।
वीर्यहीनस्य खेटस्य पाके मृत्युमवाप्नुयात् ॥५८॥

जिन भावों से जिन-जिन सम्बन्धियों के सम्बन्ध में विचार का आदेश किया गया है उन भावों से द्वादश भाव में स्थित ग्रह अथवा द्वादश भाव के स्वामी (जो निर्बल हो) की दशा में उस सम्बन्धी की मृत्यु होती है ॥५८॥

किस भाव से किस सम्बन्धी का विचार किया जाता है यह इसमें में कहा गया है।

गोचरवश दशापति जिन भावों में संक्रमित होता है उसके अनुसार दशाफल में होने वाले परिष्कार को कहते हैं।

लग्न, तृतीय, षष्ठ, दशम और एकादश भावों में संक्रमण फल

दशापतिर्लग्नगतो यदि स्यात् त्रिषट्दशैकादशगश्च लग्नात्।
तत्सप्तवर्गेऽप्यथ तत्सुहृद्वा लग्ने शुभो वा शुभदा दशा स्यात् ॥५९॥

दशापति गोचरवशात् लग्न से तृतीय, षष्ठ, दशम, एकादश भावों में लग्नराशि में, लग्न के सप्तवर्गस्थ राशियों के (लग्न जिन राशियों के होरा, द्रेष्काण, सप्तमांश, नवमांश, द्वादशांश, त्रिंशांश और लग्नस्थ राशियों में) संक्रमण काल में तथा गोचरवश दशापति का मित्र लग्न को संक्रमित करे तो उन कालों शुभ फल होता है ॥५९॥

इसी अध्याय के श्लोक ३२ के उदाहरण में लग्नराश्यादि २।२५।३।५ है। इसका सप्तवर्ग अर्थात् गृह—मिथुन, होरा—कर्क, द्रेष्काण—कुम्भ, सप्तमांश—वृश्चिक, नवमांश—वृष, द्वादशांश—मेष और त्रिंशांश—तुला है।

इस जातक की सूर्य की महादशा में गोचरवश सूर्य जब कर्क, कुम्भ, वृश्चिक, वृष, मेष, तुला और मिथुन होगा तब शुभफल करेगा।

श्लोक के तृतीय चरण में प्रयुक्त 'तत्सप्तवर्गे' का यही अर्थ है न कि सप्तम भाव, जैसा कि किसी टीकाकार ने अर्थ किया है।

यावन्ति वर्षाणि दशा च सा स्यात् चारक्रमात्तत्र दशापतिः सः।
यत्र स्थितस्तद्भवनाद्विधोस्तु स्थितेः प्रकल्प्यं सदसत्फलं हि ॥६०॥

दशावधि में दशापति गोचरवश चन्द्रराशि से जिस भाव में स्थित हो उसके अनुसार दशा के शुभाशुभ फल की कल्पना करनी चाहिए। चन्द्रराशि से यदि दशापति नेष्ट स्थान में हो तो नेष्ट फल और शुभ स्थान में स्थित हो तो शुभफल जातक को प्राप्त होता है ॥६०॥

दशाधिनाथस्य सुहृद्गृहस्थस्तदुच्चगो वाऽथ दशाधिनाथात्।
स्मरत्रिकोणोपचयोपगश्च ददाति चन्द्रः खलु सत्फलानि ॥६१॥

गोचर का चन्द्रमा यदि दशापति के मित्र की राशि में स्थित हो अथवा उसकी उच्च-राशि में, उससे पंचम, सप्तम और नवम राशि में अथवा उससे उपचय (३।६।१०।११वीं) राशि में स्थित हो तो शुभफल देता है ॥६१॥

उक्तेषु राशिषु गतस्य विधोः स राशिः
स्याज्जन्मकालभवमूर्तिधनादिभावः ।
तत्तद्विवृद्धिकृदसौ कथितो नराणां
तद्भावहानिकृदथेतरराशिसंस्थः ॥६२॥

पूर्व श्लोक में कथित राशियों में गोचर से चन्द्रमा के आने पर वे राशियाँ जन्माङ्ग के जिन भावों में स्थित हों उनके फल की वृद्धि होती है। उक्त राशियों से इतर राशियों में गोचरवशात् चन्द्रमा के आने पर जन्माङ्ग के जिन भावों में ये राशियाँ स्थित हों उन भावों के फल की हानि करता है ॥६३॥

सारावलीमुडुदशां च वराहहोरा-
मालोक्य जातकफलं प्रवदेन्नराणाम्।
प्रश्नोदयग्रहवशादथ वा स्वजन्म-
राश्यादिना वदतु नास्त्यनयोर्विशेषः ॥६३॥

इति श्रीमन्त्रेश्वरविरचितायां फलदीपिकायां दशापहारफलं नाम विंशोऽध्यायः ॥२०॥
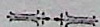
सारावली, होराशास्त्र (रचयिता क्रमश: कल्याणवर्मा और वराहमिहिर) तथा नक्षत्र दशा में कथित फलों के आधार पर जन्मलग्न और ग्रहस्थिति वश मनुष्यों को प्राप्त होने वाले फलों का निर्देश करना चाहिए। इस प्रकार फल-कथन में प्रश्नकालिक लग्न, जन्मलग्न या जन्मराशि से ग्रहस्थितियों के प्रभाव को भी ध्यान में अवश्य रखना चाहिए। फल-कथन में जन्मलग्न और जन्मराशि से विचार करने में कोई अन्तर नहीं होता ॥६३॥

इस प्रकार मन्त्रेश्वरकृत फलदीपिका में दशापहारफल
नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥२०॥

○

एकविंशोऽध्यायः

प्रत्यन्तर्दशाफलम्

भुक्त्यन्तरान्तरलक्षण

अपहारविभागलक्षणं तत्पंक्तिं क्रमशः स्फुटं प्रवच्मि ।
यदुदीरितमत्र तत्समस्तं कथयेत्स्वदशान्तरान्तरादौ ॥१॥

अब मै महादशा में ग्रहों की अन्तर्दशा और प्रत्यन्तर्दशाओं का स्पष्ट वर्णन करूँगा । दशाओं के जो फल अब तक कहे गये हैं वे सब अन्तर्दशा और प्रयन्तर्दशा में भी समझना चाहिए ॥१॥

पाकेशाब्दहता दशेश्वरसमा नेत्राङ्कभक्ताः समाः
शिष्टा रूपहता नराङ्कविहृता मासा नगैर्वासराः ।
छिद्रादिष्वपि चैवमेव कलयेत्पाकक्रमाच्चेद्दशा-
नाथाद्या पुनरन्तरान्तरदशास्तत्पाकनाथक्रमाः ॥२॥

जिस ग्रह की अन्तर्दशा जाननी हो उसके दशावर्ष में महादशावर्ष से गुणाकर गुणनफल में १२० का भाग देने से लब्धि अन्तर्दशा के वर्ष होंगे । शेष में १२ से गुणाकर पुनः १२० से भाग देने पर लब्धि अन्तर्दशा के मास होंगे । शेष को ३० से गुणाकर गुणनफल में १२० का भाग देने पर लब्धि अन्तर्दशा के दिन होंगे । पुनः यदि शेष बचे तो उसमें ६० से गुणाकर १२० का भाग देने पर घटी और पुनः शेष को ६० से गुणा कर गुणनफल में १२० का भाग देने पर लब्धि पल होगा । इसी प्रकार अन्तर्दशा के वर्षादि लाने चाहिए । ग्रहों की दशा का जो क्रम है उसी क्रम से अन्तर्दशाएँ और प्रत्यन्तर्दशाएँ होती हैं । दशा में अन्तर्दशा का क्रम दशापति से प्रारम्भ होता है अर्थात् किसी ग्रह की दशा में प्रथम अन्तर्दशा दशापति की होगी, आगे की अन्तर्दशाएँ उसी क्रम में होंगी ॥२॥

'दशाब्दाः स्वस्वमानघ्नाः सर्वायुयोगभाजिताः । पृथगन्तर्दशा एवं प्रत्यन्तरदशादिकाः ॥
आदावन्तर्दशा पाकपतेस्तत्क्रमतोऽपराः । एवं प्रत्यन्तरादौ च क्रमो ज्ञेयो विचक्षणैः' ॥
(पराशर)

• सूर्यमहादशाफल •

सूर्य महादशा में सूर्यान्तर्दशा फल

महीश्वरादुपलभतेऽधिकं यशो वनाचलस्थलवसतिं धनागमम् ।
ज्वरोष्णरुग्जनकवियोगजं भयं निजां दशां प्रविशति तीक्ष्णदीधितौ ॥३॥

सूर्य की महादशा में सूर्य की ही अन्तर्दशा प्रभावी हो तो राजा से यश-सम्मान की प्राप्ति, वन-पर्वतीय प्रदेश में निवास या भ्रमण तथा धन का लाभ होता है । अत्यधिक ताप-जनित ज्वर, व्याधि, पिता के निधनादि का भय होता है ॥३॥

पराशर ने विशद रूप में अन्तर्दशाओं के फल कहे हैं—

'स्वोच्चे स्वभे स्थित: सूर्यो लाभे केन्द्रे त्रिकोणगे।
स्वदशायां स्वभुक्तौ च धनधान्यादिलाभकृत्॥
नीचाद्यशुभराशिस्थो विपरीतं फलं दिशेत्।
द्वितीयद्यूननाथेऽर्के त्वपमृत्युभयं वदेत्'॥　　　　(पराशर)

सूर्य की महादशा में चन्द्रान्तर्दशाफल

रिपुक्षयोऽव्यसनशमो धनागमः कृषिक्रिया गृहकरणं सुहृद्युतिः।
क्षयानलप्रतिहतिरर्कदायकं शशी यदा हरति जलोद्भवा रुजः॥४॥

सूर्य की दशा में चन्द्रान्तर्दशा में जातक के शत्रुओं का विनाश, कष्टों का निवारण, धन का लाभ, कृषिक्रिया में रुचि, गृह-निर्माण, स्वजनों से समागम आदि शुभ फल होते हैं। साथ ही यदि चन्द्रमा द्युतिहीन या निर्बल हो तो क्षयरोग, शीतजन्य व्याधियों से जातक पीड़ित होता है तथा अग्नि से क्षति का भय होता है॥४॥

सूर्यस्यान्तर्गते चन्द्रे लग्नात्त्रिकोणगे। विवाहं शुभकार्यं च धनधान्यसमृद्धिकृत्॥
गृहक्षेत्राभिवृद्धिं च पशुवाहनसम्पदाम्। तुङ्गे वा स्वर्क्षगे वाऽपि दारसौख्यं धनागमम्॥
पुत्रलाभं चैव सौख्यं राजसमागमम्। महाराजप्रसादेन इष्टसिद्धिसुखावहम्॥
क्षीणे वा पापसंयुक्ते दारपुत्रादिपीडनम्। वैषम्यं जनसंवादं भृत्यवर्गविनाशनम्॥
विरोधं राजकलहं धनधान्यपशुक्षयम्। षष्ठाष्टमव्यये चन्द्रे जलभीतिं मनोरुजम्॥
बन्धनं रोगपीडां च स्थानविच्युतिकारकम्। दुःस्थानं चापि चित्तेन दायादजनविग्रहम्॥
निर्दिशेत् कुत्सितान्नं च चौरादिनृपपीडनम्। मूत्रकृच्छ्रादिरोगश्च देहपीडा तथा भवेत्॥
दायेशाल्लाभभाग्ये च केन्द्रे वा शुभसंयुते। भोगभाग्यादिसन्तोषदारपुत्रादिवर्धनम्॥
राज्यप्राप्तिं महत्सौख्यं स्थानप्राप्तिं च शाश्वतीम्। विवाहं यज्ञदीक्षां च सुमाल्याम्बरभूषणम्॥
द्वितीये द्यूननाथे च ह्यपमृत्युर्भविष्यति॥
(पराशर)

सूर्यमहादशा में भौमान्तर्दशाफल

रुजागमः पदविरहोऽरिपीडनं व्रणोद्भवः स्वकुलजनैर्विरोधिता।
महीभृतो भवति भयं धनच्युतिर्यदा कुजो हरति तदाऽर्कवत्सरम्॥५॥

सूर्यमहादशा के भौमान्तर्दशा में रोगागम, पद की हानि, शत्रुभय, फोड़ा आदि से कष्ट, स्वजनों से विरोध (विवाद), राजा से भय तथा धनादि का क्षय होता है॥५॥

श्लोक के प्रथम चरण में 'पदविरहोऽरिपीडनं' के स्थान पर 'पदविरहोरुपीडनं' पाठान्तर मिलता है।

सूर्यस्यान्तर्गते भौमे स्वोच्चे स्वक्षेत्रलाभगे। लग्नात्केन्द्रत्रिकोणे वा शुभकार्यं समादिशेत्॥
भूलाभं कृषिलाभं च धनधान्यविवर्धनम्। गृहक्षेत्रादिलाभं च रक्तवस्त्रादिलाभकृत्॥
लग्नाधिपेन संयुक्ते सौख्यं राजप्रियं वदेत्। भाग्यलाभाधिपैर्युक्ते लाभश्चैव भविष्यति॥

बहुसेनाधिपत्यं च शत्रुनाशं मनोदृढम् । आत्मबन्धुसुखं चैव भ्रातृवर्धनकं तथा ॥
दायेशाद्व्ययरन्ध्रस्थे पापैर्युक्ते च वीक्षिते । आधिपत्यबलैर्हीने क्रूरबुद्धि मनोरुजम् ॥
कारागृहे प्रवेशं च कथयेत्बन्धुनाशनम् । भ्रातृवर्गविरोधं च कर्मनाशमथापि वा ॥
नीचे वा दुर्बले भौमे राजमूलाद्धनक्षयः । द्वितीये द्यूननाथे तु देहे जाड्यं मनोरुजम् ॥
(पराशर)

सूर्यमहादशा में राह्वन्तर्दशाफल

रिपूदयो धनहृतिरापदुद्गमो विषाद्भयं विषयविमूढता पुनः ।
शिरोदृशोरधिकरुगेव देहिनाम् अहौ भवेदहिमकरायुरन्तरे ॥६॥

सूर्यमहादशा के राहु की अन्तर्दशा में शत्रुओं का उदय, धनहानि, विपत्ति, विष-प्रयोग का भय, विषयभोग के प्रति लिप्सा, शिर और नेत्र रोगादि से कष्ट आदि फल जातक को भोगने होते हैं ॥६॥

सूर्यस्यान्तर्गते राहौ लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे । आदौ द्विमासपर्यन्तं धननाशो महद्भयम् ॥
चौराहिव्रणभीतिश्च दारपुत्रादिपीडनम् । तत्परं सुखमाप्नोति शुभयुक्ते शुभांशके ॥
देहारोग्यं मनस्तुष्टी राजप्रीतिकरं सुखम् । लग्नादुपचये राहौ योगकारकसंयुते ॥
दायेशाच्छुभराशिस्थे राजसन्मानमादिशेत् । भाग्यवृद्धिं यशोलाभं दारपुत्रादिपीडनम् ॥
पुत्रोत्सवादिसन्तोषं गृहे कल्याणशोभनम् । दायेशादथ रिष्फस्थे रन्ध्रे वा बलवर्जिते ॥
बन्धनं स्थाननाशश्च कारागृहनिवेशनम् । चौराहिव्रणभीतिश्च दारपुत्रादिवर्धनम् ॥
चतुष्पाज्जीवनाशश्च गृहक्षेत्रादिनाशनम् । गुल्मक्षयादिरोगश्च ह्यतिसारादिपीडनम् ॥
द्विसप्तस्थे तथा राहौ तत्स्थानाधिपसंयुते । अपमृत्युभयं चैव सर्पभीतिश्च सम्भवेत् ॥
(पराशर)

सूर्यमहादशा में गुर्वन्तर्दशाफल

रिपुक्षयो विविधधनाप्तिरन्वहं सुरार्चनं द्विजगुरुबन्धुपूजनम् ।
श्रवःश्रमो भवति च यक्ष्मरोगिता सुरार्चिते प्रविशति गोपतेर्दशाम् ॥७॥

सूर्य की महादशा के गुर्वन्तर्दशावधि में शत्रुओं का विनाश, अनेक मार्ग से नित्यप्रति धनागम, ब्राह्मण, स्वजन और गुरुजनों में आस्था, कर्णव्याधि तथा क्षयरोगादि का भय होता है ॥७॥

सूर्यस्यान्तर्गते जीवे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे । स्वोच्चे मित्रस्य वर्गस्थे विवाहं राजदर्शनम् ॥
धनधान्यादिलाभं च पुत्रलाभं महत्सुखम् । महाराजप्रसादेन इष्टकार्यार्थलाभकृत् ॥
ब्राह्मणप्रियसन्मानं प्रियवस्त्रादिलाभकृत् । भाग्यकर्माधिपवशाद्राज्यलाभं वदेद्द्विज ॥
नरवाहनयोगश्च स्थानाधिक्यं महत्सुखम् । दायेशाच्छुभराशिस्थे भाग्यवृद्धिः सुखावहा ॥
दानकर्मक्रियायुक्तौ देवताराधनप्रियः । गुरुभक्तिर्मनःसिद्धिः पुण्यकर्मादिसंग्रहः ॥
दायेशाद्रिपुरन्ध्रस्थे नीचे वा पापसंयुते । दारपुत्रादिपीडा च देहपीडा महद्भयम् ॥
राजकोपं प्रकुरुतेऽभीष्टवस्तुविनाशनम् । पापमूलादद्रव्यनाशं देहभ्रष्टं मनोरुजम् ॥
(पराशर)

सूर्यमहादशा में शन्यन्तर्दशाफल

धनाहतिः सुतविरहः स्त्रिया रुजो गुरुव्ययः सपदि परिच्छदच्युतिः ।
मलिष्ठता भवति कफप्रपीडनं शनैश्चरे सवितृदशान्तरं गते ॥८॥

धनहानि, पुत्र से बिछोह, पत्नी को रोगादि से कष्ट, धन का अपव्यय, गुरुजनों का निधन, वस्त्र और गृहोपकरणों का विनाश, मलिनता और कफ-प्रकोप से जातक को कष्ट— ये सब अनिष्ट सूर्यमहादशा के शनि की अन्तर्दशा में जातक को होते हैं ॥८॥

सूर्यस्यान्तर्गते मन्दे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे । शत्रुनाशो महत्सौख्यं स्वल्पधान्यार्थलाभकृत् ॥
विवाहादिसुकार्यश्च गृहे तस्य शुभावहम् । स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे मन्दे सुहृद्ग्रहसमन्विते ॥
गृहे कल्याणसम्पत्तिर्विवाहादिषु सत्क्रिया । राजसन्मानकीर्तिश्च नानावस्त्रधनागमः ॥
दायेशादथ रन्ध्रस्थे व्यये वा पापसंयुते । वातशूलमहाव्याधिज्वरातीसारपीडनम् ॥
बन्धनं कार्यहानिश्च वित्तनाशो महद्भयम् । अकस्मात्कलहश्चैव दायादजनविग्रहः ॥
भुक्त्यादौ मित्रहानिः स्यान्मध्ये किञ्चित्सुखावहम् । अन्ते क्लेशकरं चैव नीचे तेषां तथैव च ॥
पितृमातृवियोगश्च गमनागमनं तथा । द्वितीयद्यूननाथे तु अपमृत्युभयं भवेत् ॥
(पराशर)

सूर्यमहादशा में बुधान्तर्दशाफल

विचर्चिका पिटकसकुष्ठकामिला विशर्धनं जठरकटिप्रपीडनम् ।
महीक्षयः त्रिगदभयं भवेत्तदा विधोः सुते चरति रवेरथाब्दकम् ॥९॥

सूर्यमहादशा की बुधान्तर्दशा में जातक फोड़ा-फुंसी, भयंकर खुजली आदि चर्मरोगों, कामला (Jaundice), उदर और कटि प्रदेश में पीड़ा तथा त्रिदोष (वायु-पित्त-कफ) जन्य व्याधियों से कष्ट पाता है।

सूर्यस्यान्तर्गते सौम्ये स्वोच्चे वा स्वर्क्षगेऽपि वा । केन्द्रत्रिकोणलाभस्थे बुधे वर्गबलैर्युते ॥
राज्यलाभो महोत्साहो दारपुत्रादिसौख्यकृत् । महाराजप्रसादेन वाहनाम्बरभूषणम् ॥
पुण्यतीर्थफलावाप्तिर्गृहे गोधनसङ्कुलम् । भाग्यलाभाधिपैर्युक्ते लाभवृद्धिकरो भवेत् ॥
भाग्यपञ्चमकर्मस्थे सन्मानो भवति ध्रुवम् । सुकर्मधर्मबुद्धिश्च गुरुदेवद्विजार्चनम् ॥
धनधान्यादिसंयुक्तो विवाहः पुत्रसम्भवः । दायेशाच्छुभराशिस्थे सौम्ययुक्ते महत्सुखम् ॥
वैवाहिकं यज्ञकर्म दानधर्मजपादिकम् । स्वनामाङ्कितपद्यानि नामद्वयमथाऽपि वा ॥
भोजनाम्बरभूषाप्तिरमरेशो भवेन्नरः । दायेशाद्रिपुरन्ध्रस्थे रिष्फगे नीचगेऽपि वा ॥
देहपीडा मनस्तापो दारपुत्रादिपीडनम् । भुक्त्यादौ दुःखमाप्नोति मध्ये किञ्चित्सुखावहम् ॥
अन्ते तु राजभीतिश्च गमनागमनं तथा । द्वितीये द्यूननाथे तु देहजाड्यं ज्वरादिकम् ॥
(पराशर)

सूर्यमहादशा में केत्वन्तर्दशाफल

सुहृद्क्षयः स्वजनकुटुम्बविग्रहो रिपोर्भयं धनहरणं पदच्युतिः ।
गुरोर्गदश्चरणशिरोरुगुच्चकैः शिखी यदा विशति दशां विवस्वतः ॥१०॥

सूर्यमहादशा में केतु की अन्तर्दशा प्राप्त होने पर मित्रों का वियोग, स्वजनों और कुटुम्ब के सदस्यों से विग्रह, शत्रुभय, धननाश और पदच्युति होती है। अपने से ज्येष्ठ जनों को व्याधि से कष्ट, पैर और शिर में भयंकर पीड़ा होती है ॥१०॥

सूर्यस्यान्तर्गते केतौ देहपीडा मनोव्यथा। अर्थव्ययं राजकोपं स्वजनादेरुपद्रवम् ॥
लग्नाधिपेन संयुक्ते आदौ सौख्यं धनागमम्। मध्ये तत्क्लेशमाप्नोति मृतवार्तागमं वदेत् ॥
अथाष्टमव्यये चैव दायेशात्पापसंयुते। कपोलदन्तरोगश्च मूत्रकृच्छ्रस्य सम्भवः ॥
स्थानविच्युतिरर्थस्य मित्रहानिः पितुर्मृतिः। विदेशगमनं चैव शत्रुपीडा महद्भयम् ॥
लग्नादुपचये केतौ योगकारकसंयुते। शुभांशे शुभवर्गे च शुभकर्मफलोदयः ॥
पुत्रदारादिसौख्यं च सन्तोषं प्रियवर्धनम्। विचित्रवस्त्रलाभश्च यशोवृद्धिः सुखावहा ॥
द्वितीयद्यूननाथे वा ह्यपमृत्युभयं वदेत्।

(पराशर)

सूर्यमहादशा में शुक्रान्तर्दशाफल

शिरोरुजा जठरगुदार्तिपीडनं कृषिक्रिया गृहधनधान्यविच्युतिः।
सुतस्त्रियोरसुखमतीव देहिनां भृगोः सुते चरति रवेरथाब्दकम् ॥११॥

शिर में पीड़ा, उदर और गुदा रोग से कष्ट, कृषिकर्म, गृह और धन-धान्यादि का विनाश, स्त्री-पुत्रादि को कष्ट आदि फल जातक को सूर्यमहादशा के शुक्रान्तर्दशा काल में प्राप्त होते हैं ॥११॥

सूर्यस्यान्तर्गते शुक्रे त्रिकोणे केन्द्रगेऽपि वा। स्वोच्चे मित्रस्ववर्गस्थेऽभीष्टस्त्रीभोग्यसम्पदः ॥
ग्राम्यान्तरप्रयाणं च ब्राह्मणप्रभुदर्शनम्। राज्यलाभो महोत्साहश्छत्रचामरवैभवम् ॥
गृहे कल्याणसम्पत्तिर्नित्यं मिष्टान्नभोजनम्। विद्रुमादिरत्नलाभो मुक्तावस्त्रादिलाभकृत् ॥
चतुष्पाज्जीवलाभः स्याद्बहुधान्यधनादिकम्। उत्साहः कीर्तिसम्पत्तिर्नरवाहनसम्पदः ॥
षष्ठाष्टमव्यये शुक्रे दायेशाद्बलवर्जिते। राजकोपो मनःक्लेशः पुत्रस्त्रीधननाशनम् ॥
भुक्त्यादौ मध्यमं मध्ये लाभः शुभकरो भवेत्। अन्ते यशोनाशनं च स्थानभ्रंशमथापि वा ॥
बन्धुद्वेषं वदेद् वाऽपि स्वकुलाद्भोगनाशनम्। भार्गवे द्यूननाथे तु देहे जाड्यं रुजोभयम् ॥
रन्ध्ररिष्फसमायुक्ते ह्यपमृत्युर्भविष्यति ॥

(पराशर)

• चन्द्रमहादशा फल •

चन्द्रमहादशा में चन्द्रान्तर्दशाफल

स्त्रीप्रजाप्तिरमलांशुकागमो भूसुरोत्तमसमागमो भवेत्।
मातुरिष्टफलमङ्गनासुखं स्वां दशां विशति शीतदीधितौ ॥१२॥

चन्द्रमहादशा के चन्द्रान्तर्दशा में कन्यारत्न की प्राप्ति, निर्मल स्वच्छ वस्त्र का लाभ, उत्तम कोटि के ब्राह्मण का सान्निध्य प्राप्त होता है। यह अन्तर्दशा जातक की माता के लिए अभीष्ट प्राप्तिकारक तथा जातक को स्त्रीसुख का लाभ होता है ॥१२॥

स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे चन्द्रे त्रिकोणे लाभगेऽपि वा। भाग्यकर्माधिपैर्युक्ते गजाश्वाम्बरसङ्कुलम् ॥
देवतागुरुभक्तिश्च पुण्यश्लोकादिकीर्तनम्। राज्यलाभो महत्सौख्यं यशोवृद्धिः शुभावहा ॥
पूर्णे चन्द्रे बलं पूर्णं सेनापत्यं महत्सुखम्। पापयुक्तेऽथवा चन्द्रे नीचे वा रिष्फषष्ठगे ॥
तत्काले धननाशः स्यात्स्थानच्युतिरथापि वा। देहालस्यं मनस्तापो राज्यमन्त्रिविरोधकृत् ॥
मातृक्लेशो मनोदुःखं निगडं बन्धुनाशनम्। द्वितीयद्यूननाथे तु रन्ध्ररिष्फेशसंयुते ॥
देहजाड्यं महाभङ्गमपमृत्योर्भयं वदेत् ॥

(पराशर)

चन्द्रमहादशा में भौमान्तर्दशाफल

पित्तवह्निरुधिरोद्भवा रुजः क्लेशदुःखरिपुचोरपीडनम्।
वित्तमानविहतिर्भवेत्कुजे शीतदीधितिदशान्तरं गते ॥१३॥

पित्त, अग्नि और रक्तदोष जन्य व्याधियों से कष्ट, शत्रु, चोर आदि से कष्ट, धन और सम्मान की क्षति आदि फल जातक को चन्द्रमा की महादशा के अन्तर्गत भौमान्तर्दशा में प्राप्त होते हैं ॥१३॥

चन्द्रस्यान्तर्गते भौमे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे। सौभाग्यं राजसन्मानं वस्त्राभरणभूषणम् ॥
प्रयत्नात्कार्यसिद्धिस्तु भविष्यति न संशयः। गृहक्षेत्राभिवृद्धिश्च व्यवहारे जयो भवेत् ॥
कार्यलाभो महत्सौख्यं स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे। तथाष्टमव्यये भौमे पापयुक्तेऽथवा यदि ॥
दायेशादशुभस्थाने देहार्तिः परवीक्षिते। गृहक्षेत्रादिहानिश्च व्यवहारे तथा क्षतिः ॥
भृत्यवर्गेषु कलहो भूपालस्य विरोधनम्। आत्मबन्धुवियोगश्च नित्यं निष्ठुरभाषणम् ॥
द्वितीये द्यूननाथे तु रन्ध्रे रन्ध्राधिपो यदा ॥ (पराशर)

चन्द्रमहादशा में राह्वन्तर्दशाफल

तीव्रदोषरिपुवृद्धिबन्धुरुङ्मारुताशनिभयार्तिरुद्भवेत्।
अन्नपानजनितज्वरोदयाश्चन्द्रवत्सरविहारके ह्यहौ ॥१४॥

चन्द्रमा की महादशा के राह्वन्तर्दशा काल में जातक को भयङ्कर भूल जन्य कष्ट, शत्रुओं की प्रबलता, स्वजनों की रुग्णता, आँधी-तूफान और आकाशीय विद्युत् से उत्पीड़न, भोजन और पान आदि के व्यतिक्रम अथवा दूषित होने से ज्वरादि से कष्ट होता है ॥१४॥

चन्द्रस्यान्तर्गते राहौ लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे। आदौ स्वल्पफलं ज्ञेयं शत्रुपीडा महद्भयम् ॥
चौराहिराजभीतिश्च चतुष्पाज्जीवपीडनम्। बन्धुनाशो मित्रहानिर्मानहानिर्मनोव्यथा ॥
शुभयुक्ते शुभैर्दृष्टे लग्नादुपचयेऽपि वा। योगकारकसम्बन्धे सर्वकार्यार्थसिद्धिकृत् ॥
नैर्ऋत्ये पश्चिमे भागे क्वचित्प्रभुसमागमः। वाहनाम्बरलाभश्च स्वेष्टकार्यसिद्धिकृत् ॥
दायेशादथ रन्ध्रस्थे व्यये वा बलवर्जिते। स्थानभ्रंशो मनोदुःखं पुत्रक्लेशो महद्भयम् ॥
दारपीडा क्वचिज्ज्ञेया क्वचित्स्वाङ्गे रुजोभयम्। वृश्चिकादिविषाद्भीतिश्चौराहिनृपपीडनम् ॥
दायेशात्केन्द्रकोणे वा दुश्चिक्ये लाभगेऽपि वा। पुण्यतीर्थफलावाप्तिर्देवतादर्शनं महत् ॥
परोपकारधर्मादिपुण्यकर्मादिसंग्रहः। द्वितीयद्यूनराशिस्थे देहबाधा भविष्यति ॥

चन्द्रमहादशा में गुर्वन्तर्दशाफल

दानधर्मनिरतिः सुखोदयो वस्त्रभूषणसुहृत्समागमः ।
राजसत्कृतिरतीव जायते कैरवप्रियवयोहरे गुरौ ॥१५॥

चन्द्रमहादशा में बृहस्पत्यन्तर्दशा आने पर जातक की दानादि धार्मिक कृत्यों में निरति, सुख का उदय, वस्त्राभूषण की प्राप्ति तथा सुहृज्जनों का समागम होता है। राजा के द्वारा जातक अत्यन्त सम्मानित होता है ॥१५॥

चन्द्रस्यान्तर्गते जीवे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे। स्वगेहे लाभगे स्वोच्चे राज्यलाभो महोत्सवः ॥
वस्त्रालङ्कारभूषाप्ती राजप्रीतिर्धनागमः। इष्टदेवप्रसादेन गर्भाधानादिकं फलम् ॥
तथा शोभनकार्याणि गृहे लक्ष्मीः कटाक्षकृत्। राजाश्रयं धनं भूमिगजवाजिसमन्वितम् ॥
महाराजप्रसादेन स्वेष्टसिद्धिः सुखावहा। षष्ठाष्टमव्यये जीवे नीचे वाऽस्तङ्गते यदि ॥
पापयुक्तेऽशुभं कर्म गुरुपुत्रादिनाशनम्। स्थानभ्रंशो मनोदुःखमकस्मात्कलहो ध्रुवम् ॥
गृहक्षेत्रादिनाशश्च वाहनाम्बरनाशनम्। दायेशात्केन्द्रकोणे वा दुश्चिक्ये लाभगेऽपि वा ॥
भोजनाम्बरपश्वादि लाभे सौख्यं करोति च। मात्रादिसुखसम्पत्तिं धैर्यं वीर्यपराक्रमम् ॥
यज्ञव्रतविवाहादिराज्यश्रीधनसम्पदः। दायेशाद्रिपुरन्ध्रस्थे व्यये वा बलवर्जिते ॥
करोति कुत्सितान्नं च विदेशगमनं तथा। भुक्त्यादौ शोभनं प्रोक्तमन्ते क्लेशकरं भवेत् ॥
द्वितीयद्यूननाथे च ह्यपमृत्युर्भविष्यति ॥

(पराशर)

चन्द्रमहादशा में शन्यन्तर्दशाफल

नैकरोगविहतिः सुहृत्सुतस्त्रीरुजा व्यसनसम्भवो महान्।
प्राणहानिरथवा भवेच्छनौ मारबन्धुवयसो गतेऽन्तरम् ॥१६॥

चन्द्रमा की महादशा के शनि की अन्तर्दशा में जातक अनेक व्याधियों से ग्रस्त, स्वजन एवं स्त्री-पुत्रादि को रोगादि से कष्ट, महाविपत्ति या जनहानि की सम्भावना होती है ॥१६॥

कुछ पुस्तकों में श्लोक के प्रथम चरण में प्रयुक्त 'नैकरोगविहतिः' के स्थान पर 'पैत्तरोगनिवहः' पाठान्तर देखने को मिलता है।

चन्द्रस्यान्तर्गते मन्दे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे। स्वक्षेत्रे स्वांशगे चैव मन्दे तुङ्गांश संयुते ॥
शुभदृष्टियुते वाऽपि लाभे वा बलसंयुते। पुत्रमित्रार्थसम्पत्तिः शूद्रप्रभुसमागमात् ॥
व्यवसायात्फलाधिक्यं गृहे क्षेत्रादिवृद्धिदम्। पुत्रलाभश्च कल्याणं राजानुग्रहवैभवम् ॥
षष्ठाष्टमव्यये मन्दे नीचे वा धनगेऽपि वा। तद्भुक्त्यादौ पुण्यतीर्थे स्नानं चैव तु दर्शनम् ॥
अनेकजनश्च शस्त्रपीडा भविष्यति। दायेशात्केन्द्रराशिस्थे त्रिकोणे बलगेऽपि वा ॥
क्वचित्सौख्यं धनाप्तिश्च दारपुत्रविरोधकृत्। द्वितीयद्यूनरन्ध्रस्थे देहबाधा भविष्यति ॥

(पराशर)

चन्द्रमहादशा में बुधान्तर्दशाफल

सर्वदा धनगजाश्वगोकुलप्राप्तिराभरणसौख्यसम्पदः ।
चित्तबोध इति जायते विधोरायुषि प्रविशति प्रबोधने ॥१७॥

चन्द्रमहादशा में बुध की अन्तर्दशा प्राप्त होने पर धन-धान्य, हाथी-घोड़े और गोधनादि की वृद्धि, आभूषण एवं सुख-सम्पदादि का लाभ तथा बौद्धिक विकास होता है ॥१७॥

चन्द्रस्यान्तर्गते सौम्ये केन्द्रलाभत्रिकोणगे । स्वर्क्षे निजांशके सौम्ये तुङ्गे वा बलसंयुते ॥
धनागमो राजमानप्रियवस्त्रादिलाभकृत् । विद्याविनोदसद्गोष्ठी ज्ञानवृद्धिः सुखावहा ॥
सन्तानप्राप्तिः सन्तोषो वाणिज्याद्धनलाभकृत् । वाहनछत्रसंयुक्तनानालङ्कारलाभकृत् ॥
दायेशात्केन्द्रकोणे वा लाभे वा धनगेऽपि वा । विवाहो यज्ञदीक्षा च दानधर्मशुभादिकम् ॥
राजप्रीतिकरश्चैव द्विजज्जनसमागमः । मुक्तामणिप्रवालानि वाहनाम्बरभूषणम् ॥
आरोग्यप्रीतिसौख्यं च सोमपानादिकं सुखम् । दायेशाद्रिपुरन्ध्रस्थे व्यये वा नीचगेऽपि वा ॥
तद्भुक्तौ देहबाधा च कृषिगोभूमिनाशनम् । कारागृहप्रवेशश्च दारपुत्रादिपीडनम् ॥
द्वितीयद्यूननाथे तु ज्वरपीडा महद्भयम् ॥ (पराशर)

चन्द्रमहादशा में केत्वन्तर्दशा फल

चित्तहानिरपि सम्पदश्च्युतिर्बन्धुहानिरपि तोयजं भयम् ।
दासभृत्यहतिरस्ति देहिनां केतुके हरति चान्द्रमब्दकम् ॥१८॥

चन्द्रमा की महादशा में केतु की अन्तर्दशा आने पर जातक को मतिविभ्रम, धन-सम्पदादि की क्षति, स्वजनों एवं बन्धु-बान्धवों से वियोग, जल से भय तथा आश्रितों, दास-दासियों का उत्पीड़न आदि फल होते हैं ॥१८॥

चन्द्रस्यान्तर्गते केतौ केन्द्रलाभत्रिकोणगे । दुश्चिक्ये बलसंयुक्ते धनलाभं महत्सुखम् ॥
पुत्रदारादिसौख्यं च विधिकर्म करोति च । भुक्त्यादौ धनहानिः स्यान्मध्यगे सुखमाप्नुयात् ॥
दायेशात्केन्द्रलाभे वा त्रिकोणे बलसंयुते । क्वचित्फलं दशादौ तु दद्यात् सौख्यं धनागमम् ॥
गोमहिष्यादिलाभं च भुक्त्यन्ते चार्थनाशनम् । पापयुक्तेऽथवा दृष्टे दायेशाद्रन्ध्ररिष्फगे ॥
शत्रुतः कार्यहानिः स्यादकस्मात्कलहो ध्रुवम् । द्वितीयद्यूनराशिस्थे ह्यनारोग्यं महद्भयम् ॥
(पराशर)

चन्द्रमहादशा में शुक्रान्तर्दशाफल

तोययानवसुभूषणाङ्गनाविक्रयक्रयकृषिक्रियादयः ।
पुत्रमित्रपशुधान्यसंयुतिश्चन्द्रदायहरणोन्मुखे भृगौ ॥१९॥

चन्द्रमा की महादशा में शुक्र की अन्तर्दशा प्राप्त होने पर जल, वाहन, स्वर्णाभूषण, स्त्री, क्रय-विक्रय के व्यवसाय, कृषिकर्म आदि से सुख या लाभ होता है। पशुधन, पुत्र, मित्र, धन-धान्यादि से जातक सुखी होता है ॥१९॥

चन्द्रस्यान्तर्गते शुक्रे केन्द्रलाभत्रिकोणगे । स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे वापि राज्यलाभं करोति च ॥
महाराजप्रसादेन वाहनाम्बरभूषणम् । चतुष्पाज्जीवलाभः स्याद्दारपुत्रादिवर्धनम् ॥

नूतनागारनिर्माणं नित्यं मिष्टान्नभोजनम् । सुगन्धपुष्पमाल्यादिरम्यस्त्र्यारोग्यसम्पदम् ॥
दशाधिपेन संयुक्ते देहसौख्यं महत्सुखम् । सत्कीर्तिसुखसम्पत्तिः गृहक्षेत्रादिवृद्धिकृत् ॥
नीचे वाऽस्तङ्गते शुक्रे पापग्रहयुतेक्षिते । भूनाशः पुत्रमित्रादिनाशनं पत्निनाशनम् ॥
चतुष्पाज्जीवहानिः स्याद्राजद्वारे विरोधकृत् । धनस्थानगते शुक्रे स्वोच्चे स्वक्षेत्रसंयुते ॥
निधिलाभं महत्सौख्यं भूलाभं पुत्रसम्भवम् । भाग्यलाभाधिपैर्युक्ते भाग्यवृद्धिं करोत्यसौ ॥
महाराजप्रसादेन स्वेष्टसिद्धिः सुखावहा । देवब्राह्मणभक्तिश्च मुक्ताविद्रुमलाभकृत् ॥
दायेशाल्लाभगे शुक्रे त्रिकोणे केन्द्रगेऽपि वा । गृहक्षेत्राभिवृद्धिश्च वित्तलाभो महत्सुखम् ॥
दायेशाद्रिपुरन्ध्रस्थे व्यये वा पापसंयुते । विदेशवासदुःखार्तिमृत्युचौरादिपीडनम् ॥
(पराशर)

चन्द्रमहादशा में सूर्यान्तर्दशाफल

राजमाननमतीव शूरता रोगशान्तिररिपक्षविच्युतिः ।
पित्तवातरुगिने गते तदा स्याच्छशाङ्कपरिवत्सरान्तरम् ॥२०॥

चन्द्रमा की महादशा में शुक्रान्तर्दशा प्राप्त हो तो जातक राजा से सम्मानित होता है। उसके द्वारा अत्यन्त वीरतापूर्ण एवं साहसिक कार्यों का सम्पादन और शत्रुओं का पराभव होता है। पित्त और वायु जन्य विकार से उत्पन्न रोगादि से कष्ट प्राप्त होता है ॥२०॥

चन्द्रस्यान्तर्गते भानौ स्वोच्चे स्वक्षेत्रसंयुते । केन्द्रे त्रिकोणे लग्ने वा धने वा सोदरालये ॥
नष्टराज्यधनप्राप्तिर्गृहे कल्याणशोभनम् । मित्रराजप्रसादेन ग्रामभूम्यादिलाभकृत् ॥
गर्भाधानफलप्राप्तिर्गृहे लक्ष्मीः कटाक्षकृत् । भुक्त्यन्ते देहालस्यं ज्वरपीडा भविष्यति ॥
दायेशादपि रन्ध्रस्थे व्यये वा पापसंयुते । नृपचौराहिभीतिश्च ज्वरोगादिसम्भवम् ॥
विदेशगमने चार्तिं लभते फलवैभवम् । द्वितीयद्यूननाथे तु ज्वरपीडा भविष्यति ॥
(पराशर)

• भौममहादशा फल •

भौममहादशा में भौमान्तर्दशाफल

पित्तोष्णरुग्व्रणभयं सहजैर्वियोगः
क्षेत्रप्रवादजनितार्थविभूतिसिद्धिः ।
ज्ञात्यग्निशत्रुनृपचोरजनैर्विरोधो
धात्रीसुतो हरति चेच्छरदं स्वकीयाम् ॥२१॥

भौममहादशा में यदि भौमान्तर्दशा प्राप्त हो तो उस अवधि में जातक पित्तप्रकोप से उत्पन्न तीव्र ज्वर से तथा व्रण से पीड़ित होता है, स्वजनों से बिछोह (वियोग), भूमि सम्बन्धी वाद से धन-सम्पदादि का लाभ, अग्निभय; दायाद, शत्रु, राजा, चोर आदि से विरोध होता है ॥२१॥

कुजे स्वान्तर्गते विप्र लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे । लाभे वा शुभसंयुक्ते दुश्चिक्ये धनसंयुते ॥
लग्नाधिपेन संयुक्ते राजानुग्रहवैभवम् । लक्ष्मीकटाक्षचिह्नानि नष्टराज्यार्थलाभकृत् ॥

पुत्रोत्सवादिसन्तोषो गेहे गोक्षीरसङ्कुलम् । स्वोच्चे वा स्वर्क्षगे भौमे स्वांशे वा बलसंयुते ॥
गृहक्षेत्राभिवृद्धिश्च गोमहिष्यादिलाभकृत् । महाराजप्रसादेन स्वेष्टसिद्धिः सुखावहा ॥
अथाष्टमव्यये भौमे पापदृग्योगसंयुते । मूत्रकृच्छ्रादिरोगश्च कष्टाधिक्यं व्रणाद्भयम् ॥
चौराहिराजपीडा च धनधान्यपशुक्षयः । द्वितीये द्यूननाथे तु देहजाड्यं मनोव्यथा ॥
(पराशर)

भौममहादशा में राह्वन्तर्दशाफल

शस्त्राग्निचोररिपुभूपभयं विषार्तिः
कुक्ष्यक्षिशीर्षजगदो गुरुबन्धुहानिः ।
प्राणव्ययोऽथ यदि वा विपुलापदो वा
वक्रायुरन्तरगते भुजगाधिनाथे ॥२२॥

शस्त्राघात, अग्नि, चोर, शत्रु और राजप्रकोप का भय, विषपानादि से कष्ट, कुक्षि, नेत्र और शिर में व्याधिजन्य कष्ट, गुरुजनों और स्वजनों की हानि (निधन), स्वयं प्राणहानि अथवा भयंकर विपदा आदि फल भौम की महादशा में राहु की अन्तर्दशा में जातक को प्राप्त होते हैं ॥२२॥

कुजस्यान्तर्गते राहौ स्वोच्चे मूलत्रिकोणगे । शुभयुक्ते शुभैर्दृष्टे केन्द्रलाभत्रिकोणगे ॥
तत्काले राजसन्मानं गृहभूम्यादिलाभकृत् । कलत्रपुत्रलाभः स्याद्व्यवसायात्फलाधिकम् ॥
गङ्गास्नानफलावाप्तिं विदेशगमनं तथा । तथाष्टमव्यये राहौ पापयुक्तेऽथ वीक्षिते ॥
चौराहिव्रणभीतिश्च चतुष्पाज्जीवनाशनम् । वातपित्तरुजो भीतिः कारागृहनिवेशनम् ॥
धनस्थानगते राहौ धननाशं महद्भयम् । सप्तमस्थानगे वाऽपि ह्यपमृत्युभयं महत् ॥
(पराशर)

भौमदशा में गुर्वन्तर्दशाफल

द्विजविबुधसमर्चा तीर्थपुण्यानुसेवा
सततमतिथिपूजा पुत्रमित्रादिवृद्धिः ।
श्रवणरुगतिमात्रं श्लेष्मरोगोद्भवो वा
भवति कुजदशान्तः सङ्गते वागधीशे ॥२३॥

मंगल की महादशा में जब बृहस्पति की महादशा प्रभावी होती है तब जातक की अभिरुचि देवता और ब्राह्मणों की अभ्यर्चना में होती है; तीर्थादि पुण्य स्थानों की यात्रा, निरन्तर अतिथियों का सत्कार, सन्तति और मित्रों आदि सुहृद्जनों की वृद्धि होती है। कर्ण-व्याधि और श्लेष्मज व्याधियों से कष्ट होता है ॥२३॥

कुजस्यान्तर्गते जीवे त्रिकोणे केन्द्रगेऽपि वा । लाभे वा धनसंयुक्ते तुङ्गांशे स्वांशगेऽपि वा ॥
सत्कीर्तिराजसन्मानं धनधान्यस्य वृद्धिकृत् । गृहे कल्याणसम्पत्तिदारपुत्रादिलाभकृत् ॥
दायेशात्केन्द्रराशिस्थे त्रिकोणे लाभगेऽपि वा । भाग्यकर्माधिपैर्युक्ते वाहनाधिपसंयुते ॥
लग्नाधिपसमायुक्ते शुभांशे शुभवर्गगे । गृहक्षेत्राभिवृद्धिश्च गृहे कल्याणसम्पदः ॥

देहारोग्यं महत्कीर्तिर्गृहे गोकुलसंग्रहः । चतुष्पाज्जीवलाभः स्याद्व्यवसायात्फलाधिकम् ॥
कलत्रपुत्रसौख्यं च राजसम्मानवैभवम् । षष्ठाष्टमव्यये जीवे नीचे वाऽस्तङ्गते सति ॥
पापग्रहेण संयुक्ते दृष्टे वा दुर्बले सति । चौराहिनृपभीतिश्च पित्तरोगादिसम्भवम् ॥
प्रेतबाधाभृत्यनाशः सोदराणां विनाशनम् । द्वितीयद्यूननाथे तु ह्यपमृत्युज्वरादिकम् ॥
(पराशर)

भौममहादशा में शन्यन्तर्दशाफल

उपर्युपरिविनाशः स्वात्मजस्त्रीगुरूणा-
मगणितविपदन्तर्दुःखमर्थोपहानिः ।
वसुहरणमरिभ्यो भीतिरुष्णानिलाग्नि-
र्भवति कुजदशायामर्कजे सम्प्रयाते ॥२४॥

मंगल की महादशा में जब शनि की अन्तर्दशा प्रारम्भ होती है तब स्वयं जातक पर तथा उसके पुत्र, स्त्री तथा गुरुजनों के ऊपर एक के बाद एक अनेक संकट उपस्थित होते हैं। उसे भयंकर मानसिक उत्पीड़न से गुजरना होता है। उसके शत्रुओं द्वारा उसके धन का अपहरण होता है तथा अग्नि और वायु से उसे भय होता है। वायु और पित्त के प्रकोप से उत्पन्न व्याधियों से जातक दुःख पाता है ॥२४॥

कुजस्यान्तर्गते मन्दे स्वर्क्षे केन्द्रत्रिकोणगे । मूलत्रिकोणकेन्द्रे वा तुङ्गांशे स्वांशगे सति ॥
लग्नाधिपतिना वाऽपि शुभदृष्टियुतेऽसिते । राज्यसौख्यं यशोवृद्धिः स्वग्रामे धान्यवृद्धिकृत् ॥
पुत्रपौत्रसमायुक्तो गृहे गोधनसङ्ग्रहः । स्ववारे राजसम्मानं स्वमासे पुत्रवृद्धिकृत् ॥
नीचादिक्षेत्रगे मन्दे तथाष्टव्ययराशिगे । म्लेच्छवर्गप्रभुभयं धनधान्यादिनाशनम् ॥
निगडे बन्धनं व्याधिरन्ते क्षेत्रनिवासकृत् । द्वितीयद्यूननाथे तु पापयुक्ते महद्भयम् ॥
धननाशश्च सञ्चारे राजद्वेषो मनोव्यथा । चौराग्निनृपपीडा च सहोदरविनाशनम् ॥
बन्धुद्वेषः प्रमादैश्च जीवहानिश्च जायते । अकस्माच्च मृतेर्भीतिः पुत्रादारादिपीडनम् ॥
कारागृहादिभीतिश्च राजदण्डो महद्भयम् । दायेशात्केन्द्रराशिस्थे लाभस्थे वा त्रिकोणगे ॥
विदेशयानं लभते दुष्कीर्तिर्विविधा तथा । पापकर्मरतो नित्यं बहुजीवादिहिंसकम् ॥
विक्रयः क्षेत्रहानिश्च स्थानभ्रंशो मनोव्यथा । रणे पराजयश्चैव मूत्रकृच्छ्रान्महद्भयम् ॥
दायेशादथ रन्ध्रे वा व्यये वा पापसंयुते । तद्भुक्तौ मरणं ज्ञेयं नृपचौरादिपीडनम् ॥
वातपीडा च शूलादिज्ञातिशत्रुभयं भवेत् । (पराशर)

भौममहादशा में बुधान्तर्दशाफल

अरिभयमुरुचोरोपद्रवोऽथार्थहानिः
पशुगजतुरगाणां विप्लवोऽमित्रयोगः ।
नृपकृतपरिपीडा शूद्रवैरोद्भवो वा
विशति शशितनूजे विश्वधात्रीसुतायुः ॥२५॥

मंगल की महादशा में बुध की अन्तर्दशावधि में जातक को शत्रुभय, चोरों के द्वारा

धनमोचन, हाथी-घोड़े आदि पशुधन की क्षति, शत्रुयोग से संकट, राजा द्वारा उत्पीड़न अथवा शूद्रवर्ग से शत्रुता आदि अनिष्ट फल होते हैं ॥२५॥

कुजस्यान्तर्गते सौम्ये लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे। सत्कथाश्चाजपादानं धर्मबुद्धिर्महद्यशः ॥
नीतिमार्गप्रसङ्गश्च नित्यं मिष्टान्नभोजनम्। वाहनाम्बरपश्वादिराजकर्म सुखानि च ॥
कृषिकर्मफले सिद्धिर्वारणाम्बरभूषणम्। नीचे वास्तङ्गते वाऽपि षष्ठाष्टमगतेऽपि वा ॥
हृद्रोगं मानहानिश्च निगडं बन्धुनाशनम्। दारपुत्रार्थनाशः स्याच्चतुष्पाज्जीवनाशनम् ॥
दशाधिपेन संयुक्ते शत्रुवृद्धिर्महद्भयम्। विदेशगमनं चैव नानारोगास्तथैव च ॥
राजद्वारे विरोधश्च कलहः स्वजनैरपि। दायेशात्केन्द्रकोणे वा स्वोच्चे युक्तार्थलाभकृत् ॥
अनेकधननाथत्वं राजसम्मानमेव च। भूपालयोगं कुरुते धनाम्बरविभूषणम् ॥
भूरिवाद्यमृदङ्गादि सेनापत्यं महत्सुखम्। विद्याविनोदविमला वस्त्रवाहनभूषणम् ॥
दारपुत्रादिविभवं गृहे लक्ष्मीः कटाक्षकृत्। दायेशात्षष्ठरिष्फस्थे रन्ध्रे वा पापसंयुते ॥
तद्दाये मानहानिः स्यात्क्रूरबुद्धिस्तु क्रूरवाक्। चौराग्निरिपुपीडा च मार्गदस्युभयादिकम् ॥
अकस्मात्कलहश्चैव बुधभुक्तौ न संशयः। द्वितीयद्यूननाथे तु महाव्याधिर्भयङ्करः ॥
(पराशर)

भौममहादशा में केत्वन्तर्दशाफल

अशनिभयमकस्मादग्निशस्त्रप्रपीडा
विगमनमथ देशाद्वित्तनाशोऽथवा स्यात्।
अपगमनमसुभ्यो योषितो वा विनाशः
प्रविशति यदि केतुः क्रूरनेत्रायुरन्तम् ॥२६॥

आकाशीय विद्युत् संघात का भय, अग्नि और शस्त्रादि के अघात का भय, स्वदेश परित्याग, धनक्षय, स्वाभाविक अथवा स्त्री के कारण निधन आदि फल भौम की महादशा में केतु की अन्तर्दशा काल में जातक को प्राप्त होते हैं ॥२६॥

कुजस्यान्तर्गते केतौ त्रिकोणे केन्द्रगेऽपि वा। दुश्चिक्ये लाभगे वाऽपि शुभयुक्ते शुभेक्षिते ॥
राजानुग्रहशान्तिश्च बहुसौख्यं धनागमः। किञ्चित्फलं दशादौ तु भूपालः पुत्रलाभकृत् ॥
राजसंलाभकार्याणि चतुष्पाज्जीवलाभकृत्। योगकारकसंस्थाने बलवीर्यसमन्विते ॥
पुत्रलाभो यशोवृद्धिर्गृहे लक्ष्मीः कटाक्षकृत्। भृत्यवर्गधनप्राप्तिः सेनापत्यं महत्सुखम् ॥
भूपालमित्रं कुरुते यागम्बरविभूषणम्। दायेशाद्रिपुरिष्फस्थे रन्ध्रे वा पापसंयुते ॥
कलहो दन्तरोगश्च चौरव्याघ्रादिपीडनम्। ज्वरातीसारकुष्ठादिदारपुत्रादिपीडनम् ॥
द्वितीयसप्तमस्थाने देहे व्याधिर्भविष्यति। अपमानमनस्तापौ धनधान्यादिप्रच्युतिः ॥
(पराशर)

भौममहादशा में शुक्रान्तर्दशाफल

युधि जनितविमानं विप्रवासः स्वदेशाद्
वसुहृतिरपि चोरैर्वामनेत्रोपरोधः।

परिजनपरिहानिर्जायते मानवाना-
मपहरति यदायुर्भौमिजं भार्गवेन्द्रः ॥२७॥

युद्ध में पराजय, परदेशवास, चोरों द्वारा धनादि की क्षति, वामनेत्र में कष्ट (व्याधि), परिजनों की हानि आदि फल जातक को भौममहादशा में शुक्र की अन्तर्दशा प्राप्त होने पर भोगने होते हैं ॥२७॥

कुजस्यान्तर्गते शुक्रे केन्द्रलाभत्रिकोणगे । स्वोच्चे वा स्वर्क्षगे वाऽपि शुभस्थानाधिपेऽथवा ॥
राज्यलाभो महत्सौख्यं गजाश्वाम्बरभूषणम् । लग्नाधिपेन सम्बन्धे पुत्रदारादिवर्धनम् ॥
आयुषो वृद्धिरैश्वर्य भाग्यवृद्धिसुखं भवेत् । दायेशात्केन्द्रकोणस्थे लाभे वा धनगेऽपि वा ॥
तत्काले श्रियमाप्नोति पुत्रलाभं महत्सुखम् । स्वप्रभोश्च महत्सौख्यं धनवस्त्रादिलाभकृत् ॥
महाराजप्रसादेन ग्रामभूम्यादिलाभदम् । भुक्त्यन्ते फलमाप्नोति गीतनृत्यादिलाभकृत् ॥
पुण्यतीर्थस्नानलाभं कर्माधिपसमन्विते । पुण्यधर्मदयाकूपतडागं कारयिष्यति ॥
दायेशाद्रन्ध्ररिष्फस्थे षष्ठे वा पापसंयुते । करोति दुःखबाहुल्यं देहपीडां धनक्षयम् ॥
राजचौरादिभीतिश्च गृहे कलहमेव च । दारपुत्रादिपीडां च गोमहिष्यादिनाशकृत् ॥
द्वितीयद्यूननाथे तु देहबाधा भविष्यति । श्वेतां गां महिषीं दद्यादायुरारोग्यवृद्धये ॥
(पराशर)

भौममहादशा में सूर्यान्तर्दशाफल

नृपकृतपरिपूजा युद्धलब्धप्रभावः
परिजनधनधान्यश्रीमदन्तःपुरं च ।
अतिविलसितवृत्तिः साहसादाप्तलक्ष्मी-
स्तिमिरभिदि कुजायुर्दायसंहारिणीति ॥२८॥

राजसम्मान की प्राप्ति, युद्ध के कारण प्रभाव, यश-कीर्ति में अभिवृद्धि, परिजन (सेवक), धन-धान्य, स्त्री और अन्तःपुर पर अधिकार प्राप्त होता है । अति विलास में प्रवृत्ति होती है तथा साहसिक क्रिया-कलापों से धन का लाभ होता है ॥२८॥

कुजस्यान्तर्गते सूर्ये स्वोच्चे स्वक्षेत्रकेन्द्रगे । मूलत्रिकोणलाभे वा भाग्यकर्मेशसंयुते ॥
तद्भुक्तौ वाहनं कीर्तिं पुत्रलाभं न विन्दति । धनधान्यसमृद्धिः स्यात् गृहे कल्याणसम्पदः ॥
-क्षेमारोग्यं महद्धैर्यं राजपूज्यं महत्सुखम् । व्यवसायात्फलाधिक्यं विदेशे राजदर्शनम् ॥
दायेशात्षष्ठरिष्फे वा व्यये वा पापसंयुते । देहपीडा मनस्तापः कार्यहानिर्महद्भयम् ॥
शिरोरोगो ज्वरादिश्च अतीसारमथाऽपि वा । द्वितीयद्यूननाथे तु सर्पज्वरविषाद्भयम् ॥
सुतपीडाभयं चैव शान्तिं कुर्याद्यथाविधि । देहारोग्यं प्रकुरुते धनधान्यचयं तथा ॥

भौममहादशा में चन्द्रान्तर्दशाफल

विविधधनसुताप्तिर्विप्रयोगोऽरिवर्गै-
र्वसनशयनभूषारत्नसम्पत्प्रसूतिः ।
भवति गुरुजनार्तिर्गुल्मपित्तप्रपीडा
धरणितनयवर्षे शीतगौ सम्प्रयाते ॥२९॥

अनेक प्रकार के धन और सन्तति की प्राप्ति, शत्रुवर्ग से विपरीतता, वस्त्र, शय्या, आभूषण एवं रत्नादि सम्पदा का लाभ, गुरुजनों को कष्ट, तिल्ली की वृद्धि और पित्तप्रकोप से जातक को कष्ट आदि फल भौममहादशा की चन्द्रान्तर्दशावधि में होते हैं ॥२९॥

कुजस्यान्तर्गते चन्द्रे स्वोच्चे स्वक्षेत्रकेन्द्रगे। भाग्यवाहनकर्मेशलग्नाधिपसमन्विते ॥
करोति विपुलं राज्यं गन्धमाल्याम्बरादिकम्। तडागं गोपुरादीनां पुण्यधर्मादिसङ्ग्रहम् ॥
विवाहोत्सवकर्माणि दारपुत्रादिसौख्यकृत्। पितृमातृसुखावाप्तिं गृहे लक्ष्मीः कटाक्षकृत् ॥
महाराजप्रसादेन स्वेष्टसिद्धिः सुखावहम्। पूर्णे चन्द्रे पूर्णफलं क्षीणे स्वल्पफलं भवेत् ॥
नीचारिस्थेऽष्टमे षष्ठे दायेशाद्रिपुरन्ध्रके। मरणं दारपुत्राणां कष्टं भूमिविनाशनम् ॥
पशुधान्यक्षयश्चैव चौरादिरणभीतिकृत्। द्वितीयद्यूननाथे तु ह्यपमृत्युर्भविष्यति ॥
देहजाड्यं मनोदुःखं दुर्गालक्ष्मीजपं चरेत् ॥ (पराशर)

• राहुमहादशा फल •

राहुमहादशा में राह्वन्तर्दशाफल

विषाम्बुरुग्दुष्टभुजङ्गदर्शनं पराबलासंयुतिरिष्टविच्युतिः ।
अरिष्टवाग्दुष्टजनव्यथा भवेद्विधुन्तुदेनापहृते स्ववत्सरे ॥३०॥

राहुमहादशा में उसकी अपनी अन्तर्दशा में विष और जल से उद्भूत व्याधियों से कष्ट, दुष्टजनों से अपशब्द और मानसिक व्यथा, परस्त्री से सहवास तथा किसी प्रिय स्वजन से वियोग या उसका निधन आदि फल होता है ॥३०॥

कुलीरे वृश्चिके राहौ कन्यायां चापगेऽपि वा। तद्भुक्तौ राजसम्मानं वस्त्रवाहनभूषणम् ॥
व्यवसायात्फलाधिक्यं चतुष्पाज्जीवलाभकृत्। प्रयाणं पश्चिमे भागे वाहनाम्बरलाभकृत् ॥
लग्नादुपचये राहौ शुभग्रहयुतेक्षिते। मित्रांशे तु भङ्गांशे योगकारकसंयुते ॥
राज्यलाभं महोत्साहं राजप्रीतिं शुभावहम्। करोति सुखसम्पत्तिं दारपुत्रादिवर्धनम् ॥
लग्नाष्टमे व्यये राहौ पापयुक्तेऽथ वीक्षिते। चौरादिव्रणपीडा च सर्वत्रैवं भवेद्द्विज ॥
राजद्वारजनद्वेष इष्टबन्धुविनाशनम्। दारपुत्रादिपीडा च भवत्येव न संशयः ॥
द्वितीयद्यूननाथे वा सप्तमस्थानमाश्रिते। सदारोगो महाकष्टं शान्तिं कुर्याद्यथाविधि ॥
(पराशर)

राहुमहादशा में गुर्वन्तर्दशाफल

सुखोपनीतिः सुरविप्रपूजनं विरोगता वामदृशां समागमः ।
सुपुण्यशास्त्रार्थविचारसम्भवः सुरारिदायान्तरगे बृहस्पतौ ॥३१॥

सुख की वृद्धि, देवता और ब्राह्मणों में आस्था एवं पूजन, नैरोग्यता, स्त्री से समागम, पुण्यशास्त्रों की चर्चा और विमर्श आदि फल राहु की महादशा में बृहस्पति की अन्तर्दशावधि में जातक को प्राप्त होते हैं ॥३१॥

राहोरन्तर्गते जीवे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे। स्वोच्चे स्वक्षेत्रे वाऽपि तुङ्गस्थर्क्षांशगेऽपि वा ॥
स्थानलाभं मनोधैर्यं शत्रुनाशं महत्सुखम्। राजप्रीतिकरं सौख्यं जनोऽतीव समश्नुते ॥

दिने दिने वृद्धिरपि सितपक्षे शशी यथा। वाहनादि धनं भूरि गृहे गोधनसङ्कुलम् ॥
नैर्ऋत्ये पश्चिमे भागे प्रयाणं राजदर्शनम्। युक्तकार्यार्थसिद्धिः स्यात्स्वदेशे पुनरेष्यति ॥
उपकारो ब्राह्मणानां तीर्थयात्रादिकर्मणाम्। वाहनग्रामलाभश्च देवब्राह्मणपूजनम् ॥
पुत्रोत्सवादिसन्तोषो नित्यं मिष्टान्नभोजनम्। नीचे वाऽस्तङ्गते वाऽपि षष्ठाष्टव्ययराशिगे ॥
शत्रुक्षेत्रे पापयुक्ते धनहानिर्भविष्यति। कर्मविघ्नो भवेत्तस्य मानहानिश्च जायते ॥
कलत्रपुत्रपीडा च हृद्रोगो राजकार्यकृत्। दायेशात्केन्द्रकोणे वा लाभे वा धनगेऽपि वा ॥
वृश्चिके बलपूर्णे च गृहक्षेत्रादिवृद्धिकृत्। भोजनाम्बरपश्वादिदानधर्मजपादिकम् ॥
भुक्त्यन्ते राजकोपाच्च द्विमासं देहपीडनम्। ज्येष्ठभ्रातुर्विनाशश्च मातृपित्रादिपीडनम् ॥
दायेशात्षष्ठरन्ध्रे वा रिष्फे वा पापसंयुते। तद्भुक्तौ धनहानिः स्याद्देहपीडा भविष्यति ॥
द्वितीयद्यूननाथे वा ह्यपमृत्युर्भविष्यति ॥ (पराशर)

राहुमहादशा में शन्यन्तर्दशाफल

समीरपित्तप्रगदक्षतिस्तनौ तनूजयोषित्सहजैश्च विग्रहः।
स्वभृत्यनाशश्च पदच्युतिर्भवेदिति प्रजायुः प्रविशत्यथार्कजे ॥३२॥

राहुमहादशा में शनि की अन्तर्दशा प्राप्त होने पर जातक को पित्त और वायु के प्रकोप से उत्पन्न व्याधियों से कष्ट, शरीर में घाव, पुत्र-स्त्री-सहोदरों से विरोध, नौकर-चाकरों की हानि और पदच्युति आदि फल सम्भव होता है ॥३२॥

राहोरन्तर्गते मन्दे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे। स्वोच्चे मूलत्रिकोणे वा दुश्चिक्ये लाभराशिगे ॥
तद्भुक्तौ नृपतेः सेवा राजप्रीतिकरी शुभा। विवाहोत्सवकार्याणि कृत्वा पुण्यानि भूरिशः ॥
आरामकरणे युक्तो तडागं कारयिष्यति। शूद्रप्रभुवशादिष्टलाभो गोधनसंग्रहः ॥
प्रयाणं पश्चिमभागे प्रभुमूलाद्धनक्षयम्। देहालस्यं फलाल्पत्वं स्वेदेशे पुनरेष्यति ॥
नीचारिक्षेत्रगे मन्दे रन्ध्रे वा व्ययगेऽपि वा। नीचारिराजभीतिश्च दारपुत्रादिपीडनम् ॥
आत्मबन्धुमनस्तापं दायादजनविग्रहम्। व्यवहारे च कलहमकस्माद्दूषणं लभेत् ॥
दायेशात्षष्ठरिष्फे वा रन्ध्रे वा पापसंयुते। हृद्रोगो मानहानिश्च विवादः शत्रुपीडनम् ॥
अन्यदेशादिसञ्चारो गुल्मवद्व्याधिभाग्भवेत्। कुभोजनं कोद्रवादि जातिदुःखाद्भयं भवेत् ॥
द्वितीयद्यूननाथे तु ह्यपमृत्युर्भविष्यति ॥ (पराशर)

राहुमहादशा में बुधान्तर्दशाफल

सुतस्वसिद्धिः सुहृदां समागमो मनोविनिन्द्यत्वमतीव जायते।
पटुक्रियाभूषणकौशलादयो भुजङ्गसंवत्सरहारिणीन्दुजे ॥३३॥

राहु महादशा की शन्यन्तर्दशावधि में जातक को धन-पुत्र का लाभ, मित्रों का समागम तथा हीनभावना से ग्रस्त मानसिकता होती है। बौद्धिक कार्यों में कुशलता एवं पटुता आती है तथा आभूषणादि का लाभ होता है ॥३३॥

राहोरन्तर्गते सौम्ये भाग्ये वा स्वर्क्षगेऽपि वा। तुङ्गे वा केन्द्रराशिस्थे पुत्रे वा बलगेऽपि वा ॥
राजयोगं प्रकुरुते गृहे कल्याणवर्धनम्। व्यापारेण धनप्राप्तिर्विद्यावाहनमुत्तमम् ॥

विवाहोत्सवकार्याणि चतुष्पाज्जीवलाभकृत् । सौम्यमासे महत्सौख्यं स्ववारे राजदर्शनम् ॥
सुगन्धपुष्पशय्यादि स्त्रीसौख्यं चातिशोभनम् । महाराजप्रसादेन धनलाभो महद्यशः ॥
दायेशात्केन्द्रलाभे वा दुश्चिक्ये भाग्यकर्मगे । देहारोग्यं हृदुत्साह इष्टसिद्धिः सुखावहा ॥
पुण्यश्लोकादिकीर्तिश्च पुराणश्रवणादिकम् । विवाहो यज्ञदीक्षा च दानधर्मदयादिकम् ॥
षष्ठाष्टमव्यये सौम्ये मन्देनापि युतेक्षिते । दायेशात्षष्ठरिष्फे वा रन्ध्रे वा पापसंयुते ॥
देवब्राह्मणनिन्दा च भोगभाग्यविवर्जितः । सत्यहीनश्च दुर्बुद्धिश्चौराहिनृपपीडनम् ॥
अकस्मात्कलहश्चैव गुरुपूजादिनाशनम् । अर्थव्ययो राजकोपो दारपुत्रादिपीडनम् ॥
द्वितीयद्यूननाथे वा ह्यपमृत्युभयं वदेत् ॥

(पराशर)

राहुमहादशा में केत्वन्तर्दशाफल

ज्वराग्निशस्त्रारिभयं शिरोरुजा शरीरकम्पः स्वसुहृद्गुरुव्यथा ।
विषव्रणार्तिः कलहः सुहृज्जनैरहीन्द्रदायान्तरगे शिखाधरे ॥३४॥

राहुमहादशान्तर्गत केत्वन्तर्दशावधि में जातक को ज्वर, अग्नि और शत्रुओं से भय, शिरःशूल, शरीर में कम्पन, मित्रों और गुरुजनों को कष्ट, विषाक्त व्रण से कष्ट, मित्रों से कलह आदि फल होते हैं ॥३४॥

राहोरन्तर्गते केतौ भ्रमणं राजतो भयम् । वातज्वरादिरोगश्च चतुष्पाज्जीवहानिकृत् ॥
अष्टमाधिपसंयुक्ते देहजाड्यं मनोव्यथा । शुभयुक्ते शुभैर्दृष्टे देहसौख्यं धनागमः ॥
राजसम्मानभूषाप्तिर्गृहे शुभकरो भवेत् । लग्नाधिपेन सम्बन्धे इष्टसिद्धिः सुखावहा ॥
लग्नाधिपसमायुक्ते लाभो वा भवति ध्रुवम् । चतुष्पाज्जीवलाभः स्यात्केन्द्रे वाऽथ त्रिकोणगे ॥
रन्ध्रस्थानगते केतौ व्यये वा बलवर्जिते । तद्भुक्तौ बहुरोगः स्याच्चोराहिव्रणपीडनम् ॥
पितृमातृवियोगश्च भ्रातृद्वेषो मनोरुजाम् । द्वितीयद्यूननाथे तु देहबाधा भविष्यति ॥

(पराशर)

राहुमहादशा में शुक्रान्तर्दशाफल

कलत्रलब्धिः शयनोपचारता तुरङ्गमातङ्गमहीसमागमः ।
कफानिलाप्तिः स्वजनैर्विरोधिता भवेद्भुजङ्गायुरपाहृतौ भृगोः ॥३५॥

स्त्रीलाभ, सुन्दर सुखकर शयनोपकरण, हाथी-घोड़े, भूमि आदि की प्राप्ति, कफ-वायु विकार, स्वजनों से विरोध आदि फल राहु महादशा की शुक्रान्तर्दशा में जातक को प्राप्त होते हैं ॥३५॥

राहोरन्तर्गते शुक्रे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे । लाभे वा बलसंयुक्ते योगप्राबल्यमादिशेत् ॥
विप्रमूलाद्धनप्राप्तिर्गोमहिष्यादिलाभकृत् । पुत्रोत्सवादिसन्तोषो गृहे कल्याणसम्भवः ॥
सम्मानं राजसम्मानं राज्यलाभो महत्सुखम् । स्वोच्चे वा स्वर्क्षगे वाऽपि तुङ्गांशगेऽपि वा ॥
नूतनं गृहनिर्माणं नित्यं मिष्टान्नभोजनम् । कलत्रपुत्रविभवं मित्रसङ्गः सुभोजनम् ॥
अन्नदानं प्रियं नित्यं दानधर्मादिसंग्रहः । महाराजप्रसादेन वाहनाम्बरभूषणम् ॥

व्यवसायात्फलाधिक्यं विवाहो मौञ्जिबन्धनम् । षष्ठाष्टमव्यये शुक्रे नीचे शत्रुगृहे स्थिते ॥
मन्दारफणिसंयुक्ते तद्भुक्तौ रोगमादिशेत् । अकस्मात् कलहं चैव पितृपौत्रवियोगकृत् ॥
स्वबन्धुजनहानिश्च सर्वत्र जनपीडनम् । दायादकलहश्चैव स्वप्रभोः स्वस्य मृत्युकृत् ॥
कलत्रपुत्रपीडा च शूलरोगादिसम्भवः । दायेशात्केन्द्रराशिस्थे त्रिकोणे वा समन्विते ॥
लाभे वा कर्मराशिस्थे क्षेत्रपालमहत्सुखम् । सुगन्धवस्त्रशय्यादि गानवाद्यसुखं भवेत् ॥
छत्रचामरभूषाप्तिः प्रियवस्तुसमन्विता । दायेशाद्रिपुरन्ध्रस्थे व्यये वा पापसंयुते ॥
विप्राहिनृपचौरादिमूत्रकृच्छ्रान्महद्भयम् । प्रमेहाद्रौधिरो रोगः कुत्सितान्नं शिरोव्यथा ॥
कारागृहप्रवेशश्च राजदण्डाद्धनक्षयः । द्वितीयद्यूननाथे वा दारपुत्रादिनाशनम् ॥
आत्मपीडा भयं चैव ह्यपमृत्युभयं भवेत् ॥ (पराशर)

राहुमहादशा में सूर्यान्तर्दशाफल

अरिव्यथा स्यादतिपीडनं दृशोर्विषाग्निशस्त्राहतिरापदुद्गमः ।
वधूसुतार्तिर्नृपतेर्महद्भयं भुजङ्गवर्षे तिमिरारिणा हृते ॥३६॥

शत्रु से कष्ट, भयंकर नेत्रपीड़ा, विष, अग्नि और शस्त्राघात से विपत्ति का उद्भव, स्त्री-पुत्रादि को कष्ट, राजभय आदि फल राहु की महादशा में सूर्यान्तर्दशा काल में जातक को प्राप्त होते हैं ॥३६॥

राहोरन्तर्गते सूर्ये स्वोच्चे स्वक्षेत्रकेन्द्रगे । त्रिकोणे लाभगे वाऽपि तुङ्गांशे स्वांशगेऽपि वा ॥
शुभग्रहेण सन्दृष्टे राजप्रीतिकरं शुभम् । धनधान्यसमृद्धिश्च ह्यल्पमानं सुखावहम् ॥
अल्पग्रामाधिपत्यं च स्वल्पलाभो भविष्यति । भाग्यलग्नेशसंयुक्ते कर्मेशेन निरीक्षिते ॥
राजाश्रयो महाकीर्तिर्विदेशगमनं तथा । देशाधिपत्ययोगश्च गजाश्वाम्बरभूषणम् ॥
मनोऽभीष्टप्रदानं च पुत्रकल्याणसम्भवम् । दायेशाद्रिष्फरन्ध्रस्थे षष्ठे वा नीचगेऽपि वा ॥
ज्वरातीसाररोगश्च कलहो राजविग्रहः । प्रयाणं शत्रुवृद्धिश्च नृपचौराग्निपीडनम् ॥
दायेशात्केन्द्रकोणे वा दुश्चिक्ये लाभगेऽपि वा । विदेशे राजसम्मानं कल्याणं च शुभावहम् ॥
द्वितीयद्यूननाथे तु महारोगो भविष्यति ॥

(पराशर)

राहुमहादशा में चन्द्रान्तर्दशाफल

वधूविनाशः कलहो मनोरुजा कृषिक्रियावित्तपशुप्रजाक्षयः ।
सुहृद्विपत्तिः सलिलाद्भयं भवेद्विधौ दशाभर्तरि देवविद्विषः ॥३७॥

स्त्री की क्षति (वियोग), कलह (विवाद), मानसिक व्याधि से कष्ट, कृषिकार्य में व्यस्तता, धन, पशुधन और सन्तति का विनाश, स्वजनों पर विपत्ति, जल से भय आदि फल राहु की महादशा के अन्तर्गत चन्द्रमा की अन्तर्दशा में जातक को भोगने होते हैं ॥३७॥

राहोरन्तर्गते चन्द्रे स्वक्षेत्रे स्वोच्चगेऽपि वा । केन्द्रत्रिकोणगे वाऽपि मित्रर्क्षे शुभसंयुते ॥
राज्यस्वं राजपूज्यत्वं धनार्थं धनलाभकृत् । आरोग्यं भूषणं चैव मित्रस्त्रीपुत्रसम्पदः ॥
पूर्णे चन्द्रे फलं पूर्णं राजप्रीत्या शुभावहम् । अश्ववाहनलाभः स्याद्गृहक्षेत्रादिलाभकृत् ॥

दायेशात्सुखभाग्यस्थे केन्द्रे वा लाभगेऽपि वा । लक्ष्मीकटाक्षचिह्नानि गृहे कल्याणसम्भवः ॥
सर्वकार्यार्थसिद्धिः स्याद्धनधान्यसुखावहा । सत्कीर्तिलाभसम्मानं देव्याराधनमाचरेत् ॥
दायेशात्षष्ठरन्ध्रस्थे व्यये वा बलवर्जिते । पिशाचक्षुद्रव्याघ्राद्यैर्गृहक्षेत्रादिनाशनम् ॥
मार्गे चौरभयं चैव व्रणाधिक्यं महोदयम् । द्वितीयद्यूननाथे तु अपमृत्युस्तदा भवेत् ॥
(पराशर)

राहुमहादशा में भौमान्तर्दशाफल

नृपाग्निचोरास्त्रभयं शरीरिणां शरीरनाशो यदि वा महारुजः ।
पदभ्रमो हृन्नयनप्रपीडनं यदात्र सर्पायुषि सञ्चरेत्कुजः ॥३८॥

राजा, अग्नि, चोर और अस्त्रादि से भय, शरीर का विनाश अथवा महाव्याधि, पदभ्रष्टता, हृदय और नेत्र में पीड़ा आदि फल राहुमहादशा में भौम की अन्तर्दशा आने पर मनुष्यों को प्राप्त होते हैं ॥३८॥

राहोरन्तर्गते भौमे लग्नाल्लाभत्रिकोणगे । केन्द्रे वा शुभसंयुक्ते स्वोच्चे स्वक्षेत्रगेऽपि वा ।
नष्टराज्यधनप्राप्तिर्गृहक्षेत्राभिवृद्धिकृत् । इष्टदेवप्रसादेन सन्तानसुखभाग्भवेत् ॥
क्षिप्रभोज्यान्महत्सौख्यं भूषणाश्वाम्बरादिकृत् । दायेशात्केन्द्रकोणे वा दुश्चिक्ये लाभगेऽपि वा ॥
रक्तवस्त्रादिलाभः स्यात्प्रयाणं राजदर्शनम् । पुत्रवर्गेषु कल्याणं स्वप्रभोश्च महत्सुखम् ॥
सेनापत्यं महोत्साहो भ्रातृवर्गधनागमः । दायेशाद्रन्ध्ररिष्फे वा षष्ठे पापसमन्विते ॥
पुत्रदारादिहानिश्च सोदराणां च पीडनम् । स्थानभ्रंशो बन्धुवर्गदारपुत्रविरोधनम् ॥
चौराहिव्रणभीतिश्च स्वदेहस्य च पीडनम् । आदौ क्लेशकरं चैव मध्यान्ते सौख्यमाप्नुयात् ॥
द्वितीयद्यूननाथे तु देहालस्यं महद्भयम् ॥
(पराशर)

• बृहस्पतिमहादशा में अन्तर्दशा फल •

बृहस्पति की महादशा में बृहस्पत्यन्तर्दशाफल

सौभाग्यकान्तिबहुमानगुणोदयः स्यात्
सत्पुत्रसिद्धिरवनीपतिपूजनं च ।
आचार्यसाधुजनसंयुतिरिष्टसिद्धिः
संवत्सरं हरति देवगुरौ स्वकीयम् ॥३९॥

बृहस्पति की महादशा और उसी की अन्तर्दशा में जातक के भाग्यसुख, शारीरिक कान्ति, मान-सम्मान और प्रतिष्ठा आदि की वृद्धि, सद्गुणों का उदय और सत्पुत्रों की प्राप्ति होती है तथा राजा द्वारा सम्मानित होता है । आचार्य और साधुजनों का समागम और अभीष्ट की सिद्धि होती है ॥३९॥

स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे जीवे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे । अनेकराजाधीशो वा सम्पन्नो राजपूजितः ॥
गोमहिष्यादिलाभश्च वस्त्रवाहनभूषणम् । नूतनस्थाननिर्माणं हर्म्यप्राकारसंयुतम् ॥
गजान्तैश्वर्यसम्पत्तिर्भाग्यकर्मफलोदयः । ब्राह्मणप्रभुसम्मानं समानं प्रभुदर्शनम् ॥

स्वप्रभोः स्वफलाधिक्यं दारपुत्रादिलाभकृत् । नीचांशे नीचराशिस्थे षष्ठाष्टव्ययराशिगे ॥
नीचसङ्गो महादुःखं दायादजनविग्रहः । कलहो न विचारोऽस्य स्वप्रभुष्वपमृत्युकृत् ॥
पुत्रदारवियोगश्च धनधान्यार्थहानिकृत् । सप्तमाधिपदोषेण देहबाधा भविष्यति ॥
(पराशर)

बृहस्पतिमहादशा में शन्यन्तर्दशाफल

वेश्याङ्गनामदकृदासवदोषसङ्ग
उत्कर्षसौख्यसकुटुम्बपशुप्रपीडा ।
अर्थव्ययोरुभयमक्षिजरुक्सुतार्ति-
जैवीं दशां विशति दैनकरे नराणाम् ॥४०॥

बृहस्पति की महादशान्तर्गत शनि की अन्तर्दशा आने पर जातक का वेश्या से समागम होता है, मदिरा-सेवन की प्रवृत्ति और रुचि होती है। सुख का उत्कर्ष होता है, कुटुम्बी जनों और पशुओं को कष्ट, धन का अपव्यय, नेत्रपीड़ा, सन्तान को कष्ट आदि फल होते हैं ॥४०॥

जीवस्यान्तर्गते मन्दे स्वोच्चे स्वक्षेत्रमित्रभे । लग्नात्केन्द्रत्रिकोणस्थे लाभे वा बलसंयुते ॥
राज्यलाभो महत्सौख्यं वस्त्राभरणसंयुतम् । धनधान्यादिलाभश्च स्त्रीलाभो बहुसौख्यकृत् ॥
वाहनाम्बरपश्वादिभूलाभः स्थानलाभकृत् । पुत्रमित्रादिसौख्यं च नरवाहनयोगकृत् ॥
नीलवस्त्रादिलाभश्च नीलाश्वं लभते च सः । पश्चिमां दिशमाश्रित्य प्रयाणं राजदर्शनम् ॥
अनेकयानलाभं च निर्दिशेन्मन्दभुक्तिषु । लग्नात्षष्ठाष्टमे मन्दे व्यये नीचेऽस्तगेऽप्यरौ ॥
धनधान्यादिनाशश्च ज्वरपीडा मनोरुजः । स्त्रीपुत्रादिषु पीडा वा व्रणात्यादिकमुद्भवेत् ॥
गृहे त्वशुभकार्याणि भृत्यवर्गादिपीडनम् । गोमहिष्यादिहानिश्च बन्धुद्वेषी भविष्यति ॥
दायेशात्केन्द्रकोणस्थे लाभे वा धनगेऽपि वा । भूलाभश्चार्थलाभश्च पुत्रलाभसुखं भवेत् ॥
गोमहिष्यादिलाभश्च शूद्रमूलाद्धनं तथा । दायेशाद्रिपुरन्ध्रस्थे व्यये वा पापसंयुते ॥
धनधान्यादिनाशश्च बन्धुमित्रविरोधकृत् । उद्योगभङ्गो देहार्तिः स्वजनानां महद्भयम् ॥
द्विसप्तमाधिपे मन्दे ह्यपमृत्युर्भविष्यति । (पराशर)

बृहस्पति की महादशा में बुधान्तर्दशाफल

स्त्रीद्यूतमद्यजमहाव्यसनं त्रिदोषैः
केचिद्वदन्त्यपि च केवलमङ्गलाप्तिः ।
देवद्विजार्चनसुतार्थसुखप्रयोगै-
र्गीर्वाणपूजितदशां हरतीन्दुसूनौ ॥४१॥

स्त्री, द्यूतकर्म, मदिरा आदि के सेवन-जनित व्याधियों से तथा वायु, पित्त और कफ की विकृति से कष्ट जातक को बृहस्पति महादशा की बुधान्तर्दशावधि में प्राप्त होते हैं। यह एक मत है। कतिपय विद्वानों के अनुसार इस दशान्तर्दशावधि में जातक सुखी, देवता और ब्राह्मणों की अर्चना से धन-पुत्र-पौत्रादि से युक्त होता है ॥४१॥

जीवस्यान्तर्गते सौम्ये केन्द्रलाभत्रिकोणगे । स्वोच्चे वा स्वर्क्षगे वाऽपि दशाधिपसमन्विते ॥
अर्थलाभो देहसौख्यं राज्यलाभो महत्सुखम् । महाराजप्रसादेन स्वेष्टसिद्धिः सुखावहा ॥
वाहनाम्बरपश्वादिगोधनैस्सङ्कुलं गृहम् । महीसुतेन सन्दृष्टे शत्रुवृद्धिः सुखक्षयः ॥
व्यवसायात्फलं नेष्टं ज्वरातीसारपीडनम् । दायेशाद्वाग्यकोणे वा केन्द्रे वा तुङ्गराशिगे ॥
स्वदेशे धनलाभश्च पितृमातृसुखावहः । गजवाजिसमायुक्तौ राजभृतप्रसादतः ॥
दायेशात्षष्ठरन्ध्रस्थे व्यये वा पापसंयुते । शुभदृष्टिविहीने च धनधान्यपरिच्युतिः ॥
विदेशगमनं चैव मार्गे चौरभयं तथा । व्रणदाहाक्षिरोगश्च नानादेशपरिभ्रमः ॥
लग्नात्षष्ठाष्टभावे वा व्यये वा पापसंयुते । अकस्मात्कलहश्चैव गृहे निष्ठुरभाषणम् ॥
चतुष्पाज्जीवहानिश्च व्यवहारे तथैव च । अपमृत्युभयं चैव शत्रूणां कलहो भवेत् ॥
शुभदृष्टे शुभैर्युक्ते दारसौख्यं धनागमम् । आदौ शुभं देहसौख्यं वाहनाम्बरलाभकृत् ॥
अन्ते तु धनहानिश्चेत्स्वात्मसौख्यं न जायते । द्वितीयद्यूननाथे वा ह्यपमृत्युर्भविष्यति ॥
(पराशर)

बृहस्पति की महादशा में केत्वन्तर्दशाफल

शस्त्रव्रणं भवति भृत्यजनैर्विरोध-
श्चित्तव्यथा तनययोषिदुपद्रवश्च ।
प्राणच्युतिर्गुरुसुहृज्जनविप्रयोगः
सौरेड्यमायुरपहृत्य ददाति केतुः ॥४२॥

शस्त्राघात से उत्पन्न व्रण, नौकर-चाकरों के विरोध से उद्भूत मानसिक व्यथा, स्त्री-पुत्रादि को कष्ट, प्राणसंकट और मित्रों और गुरुजनों का वियोग आदि फल जातक को बृहस्पति की महादशा में केतु की अन्तर्दशा आने पर प्राप्त होते हैं ॥४२॥

जीवस्यान्तर्गते केतौ शुभग्रहसमन्विते । अल्पसौख्यधनावाप्तिः कुत्सितान्नस्य भोजनम् ॥
परान्नं चैव श्राद्धान्नं पापमूलधनानि च । दायेशाद्रिपुरन्ध्रस्थे व्यये वा पापसंयुते ॥
राजकोपो धनच्छेदो बन्धनं रोगपीडनम् । बलहानिः पितृद्वेषो भ्रातृद्वेषो मनोरुजः ॥
दायेशात्सुखभाग्यस्थे वाहने कर्मगेऽपि वा । नरवाहनयोगश्च गजाश्वाम्बरसङ्कुलम् ॥
महाराजप्रसादेन स्वेष्टकार्यार्थलाभकृत् । व्यवसायात्फलाधिक्यं गोमहिष्यादिलाभकृत् ॥
यवनप्रभुमूलाद्वा धनवस्त्रादिलाभकृत् । द्वितीयद्यूननाथे तु देहबाधा भविष्यति ॥

बृहस्पति की महादशा में शुक्रान्तर्दशाफल

नानाविधार्थपशुधान्यपरिच्छदस्त्री-
पुत्रान्नपानशयनाम्बरभूषणाप्तिः ।
देवद्विजार्चनमुपासनतत्परत्व-
मायुर्यदा हरति जैवमथासुरेड्यः ॥४३॥

बृहस्पति की महादशान्तर्गत शुक्रान्तर्दशा में जातक को अनेक धन, पशु, धान्य, वस्त्र, स्त्री, पुत्र, अन्न और पेय पदार्थ; शय्या एवं आभूषणादि की प्राप्ति होती है । देवता

और ब्राह्मणों में आस्था तथा उनका पूजन-अर्चन आदि में जातक सदैव तत्पर होता है ।।४३।।

जीवस्यान्तर्गते शुक्रे भाग्यकेन्द्रेशसंयुते । लाभे वा सुतराशिस्थे स्वक्षेत्रे शुभसंयुते ।।
नरवाहनयोगश्च गजाश्वाम्बरसंयुतः । महाराजप्रसादेन लाभाधिक्यं महत्सुखम् ।।
नीलाम्बराणां रक्तानां लाभश्चैव भविष्यति । पूर्वस्यां दिशि विप्रेन्द्र प्रयाणं धनलाभदम् ।।
कल्याणं च महाप्रीतिः पितृमातृसुखावहा । देवतागुरुभक्तिश्च अन्नदानं महत्तथा ।।
तडागगोपुरादीनि दिशेत् पुण्यानि भूरिशः । षष्ठाष्टमव्यये नीचे दायेशाद्वा तथैव च ।।
कलहो बन्धुवैषम्यं दारपुत्रादिपीडनम् । मन्दारराहुसंयुक्तो कलहो राजतो भयम् ।।
स्त्रीमूलात् कलहश्चैव श्वशुरात्कलहस्तथा । सोदरेण विवादः स्याद्धनधान्यपरिच्युतिः ।।
दायेशात्केन्द्रराशिस्थे धने वा भाग्यगेऽपि वा । धनधान्यादिलाभश्च श्रीलाभो राजदर्शनम् ।।
वाहनं पुत्रलाभश्च पशुवृद्धिर्महत्सुखम् । गीतवाद्यप्रसङ्गादिर्विद्वज्जनसमागमः ।।
दिव्यान्नभोजनं सौख्यं स्वबन्धुजनपोषकम् । द्वितीयसप्तमाधिपे शुक्रे तद्दशायां धनक्षतिः ।।
अपमृत्युभयं तस्य स्त्रीमूलादौषधादितः ।

(पराशर)

बृहस्पति की महादशा में सूर्यान्तर्दशाफल

शत्रोर्जयः क्षितिपमाननकीर्तिलाभः
स्याच्चण्डता नरतुरङ्गमवाहनाप्तिः ।
श्रेण्यग्रहारपुरराष्ट्रसमस्तसम्प-
दुच्चैरुचथ्यसहजायुरपाहतेऽर्के ।।४४।।

बृहस्पति की महादशान्तर्गत सूर्य की अन्तर्दशा प्राप्त होने पर शत्रुओं पर विजय, राजा से सम्मान और यश-कीर्ति के विस्तार का लाभ होता है। स्वभाव में उग्रता, नरवाहन और अश्ववाहन आदि का सुख सुलभ होता है तथा जातक समस्त वैभवादि से युक्त होकर किसी नगर, पुर या ग्राम में निवास करता है ।।४४।।

जीवस्यान्तर्गते सूर्ये स्वोच्चे स्वक्षेत्रगेऽपि वा । केन्द्रे वाऽथ त्रिकोणे च दुश्चिक्ये लाभगेऽपि वा ।।
भाग्ये वा बलसंयुक्ते दायेशाद्वा तथैव च । तत्काले धनलाभः स्याद्राजसम्मानवैभवम् ।।
वाहनाम्बरपश्वादिभूषणं पुत्रसम्भवः । मित्रप्रभुवशादिष्टं सर्वकार्ये शुभावहम् ।।
षष्ठाष्टमव्यये सूर्ये दायेशाद्वा तथैव च । शिरोरोगादिपीडा च ज्वरपीडा तथैव च ।।
सत्कर्मसु तदा हीनः पापकर्म च यस्तथा । सर्वत्र जनविद्वेषो ह्यात्मबन्धुविरोधकृत् ।।
अकस्मात्कलहश्चैव जीवस्यान्तर्गते रवौ । द्वितीयद्यूननाथे तु देहपीडा भविष्यति ।।

(पराशर)

बृहस्पति की महादशा में चन्द्रान्तर्दशाफल

योषिद्बहुत्वमरिनाशनमर्थलाभः
कृष्यर्थवस्तुपरमोन्नतकीर्तिलाभः ।

देवद्विजार्चनपरत्वमतीव पुंसां
सञ्जायते गुरुदशाहृति शर्वरीशे ॥४५॥

बृहस्पति की महादशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा प्राप्त होने पर जातक को अनेक शत्रुओं पर विजय प्राप्त होती है तथा वह अनेक स्त्रियों का स्वामी होता है। कृषि से उत्पन्न वस्तुओं के विक्रय से धन का लाभ और वह विपुल यश-कीर्ति का स्वामी होता है। देवता और ब्राह्मणों के प्रति उसकी आस्था दृढ होती है तथा उनकी अर्चना आदि में उसकी प्रवृत्ति होती है ॥४५॥

जीवस्यान्तर्गते चन्द्रे केन्द्रे लाभत्रिकोणगे। स्वोच्चे वा स्वर्क्षराशिस्थे पूर्णे चैव बलैर्युते ॥
दायेशाच्छुभराशिस्थे राजसम्मानवैभवम्। दारपुत्रादिसौख्यं च क्षीराणां भोजनं तथा ॥
सत्कर्म च तथा कीर्तिः पुत्रपौत्रादिवृद्धिदा। महाराजप्रसादेन सर्वसौख्यं धनागमः ॥
अनेकजनसौख्यं च दानधर्मादिसंग्रहः। षष्ठाष्टमव्यये चन्द्रे स्थिते वा पापसंयुते ॥
दायेशात्षष्ठरन्ध्रे वा व्यये वा बलवर्जिते। नानार्थबन्धुहानिश्च विदेशपरिविच्युतिः ॥
नृपचौरादिपीडा च दायादजनविग्रहः। मातुलादिवियोगश्च मातृपीडा तथैव च ॥
द्वितीयषष्ठयोरीशे देहपीडा भविष्यति। (पराशर)

बृहस्पति की महादशा में भौमान्तर्दशाफल

बन्धूपतोषणमरिव्रजतोऽर्थलाभः
सुक्षेत्रसत्कृतिरिह प्रथितप्रभावः।
ईषद्गुरूपहतिरीक्षणसुक्षतिर्वा
क्षित्यात्मजे हरति वत्सरमार्यजातम् ॥४६॥

स्वजनों को जातक से सन्तुष्टि, शत्रुसमूह से धनलाभ, उपजाऊ भूसम्पदादि की प्राप्ति, सार्थक कर्म, उसके प्रभाव में अभिवृद्धि, गुरुजनों को सामान्य चोट-चपेट, नेत्रों में भयंकर चोट आदि फल बृहस्पति की महादशान्तर्गत भौमान्तर्दशा की अवधि में जातक को प्राप्त होते हैं ॥४६॥

जीवस्यान्तर्गते भौमे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे। स्वोच्चे वा स्वर्क्षगे वाऽपि तुङ्गांशे स्वांशगेऽपि वा ॥
विद्याविवाहकार्याणि ग्रामभूम्यादिलाभकृत्। जनसामर्थ्यमाप्नोति सर्वकार्यार्थसिद्धिदम् ॥
दायेशात्केन्द्रकोणस्थे लाभे वा धनगेऽपि वा। शुभयुक्ते शुभैर्दृष्टे धनधान्यादिसम्पदः ॥
मिष्टान्नदानविभवं राजप्रीतिकरं शुभम्। स्त्रीसौख्यं च सुतावाप्तिः पुण्यतीर्थफलं तथा ॥
दायेशाद्रन्ध्रभावे वा व्यये वा नीचगेऽपि वा। पापयुक्तेक्षिते वाऽपि धान्यार्थगृहनाशनम् ॥
नानारोगभयं दुःखं नेत्ररोगादिसम्भवः। पूर्वार्द्धे कष्टमधिकमपरार्द्धे महत्सुखम् ॥
द्वितीयद्यूननाथे तु देहजाड्यं मनोरुजम्। (पराशर)

बृहस्पति की महादशा में राह्वन्तर्दशाफल

बन्धूपतप्तिरुरुमानसरुग्गदार्ति-
श्चोराद्भयं गुरुगदो जठरोद्भवो वा।

राजेन्द्रपीडनमरिव्यसनं स्वनाशः
सम्पद्यते हरति सूरिदशां सुरारौ ॥४७॥

बृहस्पति की महादशा के राह्वन्तर्दशावधि में जातक को स्वजनों और सम्बन्धियों के माध्यम से आपदा, असह्य मानसिक कष्ट, शारीरिक व्याधियों से कष्ट, चोरों से भय, उदर से उद्भूत कठिन व्याधि, राजोत्पीड़न, शत्रुवर्ग से अनिष्ट, धन का विनाश आदि फल होते हैं ॥४७॥

जीवस्यान्तर्गते राहौ स्वोच्चे वा केन्द्रगेऽपि वा । मूलत्रिकोणे भाग्ये च केन्द्राधिपसमन्विते ॥
शुभयुक्तेक्षिते वाऽपि योगप्रीतिं समादिशेत् । भुक्त्यादौ पञ्चमासांश्च धनधान्यादिकं लभेत् ॥
देशग्रामाधिकारं च यवनप्रभुदर्शनम् । गृहे कल्याणसम्पत्तिर्बहुसेनाधिपत्यकम् ॥
दूरयात्राधिगमनं पुण्यधर्मादिसंग्रहः । सेतुस्नानफलावाप्तिरिष्टसिद्धिः सुखावहा ॥
दायेशाद्रन्ध्रभावे वा व्यये वा पापसंयुते । चौराहिव्रणभीतिश्च राजवैषम्यमेव च ॥
गृहे कर्मकलापेन व्याकुलो भवति ध्रुवम् । सोदरेण विरोधः स्याद्दायादजनविग्रहः ॥
गृहे त्वशुभकार्याणि दुःस्वप्नादिभयं ध्रुवम् । अकस्मात्कलहश्चैव क्षुद्रशून्यादिरोगकृत् ॥
द्विसप्तमस्थिते राहौ देहबाधां विनिर्दिशेत् । (पराशर)

• शनिमहादशा में अन्तर्दशाओं के फल •

शनि की महादशा में शन्यन्तर्दशाफल

कृषिवृद्धिभृत्यमहिषाभ्युदयः पवनामयो वृषलजातिधनम् ।
स्थविराङ्गनाप्तिरलसत्वमघो निजवत्सरान्तरगते रविजे ॥४८॥

कृषिकार्य में वृद्धि, भृत्य-महिषादि से सुख, वायुजन्य विकार, निम्न वर्ग से धन का लाभ, वृद्धा से समागम तथा आलस्य में वृद्धि आदि फल शनि की महादशान्तर्गत उसकी अन्तर्दशा की अवधि में जातक को प्राप्त होते हैं ॥४८॥

मूलत्रिकोणे स्वर्क्षे वा तुलायामुच्चगेऽपि वा । केन्द्रत्रिकोणलाभे वा राजयोगादिसंयुते ॥
राज्यलाभो महत्सौख्यं दारपुत्रादिवर्धनम् । वाहनत्रयसंयुक्तं गजाश्वाम्बरसङ्कुलम् ॥
महाराजप्रसादेन सेनापत्यादिलाभकृत् । चतुष्पाज्जीवलाभः स्याद्ग्रामभूमादिलाभकृत् ॥
तथाष्टमे व्यये मन्दे नीचे वा पापसंयुते । तद्भुक्त्यादौ राजभीतिर्विषशस्त्रादिपीडनम् ॥
रक्तस्रावो गुल्मरोगो ह्यतिसारादिपीडनम् । मध्ये चौरादिभीतिश्च देशत्यागो मनोरुजः ॥
अन्ते शुभकरी चैव शनेरन्तर्दशा द्विज । द्वितीयद्यूननाथे तु ह्यपमृत्युर्भविष्यति ॥
(पराशर)

शनि की महादशा में बुधान्तर्दशाफल

सुभगत्वमस्ति सुखिता वनिता नृपलालनं विजयमित्रयुतिः ।
त्रिगदोद्भवः सहजपुत्ररुजा शनिदायहारिणि शशाङ्कसुते ॥४९॥

शनि की महादशा में यदि बुध की अन्तर्दशा प्रभावी हो तो जातक वैभवादि सुख से

सुखी, स्त्रीसङ्गति, राजकृपा, सफलता, सुहृज्जनों का समागम, त्रिदोषजन्य व्याधियों से कष्ट और स्वजन एवं पुत्रों की बीमारी से कष्ट आदि फल जातक को प्राप्त होते हैं ॥४९॥

मन्दस्यान्तर्गते सौम्ये त्रिकोणे केन्द्रगेऽपि वा । सम्मानं च यशः कीर्तिं विद्यालाभं धनागमम् ॥
स्वदेशे सुखमाप्नोति वाहनादिफलैर्युतम् । यज्ञादिकर्मसिद्धिश्च राजयोगादिसम्भवम् ॥
देहसौख्यं हृदुत्साहं गृहे कल्याणसम्भवम् । सेतुस्नानफलावाप्तिस्तीर्थयात्रादिकर्मणा ॥
वाणिज्याद्धनलाभश्च पुराणश्रवणादिकम् । अन्नदानफलं चैव नित्यं मिष्टान्नभोजनम् ॥
षष्ठाष्टमव्यये सौम्ये नीचे वाऽस्तङ्गते सति । रव्यारफणिसंयुक्ते दायेशाद्वा तथैव च ॥
नृपाभिषेकमर्थाप्तिर्देशग्रामाधिपत्यता । फलमीदृशमादौ तु मध्यान्ते रोगपीडनम् ॥
नष्टानि सर्वकार्याणि व्याकुलत्वं महद्भयम् । द्वितीयसप्तमाधीशे देहबाधा भविष्यति ॥
(पराशर)

शनि की महादशा में केत्वन्तर्दशाफल

मरुदग्निपीडनमरिव्यसनं सुतदारविग्रहमतिः सततम् ।
अशुभावलोकनमहेश्च भयं मृदुवत्सरं हरति केतुपतौ ॥५०॥

शनि की महादशा में यदि केतु की अन्तर्दशा प्रभावी हो तो जातक वायु और अग्नि जन्य बाधाओं से पीड़ित होता है। उसे शत्रुभय, स्त्री-पुत्र आदि से विरोध, अशुभ फल की प्राप्ति और सर्पों से भय होता है ॥५०॥

मन्दस्यान्तर्गते केतौ शुभदृष्टियुतेक्षिते । स्वोच्चे वा शुभराशिस्थे योगकारकसंयुते ॥
केन्द्रकोणगते वाऽपि स्थानभ्रंशो महद्भयम् । दरिद्रबन्धनं भीतिः पुत्रदारादिनाशनम् ॥
स्वप्रभोश्च महाकष्टं विदेशगमनं तथा । लग्नाधिपेन संयुक्ते आदौ सौख्यं धनागमः ॥
गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नानं दैवतदर्शनम् । दायेशात्केन्द्रकोणे वा तृतीयभवराशिगे ॥
समर्थो धर्मबुद्धिश्च सौख्यं नृपसमागमः । तथाष्टमे व्यये केतौ दायेशाद्वा तथैव च ॥
अपमृत्युभयं चैव कुत्सितान्नस्य भोजनम् । शीतज्वरातिसारश्च संसारे भवति ध्रुवम् ॥
द्वितीयद्यूनराशिस्थे देहपीडा भविष्यति ।
(पराशर)

शनि की महादशा में शुक्रान्तर्दशाफल

सुहृदङ्गनातनयसौख्ययुतः कृषितोययानजनितार्थचयः ।
शुभकीर्तिरुद्भवति देहभृतां यमदायहारिणि भृगोस्तनये ॥५१॥

शनि की महादशा में शुक्रान्तर्दशा फल प्राप्त होने पर जातक सुहृज्जनों एवं स्त्री-पुत्रादि से सुखी, कृषिकर्म और समुद्रयात्रा से प्राप्त धन से धनी तथा शुभ्र धवल कीर्ति से युक्त होता है ॥५१॥

मन्दस्यान्तर्गते शुक्रे स्वोच्चे स्वक्षेत्रगेऽपि वा । केन्द्रे वा शुभसंयुक्ते त्रिकोणे लाभगेऽपि वा ॥
दारपुत्रधनप्राप्तिर्देहारोग्यं महोत्सवः । गृहे कल्याणसम्पत्ती राज्यलाभं महत्सुखम् ॥
महाराजप्रसादेन ह्यष्टसिद्धिः सुखावहा । सम्मानं प्रभुसम्मानं विप्रवस्त्रादिलाभकृत् ॥

द्वीपान्तराद्वस्त्रलाभ: श्वेताश्वो महिषी तथा। गुरुचारवशाद्भाग्यं सौख्यं च धनसम्पद: ।।
शनिचारान्मनुष्योऽसौ योगमाप्नोत्यसंशयम्। शुक्रनीचास्तगे शुक्रे षष्ठाष्टव्ययराशिग: ।।
दारनाशो मन:क्लेश: स्थाननाशो मनोरुज: । दाराणां स्वजनक्लेश: सन्तापो जनविग्रह: ।।
दायेशाद्भाग्यगे चैव केन्द्रे वा लाभसंयुते। राजप्रीतिकरं चैव मनोऽभीष्टप्रदायकम् ।।
दानधर्मदयायुक्तं तीर्थयात्रादिकं फलम्। शास्त्रार्थकाव्यरचनां वेदान्तश्रवणादिकम् ।।
दारपुत्रादिसौख्यं च लभते नाऽत्र संशय: । दायेशाद्व्ययगे शुक्रे षष्ठे वा ह्यष्टगेऽपि वा ।।
नेत्रपीडा ज्वरभयं स्वकुलाचारवर्जित: । कपोले दन्तशूलादि हृदि गुह्ये च पीडनम् ।।
जलभीतिर्मनस्तापो वृक्षात्पतनसम्भव: । राजद्वारे जनद्वेष: सोदरेण विरोधनम् ।।
द्वितीयसप्तमाधीशे आत्मक्लेशो भविष्यति।

(पराशर)

शनि की महादशा में सूर्यान्तर्दशाफल

मरणं तु वा रिपुभयं सततं गुरुवर्गरुग्जठरनेत्ररुजा।
धनधान्यविच्युतिरिह प्रभवेद्रविजायुराविशति तीव्रकरे ।।५२।।

शनि की महादशा में सूर्य की अन्तर्दशा आने पर जातक की मृत्यु अथवा वह असह्य शत्रुभय से ग्रस्त होता है। गुरुजनों को उदरव्याधि या नेत्रपीड़ा से कष्ट होता है। धन-धान्यादि क्षति आदि सम्भव होता है ।।५२।।

मन्दस्यान्तर्गते सूर्ये स्वोच्चे स्वक्षेत्रगेऽपि वा। भाग्याधिपेन संयुक्ते केन्द्रस्थानत्रिकोणगे ।।
शुभदृष्टियुते वाऽपि स्वप्रभोश्च महत्सुखम्। गृहे कल्याणसम्पत्ति: पुत्रादिसुखवर्धनम् ।।
वाहनाम्बरपश्वादिगोक्षीरैस्सङ्कुलं गृहम्। लग्नाष्टमव्यये सूर्ये दायेशाद्वा तथैव च ।।
हृद्रोगो मानहानिश्च स्थानभ्रंशो मनोरुजा। इष्टबन्धुवियोगश्च उद्योगस्य विनाशनम् ।।
तापज्वरादिपीडा च व्याकुलत्वं भयं तथा। आत्मसम्बन्धिमरणमिष्टवस्तुवियोगकृत् ।।
द्वितीयद्यूननाथे तु देहबाधा भविष्यति।

(पराशर)

शनि की महादशा में चन्द्रान्तर्दशाफल

वनिताहतिर्मरणमेव नृणां सुहृदां विपत्तिरथ रोगभयम्।
जलवातजं भयमतीव भवेद्रविजायुराविशति रात्रिकरे ।।५३।।

शनि की महादशान्तर्गत चन्द्रमा की अन्तर्दशा की अवधि में जातक की पत्नी अथवा स्वयं उसके जीवन का भय होता है। स्वजनों और आत्मीयों पर विपत्ति तथा रोगादि का भय होता है। वायु और जल के प्रकोप से विनाश का भय होता है ।।५३।।

मन्दस्यान्तर्गते चन्द्रेजीवदृष्टिसमन्विते। स्वोच्चे स्वक्षेत्रकेन्द्रस्थे त्रिकोणे लाभगेऽपि वा ।।
पूर्णे शुभग्रहैर्युक्ते राजप्रीतिसमागम: । महाराजप्रसादेन वाहनाम्बरभूषणम् ।।
सौभाग्यं सुखवृद्धिं च भृत्यानां परिपालनम्। पितृमातृकुले सौख्यं पशुवृद्धि: शुभावहा ।।
क्षीणे वा पापसंयुक्ते पापदृष्टे च नीचगे। क्रूरांशकगते वाऽपि क्रूरक्षेत्रगतेऽपि वा ।।

जातकस्य महत्कष्टं राजकोपो धनक्षयः। पितृमातृवियोगश्च पुत्रीपुत्रादिरोगकृत् ॥
व्यवसायात्फलं नेष्टं नानामार्गे धनक्षयः । अकाले भोजनं चैवमौषधस्य च भक्षणम् ॥
फलमेतद्विजानीयादादौ सौख्यं धनागमः । दायेशात्केन्द्रराशिस्थे त्रिकोणे लाभगेऽपि वा ॥
वाहनाम्बरपश्वादिभ्रातृवृद्धिः सुखावहा । पितृमातृसुखावाप्तिः स्त्रीसौख्यं च धनागमः ॥
मित्रप्रभुवशादिष्टं सर्वसौख्यं शुभावहम् । दायेशाद्द्वादशे भावे रन्ध्रे वा बलवर्जिते ॥
शयनं रोगमालस्यं स्थानभ्रष्टं सुखावहम् । शत्रुवृद्धिर्विरोधं च बन्धुद्वेषमवाप्नुयात् ॥
द्वितीयद्यूननाथे तु देहालस्यं भविष्यति ।

(पराशर)

शनि की महादशा में भौमान्तर्दशाफल

स्वपदच्युतिः स्वजनविग्रहरुग्ज्वरवह्निशस्त्रविषभीरथ वा ।
अरिवृद्धिरान्तररुगक्षिभयं रविजायुराविशति भूमिसुते ॥५४॥

शनि की महादशा में जब भौम की अन्तर्दशा आती है तब जातक की पदच्युति, स्वजनों से विरोध (विवाद), ज्वरादि रोग, अग्नि, शस्त्र और विष से भय, शत्रुओं की वृद्धि, आँतों में रोग, नेत्रकष्ट आदि फल होते हैं ॥५४॥

मन्दस्यान्तर्गते भौमे केन्द्रलाभत्रिकोणगे । तुङ्गे स्वक्षेत्रगे वाऽपि दशाधिपसमन्विते ॥
लग्नाधिपेन संयुक्ते आदौ सौख्यं धनागमः । राजप्रीतिकरं सौख्यं वाहनाम्बरभूषणम् ॥
सेनापत्यं नृपप्रीतिः कृषिगोधान्यसम्पदः । नूतनस्थाननिर्माणं भ्रातृवर्गेष्टसौख्यकृत् ॥
नीचे चास्तङ्गते भौमे लग्नादष्टव्ययस्थिते । पापदृष्टियुते वाऽपि धनहानिर्भविष्यति ॥
चौराहिव्रणशस्त्रादिग्रन्थिरोगादिपीडनम् । भ्रातृपित्रादिपीडा च दायादजनविग्रहः ॥
चतुष्पाज्जीवहानिश्च कुत्सितान्नस्य भोजनम् । विदेशगमनं चैव नानामार्गे धनव्ययः ॥
अष्टमद्यूननाथे तु द्वितीयस्थे वाऽथ यदि । अपमृत्युभयं चैव नानाकष्टं पराभवः ॥
(पराशर)

शनि की महादशा में राह्वन्तर्दशाफल

अपमार्गयानमसुभिर्विरहस्तु अथ वा प्रमेहगुरुगुल्मभयम् ।
ज्वररुक्क्षतिः सततमेव नृणामसितान्तरं विशति भोगिपतौ ॥५५॥

कुमार्ग में प्रवृत्ति, प्राणभय अथवा प्रमेह, गुल्म आदि भयंकर व्याधियों से कष्ट, निरन्तर ज्वर से क्षति तथा घाव आदि फल शनि की महादशा में राहु की अन्तर्दशा आने पर जातक को प्राप्त होते हैं ॥५५॥

शनि और राहु दोनों ही पापग्रह होने के कारण इनकी दशान्तर्दशा प्रायः कष्टप्रद होती है। किन्तु यदि दोनों उच्चादि शुभस्थान में स्थित हों तो शुभ फल देते हैं। जैसा कि पराशर ने कहा है—

लग्नाधिपेन संयुक्ते योगकारकसंयुते । स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे केन्द्रे दायेशाल्लाभराशिगे ॥
आदौ सौख्यं धनावाप्तिं गृहक्षेत्रादिसम्पदम् । देवब्राह्मणभक्तिं च तीर्थयात्रादिकं लभेत् ॥

चतुष्पाज्जीवलाभः स्याद्गृहे कल्याणवर्धनम् । मध्ये तु राजभीतिश्च पुत्रामित्रविरोधनम् ॥
मेषे कन्यागते वाऽपि कुलीरे वृषभे तथा । मीनकोदण्डसिंहेषु गजान्तैश्वर्यमादिशेत् ॥
राजसम्मानभूषाप्तिं मृदुलाम्बरसौख्यकृत् । द्वितीयसप्तमाधिपैर्युक्ते देहबाधा भविष्यति ॥
(पराशर)

शनि की महादशा में गुर्वन्तर्दशाफल

अमरार्चनद्विजगणाभिरुचिर्गृहपुत्रदारविहतिस्तु भवेत् ।
धनधान्यवृद्धिरधिका हि नृणां गतवत्यथार्किवयसीन्द्रगुरौ ॥५६॥

देव-ब्राह्मणों की अभ्यर्चना में अभिरुचि, स्त्री-पुत्रादि के साथ स्वगृह में निवास का सुख, धन-धान्यादि की अधिकाधिक वृद्धि आदि फल जातक को शनि की महादशान्तर्गत बृहस्पति की अन्तर्दशा में प्राप्त होते हैं ॥५६॥

पराशर के शब्दों में—

मन्दस्यान्तर्गते जीवे केन्द्रे लाभत्रिकोणगे । लग्नाधिपेन संयुक्ते स्वोच्चे स्वक्षेत्रगेऽपि वा ॥
सर्वकार्यार्थसिद्धिः स्याच्छोभनं भवति ध्रुवम् । महाराजप्रसादेन धनवाहनभूषणम् ॥
सम्मानं प्रभुसन्मानं प्रियवस्त्रार्थलाभकृत् । देवतागुरुभक्तिश्च द्विजजनसमागमः ॥
दारपुत्रादिलाभश्च पुत्रकल्याणवैभवम् । षष्ठाष्टमव्यये जीवे नीचे वा पापसंयुते ॥
निजसम्बन्धिमरणं धनधान्यविनाशनम् । राजस्थाने जनद्वेषः कर्महानिर्भविष्यति ॥
विदेशगमनं चैव कुष्ठरोगादिसम्भवः । दायेशात्केन्द्रकोणे वा धने वा लाभगेऽपि वा ॥
विभवं दारसौभाग्यं राजश्रीधनसम्पदः । भोजनाम्बरसौख्यं च दानधर्माधिकं भवेत् ॥
ब्रह्मप्रतिष्ठासिद्धिश्च क्रतुकर्मफलं तथा । अन्नदानं महाकीर्तिर्वेदान्तश्रवणादिकम् ॥
दायेशात् षष्ठरन्ध्रे वा व्यये वा बलवर्जिते । बन्धुद्वेषो मनोदुःखं कलहश्च पदच्युतिः ॥
कुभोजनं कर्महानी राजदण्डाद्धनव्ययः । कारागृहप्रवेशश्च पुत्रदारादिपीडनम् ॥
द्वितीयद्यूननाथे तु देहबाधा मनोरुजः । आत्मसम्बन्धिमरणं भविष्यति न संशयः ॥
(पराशर)

• बुध की महादशा में अन्तर्दशाफल •

बुध की महादशा में बुधान्तर्दशाफल

धर्ममार्गनिरतिर्विपश्चितां सङ्गमो विमलधीर्धनं द्विजात् ।
विद्यया बहुयशः सुखं सदा चन्द्रजे हरति वत्सरं स्वकम् ॥५७॥

धर्ममार्ग में रति, विद्वज्जनों से समागम, शुभ्र कुशाग्र बौद्धिकता, ब्राह्मण द्वारा धन-लाभ, विद्या के प्रभाव से अपरिमित यशकीर्तिलाभ और सुख आदि फल बुध की महादशान्तर्गत स्वयं की अन्तर्दशावधि में जातक को प्राप्त होते हैं ॥५७॥

मुक्ताविद्रुमलाभश्च ज्ञानकर्मसुखादिकम् । विद्यामहत्त्वं कीर्तिश्च नूतनप्रभुदर्शनम् ॥
विभवं दारपुत्रादिपितृमातृसुखावहम् । स्वोच्चादिस्थेऽथ नीचेऽस्ते षष्ठाष्टव्ययराशिगे ॥

पापयुक्तेऽथवा दृष्टे धनधान्यपशुक्षयः। आत्मबन्धुविरोधश्च शूलरोगादिसम्भवः॥
राजकार्यकलापेन व्याकुलो भवति ध्रुवम्। द्वितीयद्यूननाथे तु दारक्लेशो भविष्यति॥
आत्मसम्बन्धिमरणं वातशूलादिसम्भवः। (पराशर)

बुध की महादशा में केत्वन्तर्दशाफल

दुःखशोककलहाकुलात्मता गात्रकम्पनममित्रसंयुतिः।
क्षेत्रयानवियुतिर्यदा भवेत्सोमसूनुशरदं गतः शिखी॥५८॥

बुधमहादशान्तर्गत केतु की अन्तर्दशा में जातक दुःख, शोक और कलहादि से ग्रस्त होता है, शरीर कम्पन रोग से ग्रस्त होता है, शत्रु से समागम, कृषिक्षेत्र और वाहनादि का विनाश आदि फल होते हैं॥५८॥

बुधस्यान्तर्गते केतौ लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे। शुभयुक्ते शुभैर्दृष्टे लग्नाधिपसमन्विते॥
योगकारकसम्बन्धे दायेशात्केन्द्रलाभगे। देहसौख्यं धनाल्पत्वं बन्धुस्नेहमथादिशेत्॥
चतुष्पाज्जीवलाभः स्यात्सञ्चारेण धनागमः। विद्याकीर्तिप्रसङ्गश्च सम्मानप्रभुदर्शनम्॥
भोजनाम्बरसौख्यं च ह्यादौ मध्ये सुखावहम्। दायेशाद्यदि रन्ध्रस्थे व्यये वा पापसंयुते॥
वाहनात्पतनं चैव पुत्रक्लेशादिसम्भवः। चौरादिराजभीतिश्च पापकर्मरतः सदा॥
वृश्चिकादिविषाद्भीतिर्नीचैः कलहसम्भवः। शोकरोगादिदुःखं च नीचसङ्गादिकं भवेत्॥
द्वितीयद्यूननाथे तु देहजाड्यं भविष्यति। (पराशर)

बुध की महादशा में शुक्रान्तर्दशाफल

देवविप्रगुरुपूजनक्रिया दानधर्मपरतासमागमः।
वस्त्रभूषणसुहृद्युतिर्भवेद्बोधनायुषि समागते सिते॥५९॥

बुधमहादशान्तर्गत शुक्रान्तर्दशा प्राप्त होने पर जातक में देवता, ब्राह्मण और गुरुजनों के प्रति आस्था में वृद्धि और उनके पूजन-अर्चन की प्रवृत्ति विकसित होती है। जातक दान-धर्मादि कर्मों में प्रवृत्त होता है। मित्रों से समागम, वस्त्र और आभूषण का लाभ आदि फल होते हैं॥५९॥

सौम्यस्यान्तर्गते शुक्रे केन्द्रे लाभे त्रिकोणगे। सत्कथापुण्यधर्मादिसंग्रहः पुण्यकर्मकृत्॥
मित्रप्रभुवशादिष्टं क्षेत्रलाभः सुखं भवेत्। दशाधिपात्केन्द्रगते त्रिकोणे लाभगेऽपि वा॥
तत्काले श्रियमाप्नोति राजश्रीधनसम्पदः। वापीकूपतडागादिदानधर्मादिसंग्रहः॥
व्यवसायात्फलाधिक्यं धनधान्यसमृद्धिकृत्। दायेशात्षष्ठरन्ध्रस्थे व्यये वा बलवर्जिते॥
हृद्रोगो महाहानिश्च ज्वरातीसारपीडनम्। आत्मबन्धुवियोगश्च संसारे भवति ध्रुवम्॥
आत्मकष्टं मनस्तापदायकं द्विजसत्तम। द्वितीयद्यूननाथे तु ह्यपमृत्युर्भविष्यति॥
(पराशर)

बुध की महादशा में सूर्यान्तर्दशाफल

हेमविद्रुमतुरङ्गवारणप्रावृतं भवनमन्नपानयुक्।
भूपतेरपि च पूजनं भवेद्भानुमालिनि बुधाब्दकं गते॥६०॥

स्वर्ण, मूँगा, घोड़े, हाथी आदि वैभव से तथा भोजन और पेय पदार्थों से सम्पन्न भवन का लाभ, राजा से सम्मान-प्राप्ति आदि बुध की महादशा में सूर्य की अन्तर्दशा आने पर जातक को प्राप्त होते हैं ।।६०।।

सौम्यस्यान्तर्गते सूर्ये स्वोच्चे स्वक्षेत्रकेन्द्रगे । त्रिकोणे धनलाभे तु तुङ्गांशे स्वांशगेऽपि वा ।।
राजप्रसादसौभाग्यमित्रप्रभुवशात्सुखम् । भूम्यात्मजेन सन्दृष्टे आदौ भूलाभमादिशेत् ।।
लग्नाधिपेन सन्दृष्टे बहुसौख्यं धनागमम् । ग्रामभूम्यादिलाभं च भोजनाम्बरसौख्यकृत् ।।
लग्नाष्टमव्यये वाऽपि शन्यारफणिसंयुते । दायेशाद्रिपुरन्ध्रस्थे व्यये वा बलवर्जिते ।।
चौराग्निशस्त्रपीडा च पित्ताधिक्यं भविष्यति । शिरोरुग्मनसन्ताप इष्टबन्धुवियोगकृत् ।।
द्वितीयसप्तमाधीशे ह्यपमृत्युर्भविष्यति ।

(पराशर)

बुधमहादशा में चन्द्रान्तर्दशा का फल

मस्तकव्यसनमक्षिपीडनं कुष्ठदद्रुबहुकण्ठपीडनम् ।
प्राणसंशययुतिर्नृणां भवेज्ज्ञायुषं व्रजति शीतदीधितौ ।।६१।।

शिर:शूल, नेत्रदोष (या नेत्रों में रोग), कुष्ठ, दाद, कण्ठ में कठिन पीड़ा और प्राणों का संकट बुधमहादशा में चन्द्रान्तर्दशा आने पर जातक को भोगना होता है ।।६१।।

सौम्यस्यान्तर्गते चन्द्रे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे । स्वोच्चे वा स्वर्क्षगे वाऽपि गुरुदृष्टिसमन्विते ।।
योगस्थानाधिपत्येन योगप्राबल्यमादिशेत् । स्त्रीलाभं पुत्रलाभं च वस्त्रवाहनभूषणम् ।।
नूतनालयलाभं च नित्यं मिष्टान्नभोजनम् । गीतवाद्यप्रसङ्गं च शास्त्रविद्यापरिश्रमम् ।।
दक्षिणां दिशिमाश्रित्यप्रयाणं च भविष्यति । द्वीपान्तरादिवस्त्राणां लाभश्चैव भविष्यति ।।
मुक्ताविद्रुमरत्नानि धौतवस्त्रादिकं लभेत् । नीचारिक्षेत्रसंयुक्ते देहबाधा भविष्यति ।।
दायेशात्केन्द्रकोणस्थे दुश्चिक्ये लाभगेऽपि वा । तद्भुक्त्यादौ पुण्यतीर्थस्नानदैवतदर्शनम् ।।
मनोधैर्यं हृदुत्साहो विदेशे धनलाभकृत् । दायेशात्षष्ठरन्ध्रे वा व्यये वा पापसंयुते ।।
चौराग्निनृपभीतिश्च स्त्रीसमागमनं भवेत् । दुष्कृतिर्धनहानिश्च कृषिगोऽश्वादिनाशकृत् ।।

(पराशर)

बुध की महादशा में भौमान्तर्दशाफल

अग्निभीतिरपि नेत्रजा रुजा चोरजं भयमतीव दु:खिता ।
स्थानहानिरथ वातरोगिता ज्ञायुषं हरति मेदिनीसुते ।।६२।।

अग्निभय, नेत्रव्याधि, चोरभय, अतिदु:खी, स्थानहानि या पदच्युति, वातरोगादि से कष्ट—ये सभी बुध की महादशान्तर्गत भौमान्तर्दशा में जातक को भोगने होते हैं ।।६२।।

सौम्यस्यान्तर्गते भौमे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे । स्वोच्चे वा स्वर्क्षगे वाऽपि लग्नाधिपसमन्विते ।।
राजानुग्रहशान्तिं च गृहे कल्याणसम्भवम् । लक्ष्मीकटाक्षचिह्नानि नष्टराज्यार्थमाप्नुयात्।।
पुत्रोत्सवादिसन्तोषं गृहे गोधनसङ्कुलम् । गृहक्षेत्रादिलाभं च गजवाजिसमन्वितम् ।।
राजप्रीतिकरं चैव स्त्रीसौख्यं चातिशोभनम् । नीचक्षेत्रसमायुक्ते ह्यष्टमे वा व्ययेऽपि वा ।।

पापदृष्टियुते वाऽपि देहपीडा मनोव्यथा । उद्योगभङ्गो देशादौ स्वग्रामे धान्यनाशनम् ॥
ग्रन्थिशस्त्रव्रणादीनां भयं तापज्वरादिकम् । दायेशात्केन्द्रगे भौमे त्रिकोणे लाभगेऽपि वा ॥
शुभदृष्टे धनप्राप्तिर्देहसौख्यं भवेन्नृणाम् । पुत्रलाभो यशोवृद्धिर्भ्रातृवर्गो महाप्रियः ॥
दायेशादथ रन्ध्रस्थे व्यये वा पापसंयुते । तद्भुक्त्यादौ महाक्लेशो भ्रातृवर्गे महद्भयम् ॥
नृपाग्निचोरभीतिश्च पुत्रमित्रविरोधनम् । स्थानभ्रंशो भवेदादौ मध्ये सौख्यं धनागमः ॥
अन्ते तु राजभीतिः स्यात्स्थानभ्रंशो ह्यथाऽपि वा । द्वितीयद्यूननाथे तु ह्यपमृत्युभयं भवेत् ॥
(पराशर)

बुध की महादशा में राह्वन्तर्दशाफल

मानहानिरथवाश्रयच्युतिः स्वक्षयोऽग्निविषतोयजं भयम् ।
मस्तकाक्षिजठरप्रपीडनं शीतरश्मिजदशां गतेऽसुरे ॥६३॥

मानहानि अथवा पदच्युति, धनक्षय, अग्नि, जल और विष से भय, शिर, नेत्र और उदर व्याधियों से कष्ट आदि फल जातक को बुध की महादशा में राहु की अन्तर्दशा आने पर प्राप्त होते हैं ॥६३॥

बुधस्यान्तर्गते राहौ केन्द्रलाभत्रिकोणगे । कुलीरे कुम्भगे वाऽपि कन्यायां वृषभेऽपि वा ॥
राजसम्मानकीर्तिश्च धनं च प्रभविष्यति । पुण्यतीर्थस्थानलाभो देवतादर्शनं तथा ॥
इष्टापूर्ते च महतो मानश्चाम्बरलाभकृत् । भुक्त्यादौ देहपीडा च त्वन्ते सौख्यं विनिर्दिशेत् ॥
लग्नाष्टव्ययराशिस्थे तद्भुक्तौ धननाशनम् । भुक्त्यादौ देहनाशाय वातज्वरमजीर्णकृत् ॥
लग्नादुपचये राहौ शुभग्रहसमन्विते । राजसंलापसन्तोषो नूतनप्रभुदर्शनम् ॥
दायेशाद्द्वादशे वाऽपि ह्यष्टमे पापसंयुते । निष्ठुरं राजकार्याणि स्थानभ्रंशो महद्भयम् ॥
बन्धनं रोगपीडा च निजबन्धुमनोव्यथा । हृद्रोगो मानहानिश्च धनहानिर्भविष्यति ॥
द्वितीयसप्तमस्थे वा ह्यपमृत्युर्भविष्यति ।
(पराशर)

बुधमहादशा में बृहस्पत्यन्तर्दशाफल

व्याधिशत्रुभयविच्युतिर्भवेद्ब्रह्मसिद्धिरवनीशसत्कृतिः ।
धर्मसिद्धितपसां समुद्गमो देवमन्त्रिणि विदो दशां गते ॥६४॥

बुध की महादशान्तर्गत बृहस्पति की अन्तर्दशा प्राप्त हो तो जातक को रोग और शत्रुओं से मुक्ति, आध्यात्मिक उपलब्धि, राजा से सम्मान, धार्मिक कृत्यों, तप-अनुष्ठानादि में सफलता आदि फल जातक को प्राप्त होते हैं ॥६४॥

बुधस्यान्तर्गते जीवे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे । स्वोच्चे वा स्वर्क्षगे वाऽपि लाभे वा धनराशिगे ॥
देहसौख्यं धनावाप्तिं राजप्रीतिं तथैव च । विवाहोत्सवकार्याणि नित्यं मिष्टान्नभोजनम् ॥
गोमहिष्यादिलाभश्च पुराणश्रवणादिकम् । देवतागुरुभक्तिश्च दानधर्ममखादिकम् ॥
यज्ञकर्मप्रवृद्धिश्च शिवपूजाफलं तथा । नीचे वास्तङ्गते वाऽपि षष्ठाष्टमव्ययेऽपि वा ॥
शन्यारदृष्टिसंयुक्ते कलहो राजविग्रहः । चौरादिदेहपीडा च पितृमातृविनाशनम् ॥

मानहानी राजदण्डो धनहानिर्भविष्यति । विषाहिज्वरपीडा च कृषिभूमिविनाशनम् ।।
दायेशात्केन्द्रकोणे वा लाभे वा बलसंयुते । बन्धुपुत्रहृदुत्साहो शुभं च धनसंयुतम् ।।
पशुवृद्धिर्यशोवृद्धिरन्नदानादिकं फलम् । दायेशात्षष्ठरन्ध्रे वा व्यये वा बलवर्जिते ।।
अङ्गतापश्च वैकल्यं देहबाधा भविष्यति । कलत्रबन्धुवैषम्यं राजकोपो धनक्षयः ।।
अकस्मात्कलहाद्भीतिः प्रमादो द्विजतो भयम् । द्वितीयसप्तमस्थे वा देहबाधा भविष्यति ।।
(पराशर)

बुधमहादशा में शन्यन्तर्दशाफल

अर्थधर्मपरिलुप्तिरुच्चकैः सर्वकार्यविफलत्वमङ्गिनाम् ।
श्लेष्मवातजनिता रुगुद्भवेद्बोधनायुषि समागतेऽसिते ।।६५।।

धर्म और धन की विपुल क्षति, सभी कार्यों में विफलता, कफ-वात के प्रकोप से उत्पन्न व्याधियों से पीड़ा आदि लक्षण बुध की महादशान्तर्गत शनि की अन्तर्दशावधि में प्रगट होते हैं ।।६५।।

सौम्यान्तर्गते मन्दे स्वोच्चे स्वक्षेत्रकेन्द्रगे । त्रिकोणलाभगे वाऽपि गृहे कल्याणवर्धनम् ।।
राज्यलाभं महोत्साहं गृहे गोधनसङ्कुलम् । शुभस्थानफलावाप्तिं तीर्थवासं तथादिशेत् ।।
अष्टमे व्यये वा मन्दे दायेशाद्वा तथैव च । अरातिदुःखबाहुल्यं दारपुत्रादिपीडनम् ।।
बुद्धिभ्रंशो बन्धुनाशः कर्मनाशो मनोरुजः । विदेशगमनं चैव दुःस्वप्नादिप्रदर्शनम् ।।
(पराशर)

• केतुमहादशा में अन्तर्दशा फल •

केतु की महादशा में केत्वन्तर्दशाफल

रिपुजनकलहं सुहृद्विरोधं त्वशुभवचः श्रवणं ज्वराङ्गदाहम् ।
गमनपरधाम्नि वित्तनाशं शिखिनि लभेत दशां गते स्वकीयाम् ।।६६।।

केतुमहादशा में केतु की ही अन्तर्दशा प्राप्त होने पर शत्रुओं से कलह (विवाद), स्वजनों और मित्रों से विरोध, अशुभ संवादों का श्रवण, ज्वर तथा शरीर में जलन, दूसरों के भवन में निवास, धन का नाश आदि फल जातक को प्राप्त होते हैं ।।६६।।

केन्द्रे त्रिकोणलाभे वा केतौ लग्नेशसंयुते । भाग्यकर्मसुसम्बन्धे वाहनेशसमन्विते ।।
तद्भुक्तौ धनधान्यादिचतुष्पाज्जीवलाभकृत् । पुत्रदारादिसौख्यं च राजप्रीतिमनोरुजः ।।
ग्रामभूम्यादिलाभश्च गृहं गोधनसङ्कुलम् । नीचास्तखेटसंयुक्ते ह्यष्टमे व्ययगेऽपि वा ।।
हृद्रोगो मानहानिश्च धनधान्यपशुक्षयः । दारपुत्रादिपीडा च मनश्चाञ्चल्यमेव च ।।
द्वितीयद्यूननाथेन सम्बन्धे तत्र संस्थिते । अनारोग्यं महत्कष्टमात्मबन्धुवियोगकृत् ।।
(पराशर)

केतुमहादशा में शुक्रान्तर्दशाफल

द्विजवरकलहः स्त्रिया विरोधः स्वकुलजनैरपि कन्यकाप्रसूतिः ।
परिभवजननं परोपतापो भवति सिते शिखिवत्सरान्तराले ।।६७।।

ब्राह्मण-वर्ग से विवाद, स्त्री और स्वजनों से विरोध, कन्याजन्म, अपमान, दूसरों से परिताप आदि फल केतुमहादशा में शुक्र की अन्तर्दशा आने पर प्राप्त होते हैं ॥६७॥

केतोरन्तर्गते शुक्रे स्वोच्चे स्वक्षेत्रसंयुते । केन्द्रत्रिकोणलाभे वा राज्यनाथेन संयुते ॥
राजप्रीतिं च सौभाग्यं दिशेत्स्वाम्बरसङ्कुलम् । तत्काले श्रियमाप्नोति भाग्यकर्मेशसंयुते ॥
नष्टराज्यधनप्राप्तिं सुखवाहनमुत्तमम् । सेतुस्नानादिकं चैव देवतादर्शनं महत् ॥
महाराजप्रसादेन ग्रामभूम्यादिलाभकृत् । दायेशात्केन्द्रकोणे वा दुश्चिक्ये लाभगेऽपि वा ॥
देहारोग्यं शुभं चैव गृहे कल्याणशोभनम् । भोजनाम्बरभूषाप्तिरथदोलादिलाभकृत् ॥
दायेशाद्रिपुरन्ध्रस्थे व्यये वा पापसंयुते । अकस्मात्कलहं चैव पशुधान्यादिपीडनम् ॥
नीचस्थे खेटसंयुक्ते लग्नात्षष्ठाष्टराशिगे । स्वबन्धुजनवैषम्यं शिरोक्षिव्रणपीडनम् ॥
हृद्रोगं मानहानिं च धनधान्यपशुक्षयम् । कलत्रपुत्रपीडायाः सञ्चारं च समादिशेत् ॥
(पराशर)

केतुमहादशा में सूर्यान्तर्दशाफल

गुरुजनमरणं ज्वरावतारः स्वजनविरोधविदेशयानलाभः ।
नृपकृतकलहः कफानिलार्तिर्विशति रवौ शिखिवत्सरान्तरालम् ॥६८॥

केतु की महादशान्तर्गत सूर्य की अन्तर्दशा में गुरुजनों का निधन, ज्वर, स्वजनों से विरोध, लाभप्रद विदेशयात्रा, राजा से विवाद, कफ-वातप्रकोप जन्य व्याधियों से कष्ट आदि फल जातक को प्राप्त होते हैं ॥६८॥

केतोरन्तर्गते सूर्ये स्वोच्चे स्वक्षेत्रगेऽपि वा । केन्द्रत्रिकोणलाभे वा शुभयुक्तनिरीक्षिते ॥
धनधान्यादिलाभश्च राजानुग्रहवैभवम् । अनेकशुभकार्याणि चेष्टसिद्धिः सुखावहा ॥
अष्टमव्ययराशिस्थे पापग्रहसमन्विते । तद्भुक्तौ राजभीतिश्च पितृमातृवियोगकृत् ॥
विदेशगमनं चैव चौराहिविषपीडनम् । राजमित्रविरोधश्च राजदण्डाद्धनक्षयः ॥
शोकरोगभयञ्चैव उष्णाधिक्यं ज्वरो भवेत् । दायेशात्केन्द्रकोणे वा लाभे वा धनसंस्थिते ॥
देहसौख्यं चाऽर्थलाभो पुत्रलाभो मनोबलम् । सर्वकार्यार्थसिद्धिः स्यात्स्वल्पग्रामाधिपत्ययुक् ॥
दायेशाद्रन्ध्ररिष्फे वा स्थिते वा पापसंयुते । अन्तर्विघ्नो मनोभीतिर्धनधान्यपशुक्षयः ॥
आदौ मध्ये महाक्लेशानन्ते सौख्यं विनिर्दिशेत् । द्वितीयसप्तमाधीशे ह्यपमृत्युर्भविष्यति ॥
(पराशर)

केतुमहादशा में चन्द्रान्तर्दशाफल

सुलभबहुधनं तथैव हानिः सुतविरहो बहुदुःखभाक्प्रसूतिः ।
परिजनयुवतिप्रजाप्रलाभः शशिनि यदा शिखिदायमभ्युपेते ॥६९॥

विपुल धन का लाभ और फिर उसकी हानि, पुत्रवियोग, पारिवारिक संकट स्वरूप शिशुजन्म, सेवकों और कन्या सन्तति का जन्म आदि केतु की महादशा में चन्द्रान्तर्दशा आने पर प्राप्त होता है ॥६९॥

केतोरन्तर्गते चन्द्रे स्वोच्चे स्वक्षेत्रगेऽपि वा । केन्द्रत्रिकोणलाभे वा धने शुभसमन्विते ॥
राजप्रीतिर्महोत्साहः कल्याणं च महत्सुखम् । महाराजप्रसादेन गृहभूम्यादिलाभकृत् ॥
भोजनाम्बरपश्वादिव्यवसायेऽधिकं फलम् । अश्ववाहनलाभश्च वस्त्राभरणभूषणम् ॥
देवालयतडागादिपुण्यधर्मादिसंग्रहम् । पुत्रदारादिसौख्यं च पूर्णचन्द्रः प्रयच्छति ॥
क्षीणे वा नीचगे चन्द्रे षष्ठाष्टव्ययराशिगे । आत्मसौख्ये मनस्तापं कार्यविघ्नं महद्भयम् ॥
पितृमातृवियोगं च देहजाड्यं मनोव्यथाम् । व्यवसायात्फलं कष्टं पशुनाशं भयं वदेत् ॥
दायेशात्केन्द्रकोणे वा लाभे वा बलसंयुते । कृषिगोभूमिलाभं च इष्टबन्धुसमागमम् ॥
तस्मात्स्वकार्यसिद्धिं च गृहे गोक्षीरमेव च । भुक्त्यादौ शुभमारोग्यं मध्ये राजप्रियं शुभम् ।
अन्ते तु राजभीतिं च विदेशगमनं तथा । दूरयात्रादिसञ्चारं सम्बन्धिजनपूजनम् ॥
दायेशात्षष्ठरिष्फे वा रन्ध्रे वा बलवर्जिते । धनधान्यादिहानिश्च मनो व्याकुलमेव च ॥
स्वबन्धुजनवैरं च भ्रातृपीडा तथैव च । निधनाधिपदोषेण द्विसप्तपतिसंयुते ॥
अपमृत्युभयं तस्य····· ।

(पराशर)

केतुमहादशा में भौमान्तर्दशाफल

स्वकुलजकलहं स्वबन्धुनाशं भयमपि पन्नगजं वदन्ति चोरात् ।
हुतवहभयशत्रुपीडनं च व्रजति कुजे ध्वजनामखेचरायुः ॥७०॥

केतु की महादशान्तर्गत भौम की अन्तर्दशा प्राप्त होने पर जातक के अपने कुल के सदस्यों से विवाद, स्वजनों का विनाश, सर्प और चोर से भय आदि फल होता है। अग्निभय और शत्रुओं द्वारा उत्पीडन आदि फल होते हैं ॥७०॥

केतोरन्तर्गते भौमे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे । स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे वाऽपि शुभग्रहयुतेक्षिते ॥
आदौ शुभफलं चैव ग्रामभूम्यादिलाभकृत् । धनधान्यादिलाभश्च चतुष्पाज्जीवलाभकृत् ॥
गृहारामक्षेत्रलाभो राजानुग्रहवैभवम् । भाग्ये कर्मेशसम्बन्धे भूलाभः सौख्यमेव च ॥
दायेशात्केन्द्रकोणे वा दुश्चिक्ये लाभगेऽपि वा । राजप्रीतिर्यशोलाभः पुत्रमित्रादिसौख्यकृत् ॥
तथाष्टमव्यये भौमे दायेशाद्धनगेऽपि वा । द्रुतं करोति मरणं विदेशे चापदं भ्रमम् ॥
प्रमेहमूत्रकृच्छ्रादिचौरादिनृपपीडनम् । कलहादिव्यथायुक्तं किञ्चित् सुखविवर्धनम् ॥
द्वितीयद्यूननाथे तु तापज्वरविषाद्भयम् । दारपीडामनःक्लेशमपमृत्युभयं भवेत् ॥

(पराशर)

केतुमहादशा में राह्वन्तर्दशाफल

अरिकृतकलहं नृपाग्निचौरैर्भयमपि पन्नगजं वदन्ति तज्ज्ञाः ।
खलजनवचनं दुरिष्टचेष्टा तमसि गतेऽत्र शिखीन्द्रदायमाहुः ॥७१॥

शत्रुओं से कलह, राजा, अग्नि और चोर से हानि, सर्पदंश का भी भय, दुर्जनों के दुर्वचन, अन्य के लिए हानिकर कृत्यों में संलग्नता आदि फल केतुमहादशान्तर्गत राहु की अन्तर्दशा में जातक को भोगने होते हैं ॥७१॥

केतोरन्तर्गते राहौ स्वोच्चे मित्रस्वराशिगे। केन्द्रत्रिकोणे लाभे वा दुश्चिक्ये धनसंज्ञके ।।
तत्काले धनलाभ: स्यात्सञ्चारो भवति ध्रुवम्। म्लेच्छप्रभुवशात्सौख्यं धनधान्यफलादिकम् ।।
चतुष्पाज्जीवलाभ: स्याद्ग्रामभूम्यादिलाभकृत्। भुक्त्यादौ क्लेशमाप्नोति मध्यान्ते सौख्यमाप्नुयात् ।।
रन्ध्रे वा व्ययगे राहौ पापसन्दृष्टसंयुते। बहुमूत्रं कृशं देहं शीतज्वरविषाद्भयम् ।।
चातुर्थिकज्वरं चैव क्षुद्रोपद्रवपीडनम्। अकस्मात्कलहं चैव प्रमेहं शूलमादिशेत्।
द्वितीयसप्तमस्थे वा तदा क्लेशं महत्भयम्।

(पराशर)

केतुमहादशा में गुर्वन्तर्दशाफल

सुतवरजननं सुरेन्द्रपूजा धरणिधनाप्तिरुपायनार्थसिद्धिः।
धनचयजननं महीशमानो भवति गतेऽत्र गुरौ शिखीन्द्रदायम् ।।७२।।

गुणवान् पुत्र की प्राप्ति, देवता का पूजनार्चन, धन और भू-सम्पदादि का लाभ, उपहारादि अथवा दीक्षा प्रदान से धनागम, अतुल धनसंग्रह , राजा से सम्मान आदि फल केतु की महादशा में बृहस्पति की अन्तर्दशा प्राप्त होने पर जातक को प्राप्त होते हैं ।।७२।।

केतोरन्तर्गते जीवे केन्द्रे लाभे त्रिकोणगे। स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे वाऽपि लग्नाधिपसमन्विते ।।
कर्मभाग्याधिपैर्युक्ते धनधान्यार्थसम्पदम्। राजप्रीतिं तथोत्साहमश्वान्दोल्यादिकं दिशेत् ।।
गृहे कल्याणसम्पत्तिं पुत्रलाभं महोत्सवम्। पुण्यतीर्थं महोत्साहं सत्कर्म च सुखावहम् ।।
इष्टदेवप्रसादेन विजयं कार्यलाभकृत्। राजसंलापकार्याणि नूतनप्रभुदर्शनम् ।।
षष्ठाष्टमव्यये जीवे दायेशान्नीचगेऽपि वा। चौराहिव्रणभीतिं च धनधान्यादिनाशनम् ।।
पुत्रदारवियोगं च त्वतीव क्लेशसम्भवम्। आदौ शुभफलं चैव अन्ते क्लेशकरं वदेत् ।।
दायेशात्केन्द्रकोणे वा दुश्चिक्ये लाभगेऽपि वा। शुभयुक्ते नृपप्रीतिर्विचित्राम्बरभूषणम् ।।
दूरदेशप्रयाणं च स्वबन्धुजनपोषणम्। भोजनाम्बरपश्वादि भुक्त्यादौ देहपीडनम् ।।
अन्ते तु स्थानचलनमकस्मात्कलहो भवेत्।

(पराशर)

केतुमहादशा में शन्यन्तर्दशाफल

परिजनविहतिं परोपतापं रिपुजनविग्रहमङ्गभङ्गतां च।
धनपदवियुतिं तथाहुरार्या गतवति सूर्यसुते शिखाधरायुः ।।७३।।

केतु की महादशान्तर्गत शनि की जब अन्तर्दशा प्राप्त हो तो सेवकों को अथवा सेवकों से कष्ट, दूसरों के द्वारा कष्ट, शत्रुओं से विरोध, अङ्ग-भङ्ग, धन का विनाश और पदच्युति आदि सम्भव होते हैं। ऐसा पूर्वाचार्यों का कहना है ।।७३।।

केतोरन्तर्गते मन्दे स्वदशायां तु पीडनम्। बन्धोः क्लेशो मनस्तापश्चतुष्पाज्जीवलाभकृत् ।।
राजकार्यकलापेन धननाशो महद्भयम्। स्थानाच्च्युतिः प्रवासश्च मार्गे चौरभयं भवेत् ।।
आलस्यं मनसो हानिश्चाष्टमे व्ययराशिगे। मीनत्रिकोणगे मन्दे तुलायां स्वर्क्षगेऽपि वा ।।
केन्द्रत्रिकोणलाभे वा दुश्चिक्ये वा शुभांशके। शुभग्रहयुते चैव सर्वकार्यार्थसाधनम् ।।

स्वप्रभोश्च महत्सौख्यं श्रवणं च सुखावहम् । स्वग्रामे सुखसम्पत्तिः स्ववर्गे राजदर्शनम् ॥
दायेशात्षष्ठरिष्फे वा अष्टमे पापसंयुते । देहतापो मनस्तापः कार्ये विघ्नो महद्भयम् ॥
आलस्यं मानहानिश्च पितृमात्रोर्विनाशनम् । द्वितीयद्यूननाथे तु ह्यपमृत्युभयं भवेत् ॥
(पराशर)

केतुमहादशा में बुधान्तर्दशाफल

सुतवरजननं प्रभुप्रशस्तिः क्षितिधनसिद्धिररीश्वरप्रपीडा ।
पशुकृषिविहतिर्भवेत्तु पुंसां विशति बुधे शिखिवत्सरान्तरालम् ॥७४॥

श्रेष्ठ पुत्र की प्राप्ति, प्रभुतासम्पन्न व्यक्तियों द्वारा प्रशस्ति, भू-सम्पदा का लाभ, शत्रुओं से उत्पीडन, पशुधन और कृषि की हानि आदि फल केतु की महादशा में बुधान्तर्दशा आने पर जातक को प्राप्त होते हैं ॥७४॥

केतोरन्तर्गते सौम्ये केन्द्रलाभत्रिकोणगे । स्वोच्चे स्वक्षेत्रसंयुक्ते राज्यलाभो महत्सुखम् ॥
सत्कथाश्रवणं दानं धर्मसिद्धिः सुखावहा । भूलाभः पुत्रलाभश्च शुभगोष्ठीधनागमः ॥
अयत्नाद्धर्मलाभश्च विवाहश्च भविष्यति । गृहे शुभकरं कर्म वस्त्राभरणभूषणम् ॥
भाग्यकर्माधिपैर्युक्ते भाग्यवृद्धिः सुखावहा । विद्वद्गोष्ठीकथाभिश्च कालक्षेपो भविष्यति ॥
षष्ठाष्टमव्यये सौम्ये मन्दाराहियुतेक्षिते । विरोधो राजवर्गैश्च परगेहनिवासनम् ॥
वाहनाम्बरपश्वादिधनधान्यादिनाशकृत् । भुक्त्यादौ शोभनं प्रोक्तं मध्ये सौख्यं धनागमः ॥
अन्ते क्लेशकरं चैव दारपुत्रादिपीडनम् । दायेशात्केन्द्रगे सौम्ये त्रिकोणे लाभगेऽपि वा ॥
देहारोग्यं महाल्लाभः पुत्रकल्याणवैभवम् । भोजनाम्बरपश्वादिव्यवसायेऽधिकं फलम् ॥
दायेशात्षष्ठरन्ध्रे वा व्यये वा बलवर्जिते । तद्भुक्त्यादौ महाक्लेशो दारपुत्रादिपीडनम् ॥
राजभीतिकरश्चैव मध्ये तीर्थकरो भवेत् । द्वितीयद्यूननाथे तु ह्यपमृत्युर्भविष्यति ॥
(पराशर)

• शुक्रमहादशा में अन्तर्दशा फल •

शुक्रमहादशा में शुक्रान्तर्दशाफल

वसनभूषणवाहनचन्दनाद्यनुभवः प्रमदासुखसम्पदः ।
द्युतियुतिः क्षितिपाद्धनलब्धयो भृगुसुते स्वदशां प्रविशत्यपि ॥७५॥

शुक्र की महादशा में शुक्र की ही अन्तर्दशा प्राप्त होने पर जातक वस्त्र, आभूषण, वाहन, चन्दनादि सुगन्धित पदार्थों तथा स्त्रीसुख से सुखी होता है । उसके शारीरिक कान्ति की वृद्धि होती है और राजा से धन का लाभ होता है ॥७५॥

अथ स्वान्तर्गते शुक्रे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे । लाभे वा बलसंयुक्ते तद्भुक्तौ च शुभं फलम् ॥
विप्रमूलाद्धनप्राप्तिर्गोमहिष्यादिलाभकृत् । पुत्रोत्सवादिसन्तोषो गृहे कल्याणसम्भवः ॥
सम्मानं राजसन्मानं राज्यलाभो महत्सुखम् । स्वोच्चे वा स्वर्क्षगे वाऽपि तुङ्गांशे स्वांशगेऽपि वा ॥
नूतनालयनिर्माणं नित्यं मिष्टान्नभोजनम् । कलत्रपुत्रविभवं मित्रसंयुक्तभोजनम् ॥
अन्नदानं प्रियं नित्यं दानधर्मादिसङ्ग्रहः । महाराजप्रसादेन वाहनाम्बरभूषणम् ॥

व्यवसायात्फलाधिक्यं चतुष्पाज्जीवलाभकृत् । प्रयाणं पश्चिमे भागे वाहनाम्बरलाभकृत् ॥
लग्नाद्युपचये शुक्रे शुभग्रहयुतेक्षिते । मित्रांशे तुङ्गलाभेशयोगकारकसंयुते ॥
राज्यलाभो महोत्साहो राजप्रीतिः शुभावहा । गृहे कल्याणसम्पत्तिर्दारपुत्रादिवर्द्धनम् ॥
षष्ठाष्टमव्यये शुक्रे पापयुक्तेऽथ वीक्षिते । चौरादिव्रणभीतिश्च सर्वत्र जनपीडनम् ॥
द्वितीयद्यूननाथे तु स्थिते चेन्मरणं भवेत् ॥ (पराशर)

शुक्रमहादशा में सूर्यान्तर्दशाफल

नयनकुक्षिकपोलगदोद्भवः क्षितिभृतो भयमस्ति शरीरिणाम् ।
गुरुकुलोद्भवबान्धवपीडनं भृगुसुतायुषि भानुमति स्थिते ॥७६॥

शुक्र की महादशा में यदि सूर्य की अन्तर्दशा प्राप्त हो तो जातक को नेत्र, कुक्षि प्रदेश और गालों में रोग का उद्भव, राजा और गुरुजनों से भय, स्वकुल के सदस्यों और बन्धु-बान्धवों से उत्पीडन आदि फल होता है ॥७६॥

शुक्रस्यान्तर्गते सूर्ये सन्तापो राजविग्रहः । दायादकलहश्चैव स्वोच्चनीचविवर्जिते ॥
स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे सूर्ये मित्रर्क्षे केन्द्रत्रिकोणगे । दायेशात्केन्द्रकोणे वा लाभे वा धनगेऽपि वा ॥
तद्भुक्तौ धनलाभः स्याद्राज्यस्त्रीधनसम्पदः । स्वप्रभोश्च महत्सौख्यमिष्टबन्धोः समागमः ॥
पितृभ्रात्रोः सुखप्राप्तिं भ्रातृलाभं सुखावहम् । सत्कीर्तिं सुखसौभाग्यं पुत्रलाभं च विन्दति ॥
तथाष्टमे व्यये सूर्ये रिपुराशिस्थितेऽपि वा । नीचे वा पापवर्गस्थे देहतापो मनोरुजः ॥
स्वजनोपरि संक्लेशो नित्यं निष्ठुरभाषणम् । पितृपीडा बन्धुहानी राजद्वारे विरोधकृत् ॥
व्रणपीडाहिबाधा च स्वगृहे च भयं तथा । नानारोगभयं चैव गृहक्षेत्रादिनाशनम् ॥
सप्तमाधिपतौ सूर्ये ग्रहबाधा भविष्यति । (पराशर)

शुक्रमहादशा में चन्द्रान्तर्दशाफल

नखशिरोरदनक्षतिरुच्चकैः पवनपित्तरुगर्थविनाशनम् ।
ग्रहणिगुल्मकयक्ष्मकपीडनं सितवयोहृति तत्र हिमत्विषि ॥७७॥

शुक्रमहादशान्तर्गत चन्द्रमा की अन्तर्दशावधि में जातक को दाँत, नेत्र और शिर में भयानक रोग से कष्ट, वायु और पित्त प्रकोप जन्य व्याधि से कष्ट और धन का विनाश होता है तथा संग्रहणी, तिल्ली वृद्धि और क्षय आदि व्याधियों से कष्ट होता है ॥७७॥

शुक्रस्यान्तर्गते चन्द्रे केन्द्रलाभत्रिकोणगे । स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे चैव भाग्यनाथेन संयुते ॥
शुभयुक्ते पूर्णचन्द्रे राज्यनाथेन संयुते । तद्भुक्तौ वाहनादीनां लाभं गेहे महत्सुखम् ॥
महाराजप्रसादेन गजान्तैश्वर्यमादिशेत् । महानदीस्नानपुण्यं देवब्राह्मणपूजनम् ॥
गीतवाद्यप्रसङ्गादिविद्वज्जनविभूषणम् । गोमहिष्यादिवृद्धिश्च व्यवसायेऽधिकं फलम् ॥
भोजनाम्बरसौख्यं च बन्धुसंयुक्तभोजनम् । नीचे वाऽस्तङ्गते वाऽपि षष्ठाष्टव्ययराशिगे ॥
दायेशात्षष्ठगे वाऽपि रन्ध्रे वा व्ययराशिगे । तत्काले धननाशः स्यात्सञ्चरेत महद्भयम् ॥
देहायासो मनस्तापो राजद्वारे विरोधकृत् । विदेशगमनं चैव तीर्थयात्रादिकं फलम् ॥
दारपुत्रादिपीडा च निजबन्धुवियोगकृत् । दायेशात्केन्द्रलाभस्थे त्रिकोणे सहजेऽपि वा ॥

राजप्रीतिकरी चैव देशग्रामाधिपत्यता। धैर्यं यशः सुखं कीर्तिर्वाहनाम्बरभूषणम् ॥
कूपारामतडागादिनिर्माणं धनसंग्रहः। भुक्त्यादौ देहसौख्यं स्यादन्ते क्लेशस्तथा भवेत् ॥
(पराशर)

शुक्रमहादशा में भौमान्तर्दशाफल

रुधिरपित्तगदार्तिसमाश्रयः कनकताम्रचयावनिसंग्रहः।
युवतिदूषणमुद्यमविच्युतिर्वृषभवल्लभवत्सरगे कुजे ॥७८॥

शुक्र की महादशान्तर्गत भौम की अन्तर्दशा में जातक रक्तदूषण, पित्त और वायु तत्त्व के प्रकोप से उत्पन्न व्याधियों का आश्रय होता है। स्वर्ण-ताम्रसंकुल और भूसम्पदा का वह स्वामी होता है। किसी सुन्दरी से अभिसार के अवसर प्राप्त होते हैं तथा व्यावसायिक क्षति भी सम्भाव्य होती है ॥७८॥

शुक्रान्तर्गते भौमे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे। स्वोच्चे वा स्वर्क्षगे भौमे लाभे वा बलसंयुते ॥
लग्नाधिपेन संयुक्ते कर्मभाग्येशसंयुते। तद्भुक्तौ राजयोगादिसम्भवं शोभनां वदेत् ॥
वस्त्राभरणभूम्यादेरिष्टसिद्धिः सुखावहा। तथाष्टमे व्यये वाऽपि दायेशाद्वा तथैव च ॥
शीतज्वरादिपीडा च पितृमातृभयावहा। ज्वराद्यधिका रोगाश्च स्थानभ्रंशो मनोरुजा ॥
स्वबन्धुजनहानिश्च कलहो राजविग्रहः। राजद्वारजनद्वेषो धनधान्यव्ययोऽधिकः ॥
व्यवसायात्फलं नेष्टं ग्रामभूम्यादिहानिकृत्। द्वितीयद्यूननाथे तु देहबाधा भविष्यति ॥
(पराशर)

शुक्रमहादशा में राह्वन्तर्दशाफल

निधिभवः सुतलब्धिरभीष्टवाक् स्वजनपूजनमप्यरिबन्धनम्।
दहनचोरविषोद्भवपीडनं तुलधरेश्वरवत्सरगेऽसुरे ॥७९॥

विपुल धनकोश की प्राप्ति, सन्तान-लाभ का सुख, सुखद समाचार, स्वजनों से प्राप्त समादर, शत्रुओं की विवशता, अग्निकाण्ड और चोरी का भय, विषजन्य व्याधि से कष्ट आदि जातक को शुक्र की महादशा में राहु की अन्तर्दशावधि में भोगने होते हैं ॥७९॥

शुक्रस्यान्तर्गते राहौ केन्द्रलाभत्रिकोणगे। स्वोच्चे वा शुभसन्दृष्टे योगकारकसंयुते ॥
तद्भुक्तौ बहुसौख्यं च धनधान्यादिलाभकृत्। इष्टबन्धुसमाकीर्णं भवनं च समादिशेत् ॥
यातुः कार्यार्थसिद्धिः स्यात्पशुक्षेत्रादिसम्भवः। लग्नाद्युपचये राहौ तद्भुक्तिः सुखदा भवेत् ॥
शत्रुनाशो महोत्साहो राजप्रीतिकरी शुभा। भुक्त्यादौ शरमासाश्च अन्ते ज्वरमजीर्णकृत् ॥
कार्यविघ्नमवाप्नोति सञ्चरे च मनोव्यथा। परं सुखं च सौभाग्यं महाराजैवाश्नुते ॥
नैर्ऋतीं दिशमाश्रित्य प्रयाणं प्रभुदर्शनम्। यातुः कार्यार्थसिद्धिः स्यात्स्वदेशे पुनरेष्यति ॥
उपकारो ब्राह्मणानां तीर्थयात्राफलं भवेत्। दायेशाद्रन्ध्रभावस्थे व्यये वा पापसंयुते ॥
अशुभं लभते कर्म पितृमातृजनावधि। सर्वत्र जनविद्वेषं नानारूपं द्विजोत्तम ॥
द्वितीये सप्तमे वाऽपि देहालस्यं विनिर्दिशेत्।
(पराशर)

शुक्रमहादशा में गुर्वन्तर्दशाफल

विविधधर्मसुरेशनमस्क्रिया भवति चात्मजवामदृगागमः ।
विविधराज्यसुखं च शरीरिणां कविदशाहृति कार्मुकनायके ॥८०॥

शुक्र की महादशान्तर्गत जब बृहस्पति की अन्तर्दशा आती है तब जातक अनेक धर्मों के अनुसार देवार्चन-पूजन में प्रवृत्त होता है। वह अपनी स्त्री और पुत्रों के साथ सुखपूर्वक निवास करता है तथा राज्य के अनेक पद और अधिकार प्राप्त कर आनन्दित होता है ॥८०॥

शुक्रस्यान्तर्गते जीवे स्वोच्चे स्वक्षेत्रकेन्द्रगे। दायेशाच्छुभराशिस्थे भाग्ये वा पुत्रराशिगे ॥
नष्टराज्याद्धनप्राप्तिर्मिष्टार्थाम्बरसम्पदम्। मित्रप्रभोश्च सम्मानं धनधान्यं लभेन्नरः ॥
राजसम्मानकीर्तिं च ह्यश्वान्दोलादिलाभकृत्। विद्वत्प्रभुसमाकीर्णं शास्त्रेषु परिश्रमम् ॥
पुत्रोत्सवादिसन्तोषमिष्टबन्धुसमागमम्। पितृमातृसुखप्राप्तिं पुत्रादिसौख्यमादिशेत् ॥
दायेशात्षष्ठराशिस्थे व्यये वा पापसंयुते। राजचौरादिपीडा च देहपीडा मनोव्यथा ॥
स्थानच्युतिं प्रवासं च नानारोगं समाप्नुयात्। द्वितीयसप्तमाधीशे देहबाधा भविष्यति ॥
(पराशर)

शुक्रमहादशा में शन्यन्तर्दशाफल

नगरयोधनृपोद्भवपूजनं प्रवरयोषिदवाप्तिरथास्ति वा ।
विविधवित्तपरिच्छदसंयुतिर्दितिपूजितदायगते शनौ ॥८१॥

शुक्र-महादशा में शनि की अन्तर्दशा आने पर जातक नगरप्रमुख, सेनाप्रमुख अथवा राजा के द्वारा सम्मानित होता है। उत्तम कोटि की रमणी, विविध प्रकार के धन (वैभव के चिह्न—उत्तम वस्त्राभरण, उत्तम पदार्थ, बर्तन, शय्या आदि की प्राप्ति) तथा सुख के अन्य उपकरण प्राप्त होते हैं ॥८१॥

शुक्रस्यान्तर्गते मन्दे स्वोच्चे तु परमोच्चगे। स्वर्क्षकेन्द्रत्रिकोणस्थे तुङ्गांशे स्वांशगेऽपि वा ॥
तद्भुक्तौ बहुसौख्यं स्यादिष्टबन्धुसमागमः। राजद्वारे च सम्मानं पुत्रिकाजन्मसम्भवः ॥
पुण्यतीर्थफलावाप्तिर्दानधर्मादिपुण्यकृत्। स्वप्रभोश्च पदावाप्तिः नीचस्थे क्लेशभाग्भवेत् ॥
देहालस्यमवाप्नोति तथाऽऽयादधिकं व्ययम्। तथाष्टमे व्यये मन्दे दायेशाद्वा तथैव च ॥
भुक्त्यादौ विविधा पीडा पितृमातृजनावधि। दारपुत्रादिपीडा च परदेशादिविभ्रमः ॥
व्यवसायात्फलं नष्टं गोमहिष्यादिहानिकृत्। द्वितीयसप्तमाधीशे देहबाधा भविष्यति ॥
(पराशर)

शुक्रमहादशा में बुधान्तर्दशाफल

तनयसौख्यसमागमसम्पदां निचयलब्धिरतिप्रभुता यशः ।
पवनपित्तकफार्तिररिच्युतिर्दनुजमन्त्रिदशाहृति चन्द्रजे ॥८२॥

शुक्र की महादशा में जब बुध की अन्तर्दशा प्राप्त होती है तब मनुष्य को सन्तान-सुख की प्राप्ति, अतुल सम्पदासंकुल का लाभ, सम्प्रभुता, यश-कीर्ति आदि से जातक युक्त होता है। वायु, पित्त और कफ के विकार से उत्पन्न व्याधियों से परिताप और शत्रुओं का पराभव होता है ॥८२॥

शुक्रस्यान्तर्गते सौम्ये केन्द्रे लाभत्रिकोणगे । स्वोच्चे वा स्वर्क्षगे वाऽपि राजप्रीतिकरं शुभम् ॥
सौभाग्यं पुत्रलाभश्च सन्मार्गेण धनागमः । पुराणधर्मश्रवणं शृङ्गारिजनसङ्गमः ॥
इष्टबन्धुजनाकीर्णं शोभितं तस्य मन्दिरम् । स्वप्रभोश्च महत्सौख्यं नित्यं मिष्टान्नभोजनम् ॥
दायेशात्षष्ठरन्ध्रे वा व्यये वा बलवर्जिते । पापदृष्टे पापयुक्ते चतुष्पाज्जीवहानिकृत् ॥
अन्यालयनिवासश्च मनोवैकल्यसम्भवः । व्यापारेषु च सर्वेषु हानिरेव न संशयः ॥
भुक्त्यादौ शोभनं प्रोक्तं मध्ये मध्यफलं दिशेत् । अन्ते क्लेशकरं चैव शीतवातज्वराधिकम् ॥
सप्तमाधीशदोषेण देहपीडा भविष्यति । (पराशर)

शुक्रमहादशा में केत्वन्तर्दशाफल

सुतसुखादिबहिः स्थितिरग्निजं भयमतीव विनाशनमङ्गरुक् ।
अपि च वारवधूजनसंयुतिः शिखिनि यात्यलमौशनसीं दशाम् ॥८३॥

सन्तानसुख और अन्य सुख से विहीन, अग्निभय से अत्यन्त भयभीत, अङ्ग-भङ्ग या किसी अङ्ग में व्याधि तथा वाराङ्गनाओं में अभिरुचि या आसक्ति आदि फल जातक को शुक्र (औशनस = शुक्राचार्य से सम्बन्धित) की महादशा में केतु की अन्तर्दशावधि में प्राप्त होते हैं ॥८३॥

शुक्रस्यान्तर्गते केतौ स्वोच्चे वा स्वर्क्षगेऽपि वा । योगकारकसम्बन्धे स्थानवीर्यसमन्विते ॥
भुक्त्यादौ शुभमाधिक्यान्नित्यं मिष्टान्नभोजनम् । व्यवसायात्फलाधिक्यं गोमहिष्यादिवृद्धिकृत् ॥
धनधान्यसमृद्धिश्च संग्रामे विजयो भवेत् । भुक्त्यन्ते हि सुखं चैव भुक्त्यादौ मध्यमं फलम् ॥
मध्ये मध्ये महत्कष्टं पश्चादारोग्यमादिशेत् । दायेशाद्रन्ध्रभावस्थे व्यये वा पापसंयुते ॥
चौराहिव्रणपीडा च बुद्धिनाशो महद्भयम् । शिरोरुजं मनस्तापमकर्मकलहं वदेत् ॥
प्रमेहभवरोगं च नानामार्गे धनव्ययः । भार्यापुत्रविरोधश्च गमनं कार्यनाशनम् ॥
द्वितीयद्यूननाथे तु देहबाधा भविष्यति । (पराशर)

दशापहारेषु फलं यदुक्तं वर्णाधिकारानुगुणं वदन्तु ।
छिद्रेषु सूक्ष्मेष्वपि तत्फलाप्तिः छायाङ्कवार्ताश्रवणानि वा स्युः ॥८४॥

इति श्रीमन्त्रेश्वरविरचितायां फलदीपिकायां भुक्त्यन्तरान्तर-लक्षणं नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

पूर्व कथित अन्तर्दशाओं के फल जातक की जाति, सामाजिक स्थिति, उसके व्यवसाय आदि का सम्यग् विचार कर उसके अनुरूप तारतम्य से कहना चाहिए । अन्तरान्तर्दशाओं अर्थात् प्रत्यन्तर्दशाओं के फल-कथन में भी उसी क्रम का अनुसरण करना चाहिए । जातक के व्यक्तित्व में दशान्तर्दशा के प्रभाव लक्षित होते हैं, उनके सूक्ष्म अवलोकन से वर्तमान दशा का अनुमान सम्भव है ॥८४॥

इस प्रकार मन्त्रेश्वरकृत फलदीपिका में भुक्त्यन्तरान्तर्दशालक्षण नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥२१॥

द्वाविंशोऽध्याय:

दशाभेद:

कालचक्रदशा

दस्त्रादित: पादवशेन मेषान्मीनांशकान्तं क्रमशोऽपसव्यम्।
कीटाद्धयान्तं गणयेच्च सव्यमार्गेण पादक्रमशोऽजतारात् ॥१॥

अश्विन्यादि तीन नक्षत्रों के बारह चरणों में मेष से प्रारम्भ कर मीन पर्यन्त राशियों का अपसव्य मार्ग (क्रम से) स्थापन करें। पुन: अग्रिम रोहिण्यादि तीन नक्षत्रों के बारह चरणों में वृश्चिक राशि से प्रारम्भ कर सव्य मार्ग (अप्रदक्षिण क्रम या उत्क्रम) से धन राशि पर्यन्त बारह राशियों को स्थापित करें। इसी क्रम से पुनर्वसु आदि ३-३ नक्षत्रों के चरणों में द्वादश राशियों को अपसव्य एवं सव्य मार्ग (क्रमोत्क्रम) क्रम से मेष और वृश्चिक राशियों से प्रारम्भ कर स्थापित करें ॥१॥

पराशरादि पूर्वाचार्यों ने मेषादि से मीनान्त पर्यन्त द्वादश राशियों के क्रम को सव्य क्रम या प्रदक्षिण क्रम या केवल क्रमगणना कहा है तथा इसके विपरीत मीनादि से मेषान्त पर्यन्त विलोम क्रम को अपसव्य, अप्रदक्षिण या उत्क्रम गणना कहा है किन्तु इस ग्रन्थ में आचार्य ने उसके विपरीत इनकी संज्ञाएँ दी हैं—

'अश्विन्यादित्रयं सव्यमार्गे चक्रं व्यवस्थितम्।
रोहिण्यादित्रयं चैवमपसव्यं व्यवस्थितम्' ॥

अश्विन्यादि २७ नक्षत्रों को ३-३ नक्षत्रों के समूहों में विभक्त करने से नव नक्षत्र-समूह बनते हैं। जैसे १. अश्विनी, भरणी, कृत्तिका; २. रोहिणी, मृगशिर, आर्द्रा; ३. पुनर्वसु, पुष्य, श्लेषा; ४. मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, ५. हस्त, चित्रा, स्वाती; ६. विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा; ७. मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा; ८. श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष तथा ९. पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती।

इन ९ नक्षत्र-समूहों को दो चक्रों सव्य और अपसव्य में पुन: समायोजित किया गया है। उक्त ९ नक्षत्र-समूहों में पाँच विषम समूहों को अपसव्य चक्र में और चार सम समूहों को सव्य चक्र में रखा गया है। इस प्रकार अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, पुनर्वसु, पुष्य, श्लेषा, हस्त, चित्रा, स्वाती, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवती— ये १५ नक्षत्र अपसव्य चक्र के और शेष रोहिणी, मृगशिर, आर्द्रा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी,

---

विशेष—ग्रह, राशि और नक्षत्रों के अनुसार दशाओं के अनेक भेद जातक-ग्रन्थों में कहे गये हैं। उनमें से कालचक्रादि कतिपय दशाओं का वर्णन आचार्य मन्त्रेश्वर ने इस अध्याय में किया है। इनका विशद वर्णन मेरे द्वारा सम्पादित 'दशाफलदर्पण' नामक ग्रन्थ में द्रष्टव्य है।

उत्तरा- फाल्गुनी, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिष—ये १२ नक्षत्र सव्य चक्र के हैं। इन प्रत्येक नक्षत्रत्रय के समूहों में बारह चरण होते हैं। अपसव्य चक्र के नक्षत्रत्रय समूहों में अश्विनी के प्रथम चरण में मेष राशि से प्रारम्भ कर अपसव्य-सव्य वाक्यों के अनुसार क्रम से कृत्तिका के चतुर्थ चरण में मीन राशि पर्यन्त राशियों को स्थापित करना चाहिए। इसी प्रकार अपसव्य चक्र के अन्य नक्षत्रों के चरणों में भी मेषादि राशियों को क्रम से (प्रदक्षिण में) स्थापित करना चाहिए। फलतः अश्विनी, पुनर्वसु, हस्त, मूल और पूर्वाभाद्रपद—प्रत्येक के प्रथम चरण में मेष, द्वितीय चरण में वृष, तृतीय चरण में मिथुन और चतुर्थ चरण में कर्क राशियाँ होंगी। भरणी, पुष्य, चित्रा, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराभाद्रपद नक्षत्रों के प्रथम चरण में सिंह, द्वितीय चरण में कन्या, तृतीय चरण में तुला और चतुर्थ चरण में वृश्चिक राशियाँ होंगी। इसी क्रम से कृत्तिका, आश्लेषा, स्वाती, उत्तराषाढ़ा और रेवती नक्षत्रों के प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ चरणों में क्रमशः धनु, मकर, कुम्भ और मीन राशियाँ होंगी।

सव्य चक्र के नक्षत्रत्रय समूह के १२ चरणों में प्रथम चरण में वृश्चिक से प्रारम्भ कर उत्क्रम से धनु पर्यन्त द्वादश राशियों का स्थापन करना चाहिए। इस प्रकार रोहिणी, मघा, विशाखा और श्रवण के प्रथमादि चार चरणों में वृश्चिक, तुला, कन्या और सिंह राशियाँ; मृगशिर, पूर्वाफाल्गुनी, अनुराधा और धनिष्ठा के प्रथमादि चार चरणों में कर्क, मिथुन, वृष और मेष राशियाँ; आर्द्रा, उत्तराफाल्गुनी, ज्येष्ठा और शतभिष के प्रथमादि चार चरणों में मीन, कुम्भ, मकर और धनु राशियाँ स्थापित होंगी।

कालचक्र-दशाक्रम

अपसव्य-सव्य चक्रों में राशियों के दशाक्रम को कुल सोलह सूत्रों या वाक्यों के द्वारा बतलाया गया है। इनमें आठ सूत्र अपसव्य चक्र में दशाक्रम को और आठ सव्य चक्र में दशाक्रम को सूचित करते हैं। जातकपारिजात के अनुसार ये वाक्य निम्नलिखित हैं—

अपसव्यचक्रवाक्यानि

१. पौराङ्गवोमातासहोधी। २. नक्षत्रदासीचर्वणगः।
३. रूपोत्रक्षुर्निधायरङ्गम्। ४. वाणी चस्थं दधिनक्षत्रम्।
५. हंसश्चवंशांबरपत्रम्। ६. क्षुत्राधीकरगोभीमा च।
७. सुदधिनक्षत्रजः सितः। ८. वामाङ्गारको त्रक्षुर्निधिः॥

सव्यवाक्यानि

१. धनक्षेत्रपराङ्गमिव। २. तासादत्रक्षुर्निधिर्दासा।
३. चमीभोगीरायधनर्क्षम्। ४. त्रयोरागीनाभेत्तासह।
५. त्रक्षुर्निधिर्दासस्तमेव। ६. गिरायुधनक्षत्रपरः।
७. गोमांवाचीद्वदात्रिर्क्षुत्रे। ८. धिजसितमिवाङ्गारिका।

भारतीय ज्यौतिषशास्त्र में अङ्कों को शब्दों अथवा अक्षरों द्वारा प्रगट करने की सर्वथा अपनी विशिष्टता रही है। इसी क्रम में 'कटपयादि' विधि है। 'कटपयवर्गभवैरिह पिण्डान्त्यै-रक्षरैरङ्काः' के अनुसार उपर्युक्त वाक्यों के अर्थ जाने जा सकते हैं।

क – १	ट – १	प – १	य – १
ख – २	ठ – २	फ – २	र – २
ग – ३	ड – ३	ब – ३	ल – ३
घ – ४	ढ – ४	भ – ४	व – ४
ङ – ५	ण – ५	म – ५	श – ५
च – ६	त – ६		ष – ६
छ – ७	थ – ७		स – ७
ज – ८	द – ८		ह – ८
झ – ९	ध – ९		क्ष – ११
ञ – १०	न – १०		त्र – १२

'कटपयवर्गभवैरिह पिण्डान्त्यैरक्षरैरङ्काः'।

संयुक्ताक्षर में अन्तिम वर्ण अंक के द्योतक होते हैं। हलन्त वर्णों को त्याग दिया जाता है। जैसे पौराङ्ग में ङ्ग ऐसा है, हलन्त वर्ण ङ् का त्याग करने से केवल 'ग' बचता है जिसका अङ्क ३ हैं।

इस नियम के अनुसार अपसव्य चक्र के आठ वाक्यों से निम्नलिखित अङ्क प्रसूत होते हैं—

१ – १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९।

२ – १०, ११, १२, ८, ७, ६, ४, ५, ३।

३ – २, १, १२, ११, १०, ९, १, २, ३।

४ – ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२।

५ – ८, ७, ६, ४, ५, ३, २, १, १२।

६ – ११, १०, ९, १, २, ३, ४, ५, ६।

७ – ७, ८, ९, १०, ११, १२, ८, ७, ६।

८ – ४, ५, ३, २, १, १२, ११, १०, ९।

ये आठ वाक्य अपसव्य चक्र में मेषादि आठ राशियों के दशाक्रम को प्रगट करते हैं। जैसे मेष राशि में पहली दशा १. मेष की, दूसरी २. वृष की, तीसरी ३. मिथुन की, चौथी ४. कर्क की आदि। अन्तर्दशाओं का क्रम भी यही होता है। इन वाक्यों से प्रसूत अङ्क राशियों के क्रमाङ्कों को प्रगट करते हैं।

इसी प्रकार सव्य चक्र के वाक्यों से प्रसूत अङ्क निम्नलिखित हैं—

१ – ९, १०, ११, १२, १, २, ३, ५, ४।
२ – ६, ७, ८, १२, ११, १०, ९, ८, ७।
३ – ६, ५, ४, ३, २, १, ९, १०, ११।
४ – १२, १, २, ३, ५, ४, ६, ७, ८।
५ – १२, ११, १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४।
६ – ३, २, १, ९, १०, ११, १२, १, २।
७ – ३, ५, ४, ६, ७, ८, १२, ११, १०।
८ – ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २, १।

सव्य चक्र में वृश्चिक राशि से प्रारम्भ कर उत्क्रम से धनु पर्यन्त राशियों की दशाओं का क्रम इन आठ वाक्यों में बतलाया गया है। इसके बाद मीन, कुम्भ, मकर और धनु राशियों की दशा का क्रम अन्तिम चार वाक्यों के अनुसार होती है।

अपसव्य चक्र में दशाक्रम जिस राशि से प्रारम्भ होता है उस राशि को देह कहते हैं तथा उसके स्वामी को देहाधिप एवं दशा की अन्तिम राशि को जीव और उसके स्वामी को जीवाधिप कहते हैं। सव्य चक्र में दशा का प्रारम्भ जिस राशि से होता है उसे जीव और उसके स्वामी को जीवाधिप कहते हैं तथा अन्तिम दशा जिस राशि की होती है उसे देह और उसके स्वामी को देहाधिप कहते हैं।

आगे दिये गये अपसव्य एवं सव्य चक्र को देखने से उक्त तथ्य स्पष्ट होगा। उक्त चक्रों में अपसव्य चक्र में दशाओं के क्रम और उत्क्रम दोनों में कर्क के बाद सिंह की दशा आयी है जबकि सव्य चक्र में क्रमोत्क्रम दोनों में सदैव सिंह के बाद कर्क की दशा आयी है। कालचक्र दशा के इस गति-वैचित्र्य को पूर्वाचार्यों ने कालचक्र दशा की मर्कटी गति या पृष्ठगमन नाम दिया है। कन्या से कर्क या सिंह से मिथुन को मण्डूक गति और मीन से वृश्चिक और धनु से मेष (इसके विपरीत भी) को सिंहावलोकन गति कहा है। इसकी चर्चा हम आगे यथास्थान करेंगे।

एवं भूयाच्चापसव्यं च सव्यं भानि त्रीणि त्रीणि विद्यात्क्रमेण।
तद्राशीशप्रोक्तवर्षैर्दशास्य देवं प्राहुः कालचक्रे महान्तः ॥२॥

इस प्रकार तीन-तीन नक्षत्रों के समूहों के क्रमशः अपसव्य और सव्य दो भेद होते हैं। ग्रहों के जो दशावर्ष (अगले श्लोक में) कहे गये हैं वे ही दशावर्ष उनकी राशियों के भी होते हैं ॥२॥

दशावर्ष

मनुः परः सनिर्धनिर्नृपस्तपो वने क्रमात्।
दिवाकरादिवत्सराः शुभाशुभाप्तिहेतवः ॥३॥

मनुः – ०५, परः – २१, सनिः – ०७, धनिः – ०९, नृपः – १०, तपः – १६, वने – ०४ वर्ष क्रमशः सूर्यादि ग्रहों के दशावर्ष होते हैं जिनसे उनके शुभाशुभ फलों का ज्ञान किया जाता है ॥३॥

सूर्य = मेष की दशा ५ वर्ष, चन्द्रमा = कर्क की दशा २१ वर्ष, भौम = मेष-वृश्चिक की दशा ७ वर्ष, बुध = मिथुन-कन्या की दशा ९ वर्ष, बृहस्पति = धनु-मीन की दशा १० वर्ष, शुक्र = वृष-तुला की दशा १६ वर्ष और शनि = मकर-कुम्भ की दशा ४ वर्ष की होती है।

श्लोक के पूर्वार्द्ध का अर्थ भी कटपयादि विधि से ही हो सकता है।

दशापहारादिककालचक्रे वाक्यानि दस्रादिपदादिजानि।
वक्ष्यामि वर्णैर्नवभिर्भमानै राशीशवर्षैः परमायुरत्र ॥४॥

कालचक्र में अश्विन्यादि नक्षत्रों के प्रत्येक चरण में दशान्तर्दशा क्रम को बतलाने वाले वाक्यों को कहता हूँ जिनके वर्ण राशियों के क्रमाङ्कों का (कटपयादि विधि से) बोध कराते हैं। इन राशियों के स्वामियों के पूर्व कथित दशावर्षों का योग ही उस चरण में परमायु होती है ॥४॥

अगले दो श्लोकों में आचार्य ने अपसव्य और सव्य चक्रों में अश्विन्यादि नक्षत्रों के प्रत्येक चरण में दशाक्रम को बतलाया है जिसके प्रत्येक वर्ण राशियों की क्रमसंख्या का 'कटपयादि' विधि से बोध कराते हैं।

पौरं गावो मित सन्दिग्धं नक्षत्रेन्दुः स तु भूशूलम्।
रूपेत्रक्षन्निधयोरङ्गे वाणी चस्थं दधि नक्षत्रम् ॥५॥

पौरं गावो मित सन्दिग्धं – १-मेष, २-वृष, ३-मिथुन, ४-कर्क, ५-सिंह, ६-कन्या, ७-तुला, ८-वृश्चिक और ९-धनु।

नक्षत्रेन्दुः स तु भूशूलम् – १०-मकर, ११-कुम्भ, १२-मीन, ८-वृश्चिक, ७-तुला, ६-कन्या, ४-कर्क, ५-सिंह, ३-मिथुन।

रूपेत्रक्षनिधयोरङ्गे – २-वृष, १-मेष, १२-मीन, ११-कुम्भ, १०-मकर, ९-धनु, १-मेष, २-वृष, ३-मिथुन।

वाणी चस्थं दधि नक्षत्रम् – ४-कर्क, ५-सिंह, ६-कन्या, ७-तुला, ८-वृश्चिक, ९-धनु, १०-मकर, ११-कुम्भ, १२-मीन ॥५॥

अश्विनी नक्षत्र के प्रथम चरण में प्रथम दशा मेष से प्रारम्भ होकर धनु पर्यन्त नौ राशियों की क्रम से दशाएँ होती हैं। द्वितीय चरण में मकर से प्रारम्भ होकर क्रम से मीन पर्यन्त, उसके बाद वृश्चिक से प्रारम्भ होकर उत्क्रम से मिथुन पर्यन्त नौ राशियों की दशाएँ होती हैं। इसमें ध्यान देने की बात यह है कि उत्क्रम में भी कर्क के बाद सिंह की दशा होती है और उसके बाद मिथुन की अन्तिम दशा होती है।

अश्विनी के तृतीय चरण में प्रथम दशा वृष से प्रारम्भ होकर उत्क्रम से धनु पर्यन्त ६ दशाएँ तथा सातवीं, आठवीं और नवीं दशा क्रमशः मेष, वृष और मिथुन की; इस प्रकार कुल नौ राशियों की दशाएँ होती हैं। चतुर्थ चरण में प्रथम दशा कर्क से प्रारम्भ होकर क्रम से मीन पर्यन्त नौ राशियों की दशाएँ होती हैं।

दासतवेशो गौरीपुत्रं क्षन्निधिकारो गोभूशेषम्।
सौदधिनक्षत्रेहासन्तो भौमगुरुः पुत्राक्षोनाधिः ॥६॥

दासतवेशो गौरीपुत्रं	–	८-वृश्चिक, ७-तुला, ६-कन्या, ४-कर्क, ५-सिंह, ३-मिथुन, २-वृष, १-मेष, १२-मीन।
क्षन्निधिकारो गोभूशेषम्	–	११-कुम्भ, १०-मकर, ९-धनु, १-मेष, २-वृष, ३-मिथुन, ४-कर्क, ५-सिंह, ६-कन्या।
सौदधिनक्षत्रेहासन्तो	–	७-तुला, ८-वृश्चिक, ९-धनु, १०-मकर, ११-कुम्भ, १२-मीन, ८-वृश्चिक, ७-तुला, ६-कन्या।
भौमगुरुः पुत्राक्षोनाधिः	–	४-कर्क, ५-सिंह, ३-मिथुन, २-वृष, १-मेष, १२-मीन, ११-कुम्भ, १०-मकर, ९-धनु।

भरणी के प्रथम चरण में प्रथम दशा वृश्चिक से प्रारम्भ कर उत्क्रम से मीन पर्यन्त नौ राशियों की दशाएँ होती हैं। किन्तु इस क्रम में चौथी दशा कर्क की और पाँचवीं सिंह की होती है। द्वितीय चरण में प्रथम दशा कुम्भ राशि से प्रारम्भ कर धनु पर्यन्त तीन दशाएँ उत्क्रम से तथा चतुर्थ दशा मेष राशि से प्रारम्भ कर कन्या राशि पर्यन्त छः दशाएँ क्रम से। इस प्रकार कुल नौ दशाएँ होती हैं।

भरणी के तृतीय चरण में प्रथम दशा तुला राशि से प्रारम्भ कर मीन पर्यन्त छः दशाएँ क्रम से तथा सातवीं दशा वृश्चिक से प्रारम्भ कर कन्या पर्यन्त शेष तीन दशाएँ उत्क्रम से होती हैं। चतुर्थ चरण में प्रथम दशा कर्क राशि की, द्वितीय दशा सिंह राशि की और तीसरी दशा मिथुन राशि से प्रारम्भ होकर उत्क्रम से धनु राशि की दशा पर्यन्त कुल नौ दशाएँ होती हैं।

ध्यान देने की बात यह है कि अश्विनी और भरणी के आठ चरणों में दशाक्रम में क्रमोत्क्रम में सदैव कर्क के बाद ही सिंह की दशा आती है।

वाक्यान्येतान्यश्वियाम्यर्क्षयोर्यान्यश्विन्याद्यान्यग्निभस्यापसव्ये।
सव्येऽजेन्द्वोर्वक्ष्यमाणेषु वाक्येष्विन्दोर्वाक्यान्येव रौद्रस्य भूयः ॥७॥

अपसव्य चक्र में अश्विनी के चार चरणों में दशाओं के जो क्रम कहे गये हैं वे ही क्रम कृत्तिका नक्षत्र के चार चरणों में भी होते हैं। सव्य चक्र में रोहिणी और मृगशिर के चार चरणों के दशाक्रम अगले दो श्लोकों में बतलाये गये हैं। आर्द्रा के चार चरणों में दशाक्रम मृगशिर के चार चरणों के समान होते हैं॥७॥

ध्यान रखना चाहिए कि सव्य चक्र में नक्षत्रों के प्रत्येक चरण के दशाक्रमों में सिंह के बाद ही कर्क की दशा आती है जबकि अपसव्य चक्र के नक्षत्रों के प्रत्येक चरण के दशाक्रम में इसके विपरीत कर्क की दशा के बाद सिंह की दशा होती है।

धेनुः क्षेत्रे पुरगो शम्भुस्तासां जत्रु क्षन्निधि दासी।
चर्माभोगी रायधिनाक्षस्त्रीपौराङ्गी शिवतीर्थाब्जे ॥८॥

धेनुः क्षेत्रे पुरगो शम्भु – ९-धनु, १०-मकर, ११-कुम्भ, १२-मीन, १-मेष, २-वृष, ३-मिथुन, ५-सिंह, ४-कर्क।

स्तासां जत्रु क्षन्निधि दासी – ६-कन्या, ७-तुला, ८-वृश्चिक, १२-मीन, ११-कुम्भ, १०-मकर, ९-धनु, ८-वृश्चिक, ७-तुला।

चर्माभोगी रायधिनाक्ष – ६-कन्या, ५-सिंह, ४-कर्क, ३-मिथुन, २-वृष, १-मेष, ९-धनु, १०-मकर, ११-कुम्भ।

स्त्री पौराङ्गी शिवतीर्थाब्जे – १२-मीन, १-मेष, २-वृष, ३-मिथुन, ५-सिंह, ४-कर्क, ६-कन्या, ७-तुला, ८-वृश्चिक ॥८॥

रोहिणी के प्रथम चरण में प्रथम दशा धनु से प्रारम्भ होकर क्रम से सिंह पर्यन्त नौ राशियों की दशाएँ होती हैं। द्वितीय चरण में कन्या राशि से प्रारम्भ होकर वृश्चिक राशि तक क्रम से, तदन्तर मीन से प्रारम्भ होकर उत्क्रम से तुला राशि तक कुल नौ दशाएँ होती हैं।

रोहिणी के तृतीय चरण में प्रथम दशा कन्या से प्रारम्भ होकर मेष पर्यन्त उत्क्रम से, तदुपरान्त धनु से प्रारम्भ होकर कुम्भ पर्यन्त क्रम से नौ दशाएँ होती हैं। चतुर्थ चरण में प्रथम दशा मीन से प्रारम्भ होकर क्रम से, वृश्चिक पर्यन्त नौ दशाएँ होती हैं।

त्रक्षनिधिर्दा सूचीशम्भो गौरवधी नक्षत्रं पारम्।
गोशिवतीर्थे दात्रीक्षन्नो धीहसितांशुर्भोगी रम्या ॥९॥

त्रक्षनिधिर्दा सूचीशंभो – १२-मीन, ११-कुम्भ, १०-मकर, ९-धनु, ८-वृश्चिक, ७-तुला, ६-कन्या, ५-सिंह, ४-कर्क।

गौरवधी नक्षत्रं पारम् – ३-मिथुन, २-वृष, १-मेष, ९-धनु, १०-मकर, ११-कुम्भ, १२-मीन, १-मेष, २-वृष।

गोशिवतीर्थे दात्रीक्षन्नो – ३-मिथुन, ५-सिंह, ४-कर्क, ६-कन्या, ७-तुला, ८-वृश्चिक, १२-मीन, १-मेष, २-वृष।

धीहसितांशुर्भोगी रम्या – ९-धनु, ८-वृश्चिक, ७-तुला, ६-कन्या, ५-सिंह, ४-कर्क, ३-मिथुन, २-वृष, १-मेष ॥९॥

मृगशिर और आर्द्रा के प्रथम चरण में पहली दशा मीन से प्रारम्भ होकर उत्क्रम से कर्क राशि पर्यन्त नौ दशाएँ होती हैं। दूसरे चरण में पहली दशा मिथुन से प्रारम्भ होती है और उत्क्रम से मेष पर्यन्त तथा चौथी दशा धनु से प्रारम्भ होकर क्रम से वृष पर्यन्त कुल नौ दशाएँ होती हैं। तृतीय चरण में भी मिथुन राशि से प्रथम दशा प्रारम्भ होकर क्रम से वृष पर्यन्त नौ दशाएँ होती हैं तथा चतुर्थ चरण में प्रथम दशा धनु से प्रारम्भ होती है और उत्क्रम से मेष पर्यन्त नौ दशाएँ होती हैं। ध्यान रहे इस समूची सव्यचक्र-व्यवस्था में सदैव सिंह के बाद ही कर्क की दशा होती है।

यह सभी दशा-व्यवस्था निम्न चक्र से स्पष्ट होगी।

उपर्युक्त अपसव्य (प्रदक्षिण) और सव्य (अप्रदक्षिण) चक्रों में पहले कालम में नक्षत्रों

कालचक्रदशा : अपसव्यचक्रवाक्यानि

अपसव्य नक्षत्र—१, २, ३, ७, ८, ९, १३, १४, १५, १९, २०, २१, २५, २६, २७ इति पञ्चदश।

नक्षत्र	चरण	देहाधीश	१	२	३	४	५	६	७	८	९	परमायु	जीवाधीश	राशियाँ
अश्विनी १, पुनर्वसु ७, हस्त १३, मूल १९, पूर्वाभाद्र २५	१	मं.	पौं=१ मं=७	रं=२ शु=१६	गा=३ बु=९	वो=४ चं=२१	मि=५ सू=५	त=६ बु=९	सं=७ शु=१६	दि=८ मं=७	ग्धं=९ बृ=१०	१०० वर्ष	बृ.	मेष
	२	श.	न=१० श=४	क्ष=११ श=४	त्रे=१२ बृ=१०	न्दु=८ मं=७	स=७ शु=१६	तु=६ बु=९	भू=४ चं=२१	शू=५ सू=५	लं=३ बु=९	८५ वर्ष	बु.	वृष
	३	शु.	रू=२ शु=१६	पे=१ मं=७	त्र=१२ बृ=१०	क्ष=११ श=४	त्रि=१० श=४	ध=९ बृ=१०	यो=१ मं=७	रं=२ शु=१६	गे=३ बु=९	८३ वर्ष	बु.	मिथुन
	४	चं.	वा=४ चं=२१	णी=५ सू=५	च=६ बु=९	स्थं=७ शु=१६	द=८ मं=७	धि=९ बृ=१०	न=१० श=४	क्ष=११ श=४	त्रं=१२ बृ=१०	८६ वर्ष	बृ.	कर्क
भरणी २, पुष्य ८, चित्रा १४, पूर्वाषाढा २०, उत्तराभाद्र २६	१	मं.	दा=८ मं=७	स=७ शु=१६	त=६ बु=९	वे=४ चं=२१	शो=५ सू=५	गौ=३ बु=९	री=२ शु=१६	पु=१ मं=७	त्रं=१२ बृ=१०	१०० वर्ष	बृ.	सिंह
	२	श.	क्ष=११ श=४	त्रि=१० श=४	धि=९ बृ=१०	का=१ मं=७	रो=२ शु=१६	गो=३ बु=९	भू=४ चं=२१	शे=५ सू=५	षं=६ बु=९	८५ वर्ष	बु.	कन्या
	३	शु.	सौ=७ शु=१६	द=८ मं=७	धि=९ बृ=१०	न=१० श=४	क्ष=११ श=४	त्रे=१२ बृ=१०	हा=८ मं=७	सं=७ शु=१६	तो=६ बु=९	८३ वर्ष	बु.	तुला
	४	चं.	भौ=४ चं=२१	म=५ सू.=५	गु=३ बु=९	रु=२ शु=१६	पु=१ मं=७	त्रा=१२ बृ=१०	क्षो=११ श=४	ना=१० श=४	धि:=९ बृ=१०	८६ वर्ष	बृ.	वृश्चिक
कृत्तिका ३, श्लेष ९, स्वाती १५, उत्तराषाढा २१, रेवती २७	१	मं.	पौ=१ मं=७	रं=२ शु=१६	गा=३ बु=९	वो=४ चं=२१	मि=५ सू=५	त=६ बु=९	सं=७ शु=१६	दि=८ मं=७	ग्धं=९ बृ=१०	१०० वर्ष	बृ.	धनु
	२	श.	न=१० श=४	क्ष=११ श=४	त्रे=१२ बृ=१०	न्दु=८ मं=७	स=७ शु=१६	तु=६ बु=९	भू=४ चं=२१	शू=५ सू=५	लं=३ बु=९	८५ वर्ष	बु.	मकर
	३	शु.	रू=२ शु=१६	पे=१ मं=७	त्र=१२ बृ=१०	क्ष=११ श=४	त्रि=१० श=४	ध=९ बृ=१०	यो=१ मं=७	रं=२ शु=१६	गे=३ बु=९	८३ वर्ष	बु.	कुम्भ
	४	चं.	वा=४ चं=२१	णी=५ सू.=५	च=६ बु=९	स्थं=७ शु=१६	द=८ मं=७	धि=९ बृ=१०	न=१० श=४	क्ष=११ श=४	त्रं=१२ बृ=१०	८६ वर्ष	बृ.	मीन

कालचक्रदशा : सव्यचक्रवाक्यानि

सव्य नक्षत्र—४,५,६,१०,११,१२,१६,१७,१८,२२,२३,२४

नक्षत्र	चरण	जीवाधिप	१	२	३	४	५	६	७	८	९	परमायु	देहाधिप	राशिअंश
रोहिणी ४, मघा १०, विशाखा १६, श्रवणा २२	१	बृ.	धे=९ बृ=१०	नु=१० श=४	क्षे=११ श=४	त्रे=१२ वृ=१०	पु=१ मं=७	र=२ शु=१६	गो=३ बु=९	शं=५ सू=५	भु=४ चं=२१	८६ वर्ष	चं.	वृश्चिक
	२	बु.	स्ता=६ बु=९	सां=७ शु=१६	ज=८ मं=७	त्रु=१२ बृ=१०	क्ष=११ श=४	त्रि=१० श=४	धि=९ बृ=१०	दा=८ मं=७	सी=७ शु=१६	८३ वर्ष	शु.	तुला
	३	बु.	च=६ बु=९	र्मा=५ सू=५	भो=४ चं=२१	गी=३ बु=९	रा=२ शु=१६	य=१ मं=७	धि=९ बृ=१०	ना=१० श=४	क्ष=११ श=४	८५ वर्ष	श.	कन्या
	४	बृ.	स्त्री=१२ बृ=१०	पौ=१ मं=७	रां=२ शु=१६	गी=३ बु=९	शि=५ सू=५	व=४ चं=२१	ती=६ बु=९	र्था=७ शु=१६	ब्जे=८ मं=७	१०० वर्ष	मं.	सिंह
मृगशिरा ५, पूर्वाफाल्गुनी ११, अनुराधा १७, धनिष्ठा २३	१	बृ.	त्र=१२ बृ=१०	क्ष=११ श=४	नि=१० श=४	धि=९ बृ=१०	र्दा=८ मं=७	सू=७ शु=१६	ची=६ बु=९	शं=५ सू=५	भो=४ चं=२१	८६ वर्ष	चं.	कर्क
	२	बु.	गो=३ बु=९	र=२ शु=१६	व=१ मं=७	धी=९ बृ=१०	न=१० श=४	क्ष=११ श=४	त्रं=१२ बृ=१०	पा=१ मं=७	रं=२ शु=१६	८३ वर्ष	शु.	मिथुन
	३	बु.	गो=३ बु=९	शि=५ सू=५	व=४ चं=२१	ती=६ बु=९	र्थे=७ शु=१६	दा=८ मं=७	त्री=१२ बृ=१०	क्ष=११ श=४	त्रो=१० श=४	८५ वर्ष	श.	वृष
	४	बृ.	धी=९ बृ=१०	ह=८ मं=७	सि=७ शु=१६	तां=६ बु=९	शु=५ सू=५	र्भो=४ चं=२१	र्गी=३ बु=९	र=२ शु=१६	म्या=१ मं=७	१०० वर्ष	मं.	मेष
आर्द्रा ६, उत्तर फाल्गुनी १२, ज्येष्ठा १८, शतभिषा २४	१	बृ.	त्र=१२ बृ=१०	क्ष=११ श=४	नि=१० श=४	धि=९ बृ=१०	र्दा=८ मं=७	सू=७ शु=१६	ची=६ बु=९	शं=५ सू=५	भो=४ चं=२१	८६ वर्ष	चं.	मीन
	२	बु.	गौ=३ बु=९	र=२ शु=१६	व=१ मं=७	धी=९ बृ=१०	न=१० श=४	क्ष=११ श=४	त्रं=१२ बृ=१०	पा=१ मं=७	रं=२ शु=१६	८३ वर्ष	शु.	कुम्भ
	३	बु.	गो=३ बु=९	शि=५ सू=५	व=४ चं=२१	ती=६ बु=९	र्थे=७ शु=१६	दा=८ मं=७	त्र=१२ बृ=१०	क्ष=११ श=४	त्रो=१० श=४	८५ वर्ष	श.	मकर
	४	बृ.	धी=९ बृ=१०	ह=८ मं=७	सि=७ शु=१६	तां=६ बु=९	शु=५ सू=५	र्भो=४ चं=२१	गी=३ बु=९	र=२ शु=१६	म्या=१ मं=७	१०० वर्ष	मं.	धनु

के नाम हैं। दूसरे कालम में नक्षत्रचरण और तीसरे कालम में सम्बन्धित देहाधिपति या जीवाधिपति का संकेत किया गया है। चौथे कालम से १२वें कालम तक प्रति नक्षत्रचरण में दशाओं के क्रम और दशापतियों के दशावर्ष का संकेत किया गया है। तेरहवें कालम में परमायु लिखी गई हैं। चौदहवें कालम में देहेश या जीवेश का संकेत है तथा १५वें कालम में प्रत्येक चरण में स्थापित राशियों का उल्लेख है। चतुर्थ कालम से बारहवें कालम तक प्रदर्शित दशाक्रम के प्रत्येक कोष्ठक में ऊपर की ओर वाक्य के अंकसूचक अक्षर और सूचित राशिक्रमाङ्क का उल्लेख है। जैसे अश्विनी के प्रथम चरण के सम्मुख चौथे कालम में [पौं=१ / मं.=७] लिखा है। 'पौ' वर्ण अपसव्य के आठ वाक्यों में प्रथम वाक्य का पहला वर्ण है जो अंक १ का प्रतीक है। '१' मेषादि राशियों के क्रम को सूचित करता है। मं.–७ में मेष राशि—जिसकी प्रथम दशा है—का स्वामी मङ्गल है और उसकी दशा ७ वर्ष की होती है। इसी प्रकार अन्य कोष्ठकों में समझना चाहिए। इन नौ राशियों के आयुवर्षों का योग परमायु के कालम में दिया गया है।

इन दो तालिकाओं की सहायता से दशा का ज्ञान एक उदाहरण द्वारा बतलाते हैं। मान लीजिए—किसी का जन्म मृगशिर नक्षत्र के प्रथम चरण में होता है। मृगशिर सव्य चक्र का सदस्य है। अत: इसकी दशा जानने के लिए सव्य चक्र की तालिका का प्रयोग करना होगा। सव्य चक्र तालिका में मृगशिर नक्षत्र के प्रथम चरण की पंक्ति में तृतीय कालम में बृहस्पति जीवेश है। उसके बाद के कालम में [त्र=१२ / बृ.=१०] लिखा है। अर्थात् प्रथम दशा मीन राशि की होगी जिसका भोगकाल १० वर्ष है। उस जातक की परमायु ८६ वर्ष होगी। उसका देहेश चन्द्रमा होगा।

अपसव्य और सव्य चक्रों में दशाओं के जो क्रम कहे गये हैं वे ही क्रम इन दशाओं की अन्तर्दशाओं के भी होते हैं।

जन्मकालिक भुक्त भोग्य दशा का ज्ञान करने के लिए जन्मकालिक नक्षत्र और चरण का ज्ञान करना चाहिए। मान लीजिए—सं. २०४० शाके १९०५ श्रावण मास के कृष्ण-पक्ष की द्वितीया बुधवार तदनुसार २७ जुलाई १९८१ को दिन में घं. १ मि. ३२ पर किसी का जन्म हुआ है। तात्कालिक चन्द्रमा १०।५°।४८'।३९" = १८३४८.६५ है। इसमें नक्षत्रमान ८००' कला से भाग देने पर १८३४८.६५/८०० = २२ ७४८.६५/८०० हुआ।

अर्थात् २२वाँ नक्षत्र श्रवण गत होकर २३वें नक्षत्र धनिष्ठा में ७४८'.६२ पर जन्म हुआ। १ चरण = २००' इसलिए ७४८.६५/२०० = ३ १४८.६५/२०० । अर्थात् धनिष्ठा का ३ चरण गत होकर चतुर्थ चरण के १४८'.६५ कला गत होने पर जन्म हुआ है। धनिष्ठा के चतुर्थ चरण की परमायु १०० वर्ष है (सव्य चक्र देखिए)। अत: अनुपात २००' में १०० वर्ष तो अभीष्ट १४८'.६५ में क्या ?

(१४८.६५×१००)/२०० वर्ष = ७४.३२ वर्ष

अर्थात् जन्म के समय तक ७४.३१ या ७४ वर्ष ३ मास २७ दिन धनिष्ठा के चतुर्थ

अर्थात् जन्म के समय तक ७४.३१ या ७४ वर्ष ३ मास २७ दिन धनिष्ठा के चतुर्थ चरण की दशा में गत हो चुके थे।

धनिष्ठा के चतुर्थ चरण में दशा धनु से प्रारम्भ होकर उत्क्रम से चलती है। धनिष्ठा से कर्क पर्यन्त दशावर्षों का योग ६८ होता है और मिथुन पर्यन्त दशावर्ष योग ७७ वर्ष है। स्पष्ट है कि जन्मकाल तक कर्क की दशा समाप्त हो चुकी थी तथा मिथुन की दशा के ७७-७४.३२ = २.६८ वर्ष = ऐष्य दशावर्ष जन्म के अनन्तर शेष रहा। २.६८ वर्ष २ वर्ष ८ मास ३ दिन आयु तक मिथुन की दशा भोग करेगी।

इन महादशाओं में उसी राशि से प्रारम्भ होकर अन्तर्दशायें दशाक्रम के समान ही होता है। इस प्रकार मिथुन की महादशा में प्रथम मिथुन की अन्तर्दशा, उसके बाद वृष की, फिर मेष की, उसके बाद धनु, वृश्चिक, तुला, कन्या, सिंह और कर्क की अन्तर्दशाएँ होती हैं।

मिथुन की महादशा में—

मिथुन के अन्तर्दशा व्रर्ष = $\frac{९\times९}{१००}$ = ०.८१ वर्ष

वृष के अन्तर्दशा वर्ष = $\frac{९\times१६}{१००}$ = १.४४ वर्ष

मेष के अन्तर्दशा वर्ष = $\frac{९\times७}{१००}$ = ०.६३ वर्ष

मिथुन की महादशा में—

धनु के अन्तर्दशा वर्ष = $\frac{९\times१०}{१००}$ = ०.९० वर्ष

वृश्चिक के अन्तर्दशा वर्ष = $\frac{९\times७}{१००}$ = ०.६३ वर्ष

तुला के अन्तर्दशा वर्ष = $\frac{९\times१६}{१००}$ = १.४४ वर्ष

कन्या के अन्तर्दशा वर्ष = $\frac{९\times९}{१००}$ = ०.८१ वर्ष

सिंह के अन्तर्दशा वर्ष = $\frac{९\times५}{१००}$ = ०.४५ वर्ष

कर्क के अन्तर्दशा वर्ष = $\frac{९\times२१}{१००}$ = १.८९ वर्ष

धनु की महादशा से कर्क की महादशा पर्यन्त दशावर्षों के योग १०+७+१६+९+५+२१ = ६८ वर्ष को गत महादशा वर्ष ७४.३१ में ऋण करने से ७४.३१-६८ = ६.३१ वर्ष मिथुनमहादशा का भुक्त वर्ष हुआ। मिथुन से वृश्चिक राशि की अन्तर्दशाओं के योग ०.८१ + १.४४ + ०.६३ + ०.९० + ०.६३ = ५.८५ वर्ष को गत महादशा वर्ष ६.३१ में ऋण करने से—

६.३१ - ५.८५ = ०.४६ वर्ष तुला की अन्तर्दशा के भुक्त वर्ष हुए।

∴ तुला की अन्तर्दशा १.४४ - ०.४६ = ०.९८ = ०।११।२२।४८ वर्षादि तुला की अन्तर्दशा का भोग्य काल हुआ। इसमें जन्मकालिक वर्ष (सवंत्सर संख्या) और तात्कालिक स्पष्ट सूर्य के राश्यादि को जोड़ने से तुला की अन्तर्दशा का समाप्तिकाल प्राप्त होगा।

पूर्वोक्तपादक्रमशोऽत्र विद्यात् केषाञ्चिदेवं मतमाहुरार्या ॥१०॥

व्यक्ति का जन्म नक्षत्र के जिस चरण में हो उस नक्षत्रचरण में स्थापित राशि की प्रथम दशा होती है तथा उस दशा का भोगकाल उस स्थापित राशि के स्वामी के दशावर्ष के समान होता है। जन्मकाल में जन्मनक्षत्र के चरण की ऐष्य घटी के अनुपात में उक्त दशा का भोग्य काल होता है। आगे की दशाएँ उक्त सम्बन्धित नक्षत्रचरण के कथित दशाक्रम में राशियों के स्वाभाविक क्रमानुसार (अपसव्य चक्र में क्रम से तथा सव्य चक्र में उत्क्रम से) होती है। कालचक्र दशा में यह एक मत है ॥१०॥

पूर्वोक्त उदाहरण में जन्मकालिक चन्द्रभोग १०ᴳ।५°।४८'।३७" = १८३४८'.६५ कला है। इसके अनुसार जातक का जन्म धनिष्ठा के चतुर्थ चरण में हुआ है। पहले बतलाया जा चुका है कि अपसव्य चक्र के नक्षत्रत्रय के १२ चरणों में मेषादि द्वादश राशियों का क्रम से तथा सव्य चक्र के नक्षत्रत्रय के १२ चरणों में वृश्चिक से प्रारम्भ कर धनु पर्यन्त उत्क्रम से राशियों का स्थापन होता है; उसका निर्देश अपसव्य-सव्य चक्रों के अन्तिम कालम में किया गया है।

दूसरे मत के अनुसार अभीष्ट नक्षत्रचरण (धनिष्ठा के ४थे चरण) में स्थापित मेष (सव्य चक्र में धनिष्ठा के चतुर्थ चरण के अन्तिम कालम के अनुसार) राशि की प्रथम दशा होगी। धनिष्ठा के चतुर्थ चरण में १४८.६५ कला जन्मकाल तक गत हो चुका है। मेष की दशा ७ वर्ष होती है। अतः—

$$\text{१४८.६२कला} = \frac{\text{१४८.६५}\times\text{७}}{\text{२००}} \text{ वर्ष}$$

$$= \text{५.२०२७ वर्ष गत मेष की दशा}$$

$$\therefore \text{७}-\text{५.२०१६} = \text{१.७९७२ मेष का भोग्य दशावर्ष।}$$

इस प्रकार धनिष्ठा के चतुर्थ चरण में जन्म होने से मेष की प्रथम दशा से प्रारम्भ होकर धनिष्ठा के चतुर्थ चरण में कथित दशाक्रमानुसार धनु, वृश्चिक, तुला आदि की दशाएँ होती हैं।

दस्रादिपादप्रभृतीनि भानां वाक्यानि यान्यक्षरपंक्तिजानि।
तेषां क्रमेणैव दशा प्रकल्प्या वाक्यक्रमं साध्विति केचिदाहुः ॥११॥

अपसव्य-सव्य चक्र में अश्विन्यादि नक्षत्रों के विभिन्न पादों के लिए राशियों के क्रम को बतलाने वाले अनेक सूत्रवाक्य उपलब्ध हैं। नक्षत्रचरण में राशियों के इन्हीं उपलब्ध क्रम के अनुसार प्रत्येक नक्षत्रचरणों में दशाओं का क्रम होता है। कालचक्र दशा के इस प्रकार में नक्षत्रपाद के वाक्य-क्रमों की प्रधानता होती है ॥११॥

इसका उदाहरण प्राक्कथन में दिया जा चुका है।

वाक्यक्रमे कर्क्यलिमीनसन्थौ मण्डूकगत्यश्वरप्लुतिश्च।
सिंहावलोकस्त्रिविधा तदानीं दशान्तरं दुःखफलप्रदं स्यात् ॥१२॥

अपसव्य-सव्य चक्र में नक्षत्रपादों के जो वाक्यक्रम (श्लोक ८-९) कहे गये हैं उन

अपसव्य-सव्य चक्र में नक्षत्रपादों के जो वाक्यक्रम (श्लोक ८-९) कहे गये हैं उन क्रमों में कर्क, वृश्चिक और मीन राशियों की सन्धियाँ तीन अलग-अलग गतियों—१. मण्डूक गति, २. तुरग या अश्वगति और ३. सिंहावलोकन—को क्रमशः जन्म देती हैं। ये तीनों सन्धियाँ दशाक्रम में कष्टप्रद होती हैं ॥१२॥

विभिन्न आचार्यों ने इन गतियों के भिन्न नाम दिये हैं। आचार्य वैद्यनाथ ने अपने जातक ग्रन्थ 'जातकपारिजात' में इनको मण्डूकगति, पृष्ठतोगमन और सिंहावलोकन कहा है।

'कालचक्रगतिस्त्रेधा निश्चिता पूर्वसूरिभिः ॥ मण्डूकगमनं चैव पृष्ठतोगमनं तथा। सिंहावलोकनं नाम पुनरागमनं भवेत् ॥ पृष्ठतो गमनं चैव कर्किकेसरिणोरपि। मीनवृश्चिकयोश्चापमेषयोः केसरी गतिः ॥ कन्याकर्कटयोः सिंहयुग्मयोर्मण्डूकी गतिः'।

(वैद्यनाथ)

पराशर ने इन गतियों को और अधिक स्पष्टता के साथ कहा है—

'कालचक्रगतिः प्रोक्ता त्रिधा पूर्वसूरिभिः। मण्डूकाख्या गतिश्चैका मर्कटीसंज्ञकाऽपरा ॥ सिंहावलोकनाख्या च तृतीया परिकीर्तिता। उत्प्लुत्य गमनं विज्ञा मण्डूकाख्यं प्रचक्षते ॥ पृष्ठतो गमनं नाम मर्कटीसंज्ञकं तथा। बाणाच्च नवपर्यन्तं गतिः सिंहावलोकनम् ॥ कन्यायां कर्कटे वाऽपि सिंहभे मिथुनेऽपि च। मण्डूकी गति विज्ञेया भवेद्रोगस्य कारणम् ॥ मीनवृश्चिकयोर्विप्र चापमेषस्तथैव च। सिंहावलोकनं चैव तादृशं च फलं भवेत् ॥

सिंहागतिर्मार्गे च मर्कटीगतिसम्भवः।

अन्तर्दशानयन-प्रकार

तद्वाक्यवर्णक्रमशोपहारवर्षाहते तत्परमायुराप्ते।
तदा दशायामपहारवर्षसंख्याश्च मासान्दिवसान्वदेयुः ॥१३॥

अभीष्ट नक्षत्रपाद के जिस राशि की दशा हो उसके दशावर्ष में अभीष्ट अन्तर्दशा जिस राशि की हो उसके दशावर्ष से गुणा कर उस नक्षत्रपाद की नौ राशियों के दशावर्षों के योग (अभीष्ट नक्षत्रपाद के लिए निर्धारित परमायु वर्ष) से गुणनफल में भाग देने से लब्ध फल अभीष्ट अन्तर्दशा के वर्ष, मास, दिनादि होंगे ॥१३॥

परमायु-निर्णय

वाक्येषु यावच्छरदां प्रमाणं वदन्ति तावत्परमायुरत्र।
मेषादनीकं मदनं गजेन तुन्दः पुनश्चैवमुदीरितं तत् ॥१४॥

अपसव्य-सव्य चक्रों में प्रत्येक नक्षत्रपाद के लिए कथित वाक्यों के अनुसार नौ राशियों के दशावर्ष के योग तुल्य उस नक्षत्रपाद की परमायु होती है (उस नक्षत्रचरण में जन्मे जातक की परमायु उस चरण के लिए निर्धारित परमायु के समान होती है)। अपसव्य चक्र के बारह चरणों में स्थापित मेषादि चार राशियों की परमायु क्रमशः १००,८५,८३ और ८६ वर्ष होती है। शेष सिंहादि आठ राशियों में इन्हीं परमायुषों की दो आवृत्तियाँ होती हैं। सव्य चक्र के नक्षत्रचरणों में स्थापित वृश्चिकादि द्वादश राशियों के परमायु वर्ष व्युत्क्रम से

यही होते हैं। जैसे वृश्चिक की परमायु ८६ वर्ष, तुला की ८३ वर्ष, कन्या की ८५ वर्ष और सिंह की परमायु १०० वर्ष होती है। इसी की दो आवृत्ति करने से शेष राशियों कर्क, मिथुन, वृष, मेष, मीन, कुम्भ और धनु के परमायु वर्ष होते हैं ॥१४॥

उत्पन्नाधान-महादशा

महादशासु यत्फलं प्रकीर्तितं मया पुरा।
तदेव योजयेद् बुधो दशासु चैवमादिषु ॥१५॥

पूर्व में कतिपय महादशाओं के जो फल मैंने अब तक कहे हैं, विज्ञजनों के द्वारा उन सभी फलों को इन महादशाओं के भी समझना चाहिए ॥१५॥

जन्मर्क्षात्परतस्तु पञ्चमभवाऽथोत्पन्नसंज्ञा दशा
स्यादाधानदशाप्यतोऽष्टमभवात् क्षेमान्महाख्या दशा।
आसामेव दशावसानसमये मृत्युप्रदा स्यान्नृणां
स्वल्पानल्पसमायुषां त्रिवधपञ्चर्क्षेशदायान्तिमे ॥१६॥

जन्मनक्षत्र से (जन्मकालिक चन्द्रमा जिस नक्षत्र में स्थित हो उससे) पञ्चम नक्षत्र से प्रारम्भ होने वाली दशा को उत्पन्ना दशा कहते हैं। जन्मनक्षत्र से अष्टम नक्षत्र से प्रारम्भ होने वाली दशा को आधान दशा कहते हैं। जन्मनक्षत्र से चतुर्थ नक्षत्र से प्रारम्भ होने वाली महादशा को क्षेम महादशा कहते हैं। यदि ये तीनों महादशाएँ यदि एक ही समय (वर्ष, मास और दिन) में समाप्त हों तो वह समय जातक के लिए मृत्युदायक होता है ॥१६॥

निसर्ग-दशा

एकं द्वे नव विंशतिर्धृतिकृतिः पञ्चाशदेषां क्रमात्
चन्द्रारेन्दुजशुक्रजीवदिनकृद्दैवाकरीणां समाः।
स्वै स्वैः पुष्टफला निसर्गजनितैः पक्तिर्दशाया क्रमा-
दन्ते लग्नदशा शुभेति यवना नेच्छन्ति केचित्तथा ॥१७॥

चन्द्रमा की १ वर्ष, भौम की २ वर्ष, बुध की ९ वर्ष, शुक्र की २० वर्ष, बृहस्पति की १८ वर्ष, सूर्य की २० वर्ष और शनि की ५० वर्ष नैसर्गिक या निसर्ग दशाएँ होती हैं। सर्वाधिक बली ग्रह की दशा से प्रारम्भ कर ह्रासबल क्रम से निसर्ग दशाएँ होती हैं। यवनाचार्य के अनुसार अन्तिम दशा लग्न की होती है। किन्तु अन्य विद्वान् यवनों के इस मत से सहमत नहीं हैं ॥१७॥

धरादशा

लिप्तीकृत्य भजेद्ग्रहं खखजिनैस्तच्छिष्टमायुष्कला
आशाखाश्विहताब्दमासदिवसाः सत्योदितेंऽशायुषि।
वक्रिण्युच्चगते त्रिसङ्गुणमिदं स्वांशत्रिभागोत्तमे
द्विघ्नं नीचगतेऽर्धमप्यथ दलं मौढ्ये सितार्कौ विना ॥१८॥

ग्रह के राश्यादि भोग को कलात्मक बनाकर उसमें २४०० से भाग देने से शेष ग्रह की आयुष्कला होती है। इस आयुष्कला में २०० से भाग देने से लब्ध वर्ष-मास-दिन उस ग्रह द्वारा प्रदत्त आयु होती है। ऐसा सत्याचार्य का कथन है।

यदि ग्रह अपनी उच्च राशि में स्थित हो अथवा वक्रगामी हो तो उसके द्वारा प्रदत्त आयुर्दाय त्रिगुणित हो जाती है। यदि स्वराशि, स्वनवांश, स्वद्रेष्काण या वर्गोत्तमांश में स्थित हो तो उसके द्वारा प्रदत्त आयुर्दाय के वर्षादि द्विगुणित हो जाते हैं। यदि ग्रह अपनी नीच राशि में स्थित हो या अस्त हो तो उसके आयुर्दाय में आधे का ह्रास होता है। किन्तु शुक्र और शनि यदि अस्त भी हो तो उनके आयुर्दाय में ह्रास नहीं होता है।

सर्वार्द्धत्रिकृतेषुषण्मितलवह्रासोऽसतामुत्क्रमा-
द्रिःफात्सत्सु दलं तदा हरति बल्येको बहुष्वेकभे।
त्र्यंशोनं रिपुभे विना क्षितिसुतं सत्योपदेशे दशा
लग्नस्यांशसमा बलिन्युदयभेऽस्यात्रापि तुल्यापि च ॥१९॥

पापग्रह यदि द्वादश भाव में स्थित हो तो उस ग्रह के सम्पूर्ण आयुर्दाय का ह्रास हो जाता है। पापग्रह के एकादश भाव में स्थित होने से आधी आयुर्दाय का, दशम भाव में तृतीयांश का, नवें भाव में चतुर्थांश का, आठवें भाव में पञ्चमांश का और सातवें भाव में उसके आयुर्दाय के षष्ठांश का ह्रास होता है। यदि इन स्थानों में शुभग्रह स्थित हों तो उसके आयुर्दाय का क्रमशः $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{४}$, $\frac{१}{६}$, $\frac{१}{८}$, $\frac{१}{१०}$ और $\frac{१}{१२}$वें भाग का ह्रास होता है। भौम के अतिरिक्त अन्य ग्रह यदि शत्रुगृही हों तो उसके आयुर्दाय के $\frac{१}{३}$वें भाग का ह्रास होता है। लग्न में उदित नवांश संख्या तुल्य वर्ष उसका आयुर्दाय होता है। ऐसा सत्याचार्य का मत है। लग्न का उक्त आयुर्दाय उसके बलाबल से प्रभावित नहीं होता ॥१९॥

सत्योपदेशो वरमत्र किन्तु कुर्वन्त्ययोग्यं बहुवर्गणाभिः।
आचार्यकं त्वत्र बहुघ्नतायाम् एके तु यद्भूरि तदेव कार्यम् ॥२०॥

सत्याचार्य का मत अन्य (जीवशर्मा, मय प्रभृति आचार्यों) के मतों की अपेक्षा श्रेष्ठ है। अन्य आचार्यों ने ग्रह-आयु में अनेक हरण और वृद्धि कही है, जिससे ग्रहायु में विकार होता है। सत्याचार्य के अनुसार जहाँ अनेक वृद्धि होती हो वहाँ अन्य का त्याग कर केवल एक ही वृद्धि—जो सर्वाधिक हो उसे ही—ग्रहण करना चाहिए। इसी प्रकार जहाँ अनेक ह्रास होते हों वहाँ जो सर्वाधिक हो उसे ही ग्रहण करना चाहिए ॥२०॥

पूर्वोक्त श्लोक १८ के अनुसार वक्रगत शनि, जिसका राश्यादि भोग ६।१२°।२४'।१०" है, की अंशायु का आनयन इस प्रकार होगा—

ग
६।१२°।२४'।१०" = ११५४४'.१६७

११५४४.१६७ ÷ २४०० = लब्धि ४ शेष १९४४.१६७

शेष १९४४.१६७ में २०० का भाग देने पर

१८ फ.

$\frac{१९४४.१६७}{२००}$ = ९ वर्ष ८ मास १९ दिन ३० घटी

यह शनि का आयुर्दाय हुआ। यहाँ शनि अपनी उच्चराशि में स्थित है और वक्री भी है तथा स्वनवांश में स्थित है।

इस श्लोक के उत्तरार्द्ध के अनुसार उच्चस्थ होने से शनि के गणितागत आयुर्दाय ९.७२ वर्ष को त्रिगुणित करना चाहिए। पुनः वक्रगति होने के कारण पुनः त्रिगुणित और स्वनवांश में स्थितिवश द्विगुणित भी करना चाहिए। इस प्रकार शनि का वास्तविक आयुर्दाय ९.७२×१८ = १७४.९७ वर्ष होते हैं। ह्रास कोई नहीं है।

श्लोक १९ के अनुसार यदि दृश्य चक्रार्द्ध में शनि स्थित हो तो भावानुसार ह्रास होगा। मान लें कि शनि एकादश भाव में स्थित हो तो उसकी उक्त आयुर्दाय में $\frac{१}{३}$ का ह्रास होगा।

श्लोक २० के अनुसार 'बहुघ्नतायां तु यद्भूरि एकं कार्यम्' के अनुसार अनेक वृद्धि में जो सर्वाधिक हो उसे ही करना चाहिए। उदाहरण में दो त्रिगुणित और एक द्विगुणित वृद्धि प्राप्त है। इसमें केवल एक बार ही त्रिगुणित करना चाहिए, द्विगुणित नहीं करना चाहिए। इस प्रकार—

शनि का आयुर्दाय ९.७२१×३ = २९.१६३ वर्ष हुआ।

एकादशभावगत होने से शनि के आयुर्दाय के तृतीयांश का ह्रास होगा अर्थात्

शनि के आयुर्दाय का $\frac{१}{३}$ = $\frac{९.७२१}{३}$ = ३.२४ वर्ष

∴ शनि का आयुर्दाय = ९.७२१−३.२४

= ६.४८१ वर्ष

जहाँ ह्रास और वृद्धि दोनों की प्राप्ति हो पहले ह्रास क्रिया करने के बाद वृद्धि की क्रिया करनी चाहिए। अतः शनि का स्पष्ट आयुर्दाय = ६.४८१×३ = १९.४४३ वर्ष।

पिण्डायु-दशा

धेयं शूर शके श्रियं स्मय परे निद्राः समा भास्करात्
पिण्डाख्यायुषि पूर्ववच्च हरणं सर्वं विदध्यादिह।
लग्ने पापिनि भं विनोदयलवैर्निघ्नं नताङ्गैर्हृतं
त्याज्यं सौम्यनिरीक्षितेऽर्धमृणमत्रायुष्यभिज्ञा विदुः ॥२१॥

सूर्यादि ग्रहों के द्वारा प्रदत्त पिण्डायुर्दाय क्रमशः १९, २५, १५, १२, १५, २१ और २० वर्ष होता है (धेयं = १९, शूर = २५, शके = १५, श्रियं = १२, स्मय = १५, परे = २१, निद्रा = २० 'कटपयादि' विधि से)। पूर्व की भाँति पिण्डायु में भी षड्विध हरण, जो पहले बताये जा चुके हैं, करना चाहिए।

लग्न के राशि को छोड़कर अंशादि मात्र से ग्रहों द्वारा प्रदत्त आयुर्दायों के योग को

गुणाकर ३६० से भाग देने से जो वर्षादि लब्ध हों उसे पूर्णायु में हीन करने से स्पष्ट आयु के वर्षादि होते हैं। यह क्रिया तब ही करनी चाहिए जब लग्न में कोई पापग्रह स्थित हो। यदि वह पापग्रह किसी शुभग्रह से दृष्ट हो तो उक्त फल का आधा ही पूर्णायु में हीन करना चाहिए। आयुर्दाय में पारग मनीषियों का ऐसा कहना है ॥२१॥

पिण्डायुर्दाय में लग्नायु-प्रमाण

लग्नदशामंशसमां बलवत्यंशे वदन्ति पैण्डाख्ये।
बलयुक्तं यदि लग्नं राशिसमैवात्र नांशोत्था ॥२२॥

पिण्डायुर्दाय में लग्ननवांश यदि बलवान् हो तो उसकी राशिसंख्या तुल्य लग्नायुर्दाय होता है। यदि लग्न अपेक्षया बलवान् हो तो राशिसंख्या तुल्य (मेष हो तो १ वर्ष, वृष लग्न हो तो २ वर्ष, मिथुन हो तो ३ वर्ष, क्रमश: मीन लग्न हो तो १२ वर्ष) लग्नायु होती है।

लग्न और लग्ननवांश में जो अपने स्वामी, बृहस्पति और बुध से दृष्ट हो अथवा युत हो (होरा स्वामिगुरुज्ञवीक्षितयुता:) तो उसके अनुसार लग्नायु-साधन करना चाहिए। यदि लग्न ४।१५°।२८'।४२" हो और बलयुक्त हो तो लग्न राशि सिंह की क्रमसंख्या ५ तुल्य वर्ष लग्नायु के वर्ष होंगे, शेष १५°।२८'।४२" के अनुपात से मासादि का ज्ञान इस प्रकार होगा—

१५°।२८'।४२" = ९२८'.७

१ राशि = ३०° = १८००' में १ वर्ष = १२ मास आयु लब्ध होती है।

∴ ९२८'.७ में = $\frac{१२\times९२८'.७}{१८००}$ = ६.१९१३ मास

= ६ मास ५ दिन ४४ घटी २४ पल

इस फल में ५ वर्ष युत करने से ५।६।५।४४।२४ वर्षादि लग्नायु होगी।

लग्न में सिंह का नवमांश है। यदि सिंह राशि लग्नापेक्षया बलवान् हो तो लग्नायु नवांशाधीन होगी। उसके लिए गत अंशादि के पूर्ववत् कला ९२८'.७ में नवांशक कला २००' से भाग देने पर—

$\frac{९२८'.७}{२००}$ = ४.६४३५ वर्ष = ४।७।२१।३९।३६ वर्षादि = लग्नायुर्दाय

ग्रहायु-प्रमाण

हरणं नीचेऽर्द्धमृणं स्यात्पूर्णं प्रोक्तवर्षमुच्चगृहे।
पैण्डादौ ह्यन्तरगे प्राज्ञैस्त्रैराशिकं चिन्त्यम् ॥२३॥

ग्रह के जो आयु-प्रमाण पहले (श्लोक २१) कहे गये हैं वे ग्रहों के परमोच्चांशों में स्थिति वश होते हैं। परमनीचस्थ ग्रह की आधी आयु होती है। परमोच्च और परम नीच स्थिति के मध्य स्थित ग्रहों की आयु अनुपात से ग्रहण करना चाहिए ॥२३॥

जन्मकालिक सूर्य का राश्यादि भोग यदि ४।२३°।३४'।४६" हो तो उसका आयुर्दाय जानने के लिए सूर्य के परमोच्च ०।१०° को सूर्यभोग में घटाने पर अन्तर

= ४।२३°।३४'।४६"–०।१०°

= ४।१३°।३४'।४६" = उच्चोन ग्रह

यत: सूर्य के अपने उच्चस्थान से ६ राशि चलने पर वह नीच स्थान को प्राप्त करता है और अपनी आधी आयु नष्ट कर देता है। अब अनुपात किया,

यदि ६ राशि चलने में $\frac{\text{आयु}}{२}$ का ह्रास होता है

तो ४।१३°।३४'।४६" चलने में $= \dfrac{\frac{\text{आयु}}{२}\times(४।१३^\circ३४'।४६'')}{६}$ का ह्रास होगा।

$= \dfrac{\text{आयु}\times(४।१३^\circ३४'।४६'')}{१२}$ वर्षादि का ह्रास होगा।

∴ सूर्य का आयुर्दाय $= १९ - \dfrac{१९\times(४।१३^\circ।३४'।४६'')}{१२}$

$= \dfrac{१९\times१२ - १९\times(४।१३^\circ।३४'।४६'')}{१२}$

$= \dfrac{१९\,[१२-(४।१३^\circ।३४'।४६'')]}{१२}$

$= \dfrac{१९\times(७।१६^\circ।२५'।१४'')}{१२}$

= ११।११।११।५९।२६ वर्षादि।

पिण्डजायु की मान्यता में मतान्तर

पैण्डाख्यमायुर्ब्रुवते प्रधानं मणित्थचाणक्यमयादयश्च।
एतन्न साध्वित्यवदद्वदन्तो वराहसूर्यस्य तथैव वाक्यम्॥२४॥

मणित्थ, चाणक्य, मय आदि मनीषियों ने पिण्डज आयु को प्रधानता दी है। किन्तु सत्याचार्य और वराह आदि ने इस पिण्डज आयुर्दाय-व्यवस्था को अमान्य किया है॥२४॥

सूर्यादिकानां स्वमतेन जीवशर्मा स्वरांशं परमायुषोऽत्र।
अस्यापि सर्वं हरणं विधेयं पूर्वोक्तवल्लग्नदशामपीह॥२५॥

जीवशर्मा के अपने मतानुसार परमायु (१२० वर्ष ५ दिन) के सप्तमांश तुल्य वर्षादि (१७।१।२९।५९।५९ वर्षादि) सूर्यादि ग्रहों के आयुर्दाय होते हैं। इसमें भी पूर्वोक्त नियमानुसार सभी प्रकार के ह्रासादि शोधन करना चाहिए॥२५॥

परमायु-भेद

नृणां द्वादशवत्सरा दशहता ह्यायुःप्रमाणं परै-
राख्यातं परमं शनेस्त्रिभगणं यावत्परैरीरितम्।

कैश्चिच्चन्द्रसहस्रदर्शनमिह प्रोक्तं कलौ किन्तु यत्
वेदोक्तं शरदः शतं हि परमायुर्दायमाचक्ष्महे ॥२६॥

कतिपय विद्वानों के अनुसार मनुष्यों की परमायु १२ × १० = १२० वर्ष होती है। कुछ के अनुसार यह शनि के तीन भगण वर्ष के समान होती है। कुछ विद्वानों के अनुसार चन्द्रमा एक सहस्र भगण तुल्य वर्ष मनुष्य की परमायु होती है। किन्तु हमारे मत से कलियुग में मनुष्य की परमायु १०० वर्ष ही होती है ॥२६॥

प्रथम दशानिर्णय

लग्नादित्येन्दुकानामधिकबलवतः स्याद्दशादौ ततोऽन्या
तत्केन्द्रादिस्थितानामिह बहुषु पुनर्वीर्यतो वीर्यसाम्ये।
बह्वायुर्वर्षदातुः प्रथममिनवशाच्चोदितस्याब्दसाम्ये
वीर्यं किन्त्वत्र सन्धिग्रहविवरहतं भावसन्ध्यन्तराप्तम् ॥२७॥

लग्न, सूर्य और चन्द्रमा आदि में जो सर्वाधिक बलवान् हो, पहली दशा उसकी होती है। उसके बाद उस बली ग्रह या लग्न से केन्द्रस्थ ग्रह की दशा होती है, उसके बाद पणफर और आपोक्लिम में स्थित ग्रहों की दशाएँ क्रम से होती हैं। केन्द्रादि स्थानों में यदि एकाधिक ग्रह स्थित हों तो उनमें जो बलवान् हो उसकी दशा पहले होगी। यदि दोनों के बल भी समान हों तो अधिक आयुर्दाय वाले ग्रह की दशा पहले होगी। यदि दोनों के आयुर्दायों में भी समानता हो तो उनमें सूर्य-सान्निध्य से अस्त होने के बाद प्रथम उदित होने वाले ग्रह की प्रथम दशा होगी। उदय में भी यदि समानता हो तो उनके स्वाभाविक क्रम में पूर्व स्थित ग्रह की दशा पहले होगी। उनका क्रम इस प्रकार है—

१. लग्न, २. सूर्य, ३. चन्द्रमा, ४. भौम, ५. बुध, ६. बृहस्पति, ७. शुक्र और ८. शनि।

इस क्रम में दोनों समान उदय वाले ग्रहों में जो पूर्व क्रम वाला हो उसकी दशा पहले होगी।

निकटतम भावसन्धि और ग्रह के मध्य अन्तर को भावांश और पूर्व या पर सन्धि के अन्तर से भाग देने पर लब्धि ग्रह बल होता है ॥२७॥

दशा की ग्राह्यता

अंशोद्भवं लग्नबलात्प्रसाध्यमायुश्च पिण्डोद्भवमर्कवीर्यात्।
नैसर्गिकं चन्द्रबलात्प्रसाध्यं ब्रूमस्त्रयाणामपि वीर्यसाम्ये ॥२८॥

यदि लग्न बलवान् हो तो अंशज, यदि सूर्य बलवान् हो तो पिण्डज और यदि चन्द्रमा बलवान् हो तो नैसर्गिक दशा का आनयन करना चाहिए। यदि लग्न, सूर्य और चन्द्रमा समान बलशाली हों तो क्या करना चाहिए ? अब हम इस पर विचार करेंगे ॥२८॥

तेषां त्रयाणामिह संयुतिस्तु त्रिभिर्हृता सैव दशा प्रकल्प्या।
वीर्ये द्वयोरैक्यदलं तयोः स्यात् चेज्जीवशर्मायुरमी बलोनाः ॥२९॥

यदि लग्न, सूर्य और चन्द्रमा तीनों में बल साम्य हो तो तीनों आयुषों के योग को ३ से भाग देने पर प्राप्त लब्धि तुल्य वर्षादि को आयुर्दाय ग्रहण करना चाहिए। यदि तीन में से दो का बल समान हो तो दोनों आयुर्दायों के योग में २ का भाग देकर लब्धि तुल्य आर्युदाय ग्रहण करना चाहिए। उक्त तीनों यदि बलहीन हों तो जीवशर्मा के आयुर्दाय का अनुसरण करना चाहिए ॥२९॥

कालचक्रदशा ज्ञेया चन्द्रांशेशे बलान्विते।
सदा नक्षत्रमार्गेण दशा बलवती स्मृता ॥३०॥

जन्मकालिक चन्द्रमा जिस राशि के नवांश में स्थित हो उसका स्वामी यदि बलान्वित हो तो कालचक्र दशा ग्रहण करनी चाहिए। नक्षत्रों पर आधारित दशा (विंशोत्तरी दशा) सर्वोत्तम कही गई है ॥३०॥

विभिन्न प्राणियों की परमायु

समाः षष्टिर्द्विघ्ना मनुजकरिणां पञ्च च निशा
हयानां द्वात्रिंशत्खरकरभयोः पञ्चककृतिः।
विरूपा साप्यायुर्वृषमहिषयोर्द्वादश शुनां
स्मृतं छागादीनां दशकसहिताः षट् च परमम् ॥३१॥

मनुष्य और हाथियों की परमायु १२० वर्ष ५ दिन, अश्वों की ३२ वर्ष, गधे और ऊँट की २५ वर्ष, बैल और भैंसों की आयु २४ वर्ष, कुत्ते की १२ वर्ष तथा भेड़, बकरी आदि की परमायु १६ वर्ष होती है।

परमायुष के अधिकारी

ये धर्मकर्मनिरता विजितेन्द्रिया ये
ये पथ्यभोजनजुषो द्विजदेवभक्ताः।
लोके नरा दधति ये कुलशीललीलां
तेषामिदं कथितमायुरुदारधीभिः ॥३२॥

इति मन्त्रेश्वरविरचितायां फलदीपिकायां दशाभेदो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

जो व्यक्ति अपने धर्म-कर्म में निरत रहता है, जिसकी इन्द्रियाँ उसके वश में होती हैं, जो नित्य सुपाच्य आहार ग्रहण करता है, देवता और ब्राह्मण के प्रति आस्थावान् है, जो अपने कुल-परम्परा के अनुकूल आचरण करता है वह परमायु प्राप्त करता है। ऐसा विज्ञजनों का कहना है ॥३२॥

इस प्रकार मन्त्रेश्वरकृत फलदीपिका में दशाभेद नामक
बाईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥२२॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

अष्टकवर्गः

गोचरग्रहवशान्मनुजानां यच्छुभाशुभफलाभ्युपलब्ध्यै ।
अष्टवर्ग इति यो महदुक्तस्तत्प्रसाधनमिहाभिदधेऽहम् ॥१॥

मनुष्यों पर गोचर ग्रहों के प्रभाव के अध्ययन में अष्टकवर्ग की बड़ी महत्ता आचार्यों ने बतलाई है, उसी को मैं कहता हूँ ॥१॥

अष्टक वर्ग के शाब्दिक अर्थ पर विचार करें तो इसका अर्थ होता है—आठ पदार्थों का समूह। ये आठ पदार्थ हैं लग्न सहित सूर्यादि सप्त ग्रह। मनुष्य अपने जन्मकालिक ग्रह स्थितियों से तो प्रभावित होता ही है, साथ ही ग्रहों के दैनिक संचालन से भी प्रभावित होता है। जन्मकालिक ग्रहस्थितियों का मनुष्य पर स्थायी और व्यापक प्रभाव होता है जबकि उनके दैनिक संचालन का तात्कालिक प्रभाव होता है। जैसे मान लें—किसी के लिए शुक्र की शुभद महादशा चल रही है। गोचर से शुक्र यदि शुभ है तो उसकी दशा अपेक्षया अधिक शुभ होगी। इसके विपरीत उस शुक्र की दशा में यदि शुक्र गोचर में अशुभ स्थान में स्थित हो तो उसी शुक्र की दशा जातक के लिए शुभद नहीं होगी। ग्रहों के दैनिक संचालन से उत्पन्न प्रभाज के अध्ययन हेतु अष्टक वर्ग की विधा का प्रादुर्भाव हुआ। गोचर ग्रहों के प्रभाव के ज्ञान के लिए यह अत्यन्त उपयोगी विधा है।

आलिख्य सम्यग्भुवि राशिचक्रं ग्रहस्थितिं तज्जननप्रवृत्ताम् ।
तत्तद्ग्रहर्क्षात्क्रमशोऽष्टवर्गं प्रोक्तं करोत्यक्षविधानमत्र ॥२॥

भूमि पर राशिचक्र बना कर उसमें जन्मकालिक ग्रहों को यथास्थान स्थापित कर जन्माङ्ग तैयार करें। आगे के श्लोकानुसार कथित स्थानों (भावों) में गोली स्थापित करें। इस प्रकार जो जन्माङ्ग तैयार होगा उसे अष्टक वर्ग कहते हैं ॥२॥

पूर्वकाल में जब कागज का आविष्कार नहीं हुआ था उस समय भूमि पर ही जन्मचक्र बनाये जाते थे। फिर उसमें कथित शुभ स्थानों पर गोलियाँ या रुद्राक्ष रखने की प्रथा थी। उसके द्वारा ही अष्टक वर्ग बनाकर फल कहे जाते थे। किन्तु अब जबकि हमारे पास कागज उपलब्ध है तो उसी पर जन्मचक्र बनाकर गोलियों के स्थान पर बिन्दु का प्रयोग करते हैं।

दक्षिण भारत में कथित शुभ स्थानों में बिन्दु और अशुभ स्थानों में रेखा लगाने की प्रथा है। उत्तर भारत में इसके विपरीत शुभ स्थानों में रेखा और अशुभ स्थानों में बिन्दु का प्रयोग होता है। पराशरादि प्रभृति मनीषियों ने इस दूसरी पद्धति का ही प्रयोग किया है। इस ग्रन्थ में पूर्व पद्धति अर्थात् शुभ स्थान में बिन्दु और अशुभ स्थान में रेखा का प्रयोग करेंगे।

सूर्यादि ग्रहों के बिन्दुओं की संख्या क्रमशः ४८।४९।३९।५४।५६।५२।३९ होती है।

'देवो धवो धीगवशस्तमो रमा धूलिः क्रमादुष्णकरादिबिन्दवः ।
सालोलसंख्याः समुदायबिन्दवः सर्वाष्टवर्गः समुदायसंज्ञकः' ।।

सभी सात ग्रहों के कुल ३३७ बिन्दु होते हैं। इसे सर्वाष्टक वर्ग या समुदायाष्टक वर्ग कहते हैं।

सूर्याष्टक

पुत्रीवसाहिधनिकेऽर्ककुजार्कजेभ्यो
मुक्ताळके सुरगुरोर्भृगुजात्तथाश्रीः ।
ज्ञाद्गोमतीधनपरा रविरिष्टदोद्ब्जात्-
गीतोन्नयेऽप्युदयभाल्लघुतान्नपात्रे ।।३।।

सूर्य अपने स्थान से १,२,४,७,८,९,१० और ११वें स्थान में;
चन्द्रमा के स्थान से सूर्य ३,६,१० और ११वें स्थान में;
भौम के स्थान से सूर्य १,२,४,७,८,९,१० और ११वें स्थान में;
बुध के स्थान से सूर्य ३,५,६,९,१०,११ और १२वें स्थान में;
बृहस्पति के स्थान से सूर्य ५,६,९ और ११वें स्थान में;
शुक्र के स्थान से सूर्य ६,७ और १२वें स्थान में;

शनि के स्थान से सूर्य १,२,४,७,८,९,१० और ११वें स्थान में तथा लग्न से ३,४,६,१०,११ और १२वें स्थान में सूर्य शुभ होता है। इसलिए इन स्थानों में ० (बिन्दु) और शेष स्थानों में रेखा (।) लगाना चाहिए। मंगल और शनि के स्थान से अपने समान स्थानों में यथा १,२,४,७,८,९,१० और ११वें स्थान में शुभ होता है ।।३।।

उदाहरण के लिए संलग्न जन्माङ्ग देखें।

श्री सं. २०३६ शाके १९०१ वैशाखकृष्ण ८ तिथौ १३।३० शुक्रवासरे उत्तराषाढभे ५।५ साध्ययोगे ३४।४८ कौलवकरणे श्रीसूर्योदयादिष्टं १।३० एतत्समये मेषलग्नोदये यस्य कस्यचिज्जन्म। लग्नम् ०।१५।५९।२ भयातं ५३।१७ भभोगः ५६।५२ दिनमानं ३१।४८।

स्प. ग्रहाः—

सू. – ०।५।३७।३८
चं. – ९।९।९।३५
मं. – ११।१६।२९।४२
बु. – ११।८।३१।५१
बृ. – ३।६।२४।३२
शु. – ११।२।३९।१०
श. – ४।१३।५०।३३
रा. – ४।२१।४९।४४
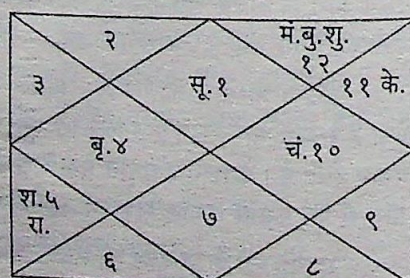
इस श्लोक के अनुसार सूर्य अपने स्थान से १,२,४,७,८,९,१० और ११वीं राशि में शुभ फल देता है। सूर्य लग्न में स्थित है। अत: लग्न, द्वितीय, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम, नवम, दशम और एकादश भावों में बिन्दु (०) स्थापित करना चाहिए। चन्द्रमा के स्थान दशम भाव से ३,६,१० और ११वें स्थान में सूर्य शुभ फल देता है। इसलिए दशम भाव से इन स्थानों में अर्थात् द्वादश भाव में, तृतीय, सप्तम और अष्टम भावों में बिन्दुओं का स्थापन होगा। इस प्रकार बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि और लग्नादि स्थान से कथित भावों में बिन्दु स्थापित करने से संलग्न सूर्याष्टक वर्ग तैयार होता है। सूर्यादि ग्रहों के कथित शुभ स्थानों के अतिरिक्त शेष स्थान में ग्रह नेष्ट फलद होते हैं। इन स्थानों में रेखा (।) लगाना चाहिए। जैसे सूर्य अपने स्थान से १,२,४,७,८,९,१० और ११वें भाव में शुभ और शेष ३,५,६ और १२वें भाव में नेष्ट फल देता है। अत: सूर्य से तृतीय, पंचम, नवम और द्वादश भावों में रेखा (।) चिह्न लगाना चाहिए।

सूर्याष्टकवर्ग

बिन्दु संख्या ४८

चन्द्राष्टक वर्ग

गीतासौ जनके रवेः कलितसान्निष्के तुषारद्युतेः
भौमाच्छ्रीगुणिते धनस्य युगवन्मासाब्दनित्ये बुधात्।
जीवात्कौरवसज्जनस्य भृगुजादगूढात्मसिद्धाज्ञया
मन्दाद्बाणचये तनोर्गतिनये चन्द्रः शुभो गोचरे ॥४॥

जिस राशि में सूर्य स्थित हो उससे ३,६,७,८,१० और ११वीं राशि;
चन्द्रराशि से १,३,६,७, १० और ११वीं राशि में;
भौमराशि से २,३, ५,६,९,१० और ११वीं राशि में;
बुधराशि से १,३,४,५,७,८,१० और ११वीं राशि में;
बृहस्पति से १,२,४,७, ८,१० और ११वीं राशि में;
शुक्र से ३,४, ५,७,९,१० और ११वीं राशि में;
शनि राशि से ३,५,६ और ११वीं राशि में तथा
लग्नराशि से ३,६,१० और ११वीं राशि में चन्द्रमा शुभद होता है ॥४॥

वराहमिहिर के अनुसार चन्द्रमा बृहस्पति गृहीत राशि से १,४,७, ८,१०,११ और १२वीं राशि में शुभ फल देता है।

चन्द्राष्टकवर्ग

बिन्दुसंख्या ४९

भौमाष्टक वर्ग

तीक्ष्णांशोर्गणितानके शिशिरगोर्लाक्षाय भूमेः सुतात्
पुत्रीवासजनाय चन्द्रतनयाद्गोमेतके गीष्पतेः।
तन्नाकारि सितात्तदा कुरुशनेः कोवासदाधेनुको
लग्नात्स्वात्कलितं नयेत् क्षितिसुतः क्षेमप्रदो गोचरे ॥५॥

सूर्याधितिष्ठित भाव से ३,५,६,१० और ११वें स्थान में;
चन्द्राधितिष्ठित भाव से ३,६ और ११वें स्थान में;
स्वस्थान से १,२,४,७,८,१० और ११वें स्थान में;
बुधाधितिष्ठित भाव से ३,५,६ और ११वें स्थान में;
गुर्वधितिष्ठित भाव से ६,१०,११ और १२वें स्थान में;
शुक्राधितिष्ठित भाव से ६,८,११ और १२वें स्थान में,;
शन्याधितिष्ठित भाव से १,४,७,८,९,१० और ११वें स्थान में और
लग्नभाव से १,३,६,१० और ११वें स्थान में गोचरवश भौम शुभ फल देता है ॥५॥

भौमाष्टक वर्ग

बिन्दुसंख्या-३१

बुधाष्टक वर्ग

सौम्याद्योगशतं धनैः कुरुरवेर्मोषाधिकश्रीर्गुरोः
तेजो यत्र यमारयोः पुरवसन्दिग्धे नये भार्गवात्।
पुत्रो गर्भमहान्धके परभृतां दानाय लग्नात्सुधा-
मूर्तेः प्रावृषि जानकी शशिसुतस्त्वत्र स्थितश्चेच्छुभः ॥६॥

सूर्याधितिष्ठित भाव से ५,६,९,११ और १२वें भाव में;

चन्द्राधितिष्ठित भाव से २,४,६,८,१० और ११वें भाव में;

मंगल और शनि स्थित भाव से १,२,४,७,८,९,१० और ११वें भाव में;

स्वस्थान से १,३,५,६,९,१०,११ और १२वें भाव में;

गुर्वधितिष्ठित भाव से ६,८,११ और १२वें भाव में;

शुक्राधितिष्ठित भाव से १,२,३,४,५,८,९ और ११वें भाव में;

लग्न से १,२,४,६,८,१० और ११वें भाव में गोचर का बुध शुभ फल देता है ॥६॥

शेष स्थानों पर नेष्ट फल देता है।

इसके अनुसार उदाहरण जन्माङ्ग में बिन्दु और रेखा लगाने से निम्न बुधाष्टक वर्ग बनेगा।
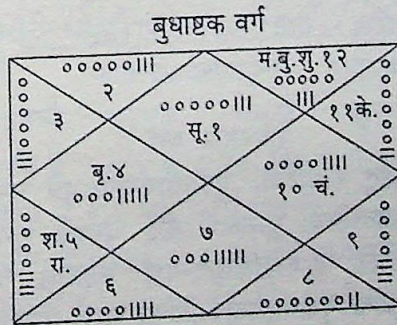
बुधाष्टक वर्ग

बिन्दुसंख्या-५४

गुर्वष्टक वर्ग

मार्तण्डात्करलाभसज्जधनिके चन्द्राद्रुमेसालिके
भौमात्किं प्रभुसूदनाय कुरवः शिक्षाधनाढ्ये बुधात्।
पुत्री गर्भसदानके सुरगुरोः स्वल्लक्ष्मिचन्द्रे शनेः
श्रीमन्तो धनिकाः सितात्करिविशेषे सिद्धिनित्यं तनोः ॥७॥

सूर्याधितिष्ठित भाव से १,२,३,४,७,८,९,१० और ११वें भाव में;
चन्द्राधितिष्ठित भाव से २,५,७,९ और ११वें भाव में;
भौमाधितिष्ठित भाव से १,२,४,७,८,१० और ११वें भाव में;
बुधाधितिष्ठित भाव से १,२,४,५,६,९,१० और ११वें भाव में;
स्वाधितिष्ठित भाव से १,२,३,४,७,८,१० और ११वें भाव में;
शुक्राधितिष्ठित भाव से २,५,६,९,१० और ११वें भाव में;
शन्यधितिष्ठित भाव से ३,५,६ और १२वें भाव में तथा

लग्नभाव से १,२,४,५,६,७,९,१० और ११वें भाव में गोचरवश बृहस्पति शुभद होता है ।।७।।

शेष स्थानों में नेष्ट फल देता है। शुभ स्थानों में बिन्दु और नेष्ट स्थानों में रेखा स्थापन से निम्न गुर्वष्टक वर्ग बनेगा।

गुर्वष्टक वर्ग

बिन्दुसंख्या ५६
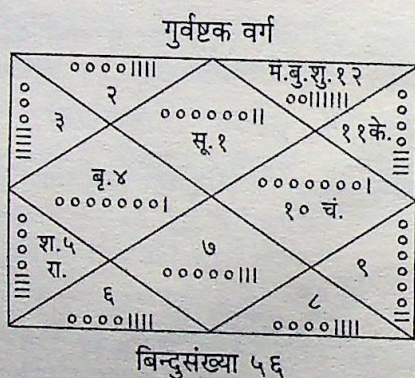
शुक्राष्टक वर्ग

जात्यां श्रीस्तु रवेर्विधोः पुरगवामन्दोळिपुत्रे तनोः
पौरे लाभमदाळिके कुरुलवं मोहे धनेढ्ये भृगोः ।
लोभस्ताळिपरे कुजाद्रविसुतान्गार्भं महाब्धौ नये
ज्ञाळक्ष्मीचुळके गुरोर्मदधताढ्योऽसौ भृगुः सौख्यदः ।।८।।

सूर्याधितिष्ठित भाव से ८,११ और १२वें भाव में;
चन्द्राधितिष्ठित भाव से १,२,३,४,५,८,९,११ और १२वें भाव में;
भौमाधितिष्ठित भाव से ३,५,६,९,११ और १२वें भाव में;[१]
बुधाधितिष्ठित भाव से ३,५,६,९ और ११वें भाव में;

---

१. पराशर के अनुसार शुक्र मंगल के स्थान से ३,४,६,९,११ और १२वें भाव में शुभद होता है।

गुर्वधितिष्ठित भाव से ५,८,९,१० और ११वें भाव में;

स्वाधितिष्ठित भाव से १,२,३,४,५,८,९,१० और ११वें भाव में;

शन्यधितिष्ठित भाव से ३,४,५,८,९,१० और ११वें भाव में तथा

लग्न से १,२,३,४,५,८,९ और ११वें भाव में

गोचरवश शुक्र शुभ फल देता है। शेष स्थानों में वह नेष्ट फल देता है ॥८॥

उदाहरण जन्माङ्ग में उपरोक्त के अनुसार बिन्दु और रेखाओं को न्यस्त करने पर शुक्राष्टक वर्ग का निम्न स्वरूप होगा।

शुक्राष्टक वर्ग

बिन्दुसंख्या ५२
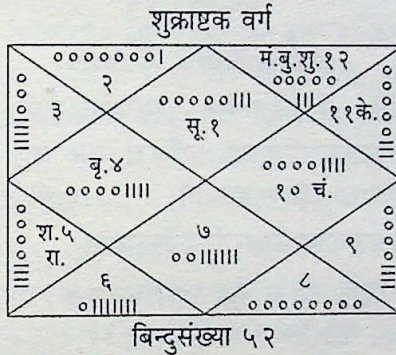
शन्यष्टक वर्ग

> **रवेर्यात्रावीथीजनय शशिनो लक्षय शने-**
> **र्गुणेस्तुत्यो भौमाद्गणितनिकरोऽसौ शुभकरः।**
> **शताकारे जीवात्तदधनपरे ज्ञादुदयभात्**
> **कलाभूतानम्ये भृगुज चयखे सूर्यतनयः ॥९॥**

सूर्याधितिष्ठित राशि से १,२,४,७,८,१० और ११वें भाव में;

चन्द्राधितिष्ठित राशि से ३,६ और ११वें भाव में;

भौमाधितिष्ठित राशि से ३,५,६,१०,११ और १२वें भाव में;

बुधाधितिष्ठित राशि से ६,८,९,१०,११ और १२वीं राशि में;

गुर्वधितिष्ठित राशि से ५,६,११ और १२वीं राशि में;

शुक्राधितिष्ठित राशि से ६,११ और १२वीं राशि में;

स्वाधितिष्ठित भाव से ३,५,६ और ११वें भाव में तथा

लग्न से १,३,४,६,१० और ११वें भाव में शनि शुभद होता है। शेष भावों में शनि अशुभ फल देता है। उक्त विवरण के अनुसार उदाहरण कुण्डली में शुभाशुभ बिन्दु और रेखा न्यस्त करने से निम्न शन्यष्टक वर्ग बनेगा।

शन्यष्टक वर्ग

बिन्दुसंख्या-३९

अष्टकवर्गविचार में विशेष

इति निगदितमिष्टं नेष्टमन्यद्विशेषा-
दधिकफलविपाकं जन्मिनां तत्र दद्युः ।
उपचयगृहमित्रस्वोच्चगैः पुष्टमिष्टं
त्वपचयगृहनीचारातिगैर्नेष्टसम्पत् ॥१०॥

इस प्रकार हमने अष्टक वर्ग के शुभ स्थानों को कहा। शेष स्थान अशुभ फल देने वाले हैं। उक्त शुभ स्थान यदि जन्मलग्न से उपचय (३,६,१० और ११वाँ) भाव हो, सम्बन्धित ग्रह का उच्च स्थान, स्वगृह या मित्रगृह हो तो उस स्थान या भाव के सामान्य शुभ फल में वृद्धि होती है। किन्तु यदि उक्त शुभ स्थान लग्न से अनुपचय (१,२,४,५,७,८,९, और १२वाँ) भाव हो या सम्बन्धित ग्रह का नीच स्थान या शत्रुगृह हो तो उस भाव के शुभत्व में न्यूनता आ जाती है ॥१०॥

लग्न से ३,६,१०,११वाँ भाव उपचय और शेष १,२,४,५,७,८,९ और १२वाँ भाव अनुपचय कहलाता है।

उदाहरण के लिए उपर्युक्त गुर्वष्टक को देखे। गुर्वष्टक चक्र में लग्न में ६ बिन्दु और २ रेखा है। अतः गोचरवश बृहस्पति के द्वारा मेष राशि के संक्रमण काल में अष्टकवर्गानुसार जातक को अत्यधिक शुभ फल की प्राप्ति होनी चाहिए। किन्तु यतः लग्न अनुपचय भाव है इसलिए अष्टकवर्गानुसार प्राप्त फल में न्यूनता आयेगी। कर्क राशि बृहस्पति की उच्चराशि है जो अष्टक वर्ग में ७ बिन्दुओं से युक्त है। फलतः बृहस्पति के द्वारा कर्क के संक्रमण काल में जातक को उच्चस्थ बृहस्पति के फल से अधिक शुभफल की प्राप्ति होगी। मकर राशि भी ७ बिन्दुओं से युक्त है किन्तु यतः मकर राशि बृहस्पति की नीच राशि है अतः इसके संक्रमण काल में जातक को दशम भाव का सामान्य सुख ही प्राप्त होगा। धनु राशि बृहस्पति का स्वगृह है जो जन्माङ्ग के नवम भाव (अनुपचय स्थान) में स्थित है तथा ६ बिन्दुओं से युक्त है। अतः धनु राशि के बृहस्पति द्वारा संक्रमित होने के समय जातक को सामान्य शुभ फल ही प्राप्त होगा। द्वादश भाव में मीन राशि बृहस्पति का स्वगृह है और

अनुपचय स्थान है तथा मात्र २ बिन्दु और ६ रेखाओं से युक्त है। अष्टकवर्गानुसार मीन राशि के संक्रमण काल में मृत्यु की सम्भावना बलवती है। किन्तु यतः मीन राशि बृहस्पति का स्वगृह है इसलिए हानि और मृत्यु तुल्य कष्ट ही होगा। इसी प्रकार अन्य ग्रहों के अष्टक वर्ग का विवेचन करना चाहिए।

कृत्वाष्टवर्गं द्युसदां क्रियादिष्वक्षैर्विहीने मृतिरेकबिन्दोः।
नाशो व्ययो भीतिभयार्थनारीश्रीराज्यसिद्धिः क्रमशः फलानि ॥११॥

सभी ग्रहों के अष्टक वर्ग तैयार करने के बाद यदि किसी ग्रह के अष्टक वर्ग में कोई राशि बिन्दु रहित हो (और वह राशि उक्त ग्रह की उच्चराशि, स्वराशि या उपचय राशि न हो) तो सम्बन्धित ग्रह के द्वारा उस राशि के संक्रमण काल में जातक की मृत्यु होती है। यदि किसी राशि में एक बिन्दु हो तो हानि, दो बिन्दु हों तो व्यय, तीन बिन्दु हों तो भय, चार बिन्दु हों तो भय, पाँच बिन्दु हों तो वाञ्छासिद्धि, छः बिन्दु हों तो स्त्रीसुख की प्राप्ति, सात बिन्दु हों तो धन-सम्पदादि का लाभ और यदि आठ बिन्दु हों तो राज्यसुख या राज्य में उच्चपद की प्राप्ति होती है ॥११॥

इस श्लोक में मृत्यु शब्द लाक्षणिक है। मृत्यु मात्र एक कारण से नहीं होती। उस राशि से अन्य ग्रहों के सम्बन्ध, दशान्तर्दशा आदि भी जब मृत्युद हों तभी मृत्यु सम्भव होती है। यहाँ मृत्यु से मृत्यु तुल्य कष्ट ही ग्रहण करना चाहिए।

अष्टक वर्ग तैयार करने की एक अन्य पद्धति भी है जिसकी चर्चा अगले श्लोक में की गई है। इस पद्धति के अनुसार ग्रहाधितिष्ठित राशि को लग्न मानकर जन्माङ्गानुसार ग्रहों को स्थापित कर उपर्युक्त विधि के अनुसार उसमें बिन्दु और रेखा को स्थापित करना चाहिए।

तत्तद्ग्रहाधिष्ठितसर्वराशींस्तत्संज्ञितं लग्नमिति प्रकल्प्य।
तेभ्यः फलान्यष्टविधान्यभूवंस्तत्तद्गृहाद्भाववशाद्वदन्तु ॥१२॥

जन्मकाल में ग्रहाधितिष्ठित राशि को लग्न मान कर उस चक्र में विभिन्न ग्रहाश्रित राशियों से गिन कर शुभाशुभ स्थानों में बिन्दु और रेखाओं का स्थापन करना चाहिए तथा लग्नादि द्वादश भावस्थ बिन्दुओं और रेखाओं के अनुसार भावों के फल कहना चाहिए ॥१२॥

गुर्वष्टक वर्ग

जन्माङ्ग में बृहस्पति कर्क राशि में स्थित है। अतः गुर्वष्टक तैयार करने के लिए कर्क राशि को लग्नभाव में स्थापित कर बृहस्पति को लग्न में तथा अन्य ग्रहों को उनकी राशियों में स्थापित किया गया है। तदनन्तर श्लोक ७ में कथित शुभ स्थानों बिन्दु और शेष स्थानों में रेखा अंकित करने से उपर्युक्त गुर्वष्टक वर्ग तैयार होता है। यह अष्टक वर्ग चक्र तैयार करने की अन्य विधि है। दोनों विधियों में अन्तर केवल इतना मात्र है कि पहली विधि में
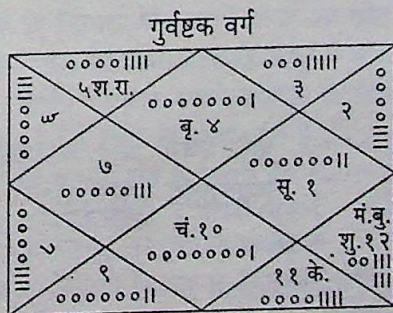
जन्मलग्न को ही लग्न मान कर सूर्यादि ग्रहों के अष्टक वर्ग बनाये जाते हैं। इस दूसरी विधि में विभिन्न ग्रहों द्वारा अधिष्ठित राशियों को लग्नस्थान में स्थापित कर अष्टक वर्ग बनाया जाता है। जिन भावों में बिन्दु अधिक हों उन भावों के शुभ फल उत्तम और जिन भावों में रेखाओं की अधिकता हो उनके नेष्ट फल होते हैं।

अब यहाँ शंका होती है। बृहस्पति एक राशि का भोग लगभग एक वर्ष में करता है। गुर्वष्टक वर्ग में कर्क राशि, जो बृहस्पति की उच्च राशि है, सात बिन्दुओं से युक्त है। कर्क राशि में बृहस्पति गोचरवश एक वर्ष पर्यन्त रहेगा। तो क्या बृहस्पति अपने एक वर्ष की समूची अवधि पर्यन्त शुभ फल एक समान देगा ? यदि नहीं तो कब और कितने समय तक शुभ फल देगा ? इन शंकाओं का समाधान आचार्य ने अगले श्लोक में किया है।

तत्तद्ग्रहर्क्षांशकतुल्यभांशस्थिता ग्रहाश्चारवशादिदानीम्।
तथैव तद्भावसमुत्थितानि फलानि कुर्वन्ति शुभाशुभानि ॥१३॥

जन्मकाल में ग्रह जितने राश्यंश में स्थित हो और जिस नवमांश में स्थित हो गोचर वश उस राशि के उस नवांश के संक्रमण की अवधि पर्यन्त उस भाव का शुभ अथवा अशुभ फल जातक को देता है ॥१३॥

इस श्लोक के परिप्रेक्ष्य में गुर्वष्टक वर्ग पर विचार करें। बृहस्पति कर्क राशि के ६°२४'३२" पर स्थित है। बृहस्पति के अष्टक वर्ग के अनुसार कर्क राशि को ७ बिन्दु प्राप्त हैं। दूसरी विधि से निर्मित गुर्वष्टक वर्ग में कर्क राशि लग्न में स्थित है। गोचरवश बृहस्पति जब कर्क राशि के ६°२४'३२" पर होगा तब लग्नगत सर्वोत्तम फल देगा। या सामान्यत: कर्क के सातवें अंश में जितने काल रहेगा वह लग्न का सर्वश्रेष्ठ फल जातक को प्रदान करेगा। चक्रानुसार सिंह राशि द्वितीय धनभाव में स्थित है तथा चार बिन्दुओं से युक्त है। अत: सिंह के संक्रमण काल में यह सामान्य से भी अल्प धनलाभ देगा या धन की हानि करेगा। इसी प्रकार मकर राशि कर्क से सप्तम भाव में स्थित है। अत: स्त्रीसुख एवं व्यवसायादि में वृद्धि करता किन्तु यत: मकर बृहस्पति की नीच राशि है इसलिए सप्तम भाव सम्बन्धी सुख में सामान्य वृद्धि ही करेगा। कर्क राशि से दसवीं मेष राशि है जो गुर्वष्टक के अनुसार दशम भाव में स्थित है और ६ बिन्दुओं से युक्त है। इसलिए गोचरवश जब मेष राशि धन-धान्य, विभव और ऐश्वर्यादि की वृद्धि और राज्यसुख का लाभ होगा। मेष के छठे अंश में बृहस्पति अपना सर्वोत्कृष्ट फल देगा। इसी प्रकार अन्य ग्रहों से भी भाव सम्बन्धी फल का आकलन करना चाहिए।

कृतेऽष्टवर्गे सति कारकर्क्षाद्यद्भावमुक्ताङ्कमुपैति खेट:।
तद्भावपुष्टिं सशुभोऽशुभो वा करोत्यनुक्ते विपरीतमेव ॥१४॥

कारक ग्रह से तनु, धन, सहजादि जो भाव अधिक (चार या पाँच बिन्दुओं या इससे अधिक) बिन्दुओं से युक्त हों तो कोई भी ग्रह (शुभ या पाप) उस भाव के फल की वृद्धि करेगा। इसके विपरीत जिस भाव में बिन्दुओं की संख्या अर्धाल्प हो अथवा भाव ग्रहशून्य

हो तो उस भावराशि के संक्रमण काल में ग्रह शुभद हों या पाप, वे उस भाव सम्बन्धी नेष्ट फल ही देते हैं ॥१४॥

एकत्र भावे बहवो यदानीमुक्ताङ्कगाश्चारवशाद्व्रजन्ति ।
पुष्णन्ति तद्भावफलानि सम्यक् तत्कारकात्तत्तनुपूर्वभावे ॥१५॥

विचारणीय ग्रह से अष्टक वर्ग के किसी भाव में यदि बिन्दुओं की पर्याप्त (अर्धाधिक) संख्या हो और गोचरवश यदि एकाधिक ग्रह उस भाव को संक्रमित करें तो उस भाव से सम्बन्धित फल की विशेष वृद्धि करते हैं ॥१५॥

उदाहरण के लिए गुर्वष्टक वर्ग को देखे। बृहस्पति से दशम भाव में मेष राशि ६ बिन्दुओं से युक्त है। सूर्यस्थ राशि मेष से दशम भाव में मकर सात बिन्दुओं से युक्त है तथा भौमाधितिष्ठित राशि मीन से दशम भाव में धनु राशि छः बिन्दुओं से युक्त है। अब जिस समय गोचरवश बृहस्पति मेष राशि में, सूर्य मकर राशि में तथा भौम धनु राशि में संक्रमित हो रहे हों तो उस समय जातक की विभव, ऐश्वर्य, सम्मान आदि की विशेष वृद्धि होगी।

फलाप्तिकाल-ज्ञान

बिन्दौ स्थिते तत्फलसिद्धिकालविनिर्णयाय प्रहितेऽष्टवर्गे ।
भान्यष्टधा तत्र विभज्य कक्षा क्रमेण तेषां फलमाहुरन्ये ॥१६॥

राशि के आठ समान भाग करने पर शनि आदि ग्रह अपनी कक्षाक्रम के अनुसार प्रत्येक अष्टमांश के स्वामी होते हैं। किसी राशि में बिन्दुप्रदाता ग्रहों के अष्टमांशों में गोचर वश किसी ग्रह के आने पर उक्त राशि जिस भाव में स्थित हो, उस भाव के फल की वृद्धि करता है ॥१६॥

एक राशि में ३०° होते हैं। अतः रा १/८ = ३०°/८ = ३°४५′ = एक अष्टमांश। ३°४५′ तुल्य एक राशि के आठ भाग होंगे। इन खण्डों के स्वामित्व का क्रम इनकी ग्रह कक्षाओं के क्रम से होता है। ग्रहकक्षा का क्रम जातकपारिजात में द्वितीय अध्याय के २८वें श्लोक के उत्तरार्ध में बतलाया गया है जो इस प्रकार है—शनि, बृहस्पति, भौम, सूर्य, शुक्र, बुध और चन्द्रमा। ये क्रमशः प्रथमादि अष्टमांशों के अधिपति होते हैं। प्रत्येक राशि में अष्ट-मांशपतियों का यही क्रम होता है।

खण्ड १. ०° से ३°४५′ तक प्रथम खण्ड के स्वामी शनि हैं,
खण्ड २. ३°४५′ से ७°३०′ तक द्वितीय खण्ड के स्वामी बृहस्पति हैं,
खण्ड ३. ७°३०′ से ११°१५′ तक तृतीय खण्ड के स्वामी भौम हैं,
खण्ड ४. ११°१५′ से १५°००′ तक चतुर्थ खण्ड के स्वामी सूर्य हैं,
खण्ड ५. १५°००′ से १८°४५′ तक पञ्चम खण्ड के स्वामी शुक्र हैं,
खण्ड ६. १८°४५′ से २२°३० तक षष्ठ खण्ड के स्वामी बुध हैं,
खण्ड ७. २२°३०′ से २६°१५′ तक सप्तम खण्ड के स्वामी चन्द्रमा हैं,
खण्ड ८. २६°१५′ से ३०°००′ तक अष्टम खण्ड के स्वामी लग्न है।

प्रस्ताराष्टक वर्ग

आलिख्य चक्रं नव पूर्वरेखाः याम्योत्तरस्था दश च त्रिरेखाः ।
प्रस्तारकं षण्णवतिप्रकोष्ठं पङ्क्त्यष्टकं चाष्टकवर्गजं स्यात् ॥१७॥

नव पड़ी रेखाओं (पूर्वापर रेखाओं) और १३ खड़ी (याम्योत्तर) रेखाओं से ९६ कोष्ठकों का एक चक्र बनाना चाहिए। इस वर्ग की आठ पंक्तियाँ ग्रह के अष्टक वर्ग को प्रदर्शित करेंगी ॥१७॥

होराशशीबोधनशुक्रसूर्यभौमामरेन्द्रार्चितभानुपुत्राः ।
याम्यादिपङ्क्त्यष्टकराशिनाथाः क्रमेण तद्बिन्दुफलप्रदाः स्युः ॥१८॥
राश्यष्टभागप्रथमांशकाले शनिर्द्वितीये तु गुरुः फलाय ।
कक्षाक्रमेणैवमिहान्त्यभागकाले विलग्नं फलदं प्रदिष्टम् ॥१९॥

इस चक्र की आठ पंक्तियाँ नीचे से क्रमशः लग्न, चन्द्रमा, बुध, शुक्र, सूर्य, मङ्गल, बृहस्पति और शनि की होती है अर्थात् ये ग्रह इन पंक्तियों के स्वामी होते हैं। ये आठ पंक्तियाँ प्रत्येक राशि के आठ विभागों को प्रदर्शित करती हैं। द्वादश राशियों के जिन-जिन विभागों में बिन्दु पड़े हों गोचरवश विचारणीय अष्टक वर्ग से सम्बन्धित ग्रह की राशि के उन विभागों के संक्रमण काल में शुभ फल देते हैं ॥१८॥

१९वाँ श्लोक पूर्व कथित १६वें श्लोक का स्पष्टीकरण मात्र है।

राशि के आठ समान भाग करने पर प्रथम भाग के स्वामी शनि, द्वितीय भाग के बृहस्पति, तृतीय भाग के मङ्गल, चतुर्थ भाग के सूर्य, पञ्चम भाग के शुक्र, छठे भाग के बुध और सातवें भाग के चन्द्रमा स्वामी होते हैं। इन विभागों का स्वामित्व ग्रहों के कक्षाक्रम से होता है। राशि के आठवें भाग में लग्न द्वारा प्रदत्त बिन्दु फलद होता है ॥१९॥

इन श्लोकों के अनुसार निम्नवत् चक्र बनाकर उसमें बृहस्पति के अष्टकवर्गानुसार बिन्दु को स्थापित करके बृहस्पति का प्रस्ताराष्टक वर्ग बनाया गया है।

बृहस्पति-प्रस्ताराष्टक वर्ग

राशयः / ग्रहाः	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
शनि				o	•		o		o	o		
बृहस्पति	o	o		•o	o	o	o			o	o	
मङ्गल	o		o			o	o		o	o		•o
सूर्य	•o	o	o	o			o	o	o	o	o	
शुक्र	o			o	o			o	o	o		•
बुध	o		o	o	o			o	o	o		•o
चन्द्रमा		o		o		o		o			o	
लग्न	•o	o		o	o	o	o		o	o	o	
योग	६	४	३	७	४	४	५	४	६	७	४	२

उपर्युक्त प्रस्ताराष्टक वर्ग में ग्रहों के क्रम उनकी कक्षाओं के क्रमानुसार हैं। चिह्न * ग्रह की स्थिति दर्शाता है। जन्माङ्ग में शनि सिंह राशि में स्थित है इसलिए शनि की पंक्ति में सिंह राशि के कोष्ठक में * अङ्कित है। मेष राशि के कालम में सूर्य की पंक्ति में उक्त चिह्न जन्माङ्ग में मेष राशि में सूर्य की स्थिति को प्रगट करता है।

मान लीजिए—बृहस्पति का गोचर विचार करना है। कन्या राशि में गोचरवश जाने वाला है। कन्या राशि में कुल चार शुभ बिन्दु प्राप्त हैं। ये सभी उसे लग्न, चन्द्रमा, मङ्गल और बृहस्पति द्वारा प्राप्त हुए हैं। अत: कन्या के संक्रमण काल में बृहस्पति कन्या के अपने द्वितीय अष्टमांश ३°४५' से ७°३०' तक, भौम के अष्टमांश ७°३०' से ११°१५' तक, चन्द्रमा के अष्टमांश २२°३०' से २६°१५' तक और लग्न के अष्टमांश २६°१५' से ३०°००' तक शुभ फल देगा। इसके अतिरिक्त यत: शनि, सूर्य, शुक्र और बुध से कन्या राशि को शुभ बिन्दु नहीं प्राप्त है इसलिए कन्या राशि में इन ग्रहों के अष्टमांशों क्रमश: ०° से ३°४५' तक, ११°१५' से १५°००' तक, १५°००' से १८°४५' तक, १८°४५' से २२°३०' तक बृहस्पति अपने संक्रमण काल में जातक को नेष्ट फल प्रदान करेगा। इस प्रकार कन्या राशि के प्रारम्भिक ३°४५' तक और ११°१५' से २२°३०' तक बृहस्पति नेष्ट फल देगा। शेष भागों में शुभ फल देगा।

सर्वग्रहाणां प्रहितेऽष्टवर्गे तत्कालराशिस्थितबिन्दुयोगे।
अष्टाक्षसंख्याधिकबिन्दवश्चेत् शुभं तदूने व्यसनं क्रमेण ॥२०॥

सभी अष्टकवर्गों से निर्मित सर्वाष्टक वर्ग के किसी राशि में बिन्दुयोग संख्या यदि २८ से अधिक हो तो गोचरवश ग्रहों के उन राशियों में आने पर सम्बन्धित भाव के फल की वृद्धि होती है। २८ से अल्प बिन्दुयोग धारण करने वाले भावों के फल की हानि होती है ॥२०॥

सभी ग्रहों के अष्टक वर्गों में मेषादि द्वादश राशियों में अलग-अलग प्राप्त बिन्दुओं की संख्याओं के योग को उन-उन राशियों में स्थापित करने से सर्वाष्टक वर्ग बनता है। उदाहरणार्थ पृ. २९६ पर अङ्कित जन्माङ्ग के सूर्यादि ग्रहों के अष्टक वर्गों में मेषादि राशियों में बिन्दुओं की संख्या इस प्रकार है—

राशियाँ / ग्रह	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	योग
सूर्य	३	४	४	३	३	४	३	६	४	४	५	५	४८
चन्द्र	२	४	७	५	१	४	५	४	४	८	३	२	४९
भौम	४	३	६	१	४	३	२	२	२	५	४	३	३९
बुध	५	५	५	३	४	४	३	६	४	४	६	५	५४
बृहस्पति	६	४	३	७	४	४	५	४	६	७	४	२	५६
शुक्र	५	७	३	४	४	१	२	८	४	४	५	५	५२
शनि	२	३	४	३	३	१	३	४	४	६	५	१	३९
योग	२७	३०	३२	२६	२३	२१	२३	३४	२८	३८	३२	२३	३३७

सर्वाष्टक वर्ग

जन्माङ्ग में सूर्यादि सात ग्रहों के अष्टक वर्ग में मेषादि द्वादश राशियों को प्राप्त होने वाले शुभ बिन्दुसंख्याओं के योग से सर्वाष्टक वर्ग या संयोगाष्टक वर्ग बनता है। कतिपय विद्वान् इसमें लग्नाष्टक वर्ग के बिन्दुओं को भी सम्मिलित करते हैं। इन मेषादि राशियों को प्राप्त बिन्दुसंख्या को जन्माङ्ग के तत्तद् भावों में स्थापित करना चाहिए। जिन भावों में बिन्दु संख्या २८ से अधिक हों उन भावों के शुभ फल की वृद्धि और इससे अल्प बिन्दुओं वाले भावों की हानि होती है अर्थात् उन भावों के फल जातक को नहीं प्राप्त होते।

सर्वाष्टक वर्ग

(३०) २
म.बु.शु.१२ (२३)
(३२) ३
१ (२७) सू.
११(३२) के.
बृ. ४ (२६)
१० (३८) चं.
श.५ (२३) रा.
७ (२३)
९(२८)
६ (२१)
८ (३४)

उदाहरण कुण्डली में नवें भाव में २८ बिन्दु हैं अत: नवें वर्ष में तथा इससे प्रति १२वें वर्ष में अर्थात् २१वें, ३३वें, ४५वें वर्ष में भाग्यसुख में सामान्य वृद्धि और सुख होगा।

दशम भाव में ३८ बिन्दु हैं। फलत: जातक को १०वें, २२वें, ३४वें आदि वर्षों में कर्मक्षेत्र में सफलता, विभवादि की वृद्धि, ऐश्वर्य का लाभ आदि सुख होगा।

जिस ग्रह का गोचर विचार करना हो उसके अपने अष्टक वर्ग के साथ सर्वाष्टक वर्ग में प्राप्त बिन्दुओं पर भी विचार कर दोनों के सम्मिलित प्रभावानुसार फल कहना चाहिए।

जिस राशि को २८ से अधिक शुभ बिन्दु प्राप्त हों ग्रहों द्वारा उस राशि के संक्रमण काल में भावानुरूप शुभ फल प्राप्त होंगे। बिन्दु २८ से जितने अधिक होंगे तथा ग्रह के अष्टक वर्ग में भी यदि उस राशि को अधिक बिन्दु प्राप्त हों तो उस राशि से सम्बन्धित भाव के पूर्ण फल प्राप्त होंगे तथा जिस राशि में बिन्दु २८ से अल्प होंगे और ग्रह के अपने अष्टक वर्ग में भी उस राशि को अल्प बिन्दु प्राप्त हों तो उस ग्रह के गोचरवश उस राशि से सम्बन्धित भाव की हानि होगी।

यावन्तस्तुहिनरुचेः शुभाङ्कसंस्था यावन्तः शुभभवने हिमद्युतेर्वा।
इत्थं तद्विदितमिहाधिके च तेभ्यः स्वस्त्यूने विपदिति सूचितं परेषाम् ॥२१॥

चन्द्रराशि से शुभद भावों में बिन्दुओं की संख्या, इन शुभद भावों में स्थित ग्रह और उन भावों में शुभ बिन्दुओं की संख्या—ये दोनों यदि २८ से (सर्वाष्टक वर्ग में) अधिक हों तो उन भावों के फल की वृद्धि होती है। ये संख्याएँ यदि २८ से न्यून हों तो उन भावों के फल की हानि होती है ॥२१॥

कर्तुः स्वजन्मसमयावसथग्रहाणां
कृत्वाष्टवर्गकथिताक्षविधानमत्र ।
बह्वक्षयोगवशतः शुभराशिमास-
भावग्रहस्थितिषु कर्मशुभं विदध्यात् ॥२२॥

जन्माङ्गस्थ ग्रहों के अष्टक वर्ग में जिस राशि में बिन्दुओं की सर्वाधिक संख्या हो उस राशि के मास में अथवा गोचर से सम्बन्धित ग्रह के उस कथित राशि में आने पर यदि कोई कार्य जातक द्वारा प्रारम्भ किया जाय तो उसमें विशेष सफलता प्राप्त होती है ॥२२॥

पापोऽपि स्वगृहस्थश्चेद्भाववृद्धिं करोत्यलम् ।
नीचारातिगृहस्थश्चेत्कुर्याद्भावक्षयं ध्रुवम् ॥२३॥

स्वगृह में स्थित पापग्रह भी यदि गोचरवश स्वराशि का संक्रमण करता है तब उसके द्वारा अधिष्ठित भाव के फल की वृद्धि होती है। किन्तु यदि वह शत्रुगृही या नीचराशिगत हो तो उस भाव में अपने संक्रमण काल में उस भाव से सम्बन्धित फल का नाश करता है ॥२३॥

स्वोच्चस्थोऽपि शुभो भावहानिं दुःस्थानपो यदि ।
सुस्थानपश्चेत् स्वोच्चस्थः पापी भावानुकूल्यकृत् ॥२४॥

इति मन्त्रेश्वरविरचितायां फलदीपिकायामष्टकवर्गो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

अपनी उच्चराशि में स्थित शुभ ग्रह भी यदि दुःस्थान (छठे, आठवें, बारहवें स्थान) का स्वामी हो तो वह जिस भाव में स्थित हो उसकी हानि करता है। पापग्रह भी यदि अपनी उच्चराशि में स्थित हो और यदि वह शुभ स्थान (केन्द्र या त्रिकोण) का स्वामी हो तो वह उस भाव की वृद्धि करता है ॥२४॥

इस प्रकार मन्त्रेश्वरकृत फलदीपिका में अष्टकवर्ग
नामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥२३॥

○

चतुर्विंशोऽध्यायः

अष्टकवर्गफलम्

पितृकष्ट-मृति योग

अर्कस्थितस्य नवमो राशिः पितृगृहः स्मृतः ।
तद्राशिफलसंख्याभिर्वर्द्धयेच्छोध्यपिण्डकम् ॥१॥

सूर्याधितिष्ठित राशि से नवीं राशि (अर्थात् सूर्याधितिष्ठित भाव से नवम भाव) को पितृ गृह या स्थान कहते हैं। सूर्य के अष्टकवर्ग के इस नवम भाव में प्राप्त बिन्दुओं की कुल संख्या को शोध्यपिण्ड संख्या से गुणा करना चाहिए ॥१॥

सूर्यादि ग्रहों के अष्टकवर्गों में दो प्रकार के शोधन—त्रिकोणशोधन और एकाधिपत्य-शोधन—आचार्यों ने कहे हैं। इन दो शोधनों के अनन्तर अष्टकवर्गों में प्राप्त बिन्दुओं की संख्या को शोध्यपिण्ड कहते हैं। इन दोनों शोधनों की चर्चा इसी अध्याय के १६वें श्लोक से २२वें श्लोक पर्यन्त ७ श्लोकों में की गई हैं।

सप्तविंशहृताल्लब्धं नक्षत्रं याति भानुजे ।
तस्मिन् काले पितृक्लेशो भविष्यति न संशयः ॥२॥

इस प्राप्त संख्या (सूर्याधितिष्ठित राशि या भाव से नवम राशि या भाव में प्राप्त बिन्दु संख्या और शोध्यपिण्ड के गुणनफल तुल्य संख्या) को २७ से भाग देने से शेष तुल्य (अश्विनी से) नक्षत्र में गोचर से शनि के आने पर पिता को कष्ट होता है ॥२॥

तत्त्रिकोणगते वाऽपि पितृतुल्यस्य वा मृतिः ।
संयोगः शोध्यशोषाणां शोध्यपिण्ड इति स्मृतः ॥३॥

इस लब्ध नक्षत्र से त्रिकोण में जो नक्षत्र पड़े उनमें शनि के संक्रमित होने पर पिता की अथवा उनके समान पितृव्यादि की मृत्यु होती है। शोधनोपरान्त (त्रिकोण और एकाधिपत्य शोधन के बाद) अवशिष्ट बिन्दुओं के योग को शोध्यपिण्ड कहते हैं ॥३॥

लग्नात्सुखेश्वरांशेशदशायां च पितृक्षयः ।
सुखनाथदशायां वा पितृतुल्यमृतिं वदेत् ॥४॥

लग्न से चतुर्थ भाव का स्वामी जिस राशि के नवांश में स्थित हो उसके स्वामी की दशा में पिता अथवा पितृसम व्यक्ति की मृत्यु होती है। चतुर्थ भाव के स्वामी की दशा भी पिता के लिए मृत्युदायक होती है ॥४॥

विशेष—इस अध्याय में आचार्य ने होरासारोक्त अष्टकवर्ग के फल-विधान को संग्रहीत किया है।

संशोध्य पिण्डं सूर्यस्य रन्ध्रमानेन वर्द्धयेत्।
द्वादशेन हताच्छेषराशिं याते दिवाकरे ॥५॥
तत्त्रिकोणगते वाऽपि मरणं तस्य निर्दिशेत्।
एवं ग्रहाणां सर्वेषां चिन्तयेन्मतिमान्नरः ॥६॥

सूर्य के अष्टकवर्ग में शोध्यपिण्ड को अष्टम भाव में प्राप्त बिन्दुओं की संख्या से गुणाकर गुणनफल में १२ से भाग देने पर जो शेष बचे, मेषादि से उस अवशिष्ट संख्या तुल्य राशि में गोचरवश सूर्य के आने पर जातक के पिता की मृत्यु होती है। इसी प्रकार अन्य सम्बन्धियों की मृत्यु के सम्बन्ध में तत्तद् ग्रहों के अष्टकवर्ग से विचार करना चाहिए ॥५-६॥

किस ग्रह से किस सम्बन्धी का विचार करना चाहिए, इसे मेरे द्वारा सम्पादित जातकपारिजात के अध्याय १ के श्लोक ४९-५० में देखिये।

मातृनिधन योग

चन्द्रात्सुखफलैः पिण्डं हत्वा सारावशेषितम्।
शनौ याते मातृहानिः त्रिकोणर्क्षगतेऽपि वा ॥७॥

चन्द्रमा के अष्टकवर्ग में शोध्यपिण्ड को चतुर्थभावस्थ बिन्दुसंख्या से गुणाकर गुणनफल में २७ से भाग देने पर जो शेष बचे, अश्विनी नक्षत्र से उक्त शेष तुल्य नक्षत्र में शनि के संक्रमित होने पर अथवा उस नक्षत्र से त्रिकोण में स्थित नक्षत्र में शनि के संक्रमित होने पर माता की मृत्यु सम्भावित होती है ॥७॥

चन्द्रात्सुखाऽष्टमेशांशत्रिकोणे दिवसाधिपे।
मातुर्वियोगं तन्मासे निर्दिशेल्लग्नतः पितुः ॥८॥

चन्द्रमा के अष्टकवर्ग में चन्द्राधितिष्ठित राशि से चतुर्थ और अष्टम भाव के स्वामी जिन राशियों के नवांश में स्थित हों उन राशियों से त्रिकोणस्थ राशियों में गोचर से सूर्य के आने पर जातक की माता का निधन होता है। इसी प्रकार लग्न से अथवा सूर्य से चतुर्थ और अष्टम भाव में प्राप्त बिन्दुसंख्याओं से पिता के निधन का विचार करना चाहिए ॥८॥

भ्रातृ-मातुल संख्या

भौमात्तृतीयराशिस्थफलैर्भ्रातृगणं वदेत्।
बुधात्सुखफलैर्बन्धुगणं वा मातुलस्य च ॥९॥

मङ्गल के अष्टकवर्ग में तृतीय भाव में प्राप्त बिन्दुओं की संख्या तुल्य जातक के भाइयों की संख्या होती है।

बुध के अष्टकवर्ग के चतुर्थ भाव में प्राप्त बिन्दुओं की संख्या के समान सम्बन्धी या मातुल की संख्या होती है ॥९॥

पुत्रसंख्या

गुरुस्थितसुतस्थाने यावतां विद्यते फलम्।
शत्रुनीचग्रहं त्यक्त्वा शेषास्तस्यात्मजाः स्मृताः ॥१०॥

बृहस्पति के अष्टक वर्ग के पञ्चम भाव में जिन ग्रहों से शुभ बिन्दु प्राप्त हों उनमें से जो ग्रह नीच राशि में स्थित हो अथवा शत्रुराशि में स्थित हों उनसे प्राप्त बिन्दुसंख्या को पञ्चमभावस्थ बिन्दुसंख्या में घटाने पर शेष तुल्य जातक के सन्तानों की संख्या होती है ॥१०॥

गुरोरष्टकवर्गे तु शोध्यशिष्टफलानि वै।
क्रूरराशिफलं त्यक्त्वा शेषास्तस्यात्मजाः स्मृताः ॥११॥

बृहस्पत्यष्टक वर्ग के पञ्चम भाव के शोध्य पिण्ड में शुभग्रहों द्वारा प्रदत्त बिन्दुओं की संख्या तुल्य पुत्र होती है।

शुक्राष्टकवर्ग से सन्तति-विचार

फलाधिकं भृगोर्यत्र तत्र भार्याजनिर्यदि।
तस्यां वंशाभिवृद्धिः स्यादल्पे क्षीणार्थसन्ततिः ॥१२॥

शुक्राष्टकवर्ग में जो राशि सर्वाधिक बिन्दुओं से युक्त हो उस राशि की दिशा में उत्पन्न उस राशि अथवा लग्न की कन्या से जातक का विवाह होने पर वंशवृद्धि होती है। उसी प्रकार उक्त अष्टकवर्ग में जिस राशि में अल्प बिन्दु प्राप्त हो उस राशि की अथवा उस लग्न में उत्पन्न कन्या से विवाह होने पर अर्थ और सन्तान की संख्या भी स्वल्प होती है ॥१२॥

शन्यष्टकवर्ग से मृत्यु-विचार

शोध्यपिण्डं शनेर्लग्नाद्धत्वा रन्ध्रफलैः सुखैः।
हत्वावशेषभं याते मन्दे जीवेऽपि वा मृतिः ॥१३॥

शनि के अष्टकवर्ग में शोध्यपिण्ड को लग्न से अष्टमभावस्थ बिन्दुओं की संख्या से गुणाकर गुणनफल में २७ से भाग देने पर शेष तुल्य अश्विन्यादि से गिनकर जो नक्षत्र हो उस नक्षत्र में गोचर से शनि या बृहस्पति के आने पर जातक की मृत्यु सम्भव होती है ॥१३॥

यह योग तभी घटित होता है जब श्लोक में कथित नक्षत्र में शनि या बृहस्पति के प्रवेश के समय मारकेश की दशान्तर्दशा हो, अन्यथा कष्ट सम्भव होता है। यह तथ्य उपर्युक्त सभी मृत्युयोगों के विचार में सार्थक है।

विनाश-काल

लग्नादिमन्दान्तफलैक्यसंख्या-
वर्षे विपत्तिस्तु तथार्कपुत्रात्।

यावद्विलग्नान्तफलानि तस्मिन्
नाशो हि तद्योगसमानवर्षे ॥१४॥

शन्यष्टक वर्ग में जन्मलग्नस्थ राशि से प्रारम्भ कर शनि द्वारा अधिष्ठित राशि पर्यन्त समस्त बिन्दुओं के योग तुल्य वय में अथवा शनि द्वारा अधिष्ठित राशि से लग्नराशि पर्यन्त बिन्दुओं के योग तुल्य वय में जातक की हानि या विनाश सम्भव होता है ॥१४॥

आयुष्य-निर्णय

अष्टमस्थफलैर्लग्नात्पिण्डं हत्वा सुखैर्भजेत्।
फलामायुर्विजानीयात्प्राग्वद्वेलां तु कल्पयेत् ॥१५॥

शन्यष्टकवर्ग में लग्नराशि से अष्टमभावगत बिन्दुसंख्या से शोध्यपिण्ड को गुणाकर गुणनफल में २७ का भाग देने पर लब्धि तुल्य वर्ष जातक की आयु होती है। पूर्व कथित विधि (श्लोक १३ के अनुसार) से मृत्युकाल का निर्धारण करना चाहिए ॥१५॥

आगे के दो श्लोकों में त्रिकोणशोधन की विधि बतलाई गई है। सामान्यतः लग्न, पञ्चम और नवम भावों को त्रिकोण नाम से जाना जाता है। इन भावों में स्थित राशियाँ त्रिकोण राशियाँ कहलाती हैं। इस प्रकार द्वादश राशियों में कुल चार त्रिकोण होते हैं—

प्रथम त्रिकोण—मेष, सिंह और धनु।
द्वितीय त्रिकोण—वृष, कन्या और मकर।
तृतीय त्रिकोण—मिथुन, तुला और कुम्भ।
चतुर्थ त्रिकोण—कर्क, वृश्चिक और मीन।

'त्रिकोणास्तु चतुः प्रोक्तं मेषसिंहधनुस्तथा।
वृषकन्यामृगाख्येषु तुलाकुम्भयुगेषु च ॥
कर्कवृश्चिकमीनास्ते त्रिकोणाः स्युः विशोधयेत्'। (पराशर)

इन्हीं चार राशि-समूहों में त्रिकोणशोधन संस्कार किये जाते हैं। इस संस्कार के लिए कतिपय नियम बतलाये गये हैं जिन्हें आचार्य ने आगे के श्लोकों में कहा है।

त्रिकोणेषु तु यन्न्यूनं तत्तुल्यं त्रिषु शोधयेत्।
एकस्मिन् भवने शून्ये तत्त्रिकोणं न शोधयेत् ॥१६॥
भवनद्वयशून्ये तु शोधयेदन्यमन्दिरम्।
समत्वे सर्वगेहेषु सर्वं संशोधयेत्तदा ॥१७॥

एक त्रिकोण-समूह की तीन राशियों में प्राप्त शुभ बिन्दुओं की संख्या जिस राशि में सबसे अल्प हो उसे अन्य दोनों राशियों में प्राप्त बिन्दुसंख्या में घटा कर शेष बिन्दु संख्या को उन राशियों के नीचे स्थापित करना चाहिए।

त्रिकोण-समूह की तीन राशियों में से किसी एक में यदि शुभ बिन्दुओं की संख्या शून्य हो तो अन्य राशियों की बिन्दुसंख्या में शोधन नहीं करना चाहिए। उनको यथावत् ही रखना चाहिए।

त्रिकोण-समूह की दो राशियों में यदि बिन्दुओं की संख्या शून्य हो तो तीसरी राशि में प्राप्त बिन्दुसंख्या को हटाकर वहाँ शून्य रख देना चाहिए।

त्रिकोण-समूह की तीनों राशियों में यदि बिन्दुसंख्या समान हो तो सभी संख्याओं को हटाकर तीनों में शून्य कर देना चाहिए ॥१६-१७॥

पराशर ने त्रिकोणशोधन की जो विधि अपने ग्रन्थ बृहत्पाराशरहोराशास्त्र में बतलाई है वह मन्त्रेश्वर द्वारा स्थापित इस विधि से किञ्चिद् भिन्न है। उन्होंने त्रिकोणशोधन के केवल तीन नियमों का उल्लेख किया है—

१. त्रिकोण राशियों में प्राप्त सर्वाल्प बिन्दुसंख्या को अन्य दोनों राशियों में प्राप्त बिन्दुसंख्या में घटाकर शेष को उन राशियों में स्थापित करना।

२. त्रिकोण राशियों की किसी एक राशि में यदि बिन्दुसंख्या शून्य हो तो अन्य दोनों राशियों में प्राप्त बिन्दुसंख्या को यथावत् रखना।

३. यदि त्रिकोण राशियों में समान बिन्दुसंख्या हो तो सभी तीनों राशियों में बिन्दु-संख्या शून्य करना।

त्रिकोण की दो राशियों में यदि बिन्दुसंख्या शून्य हो तब शोधन का स्वरूप क्या होगा ? इसका उल्लेख पराशर ने नहीं किया है—

> 'त्रिकोणेषु च यन्न्यूनं तत्तुल्यं त्रिषु शोधयेत् ॥
> एकस्मिन् भवने शून्यं तत्त्रिकोणं न शोधयेत्।
> समत्वं सर्वगेहेषु सर्वं संशोधयेत् तदा' ॥ (पराशर)

वैद्यनाथ ने अपने ग्रन्थ 'जातकपारिजात' में भी इसी प्रकार के शोधन का प्रतिपादन किया है—

> 'दिनकरमुखवर्गे तत्र कोणोपयाता लघुतरसमशून्या बिन्दवः शोधिताः स्युः ॥
> त्रिकोणभावेषु यदल्पबिन्दवस्तदीयबिन्दू भवतस्तु तावुभौ।
> न बिन्दुको यस्तु न शोधितेतरौ समानसंख्या यदि सर्वमुत्सृजेत्' ॥
>
> (जातकपारिजात)

त्रिकोणशोधन की प्रक्रिया को हम एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे। यहाँ हम इस ग्रन्थ में वर्णित त्रिकोणशोधन विधि का ही अनुसरण करेंगे। यह शोधन सभी सात ग्रहों और लग्न के अष्टक वर्गों में करना चाहिए। इसके लिए हम पृष्ठ २९६ पर दिये गये उदाहरण में सूर्याष्टक वर्ग को त्रिकोणशोधन हेतु लेते हैं। निम्न तालिका में सूर्याष्टक वर्ग में मेषादि राशियों में प्राप्त बिन्दुसंख्या को द्वादश राशियों के नीचे लिखा गया है। उसके नीचे शोधनांक लिखे गये हैं। उसके नीचे प्रत्येक राशियों में प्राप्त शोधित बिन्दुसंख्या लिखी गई है जिसके आधार पर त्रिकोणशोधित सूर्याष्टक वर्ग तैयार किया गया है—

राशियाँ	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	
बिन्दु संख्या	३	४	४	३	३	४	३	६	४	४	५	५	
शोधनाङ्क	-३	-४	-३	-३	-३	-४	-३	-३	-३	-४	-३	-३	
शोधित बिन्दु संख्या	०	०	१	०	०	०	०	३	१	०	२	२	योग ९

सूर्याष्टकवर्ग में त्रिकोणशोधन

मेषादि प्रथम त्रिकोण-समूह की तीन राशियों मेष, सिंह और धनु में बिन्दुसंख्या क्रमशः ३,३ और ४ हैं। इनमें सर्वाल्प बिन्दुसंख्या मेष और सिंह में ३ है। अतः ३ को मेष, सिंह और धनु की बिन्दुसंख्या में ऋण करने से इन राशियों में शोधित बिन्दुसंख्या क्रमशः ०,० और १ हुई।

द्वितीय त्रिकोण-समूह के वृष, कन्या और मकर राशियों में बिन्दुसंख्या समान है अतः शोधनोपरान्त इन तीनों राशियों में बिन्दुसंख्या शून्य होगी।

तृतीय त्रिकोण-समूह की मिथुन, तुला और कुम्भ राशियों में बिन्दुसंख्या क्रमशः ४, ३ और ५ है। इनमें तुला के सर्वाल्प बिन्दुसंख्या ३ को उक्त तीनों राशियों के बिन्दुसंख्या में ऋण करने पर मिथुन, तुला और कुम्भ राशियों में शोधित बिन्दुसंख्या क्रमशः १,० और २ होगी।

चतुर्थ त्रिकोण-समूह की राशियों कर्क, वृश्चिक और मीन में बिन्दुओं की संख्या क्रमशः ३,६ और ५ है। इनमें कर्क राशि के अल्पतम बिन्दुसंख्या को उक्त तीनों राशियों में हीन करने पर क्रमशः ०,३ और २ शोधित बिन्दुसंख्या हुई।

इस प्रकार त्रिकोणशोधन के उपरान्त सूर्याष्टकवर्ग में मेष एवं वृष में शून्य, मिथुन में १, कर्क, सिंह, कन्या और तुला में शून्य, वृश्चिक में ३, धनु में १, मकर में शून्य तथा कुम्भ और मीन में २-२ बिन्दु—कुल ९ बिन्दु प्राप्त हुए।

राशियाँ	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	
प्राप्त बिन्दु संख्या	२	४	६	५	२	४	५	४	४	८	३	२	
शोधनाङ्क	-२	-४	-३	-२	-२	-४	-३	-२	-२	-४	-३	-२	
शोधित बिन्दु संख्या	०	०	३	३	०	०	२	२	२	४	०	०	योग१६

चन्द्राष्टकवर्ग में त्रिकोणशोधन

इसी प्रकार चन्द्रमा के अष्टक वर्ग में प्रथम त्रिकोण-समूह की राशियों मेष, सिंह और

धनु राशियों में बिन्दुसंख्या क्रमशः २,२ और ४ है। इनमें अल्पतम २ को तीनों राशियों में ऋण करने पर मेष में शून्य, सिंह में ० और धनु में २ बिन्दु शेष रहे। द्वितीय त्रिकोण समूह के वृष, कन्या और मकर राशियों में बिन्दुसंख्या क्रमशः ४,४ और ८ हैं। इनमें अल्पतम बिन्दुसंख्या ४ को तीनों राशियों में ऋण करने से इन राशियों में अवशिष्ट बिन्दु संख्या क्रमशः ०,० और ४ हुई।

तृतीय त्रिकोण-समूह की राशियों मिथुन, तुला और कुम्भ में प्राप्त बिन्दुओं की संख्या क्रमशः ६,५ और ३ हैं। इनमें अल्पतम ३ को अन्य राशियों में ऋण करने से इनमें अवशिष्ट बिन्दुसंख्या क्रमशः ३,२ और शून्य हुई।

इसी प्रकार भौम, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि के अष्टकवर्गों में त्रिकोण-शोधनोपरान्त बिन्दुओं की स्थिति निम्न तालिका में दी गई है।

राशियाँ	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	
प्राप्त बिन्दु संख्या	४	३	६	१	४	३	२	२	२	५	४	३	
शोधनाङ्क	-२	-३	-२	-१	-२	-३	-२	-१	-२	-३	-२	-१	
शोधित बिन्दु संख्या	२	०	४	०	२	०	०	१	०	२	२	२	योग१५

भौमाष्टकवर्ग में त्रिकोणशोधन

राशियाँ	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	
प्राप्त बिन्दु संख्या	५	५	५	३	४	४	३	६	४	४	६	५	
शोधनाङ्क	-४	-४	-३	-३	-४	-४	-३	-३	-४	-४	-३	-३	
शोधित बिन्दु संख्या	१	१	२	०	०	०	०	३	०	०	३	२	योग१२

बुधाष्टकवर्ग में त्रिकोणशोधन

राशियाँ	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	
प्राप्त बिन्दु संख्या	६	४	३	७	४	४	५	४	६	७	४	२	
शोधनाङ्क	-४	-४	-३	-२	-४	-४	-३	-२	-४	-४	-३	-२	
शोधित बिन्दु संख्या	२	०	०	५	०	०	२	२	२	३	१	०	योग१७

गुर्वष्टकवर्ग में त्रिकोणशोधन

राशियाँ	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	
प्राप्त बिन्दु संख्या	५	७	३	४	४	१	२	८	४	४	५	५	
शोधनाङ्क	-४	-१	-२	-४	-४	-१	-२	-४	-४	-१	-२	-४	
शोधित बिन्दु संख्या	१	६	१	०	०	०	०	४	०	३	३	१	योग१९

शुक्राष्टकवर्ग में त्रिकोणशोधन

राशियाँ	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	
प्राप्त बिन्दु संख्या	२	३	४	३	३	१	३	४	४	६	५	१	
शोधनाङ्क	-२	-१	-३	-१	-२	-१	-३	-१	-२	-१	-३	-१	
शोधित बिन्दु संख्या	०	२	१	२	१	०	०	३	२	५	२	०	योग१८

शन्यष्टकवर्ग में त्रिकोणशोधन

इस प्रकार सभी अष्टकवर्गों में त्रिकोणशोधन के उपरान्त एक और शोधन आचार्यों ने निर्देशित किया है जिसे एकाधिपत्य शोधन कहते हैं। आगे के श्लोकों में इस एकाधिपत्य शोधन की विधि बतलाई गई है। सूर्य और चन्द्रमा के अतिरिक्त भौमादि पाँच ग्रहों का दो-दो राशियों पर आधिपत्य है। मंगल के आधिपत्य में मेष और वृश्चिक है, बुध के आधिपत्य में मिथुन और कन्या, बृहस्पति के आधिपत्य में धनु और मीन, शुक्र के आधिपत्य में वृष और तुला तथा शनि के आधिपत्य में मकर और कुम्भ राशियाँ हैं। एक ग्रह की दोनों राशियों में यदि शुभ बिन्दु हों तभी एकाधिपत्य शोधन किया जाता है। आगे के पाँच श्लोकों में एकाधिपत्य शोधन के नियम बतलाये गये हैं।

त्रिकोणशोधनां कृत्वा पश्चादैकाधिपत्यकम्।
क्षेत्रद्वये फलानि स्युस्तदा संशोधयेत्सुधीः ॥१८॥

अष्टकवर्ग में त्रिकोणशोधन करने के अनन्तर जो अवशिष्ट बिन्दुफल प्राप्त हों उनमें एकाधिपत्य शोधन करना चाहिए। जिन ग्रहों के अधिकार में दो राशियाँ हों केवल उन्हीं में एकाधिपत्य शोधन करना चाहिए ॥१८॥

ग्रहयुक्ते फलैर्हीने ग्रहाभावे फलाधिके।
ऊनेन सदृशन्त्वस्मिन् शोधयेद्ग्रहवर्जिते ॥१९॥

एक ही ग्रह की दो राशियों में से यदि एक राशि सग्रह और दूसरी राशि ग्रहविहीन हो तथा ग्रहयुक्त राशि में बिन्दु दूसरी ग्रहविहीन राशि की अपेक्षा अल्प हो तो दूसरी ग्रहविहीन राशि की बिन्दुसंख्या को घटा कर पहली सग्रह राशि में बिन्दुसंख्या के समान कर देना चाहिए ॥१९॥

फलाधिके ग्रहैर्युक्ते चान्यस्मिन् सर्वमुत्सृजेत् ।
सग्रहाग्रहतुल्यत्वे सर्वं संशोध्यमग्रहात् ॥२०॥

एक ग्रह की एक राशि यदि ग्रह युक्त हो और उसमें बिन्दुसंख्या भी उस ग्रह की दूसरी ग्रहविहीन राशि की अपेक्षा अधिक हो तो दूसरी ग्रहविहीन अल्प बिन्दु से युक्त राशि के बिन्दुओं का त्याग कर देना चाहिए ॥२०॥

एक ही ग्रह की सग्रह राशि में और उसकी अन्य ग्रहविहीन राशि में यदि समान बिन्दुसंख्या हो तो ग्रहविहीन राशि के बिन्दुओं का त्याग कर देना चाहिए ।

उभाभ्यां ग्रहहीनाभ्यां समत्वे सकलं त्यजेत् ।
उभयोर्ग्रहसंयुक्ते न संशोध्यं कदाचन ॥२१॥

एक ग्रह की दोनों राशियाँ यदि ग्रहविहीन हों और दोनों में समान बिन्दुसंख्या हो तो दोनों राशियों में बिन्दुओं का त्याग कर देना चाहिए ।

एक ग्रह की दोनों राशियाँ ग्रहयुक्त हों और बिन्दुसंख्या भी समान हो तो उनमें शोधन नहीं करना चाहिए ॥२१॥

एकस्मिन् भवने शून्ये न संशोध्यं कदाचन ।
द्वावग्रहौ चेद्यन्न्यूनं तत्तुल्यं शोधयेद्द्वयोः ॥२२॥

एक ग्रह की दोनों सग्रह अथवा ग्रहविहीन राशियों में से एक राशि यदि फलविहीन हो तो उनमें भी शोधन नहीं करना चाहिए ।

एक ही ग्रह की दोनों राशियाँ यदि ग्रहविहीन हों और बिन्दुओं की संख्या असमान हो तो अल्प बिन्दु को दोनों स्थानों में घटा देना चाहिए ॥२२॥

सुब्रह्मण्य शास्त्री ने श्लोक के उत्तरार्द्ध की टीका इस प्रकार की है—
'यदि दो राशियों का स्वामी एक ही ग्रह हो और दोनों ग्रहविहीन हों तथा दोनों में बिन्दुसंख्या असमान हो तो दोनों में न्यूनतम बिन्दु के तुल्य बिन्दु रखना चाहिए'[1] ।

शोधन का अर्थ घटाना और शुद्ध करना दोनों होता है । पराशरादि उत्तरभारतीय मनीषियों ने भी इसी प्रकार के द्वयार्थक शब्दावली का अपने ग्रन्थों में प्रयोग किया है—

एवं त्रिकोणं संशोध्य पश्चादेकाधिपत्यता । क्षेत्रद्वयं फलानि स्युस्तदा संशोधयेद्बुधः ॥
क्षीणेन सह चान्यस्मिञ्छोधयेद्ग्रहवर्जिते । ग्रहयुक्ते फले हीने ग्रहाभावे फलाधिके ॥
अनेन सह चान्यस्मिञ्छोधयेद्ग्रहवर्जिते । फलाधिके ग्रहैर्युक्ते चान्यस्मिन्सर्वमुत्सृजेत् ॥
उभयोर्ग्रहसंयुक्ते न संशोध्यः कदाचन । उभयोर्ग्रहहीनाभ्यां समत्वे सकलं त्यजेत् ॥
सग्रहाः ग्रहतुल्यत्वात्सर्वं संशोध्यमग्रहात् । एकत्र नास्ति चेत् सर्वहानिरत्यत्र कीर्तिता ॥
कुलीरसिंहयो राश्योः पृथक् क्षेत्रं पृथक् फलम् । (पराशर)

उत्तर भारत के टीकाकारों ने शोधन का घटाना ही अर्थ किया है । जब कि दक्षिण भारत में उसी शब्द का अर्थ शुद्ध करना या एक के समान दूसरे को शुद्ध करना अर्थ किया है ।

---

1. If both the Rasis be unoccupied and have an unequal number of benific dots, the greater figure is to be replaced by the less. (V. Subrahmanya Shastri)

मन्त्रेश्वर ने एकाधिपत्य-शोधन की कुल सात स्थितियों को उपर्युक्त श्लोकों में कहा है ।

(१) एक ग्रह की दोनों राशियों में यदि एक राशि ग्रहयुक्त हो और उसमें बिन्दुसंख्या दूसरी ग्रहविहीन राशि की अपेक्षा अल्प हो तो दूसरी ग्रहहीन राशि में अधिक बिन्दुसंख्या को घटाकर (शोधित कर) अल्प बिन्दुसंख्या के समान कर देना चाहिए ।

(२) एक ग्रह की एक राशि ग्रहयुक्त और अधिक बिन्दु से सम्पन्न हो और दूसरी ग्रह-विहीन राशि में अल्प बिन्दु हों तो दूसरी ग्रहविहीन राशि में प्राप्त बिन्दुसंख्या का त्याग कर देना चाहिए ।

उदाहरण के लिए त्रिकोणशोधित बुधाष्टक वर्ग (पृ. ३१६) में मेष राशि ग्रह युक्त है और उसमें बिन्दुसंख्या १ है तथा वृश्चिक राशि ग्रहविहीन है और उसमें बिन्दुसंख्या ३ है । मेष और वृश्चिक दोनों राशियों के स्वामी भौम हैं । अतः इस प्रथम नियम के अनुसार ग्रह-हीन राशि के अधिक बिन्दुसंख्या ३ को घटा कर ग्रह युक्त मेष के बिन्दुसंख्या १ के समान कर देना चाहिए । इस प्रकार त्रिकोणशोधित बुधाष्टक वर्ग में मेष और वृश्चिक दोनों राशियों में एकाधिपत्य शोधनोपरान्त १-१ समान बिन्दु होंगे ।

कुछ टीकाकारों के मत से मेष की बिन्दुसंख्या १ को वृश्चिक की बिन्दुसंख्या ३ में घटा कर वृश्चिक में बिन्दुसंख्या २ रखनी चाहिए ।

भौमाष्टक के त्रिकोणशोधित चक्र (पृ. ३१६) में मङ्गल की दोनों राशियों मेष और वृश्चिक में मेष सग्रह और अधिक बिन्दुओं (२) से युक्त है तथा वृश्चिक में ग्रह नहीं है और बिन्दुसंख्या (१) अपेक्षया अल्प है । उपर्युक्त दूसरे नियम के अनुसार ग्रहविहीन राशि वृश्चिक में बिन्दुसंख्या का त्याग कर शून्य कर देना चाहिए ।

(३) एक ही ग्रह की दोनों राशियों में एक ग्रह युक्त और दूसरी ग्रहहीन हो तथा दोनों में बिन्दुसंख्या समान हो तो ग्रहविहीन राशि में बिन्दुओं का त्याग कर देना चाहिए ।

बृहस्पति के त्रिकोणशोधित अष्टक वर्ग (पृ. ३१६) में भौम की राशियों मेष और वृश्चिक में मेष सग्रह है और वृश्चिक ग्रहविहीन तथा दोनों राशियों में समान बिन्दुसंख्या २ है । इस तीसरे नियम के अनुसार ग्रहविहीन राशि वृश्चिक के बिन्दु का त्याग कर शून्य कर देना चाहिए ।

(४) एक ग्रह की दोनों राशियाँ यदि ग्रहविहीन हो और दोनों में समान बिन्दुसंख्या हो तो दोनों राशियों के बिन्दुओं का त्याग कर देना चाहिए ।

यह स्थिति किसी त्रिकोणशोधित अष्टकवर्ग में नहीं है ।

(५) एक ग्रह की दोनों राशियाँ ग्रह युक्त हों तो उनमें शोधन नहीं करना चाहिए ।

(६) यदि एक ग्रह की दो राशियों में से एक बिन्दु रहित हो तो उनमें भी संशोधन नहीं करना चाहिए ।

बृहस्पति के त्रिकोणशोधित अष्टकवर्ग (पृ. ३१६) में बुध की राशियों मिथुन और कन्या में बिन्दुसंख्या शून्य है । इसलिए इनमें एकाधिपत्य शोधन नहीं होगा ।

(७) एक ग्रह की दोनों राशियाँ ग्रहविहीन हों और उनमें बिन्दुसंख्या असमान हों तो अल्पतर बिन्दुसंख्या के समान दूसरी राशि में बिन्दुसंख्या कर देनी चाहिए।

पृ. २९६ के उदाहरण कुण्डली में बुध और शुक्र की राशियाँ ग्रहविहीन हैं किन्तु किसी भी ग्रह के त्रिकोणशोधित अष्टकवर्ग में बिन्दुसंख्या असमान तो हैं किन्तु इन ग्रहों की एक-एक राशि में बिन्दुसंख्या शून्य होने से उक्त नियम नहीं लागू होता, क्योंकि ७वाँ नियम इनमें एकाधिपत्य शोधन का निषेध करता है।

त्रिकोण और एकाधिपत्य शोधनान्तर अन्तिम अष्टकवर्ग नीचे दिये गये हैं—

त्रिकोणैकाधिपत्यशोधित सूर्याष्टकवर्ग

राशियाँ	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	
त्रिकोणशोधित बिन्दुसंख्या	०	०	१	०	०	०	०	१	१	०	२	२	
एकाधिपत्यशोधित बिन्दुसंख्या	०	०	१	३	०	०	०	१	०	०	२	२	योग ९

त्रिकोणैकाधिपत्यशोधित चन्द्राष्टकवर्ग

राशियाँ	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	
त्रिकोणशोधित बिन्दुसंख्या	०	०	३	३	०	०	२	२	२	४	०	०	
एकाधिपत्यशोधित बिन्दुसंख्या	०	०	३	३	०	०	२	२	२	४	०	०	योग १६

त्रिकोणैकाधिपत्यशोधित भौमाष्टकवर्ग

राशियाँ	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	
त्रिकोणशोधित बिन्दुसंख्या	२	०	४	०	२	०	०	१	०	२	२	२	
एकाधिपत्यशोधित बिन्दुसंख्या	२	०	४	०	२	०	०	०	०	२	०	२	योग १२

त्रिकोणैकाधिपत्यशोधित बुधाष्टकवर्ग

राशियाँ	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	
त्रिकोणशोधित बिन्दुसंख्या	१	१	२	०	०	०	०	३	०	०	२	२	
एकाधिपत्यशोधित बिन्दुसंख्या	१	१	२	०	०	०	०	१	०	०	२	२	योग ९

त्रिकोणैकाधिपत्यशोधित गुर्वष्टकवर्ग

राशियाँ	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	
त्रिकोणशोधित बिन्दुसंख्या	२	०	०	५	०	०	२	२	२	३	१	०	
एकाधिपत्यशोधित बिन्दुसंख्या	२	०	०	५	०	०	०	०	२	३	०	०	योग १२

त्रिकोणैकाधिपत्यशोधित शुक्राष्टकवर्ग

राशियाँ	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	
त्रिकोणशोधित बिन्दुसंख्या	१	६	१	०	०	०	०	४	०	३	३	१	
एकाधिपत्यशोधित बिन्दुसंख्या	१	६	१	०	०	०	०	१	०	३	०	१	योग १४

त्रिकोणैकाधिपत्यशोधित शन्यष्टकवर्ग

राशियाँ	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	
त्रिकोणशोधित बिन्दुसंख्या	०	२	१	२	१	०	०	३	२	५	२	०	
एकाधिपत्यशोधित बिन्दुसंख्या	०	२	१	२	१	०	०	२	२	५	०	०	योग १५

त्रिकोणशोधित सूर्याष्टकवर्ग में भौम राशि मेष और वृश्चिक में मेष ग्रहयुक्त है और बिन्दुसंख्या शून्य है तथा वृश्चिक में १ बिन्दु है। नियम ७ के अनुसार इनमें एकाधिपत्य शोधन नहीं होगा। शुक्र की राशि वृष और तुला दोनों बिन्दु रहित हैं। अत: इनमें भी शोधन नहीं होगा। बुध की राशि मिथुन-कन्या में कन्या ग्रहशून्य होने से उसी नियम के अनुसार शोधन नहीं होगा। कर्क और सिंह में शोधन नहीं होता। वृश्चिक की राशि धनु में १ और मीन में २ बिन्दु है, इनमें मीन ग्रहयुक्त है। अत: नियम २ के अनुसार ग्रहविहीन राशि की बिन्दुसंख्या का त्याग करने से धनु राशि में ० बिन्दु होगा और मीन में २ बिन्दु होंगे। शनि की राशि मकर और कुम्भ में मकर में शून्य बिन्दु होने से इनमें भी शोधन नहीं होगा।

त्रिकोणशोधित चन्द्राष्टक में मेष में बिन्दुसंख्या शून्य होने से भौम की राशियों में एकाधिपत्य शोधन नहीं होगा (नियम ६)। इसी नियम से वृष और तुला, मिथुन और कन्या में भी एकाधिपत्य शोधन नहीं होगा। मकर-कुम्भ और धनु-मीन में भी उसी नियम से शोधन नहीं होगा। सभी त्रिकोणशोधित भौमाष्टक वर्ग में मेष में २ बिन्दु तथा वृश्चिक में २ बिन्दु हैं। मेष में सूर्य स्थित है, वृश्चिक ग्रहहीन है। अत: नियम १ के अनुसार वृश्चिक के बिन्दु का त्याग करने से ० हो जायेगा। वृष-तुला, मिथुन-कन्या और धनु-मीन में नियम ६ के अनुसार शोधन नहीं होगा। मकर-कुम्भ में बिन्दुओं की समानता और मकर के ग्रहयुक्त होने

से नियम ३ के अनुसार ग्रहविहीन राशि कुम्भ के बिन्दुओं का त्याग करने से कुम्भ में ० बिन्दु होंगे।

त्रिकोणशोधित बुधाष्टकवर्ग में मेष और वृश्चिक राशियों में बिन्दुसंख्या क्रमशः १ और तीन है। नियम १ के अनुसार वृश्चिक के बिन्दुसंख्या मेष के समान करने से दोनों में १-१ बिन्दु हुए। शेष राशियों के युग्मों में एक शून्य होने से उनके बिन्दुओं की संख्या यथावत् रहेगी।

बृहस्पति के त्रिकोणशोधित अष्टकवर्ग में ग्रहयुक्त मेष में २ तथा वृश्चिक में २ बिन्दु होने से ग्रहहीन राशि के बिन्दुओं का त्याग करने से वृश्चिक में शून्य बिन्दु होगा। वृष-तुला, मिथुन-कन्या और धनु-मीन राशियुग्मों में शोधन नहीं होगा (नियम ६)। नियम ६ के अनुसार कुम्भ में अल्प बिन्दु होने से उसका त्याग करना होगा। इस प्रकार मकर में ३ और कुम्भ में ० बिन्दुसंख्या होगी।

शुक्र के त्रिकोणशोधित अष्टकवर्ग में सग्रह मेष राशि में ग्रहविहीन वृश्चिक राशि की अपेक्षा अल्प बिन्दु (१) होने से वृश्चिक में बिन्दुसंख्या ४ को हटा कर १ कर देना चाहिए। इस प्रकार भौम की राशि मेष और वृश्चिक में १-१ बिन्दु होंगे। शुक्र की राशि वृष-तुला और बुध की राशि मिथुन और कन्या में नियम ६ के अनुसार शोधन नहीं होगा। इनमें बिन्दुसंख्या यथावत् रहेगी। शनि की राशि मकर और कुम्भ में मकर सग्रह और कुम्भ ग्रह-हीन है और दोनों में बिन्दुसंख्या समान है। अतः नियम ४ के अनुसार ग्रहहीन राशि कुम्भ में स्थित बिन्दुओं का त्याग करने से मकर में २ और कुम्भ में शून्य बिन्दुसंख्या होगी।

त्रिकोणशोधित शनि के अष्टकवर्ग में मङ्गल की राशि मेष-वृश्चिक, बुध की राशि मिथुन-कन्या, बृहस्पति की राशि धनु-मीन में मेष, तुला और मीन में बिन्दुसंख्या शून्य होने से नियम ६ के अनुसार इन राशियुगलों में एकाधिपत्य शोधन नहीं होगा। इसलिए इनमें बिन्दुसंख्या यथावत् रहेगी। शनि की सग्रह राशि मकर में ५ बिन्दु और ग्रहहीन कुम्भ में २ बिन्दु प्राप्त है। इसलिए कुम्भ राशि में प्राप्त बिन्दुओं का नियम ३ के त्याग करने से मकर और कुम्भ में बिन्दुओं की संख्या क्रमशः ५ और शून्य होगी।

दोनों शोधनों (त्रिकोणाधिपत्य) के अनन्तर सूर्यादि ग्रहों के अष्टकवर्गों में बिन्दुसंख्या का योग क्रमशः ९, १६, १२, ९, १२, १४ और १५ होगा। यही शोध्य पिण्ड है जिसकी चर्चा इस अध्याय के प्रथम पन्द्रह श्लोकों में की गई है।

इस अध्याय के प्रथम और द्वितीय श्लोक के अनुसार सूर्याष्टक वर्ग में सूर्याधितिष्ठित राशि से नवीं राशि या नवम भाव पिता का स्थान होता है। सूर्याष्टकवर्ग के शोध्य पिण्ड ९ को पितृस्थानस्थ बिन्दुसंख्या शून्य से गुणा करने से शून्य ही हुआ। इसमें २७ से भाग देने से शेष शून्य ही रहा। अर्थात् अश्विनी से २७वें नक्षत्र रेवती में गोचर से शनि के आने पर जातक के पिता को कष्ट होगा। इस रेवती नक्षत्र से त्रिकोण नक्षत्रों श्लेषा या ज्येष्ठा नक्षत्रों में गोचरवश शनि के संक्रमण काल में पिता अथवा पितृव्य की मृत्यु सम्भव होगी।

लग्न से चतुर्थ भाव के स्वामी जिस राशि के नवांश में स्थित हों उस नवांश राशि के स्वामी की दशा में पिता या पितृव्य की मृत्यु सम्भावित होती है। उदाहरण कुण्डली (पृ. २९६) में चतुर्थेश चन्द्रमा मीन के नवांश में स्थित है। अत: मीन के स्वामी बृहस्पति की दशा में जातक के पिता या पितृव्य की मृत्यु सम्भव होगी। चतुर्थेश चन्द्रमा की दशा में भी उक्त की मृत्यु सम्भव हो सकती है।

सूर्य के शोध्य पिण्ड ९ को सूर्य से अष्टम भाव में स्थित बिन्दुसंख्या से गुणाकर गुणनफल में १२ से भाग देने पर $\frac{९\times१}{१२}=\frac{९}{१२}$ शेष ९ तुल्य मेषादि राशि धनु या उससे त्रिकोणस्थ राशि मेष या सिंह में सूर्य के संक्रमित होने पर पिता की मृत्यु सम्भावित होती है।

इसी प्रकार चन्द्राष्टकवर्ग (शोधित) के पिण्ड १६ को चन्द्र स्थित भाव से चतुर्थ भाव में प्राप्त बिन्दुसंख्या ० को गुणा करने और गुणनफल को २७ से भाग देने पर शेष ० अर्थात् अश्विनी से २७वें नक्षत्र रेवती में गोचरवश शनि के आने पर जातक की माता की मृत्यु सम्भावित होगी। रेवती से त्रिकोण नक्षत्रों श्लेषा और ज्येष्ठा नक्षत्रों के शनि द्वारा संक्रमित होने पर भी जातक को मातृशोक हो सकता है।

चन्द्रराशि से चतुर्थ मेष और अष्टम राशि सिंह है। इनके स्वामी भौम और सूर्य हैं जो क्रमश: वृश्चिक और वृष राशि के नवांश में है। इन राशियों वृश्चिक और सिंह में अथवा इनकी त्रिकोण राशियों मीन, कर्क, धनु और मेष राशियों में गोचरवश सूर्य के संक्रमण काल में जातक को मातृशोक सम्भव हो सकता है।

इसी प्रकार लग्न अथवा सूर्याधितिष्ठित राशि से पिता के निधन का विचार करना चाहिए।

उपर्युक्त स्थिति प्रतिवर्ष विभिन्न मासों में उपस्थित हो सकती है। किन्तु प्रतिवर्ष किसी की मृत्यु तो सम्भव नहीं है। प्रबल मारकेश की दशा में उक्त स्थिति के उपस्थित होने पर मृत्यु की सम्भावना बनती है।

मङ्गल के अष्टक वर्ग में भौम राशि मीन से तृतीय राशि वृष में कुल ३ शुभ बिन्दु हैं अत: जातक के तीन भाई होंगे। बुधाष्टकवर्ग में बुध राशि मीन से चतुर्थ राशि मिथुन में बिन्दुसंख्या ५ है। फलत: जातक के मातुल और बन्धुओं की संख्या ५ होगी। इसी प्रकार गुर्वष्टक वर्ग में बृहस्पति की राशि कर्क से पञ्चम राशि वृश्चिक में बिन्दुसंख्या ४ है जो सूर्य (मित्र), चन्द्रमा (मित्र), बुध (शत्रु) और शुक्र (शत्रु) से प्राप्त हैं। इनमें २ बिन्दुशत्रुओं का त्याग करने से जातक के दो सन्तान होगी।

शुक्राष्टकवर्ग के वृश्चिक राशि में सर्वाधिक बिन्दुसंख्या ८ प्राप्त है। वृश्चिक की दिशा उत्तर है। अत: यदि जातक का विवाह उत्तर दिशा में जन्मी वृश्चिक राशि के लग्न अथवा जन्मराशि वाली कन्या से हो तो उससे धन-सन्तति आदि की वृद्धि होगी।

शनि के शोधित अष्टकवर्ग में लग्नराशि से अष्टम राशि में प्राप्त बिन्दुसंख्या २ को उसके शोध्य पिण्ड १५ से गुणा कर गुणनफल ३० में २७ (सुखै:) से भाग देने से

अवशिष्ट संख्या ३ (शेष) तुल्य अश्विन्यादि से तृतीय नक्षत्र कृत्तिका में गोचरवश शनि अथवा बृहस्पति के आने पर जातक मृत्यु को प्राप्त होगा।

लग्नराशि में से (शोधित शन्याष्टक वर्ग में) शन्यधितिष्ठत राशि सिंह पर्यन्त बिन्दु योग ६ है तथा उक्त राशि से लग्न पर्यन्त बिन्दु योग १० है। अतः जातक के आयुष्य का छठा और दसवाँ वर्ष कष्टप्रद होगा।

इसी प्रकार १५वें श्लोक के अनुसार शनि के शोधित अष्टकवर्ग में शोधित पिण्ड १५ को लग्न से अष्टम भाव में प्राप्त बिन्दुसंख्या २ से गुणाकर गुणनफल ३० में २७ से भाग देने पर प्राप्त लब्धि १ वर्ष जातक के आयु-वर्ष होगा। शेष ६ तुल्य नक्षत्र आर्द्रा के सूर्य होने पर मृत्यु होगी।

शोध्यावशिष्टं संस्थाप्य राशिमानेन वर्द्धयेत्।
ग्रहयुक्तेऽपि तद्राशौ ग्रहमानेन वर्द्धयेत् ॥२३॥

त्रिकोण और एकाधिपत्य शोधन के अनन्तर मेषादि राशियों में प्राप्त बिन्दुसंख्या को उन-उन राशियों के राशिमान से गुणा करना चाहिए। सूर्यादि ग्रहों से युक्त राशि में प्राप्त बिन्दुसंख्या को तत्तद् ग्रहों के ग्रहमान से गुणा करना चाहिए।

राशि-गुणकांक

गोसिंहौ दशगुणितौ वसुभिर्मिथुनालिभे।
वणिङ्मेषौ च मुनिभिः कन्यकामकरे शरैः ॥२४॥
शेषाः स्वमानगुणिताः कर्किचापघटीझषाः।
एते राशिगुणाः प्रोक्ताः पृथग्ग्रहगुणाः पृथक् ॥२५॥

वृष और सिंह का गुणकांक १०, मिथुन और वृश्चिक का ८, मेष और तुला का ७, कन्या और मकर का ५ तथा कर्क, धनु-कुम्भ और मीन के गुणकांक क्रमशः ४, ९, ११ और १२ हैं। ये राशि-गुणकांक हैं। ग्रह-गुणकांक इनसे भिन्न हैं ॥२४-२५॥

राशि-गुणकांक

राशि	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
गुणकांक	७	१०	८	४	१०	५	७	८	९	५	११	१२

ग्रह-गुणकांक

जीवारशुक्रसौम्यानां दशवसुसप्तेन्द्रियैः क्रमाद्गुणिताः।
बुधसंख्या शेषाणां राशिगुणाद्ग्रहगुणः पृथक्कार्यः ॥२६॥

बृहस्पति, मङ्गल, शुक्र और बुध के गुणकांक क्रमशः १०, ८, ७ और ५ हैं। अन्य सभी ग्रहों सूर्य, चन्द्रमा और शनि के गुणकांक बुध के गुणकांक ५ के समान हैं।

ग्रह-गुणकांक

ग्रह	सूर्य	चन्द्रमा	मंगल	बुध	बृहस्पति	शुक्र	शनि
गुणकांक	५	५	८	५	१०	७	५

अष्टकवर्गजायु-आनयन

एवं गुणित्वा संयोज्य सप्तभिर्गुणयेत्पुनः ।
सप्तविंशहृताल्लब्धवर्षाण्यत्र भवन्ति हि ॥२७॥

इस प्रकार (२३वें श्लोक के अनुसार) अपने-अपने गुणकांकों से गुणाकर सबके योग को ७ से गुणाकर २७ से भाग देने पर लब्धि आयु के वर्ष होते हैं ॥२७॥

वैद्यनाथ के अनुसार ग्रहगुणक द्वारा गुणित फल और राशिगुणक द्वारा गुणित फल के योग में ३० से भाग देने पर उक्त ग्रह के आयुर्दाय के वर्षादि होते हैं—

'तद्राशिखेटगुणकैक्यफलानि हृत्या त्रिंशद्भिरब्दचयमासदिनादिकाः स्युः' ।
(जातकपारिजात)

द्वादशाद्गुणयेल्लब्धा मासाहर्घटिकाः क्रमात् ।
सप्तविंशति वर्षाणि मण्डलं शोधयेत्पुनः ॥२८॥

शेष को १२ से गुणाकर गुणनफल में २७ से भाग देने पर लब्धि मास, पुनः शेष को ३० से गुणाकर गुणनफल में २७ से भाग देने पर लब्धि दिन तथा पुनः शेष को ६० से गुणाकर गुणनफल में २७ से भाग देने पर लब्धि घट्यादि प्राप्त होंगे।

२७ वर्ष का मण्डल होता है। इस प्रकार लब्ध आयु के वर्षादि में कतिपय संशोधन और करने होते हैं जिसकी चर्चा आगे के श्लोकों में की गई है ॥२८॥

उदाहरण कुण्डली (पृष्ठ २९६) के त्रिकोण और एकाधिपत्य शोधनोपरान्त मेषादि राशियों में बिन्दुओं और ग्रहस्थिति को निम्न तालिका में दर्शाया गया है।

शोधित सूर्याष्टकवर्ग-आयुरानयन

राशि	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	योग
ग्रह	सू.			बृ.	श.					चं.		मं.बु. शु.	
प्राप्त बिन्दु	०	०	१	३	०	०	०	१	०	०	२	२	
राशिगुणक	७	१०	८	४	१०	५	७	८	९	५	११	१२	
गुणनफल	०	०	८	१२	०	०	०	८	०	०	२२	२४	७४
ग्रहगुणक	५			१०	५					५		८,५ ७	
गुणनफल	०			३०	०					०		१६ १० १४=४०	७०

शोधित चन्द्राष्टकवर्ग-आयुरानयन

राशि	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	योग
ग्रह	सू.			बृ.	श.					चं.		मं.बु. शु.	
प्राप्त बिन्दु	०	०	३	३	०	०	२	२	२	४	०	०	
राशिगुणक	७	१०	८	४	१०	५	७	८	९	५	११	१२	
गुणनफल	०	०	२४	१२	०	०	१४	१६	१८	२०	०	०	१०४
ग्रहगुणक	५			१०	५					५		८,५ ७	
गुणनफल	०			३०	०					२०	०	०	५०

शोधित भौमाष्टकवर्ग-आयुरानयन

राशि	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	योग
ग्रह	सू.			बृ.	श.					चं.		मं.बु. शु.	
प्राप्त बिन्दु	२	०	४	०	२	०	०	०	०	२	०	२	
राशिगुणक	७	१०	८	४	१०	५	७	८	९	५	११	१२	
गुणनफल	१४	०	३२	०	२०	०	०	०	०	१०	०	२४	१००
ग्रहगुणक	५			१०	५	०	०	०	०	५		८,७ ५	
गुणनफल	१०			०	१०					१०		४०	७०

शोधित बुधाष्टकवर्ग-आयुरानयन

राशि	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	योग
ग्रह	सू.			बृ.	श.					चं.		मं.बु. शु.	
प्राप्त बिन्दु	१	१	२	०	०	०	०	१	०	०	२	२	
राशिगुणक	७	१०	८	४	१०	५	७	८	९	५	११	१२	
गुणनफल	७	१०	१६	०	०	०	०	८	०	०	२२	२४	८९
ग्रहगुणक	५			१०	५					५		८,७ ५	
गुणनफल	५			०	०					०		४०	४५

शोधित गुर्वष्टकवर्ग-आयुरानयन

राशि	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	योग
ग्रह	सू.			बृ.	श.					चं.		मं.बु. शु.	
प्राप्त बिन्दु	२	०	०	५	०	०	०	०	२	३	०	०	
राशिगुणक	७	१०	८	४	१०	५	७	८	९	५	११	१२	
गुणनफल	१४	०	०	२०	०	०	०	०	१८	१५	०	०	६७
ग्रहगुणक	५			१०	५					५		८,७ ५	
गुणनफल	१०			५०	०					१५		०	७५

शोधित शुक्राष्टकवर्ग-आयुरानयन

राशि	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	योग
ग्रह	सू.			बृ.	श.					चं.		मं.बु. शु.	
प्राप्त बिन्दु	१	६	१	०	०	०	०	१	०	३	०	१	
राशिगुणक	७	१०	८	४	१०	५	७	८	९	५	११	१२	
गुणनफल	७	६०	८	०	०	०	०	८	०	१५	०	१२	११०
ग्रहगुणक	५			१०	५					५		८,७ ५	
गुणनफल	५			०	०					१५		२०	४०

शोधित शन्यष्टकवर्ग-आयुरानयन

राशि	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	योग
ग्रह	सू.			बृ.	श.					चं.		मं.बु. शु.	
प्राप्त बिन्दु	०	२	१	२	१	०	०	२	२	५	०	०	
राशिगुणक	७	१०	८	४	१०	५	७	८	९	५	११	१२	
गुणनफल	०	२०	८	८	१०	०	०	१६	१८	२५	०	०	१०५
ग्रहगुणक	५			१०	५					५		८,७ ५	
गुणनफल	०			२०	५					२५		०	५०

राशि-ग्रहगुणनफलैक्य

ग्रह	सूर्य	चन्द्रमा	भौम	बुध	बृहस्पति	शुक्र	शनि
राशिगुणक गुणित फल	७४	१०४	१००	८९	६७	११०	१०५
ग्रहगुणक गुणित फल	७०	५०	७०	४५	७५	४०	५०
योग	१४४	१५४	१७०	१३४	१४२	१५०	१५५

अब इन योगों को ७ से अलग-अलग गुणाकर गुणनफल में २७ से भाग देने से प्राप्त फल तत्तद् ग्रहों द्वारा प्रदत्त आयुवर्षादि होंगे (श्लोक २७)।

सूर्यायुर्दाय = $\frac{१४४\times७}{२७}$ = ३७.३३ वर्ष = ३७ वर्ष ४ मास

चन्द्रायुर्दाय = $\frac{१५४\times७}{२७}$ = ३९.९२५९ वर्ष = ३९ वर्ष ११ मास ३ दिन २० घटी।

भौमायुर्दाय = $\frac{१७०\times७}{२७}$ = ४४.०७४० वर्ष = ४४ वर्ष ० मास २६ दिन ४० घटी।

बुधायुर्दाय = $\frac{१३४\times७}{२७}$ = ३४.७४०७ वर्ष = ३४ वर्ष ८ मास २६ दिन ३९ घटी ७ पल।

गुर्वायुर्दाय = $\frac{१४२\times७}{२७}$ = ३६.८१४८ वर्ष = ३६ वर्ष ९ मास २३ दिन २० घटी।

शुक्रायुर्दाय = $\frac{१५०\times७}{२७}$ = ३८.८८ वर्ष = ३८ वर्ष १० मास २० दिन।

शन्यायुर्दाय = $\frac{१५५\times७}{२७}$ = ४०.१८५१ वर्ष = ४० वर्ष २ मास ६ दिन ४० घटी।

२८वें श्लोक में २७ वर्ष का एक मण्डल कहा गया है। अतः ग्रहों के आयुर्दाय २७ वर्ष से अधिक नहीं हो सकते। यदि किसी ग्रह का आयुर्दाय २७ वर्ष से अधिक आये तो उसमें २७ वर्ष हीन करने से शुद्ध आयुर्दाय होगा। इसके अनुसार सूर्यादि ग्रहों के शुद्ध आयुर्दाय क्रमशः १०.३३, १२.९२५९, १७.०७४०, ७.७४०७, ९.८१४८, ११.८८ और १३.१८५१ वर्ष होंगे।

जातक के आयुष्य में सप्त ग्रहों का उक्त योगदान है। इनमें कतिपय हरण का निर्देश आचार्य ने आगे के श्लोकों में किया है।

आयुषोहरण

अन्योऽन्यमर्द्धहरणं ग्रहयुक्ते तु कारयेत्।
नीचेऽर्द्धमस्तगेऽप्यर्द्धहरणं तेषु कारयेत् ॥२९॥

ग्रह के साथ यदि अन्य ग्रह संयुक्त हो तो उसकी आगत आयु का आधा कर देना चाहिए।

ग्रह यदि अपनी नीचराशि में स्थित हो अथवा सूर्य-सान्निध्य में अस्त हो तो भी उसके आयुर्दाय का आधा कर देना चाहिए।

शत्रुक्षेत्रे त्रिभागोनं दृश्यार्द्धहरणं तथा ।
त्र्यंशोनहरणं भङ्गे सूर्येन्द्वोः पातसंश्रयात् ॥३०॥

यदि ग्रह (१) शत्रुराशि में स्थित हो, (२) दृश्यार्द्ध चक्र में स्थित हो, (३) ग्रहयुद्ध में लिप्त हो अथवा (४) सूर्य या चन्द्रपात में हो; उक्त तीनों स्थितियों में आयुष्य का तृतीयांश घटा देना चाहिए ॥३०॥

पात के सम्बन्ध में पचीसवें अध्याय में चर्चा की जायेगी ।

बहुत्वे हरणे प्राप्ते कारयेद्बलवत्तरम् ।
पश्चात्तान् सकलान् कृत्वा वराङ्गेण विवर्द्धयेत् ॥३१॥
मातङ्गलब्धं शुद्धायुर्भवतीति न संशयः ।
पूर्ववद्दिनमासाब्दान् कृत्वा तस्य दशा भवेत् ॥३२॥

यदि किसी ग्रह में एकाधिक हरण प्राप्त हो वहाँ जो सर्वाधिक हो केवल उसे ही ग्रहण करना चाहिए । इन सभी हरणों के अनन्तर ग्रहों के जो अवशिष्ट आयुर्दाय हों उनके योग को ३२४ से गुणाकर गुणनफल में ३६५ का भाग देने पर लब्ध फल स्पष्ट आयुवर्षादि तथा ग्रहों के अलग-अलग आयुवर्षादि तुल्य उन ग्रहों की दशाएँ होती हैं ॥३१-३२॥

एवं ग्रहाणां सर्वेषां दशां कुर्यात् पृथक् पृथक् ।
अष्टवर्गदशामार्गः सर्वेषामुत्तमोत्तमः ॥३३॥

इस प्रकार सभी ग्रहों के पृथक्-पृथक् दशावर्षों का आनयन करना चाहिए । अष्टकवर्ग दशा की यह पद्धति सर्वोत्कृष्ट है ॥३३॥

हरण-प्रक्रिया को स्पष्ट करने के लिए पूर्वोक्त उदाहरण में प्राप्त ग्रहायुर्दाय और हरण निम्न तालिका में दर्शाया गया है । श्लोक २९-३१ में हरण की जो विधि बतलाई गई है संक्षेप में निम्नवत् है—

१. ग्रहयोग में ग्रहों की आधी आयु घटा दें ।

२. नीच राशिगत या अस्तङ्गत ग्रह की दोनों स्थितियों में आधी आयु घटा दें ।

३. ग्रह यदि शत्रुगृही हो तो उसकी आयु का तृतीयांश घटा दें ।

४. ग्रह यदि दृश्यार्द्ध (सप्तम भाव से द्वादश भाव तक दृश्यार्द्ध और लग्न से छठे भाव तक अदृश्यार्द्ध चक्र होता है) चक्र में स्थित हो तो उसकी आयु का तृतीयांश हीन कर दें ।

५. ग्रह यदि ग्रहयुद्ध में लिप्त हो अथवा सूर्य या चन्द्रमा के पातान्तर्गत हो तो आयु का तृतीयांश हीन कर दें ।

६. यदि एक ही ग्रह में एकाधिक हरण प्राप्त हो तो उनमें जो सर्वाधिक हो उसको करें । शेष का त्याग कर दें ।

आयुष्य-हरण

ग्रह / हरण	सूर्य	चन्द्र	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
शुद्धायुर्दाय	१०.३३	१२.९२५९	१७.०७४	७.७४०७	९.८१४८	११.८८	१३.१८५१
युति/अस्त/नीचहरण ($\frac{1}{2}$)	—	—	८.५३७	३.८७०३	—	५.९४	—
युद्धरत/पातादि हरण ($\frac{1}{3}$)	—	—	५.६९१३	२.५८०३	—	३.९६	—
शत्रु/चक्रार्द्ध हरण ($\frac{1}{3}$)	—	४.३०८५ ४.३०८५	५.६९१३	२.५८०३	—	३.९६	४.३९५
स्पष्ट हरण	—	४.३०८५	८.५३७	३.८७०३	—	५.९४	४.३९५
स्पष्टायुर्दाय	१०.३३	८.६१७२	८.५३७	३.८७०३	९.८१४८	५.९४	८.७९

स्पष्टायु = ५५.८९९३ वर्ष = ५५ वर्ष ७ मास २० दिन २ घटी २४ पल।

जन्मकाल में मेष राशि के १५°५९'२" उदित हो चुका है। सूर्य मेष के ५°३७'३८" पर स्थित है। इसलिए सूर्य अदृश्य चक्रार्द्ध में स्थित होने से चक्रार्द्धहरण (आयुर्दाय का तृतीयांश) नहीं होगा। फलतः सूर्य का स्पष्ट आयुर्दाय १०.३३ वर्ष ही होगा। चन्द्रमा दृश्यचक्रार्द्ध में शत्रुराशि का होकर स्थित है। अतः इसके आयुर्दाय वर्ष १२.९२५७ में तृतीयांश तुल्य दोनों हरण (शत्रुगृह-$\frac{1}{3}$, दृश्यचक्रार्द्ध-$\frac{1}{3}$) प्राप्त हैं। अतः 'बहुत्वे हरणे प्राप्ते कारयेद्बलवत्तरम्' के अनुसार केवल एक ही हरण होने से चन्द्रमा का कुल आयुर्दाय ८.६१७१ वर्ष होगा। मंगल का आयुर्दाय १७.०७४० वर्ष है। मंगल दृश्य चक्रार्द्ध में बुध और शुक्र के साथ स्थित है। इसलिए इसके आयुर्दाय में युति और चक्रार्द्ध दोनों हरण प्राप्त हैं जिसमें युतिहरण ($\frac{1}{2}$) ही ग्राह्य होगा। अतः मंगल का कुल आयुर्दाय हरणोपरान्त ८.५३७ वर्ष होगा। बुध का आयुर्दाय ७.७४०७ वर्ष है जो दृश्य चक्रार्द्ध में मंगल और शुक्र के साथ स्थित है। अतः इसमें भी दोनों–युति और चक्रार्द्धहरण–प्राप्त है जिसमें मात्र युतिहरण ही होगा। फलतः बुध का स्पष्ट आयुर्दाय ७.७४०७ - ३.८७०३ = ३.८७०३ वर्ष होगा। बृहस्पति अदृश्य चक्रार्द्ध में मित्रराशि का होकर स्थित है। अतः इसका आयुर्दाय ९.८१४८ वर्ष बिना किसी हरण क्रिया के यथावत् ही रहेगा। शुक्र दृश्य चक्रार्द्ध में मंगल और बुध के साथ स्थित है। फलतः इसके आयुर्दाय ११.८८ वर्ष में युति और चक्रार्द्ध दोनों हरण प्राप्त हैं किन्तु अधिक होने के कारण इसमें केवल युतिहरण ही ग्राह्य होगा। अतः शुक्र का स्पष्ट आयुर्दाय ११.८८-५.९४ = ५.९४ वर्ष होगा। शनि अदृश्य चक्रार्द्ध में शत्रु की राशि में स्थित है अतः इसमें केवल शत्रुहरण ही प्राप्त है। इसलिए शनि का स्पष्ट आयुर्दाय १३.१८५१-४.३९५० = ८.७९०० वर्ष होगा।

इस प्रकार सूर्यादि ग्रहों के आयुर्दायों का योग

= १०.८८+८.६१७२+८.५३७+३.८७०३+९.८१४८+५.९४+८.७९ = ५५.८९९३

अब ३१वें श्लोक के अनुसार इस योगपिण्ड में ३२४ से गुणाकर ३६५ से भाग देने पर लब्धि शुद्ध आयुवर्षादि होंगे।

स्पष्ट शुद्धायु = ५०.३०९३ वर्ष
= ५० वर्ष ३ मास २१ दिन २२ घटी २४ पल

यह जातक की शुद्ध आयुवर्षादि होंगे।

आयुष्यहरण के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है।

वैद्यनाथ के अनुसार आयुपिण्ड से सूर्यादि ग्रहों के आयुष्य-साधन के अनन्तर हरण क्रिया की जाती है जो उनके अनुसार इस प्रकार है—

'उच्चं गतस्य द्विगुणं तदीयं नीचं गतस्यास्तगतस्य चार्द्धम्।
अतोऽन्तराले त्वनुपात्यमायुरारस्य वक्रे द्विगुणीकृतं स्यात्॥
मूलत्रिकोणनिजमित्रगृहोपगानां तुङ्गादिवर्गशुभयोगनिरीक्षितानाम्।
उक्तप्रकारगणितागममायुरेव पापारिवर्गसहितस्य विपादनायुः' ॥

(जातकपारिजात)

१. जो ग्रह अपनी उच्चराशि में स्थित हो उनकी उक्त आयु को द्विगुणित करना चाहिए।

२. जो ग्रह नीच राशि में स्थित हो या अस्त हो तो उनकी आधी आयु घटा देनी चाहिए।

३. उच्च और नीच राशियों के मध्य स्थित ग्रह की आयु का निर्णय अनुपात से करना चाहिए।

४. मंगल यदि वक्री हो तो उसकी आयु को द्विगुणित कर देनी चाहिए।

५. स्वमूलत्रिकोणस्थ, मित्रगृहस्थ, स्वोच्चादिवर्गस्थ, शुभग्रह से युत या दृष्ट ग्रह की आयुष में किसी प्रकार का हरण नहीं करना चाहिए।

६. पापग्रहों के वर्ग से युक्त ग्रह की आयु में चतुर्थांश हीन कर देना चाहिए।

ग्रहों के जो आयुर्दाय अवशेष बचे हैं वही वर्षादि उन-उन ग्रहों के दशावर्ष होते हैं।

अगले दो श्लोकों में सर्वाष्टक वर्ग में सूर्यादि ग्रहों द्वारा प्रदत्त विभिन्न भावों में बिन्दुओं की संख्या बतलाई गई है।

बालो बलिष्ठो लवणागमोसुरो
रागी मुरारिः शिखरीन्द्रगाथया।
भौमो गणेन्द्रो लघुभावतासुरो
गोकर्णरक्ता तु पुराणमैथिली ॥३४॥
रुद्रः परं गह्वरभैरवस्थली
रागी बली भास्वरगीर्भगाचलाः।

गिरौ विवस्वान् बलवद्विवक्षया
शूली मम प्रीतिकरोऽत्र तीर्थकृत् ॥३५॥

सूर्य जिस राशि में स्थित होता है उसमें ३ बिन्दु, उससे दूसरी, तीसरी और चौथी राशि में भी ३-३ बिन्दु देता है। पाँचवीं राशि में २, छठी राशि में ३, सातवीं राशि में ४, आठवीं राशि में ५, नवीं राशि में ३, दसवीं राशि में ५, ग्यारहवीं राशि में ७ और बारहवीं राशि में २ बिन्दु प्रदान करता है।

पूर्वोक्त उदाहरण में सूर्य मेष राशि में स्थित है। अपने अष्टक वर्ग में मेष राशि में १ बिन्दु दिया; चन्द्रमा, मंगल एवं बुध के अष्टक वर्गों में मेष राशि को एक भी बिन्दु सूर्य ने नहीं प्रदान किया। बृहस्पति के अष्टकवर्ग में मेष में उसने १ बिन्दु और शन्यष्टक वर्ग में १ बिन्दु इस प्रकार मेष राशि को सूर्य से सभी अष्टक वर्गों में कुल ३ बिन्दु प्राप्त हुए। इसी प्रकार सूर्याष्टक वर्ग में वृष राशि को १ बिन्दु; चन्द्रमा, मंगल और बुध के अष्टक वर्गों में वृष को एक भी बिन्दु नहीं मिला गुर्वष्टक वर्ग में वृष को १ बिन्दु और शन्यष्टक वर्ग में १ बिन्दु प्राप्त हुए। शुक्राष्टक वर्ग में वृष को सूर्य से एक भी बिन्दु नहीं मिला। इस प्रकार वृष राशि को सभी वर्गों में कुल मिलाकर ३ बिन्दु मिले। इसी प्रकार अन्य राशियों में भी बिन्दु-संख्या देखनी चाहिए।

चन्द्रमा जिस राशि में स्थित होता है उससे प्रथम, द्वितीय, तृतीयादि राशियों में २,३,५,२,२,५,२,२,२,३,७,१; कुल ३६ बिन्दु प्रदान करता है।

मंगल जिस राशि में स्थित होता है उससे प्रथम, द्वितीय आदि राशियों में क्रमशः ४,५,३,५,२,३,४,४,४,६,७ और २ बिन्दु; कुल ४९ बिन्दु प्रदान करता है।

बुध जिस राशि में स्थित होता है उससे प्रथम-द्वितीयादि राशियों में क्रमशः ३,१,५,२,६,६,१,२,५,५,७ और ३ बिन्दु; कुल ४६ बिन्दु प्रदान करता है।

बृहस्पति जिस राशि में स्थित होता है उससे प्रथम-द्वितीयादि राशियों में क्रमशः २,२,१,२,३,४,२,४,२,४,७ और ३ बिन्दु; कुल ३६ बिन्दु प्रदान करता है।

शुक्र जिस राशि में स्थित होता है उससे प्रथम-द्वितीयादि राशियों में क्रमशः २,३,३,३,४,४,२,३,४,३,६ और ३ बिन्दु; कुल ४० बिन्दु प्रदान करता है।

स्वाधितिष्ठित राशि से शनि प्रथम-द्वितीयादि राशियों में क्रमशः ३,२,४,४,४,३,३,४,४,४,६ और १ बिन्दु; कुल ४२ बिन्दु प्रदान करता है।

लग्नराशि से प्रथमादि स्थानों में क्रमशः ५, ३, ५, ५, २, ६, १, २, २, ६, ७ और १ बिन्दु; इस प्रकार कुल ४५ बिन्दु होते हैं। इन सभी बिन्दुओं का कुल योग ३३७ होता है।

सर्वकर्मफलोपेतमष्टवर्गकमुच्यते ।
अन्यथा बलविज्ञानं दुर्ज्ञेयं गुणदोषजम् ॥३६॥

यह अष्टकवर्ग विधि समस्त कार्यों के लिए अनुपम है। इसके अतिरिक्त घटित होने वाली घटनाओं के शुभाशुभ प्रभाव को जानने के और कोई उपाय नहीं है ॥३६॥

त्रिंशाधिकफला ये स्यू राशयस्ते शुभप्रदाः।
पञ्चविंशात्परं मध्यं कष्टं तस्मादधः फलम् ॥३७॥

सर्वाष्टक वर्ग (पृष्ठ ३०८) की जिन-जिन राशियों को ३० से अधिक शुभ बिन्दु प्राप्त हैं वे राशियाँ सदैव शुभ फल देती हैं। २५ से ३० तक जिन राशियों में शुभ बिन्दु हों उनके मध्यम फल होते हैं। २५ से अल्प बिन्दुओं से युक्त राशि सदा कष्टप्रद होती है ॥३७॥

मध्यात्फलाधिकं लाभे लाभात् क्षीणतरे व्यये।
यस्य व्ययाधिके लग्ने भोगवानर्थवान् भवेत् ॥३८॥

सर्वाष्टक वर्ग के एकादश भाव में स्थित बिन्दुसंख्या यदि दशम भावस्थ बिन्दु से अधिक हो तथा लग्नस्थ बिन्दु द्वादशभावस्थ बिन्दु से अधिक हों तो जातक आजीवन धन और भोग आदि से सम्पन्न रहता है ॥३८॥

मूर्त्यादि व्ययभावान्तं दृष्ट्वा भावफलानि वै।
अधिके शोभनं विद्याद्धीने दोषं विनिर्दिशेत् ॥३९॥

लग्नादि द्वादश भावों के जिन भावों में अधिक (२५ से अधिक) बिन्दु पड़े हों उनके संक्रमण काल में शुभ फलों की वृद्धि होती है। इसके विपरीत अल्प बिन्दुओं से युक्त भावों के संक्रमण काल में कष्ट और परेशानियों की वृद्धि होती है ॥३९॥

षष्ठाष्टमव्ययांस्त्यक्त्वा शेषेष्वेव प्रकल्पयेत्।
श्रेष्ठराशिषु सर्वाणि शुभकार्याणि कारयेत् ॥४०॥

उपर्युक्त नियम षष्ठाष्टम और व्यय भावों से इतर भावों के लिए ही प्रभावी हैं।

जिन भावों में अधिक बिन्दु हो उस भाव में स्थित राशि के संक्रमण काल में शुभ कर्म करना श्रेयस्कर होता है ॥४०॥

लग्नात्प्रभृति मन्दान्तमेकीकृत्य फलानि वै।
सप्तभिर्गुणयेत्पश्चात्सप्तविंशहृतात्फलम् ॥४१॥
तत्समानगते वर्षे दुःखं वा रोगमाप्नुयात्।
एवं मन्दानि लग्नान्तं भौमराह्वोस्तथा फलम् ॥४२॥

(१) लग्न से शनि स्थित भाव पर्यन्त, (२) शन्यधितिष्ठित भाव से लग्न पर्यन्त, (३) लग्न से भौमाधितिष्ठित भाव पर्यन्त, (४) भौमाधितिष्ठित भाव से लग्न पर्यन्त, (५) लग्न से राहु स्थित भाव पर्यन्त और (६) राहु स्थित भाव से लग्न पर्यन्त भावों में स्थित बिन्दुसंख्याओं के अलग-अलग योगों में ७ से गुणा कर २७ से भाग देने पर लब्ध वर्ष में जातक को रोगार्तता या कष्ट होता है।

शुभग्रहाणां संयोगसमानाब्दे शुभं भवेत् ।
पुत्रवित्तसुखादीनि लभते नात्र संशयः ॥४३॥

शुभग्रहाधितिष्ठित भावों में स्थित शुभ बिन्दुसंख्याओं के योग में ७ से गुणाकर गुणनफल में २७ से भाग देने से लब्धि तुल्य वर्ष में शुभ फल धन, पुत्र और सुख की वृद्धि होती है ॥४३॥

संग्रहेण मया प्रोक्तमष्टवर्गफलं त्विह ।
तज्ज्ञैर्विस्तरतः प्रोक्तमन्यत्र पटुबुद्धिभिः ॥४४॥

इति श्रीमन्त्रेश्वरविरचितायां फलदीपिकायां होरासारोक्तमष्टकवर्ग-फलं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥
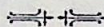
इस प्रकार संक्षेप में अष्टकवर्गज फल को कहा जिसे इस शास्त्र के अन्य विद्वानों ने अन्यान्य ग्रन्थों में विशद रूप में कहा है ॥४४॥

इस प्रकार मन्त्रेश्वर कृत फलदीपिका में होरासारोक्त अष्टकवर्गफल नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥२४॥

○

पञ्चविंशोऽध्याय:

गुलिकाद्युपग्रह:

गुलिकादि उपग्रह स्पष्टीकरण और उनके फल

नमामि मान्दिं यमकण्टकाख्यमर्द्धप्रहारं भुवि कालसंज्ञम्।
धूमव्यतीपातपरिध्यभिख्यानुपग्रहानिन्द्रधनुश्च केतून् ॥१॥

(१) मान्दि, (२) यमकण्टक, (३) अर्द्धप्रहर, (४) काल, (५) धूम, (६) व्यतीपात, (७) परिधि, (८) इन्द्रचाप और (९) केतु उपग्रहों को प्रणाम करता हूँ ॥१॥

चरं रुद्रदास्यं घटं नित्यतानं
खनिर्मान्दिनाड्य: क्रमेणार्कवारात्।
अहर्मानवृद्धिक्षयौ तत्र कार्यौ
निशायां तु वारेश्वरात्पञ्चमाद्या: ॥२॥

यदि दिनमान ३० घटी हो तो रविवारादि दिवसों में क्रमश: २६वीं, २२वी, १८वीं, १४वीं, १०वीं, ६ठी और २री घटी के अन्त में मान्दी या गुलिक की स्थिति होती है। (अर्थात् रविवार के दिन सूर्योदय से २६ घटी के बाद, सोमवार के दिन २२घटी के बाद, मंगलवार के दिन १८ घटी के बाद, बुधवार के दिन १४ घटी के बाद, बृहस्पतिवार के दिन १० घटी के बाद, शुक्रवार के दिन ६ घटी के बाद और शनिवार के दिन सूर्योदय के २ घटी के बाद मान्दी की स्थिति होती है।)

यदि दिनमान ३० घटी से न्यूनाधिक हो तो उसी अनुपात में उक्त घटिकाओं में ह्रास या वृद्धि कर लेनी चाहिए।

रात्रि में दिनपति के वार से पाँचवें वार से गणना होती है। रविवारादि दिवसों में गुलिक की स्थिति क्रमश: १०,६,२,२६,२२,१८ और १४ घटिकाओं के अन्त में होती है। अर्थात् रविवार की रात्रि में सूर्यास्त से १० घटी के बाद, सोमवार की रात्रि में ६ घटी के बाद, भौमवार की रात्रि में २ घटी के बाद, बुधवार की रात्रि में २६ घटी के बाद, बृहस्पतिवार की रात्रि में २२ घटी के बाद, शुक्रवार की रात्रि में १८ घटी के बाद और शनिवार की रात्रि में सूर्यास्त के १४ घटी के बाद गुलिक की स्थिति होती है ॥२॥

गुलिक का उक्त विवरण अत्यन्त स्थूल है। इससे गुलिक की वास्तविक स्पष्ट स्थिति का ज्ञान सम्भव नहीं है। महर्षि पराशर ने गुलिकानयन की जो विधि बतलायी है उससे उसकी स्पष्ट स्थिति का ज्ञान होता है—

'रविवारादिशन्यन्तं गुलिकादि निरूप्यते। दिवसं ह्यष्टधा भक्त्वा वारेशाद्गणयेत्क्रमात् ॥
अष्टमांशो निरीश: स्याच्छन्यंशो गुलिक: स्मृत:। रात्रिरप्यष्टधा भक्त्वा वारेशात्पञ्चमादित: ॥
गणयेदष्टमो खण्डो निष्पत्ति: परिकीर्तित:। शन्यंशे गुलिक: प्रोक्तो गुर्वंशो यमकण्टक: ॥

भौमांशो मृत्युरादिष्टो रव्यंशो कालसंज्ञकः । सौम्यांशोऽर्धप्रहरकः स्पष्टकर्मप्रदेशकः' ॥
(पराशर)

महर्षि ने दिवस और रात्रि के आठ समान खण्ड करने का निर्देश किया है। जन्मेष्ट काल यदि दिन में हो तो दिनमान में और यदि रात्रि में हो तो रात्रिमान में आठ का भाग देने से दिनमान या रात्रिमान के आठ समान भाग होंगे। वारेश से प्रारम्भ कर सात खण्डों के स्वामी सात ग्रह होते हैं। आठवें खण्ड का कोई स्वामी नहीं होता। इसलिए उसकी निरीश संज्ञा है। पृष्ठ २९६ का उदाहरण शुक्रवार का है। उस दिन दिनमान ३१।४८ है। इसका अष्टमांश ३।५८।३० घट्यादि हुआ। सूर्योदय से प्रथम ३।५८।३० घट्यादि के स्वामी शुक्र, दूसरे ३।५८।३० के स्वामी शनि, तीसरे खण्ड के स्वामी सूर्य इत्यादि होंगे। यदि रात्रि में जन्मेष्ट काल हो तो दिवसपति शुक्र से पञ्चम ग्रह मङ्गल प्रथम खण्ड के स्वामी, दूसरे खण्ड के स्वामी बुध, तीसरे खण्ड के स्वामी बृहस्पति होंगे आदि। इसी को नीचे चक्र में दर्शाया गया है।

ग्रहों के उपग्रह

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मङ्गल	बुध	बृहस्पति	शुक्र	शनि	राहु	केतु
उपग्रह	काल	परिधि	धूम	अर्धप्रहर	यमकण्टक (यमकण्ट)	कोदण्ड (इन्द्रचाप)	मान्दि (गुलिक)	व्यतीपात	उपकेतु

दिन में कालादिबोधक चक्र

खण्ड / दिन	(१) ३।५८।३०	(२) ७।५७।०	(३) ११।५५।३०	(४) १५।५४।०	(५) १९।५२।३०	(६) २३।५१।०	(७) २७।५९।३०
रवि	काल	परिधि	धूम	अर्द्धप्रहर	यमकण्टक	इन्द्रचाप	गुलिक
सोम	परिधि	धूम	अर्द्धप्रहर	यमकण्टक	इन्द्रचाप	गुलिक	काल
मङ्गल	धूम	अर्द्धप्रहर	यमकण्टक	इन्द्रचाप	गुलिक	काल	परिधि
बुध	अर्द्धप्रहर	यमकण्टक	इन्द्रचाप	गुलिक	काल	परिधि	धूम
बृहस्पति	यमकण्टक	इन्द्रचाप	गुलिक	काल	परिधि	धूम	अर्द्धप्रहर
शुक्र	इन्द्रचाप	गुलिक	काल	परिधि	धूम	अर्द्धप्रहर	यमकण्टक
शनि	गुलिक	काल	परिधि	धूम	अर्द्धप्रहर	यमकण्टक	इन्द्रचाप

रात्रि में कालादिबोधक चक्र (रात्रिमान = ६०-३१।४८ = २८।१२)

खण्ड / दिन	(१) ३।३१।३०	(२) ७।३।०	(३) १०।३४।३०	(४) १४।६।०	(५) १७।३७।३०	(६) २१।९।०	(७) २४।४०।३०
रवि	यमकण्टक	इन्द्रचाप	गुलिक	काल	परिधि	धूम	अर्द्धप्रहर
सोम	इन्द्रचाप	गुलिक	काल	परिधि	धूम	अर्द्धप्रहर	यमकण्टक
मङ्गल	गुलिक	काल	परिधि	धूम	अर्द्धप्रहर	यमकण्टक	इन्द्रचाप
बुध	काल	परिधि	धूम	अर्द्धप्रहर	यमकण्टक	इन्द्रचाप	गुलिक
बृहस्पति	परिधि	धूम	अर्द्धप्रहर	यमकण्टक	इन्द्रचाप	गुलिक	काल
शुक्र	धूम	अर्द्धप्रहर	यमकण्टक	इन्द्रचाप	गुलिक	काल	परिधि
शनि	अर्द्धप्रहर	यमकण्टक	इन्द्रचाप	गुलिक	काल	परिधि	धूम

आठवाँ खण्ड निरीश होता है।

गुलिक ध्रुवाङ्क

वार	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	बृहस्पति	शुक्र	शनि
दिवा	७	६	५	४	३	२	१
रात्रि	३	२	१	७	६	५	४

उदाहरण कुण्डली शुक्रवार की है। इष्टकाल १।३० घट्यादि है। इस इष्टकाल को, यतः दिवा जन्म है इसलिए शुक्रवार के दिवा गुलिक ध्रुवाङ्क २ से गुणा करने से ३।० घट्यादि गुलिकेष्ट हुआ। स्पष्ट सूर्य ०।५।३७।३८ है, अयनांश २३।३३।५६ है। इनकी सहायता से लग्न-साधन करने से ०।२७।४।२४ गुलिक लग्न हुआ। अर्थात् उक्त समय में गुलिक लग्न में ही स्थित है।

यदि रात्रि में जन्म हो तो इष्टकाल (सूर्योदयात्) में दिनमान घटाकर शेष को उक्त दिन के रात्रि गुलिक ध्रुवा से गुणा करने से गुलिकेष्ट तथा इस रात्रिगत गुलिकेष्टकाल पर सूर्यस्पष्ट से लग्नानयन करने से गुलिक सिद्ध होगा।

अन्य उपग्रहों का आनयन भी इसी विधि से करना चाहिए। सभी के दिवा और रात्रि ध्रुवाङ्क भिन्न-भिन्न होंगे जिसे पूर्व कथित कालादिबोधक चक्र के अध्ययन से सहज ही जाना जा सकता है।

दिव्या घटी नित्यतनुः खनीनां चन्दे रुरुः स्याद्यमकण्टकस्य।
अर्द्धप्रहारस्य भटो नटेन स्तनौ खनी चन्द्रखरौ जयज्ञः ॥३॥

सूर्योदय से १८,१४,१०,६,२,२६ और २२वें घटिकाओं के अन्त में रविवारादि दिवसों में क्रमशः यमकण्टक की स्थिति होती है तथा सूर्योदय से १४,१०,६,२,२६,२२ और १८वीं घटिका के अन्त में रविवारादि दिनों में क्रमशः अर्द्धप्रहर की स्थिति होती है ॥३॥

कालस्य फेनं तनुरुद्रदिव्यं वन्द्यो नटस्तैरनुसूर्यवारात्।
एषां समं मान्दिवदेव तत्तन्नाड्या स्फुटं लग्नवदत्र साध्यम् ॥४॥

सूर्योदय से २,२६,२२,१८,१४,१० और ६ घटिकाओं के अन्त में रविवारादि दिवसों में क्रमशः क़ाल की स्थिति होती है। इन घटिकाओं में दिनमान में ह्रास-वृद्धि के अनुसार समानुपातिक परिवर्तन कर लग्नानयन विधि से विभिन्न उपग्रहों का परिज्ञान करना चाहिए ॥४॥

धूमो वेदगृहैस्त्रयोदशभिरप्यंशैः समेते रवौ
स्यात्तस्मिन् व्यतिपातको विगलिते चक्रादथास्मिन्युते।
षड्भिभैः परिवेश इन्द्रधनुरित्यस्मिंश्च्युते मण्डला-
दत्यष्ट्यंशयुतेऽत्र केतुरथ तत्रैकर्क्षयुक्तो रविः ॥५॥

सूर्य के राश्यादि भोग में ४ राशि १३ अंश २० कला जोड़ देने से योग धूम होता है। धूम को १२ राशि में हीन करने से शेष पात या व्यतीपात होता है। व्यतीपात में ६

राशि जोड़ देने से परिवेश या परिधि नामक उपग्रह होता है। परिधि को १२ राशि में हीन करने से शेष इन्द्रचाप या कोदण्ड का राश्यादि भोग होता है। इन्द्रचाप के राश्यादि भोग में १६ अंश ४० कला जोड़ने से केतु नामक उपग्रह के भोग होते हैं। केतु के राश्यादि भोग में १ राशि की वृद्धि करने से सूर्य के राश्यादि भोग होते हैं।

	रा अं. क. वि.	
पूर्वोक्त उदाहरण के सूर्यभोग	०।५।३७।३८ में	
	+ ४।१३।२०।०	
	४।१८।५७।३८	= धूम
	१२।०।०।०	
	- ४।१८।५७।३८	
	७।११।२।२२	= व्यतीपात
	+ ६।०।०।०	
	१।११।२।२२	= परिधि
	१२।०।०।०	
	- १।११।२।२२	
	१०।१८।५७।३८	= इन्द्रचाप
	+ ०।१६।४०।०	
	११।५।३७।३८	= केतु
	१।०।०।०	
	०।५।३७।३८	= सूर्य

भावाध्याये पूर्वमेव मया प्रोक्तं समुच्चयम्।
मुक्तानां यत्तदेवात्र वाच्यं भावफलं दृढम् ॥६॥

पूर्वोक्त भावाध्याय में इन कालादि उपग्रहों के फल सामूहिक रूप से कहे जा चुके हैं। उससे जो अवशिष्ट है उसे अब यहाँ दृढता से कहता हूँ ॥६॥

तथापि गुलिकादीनां विशेषोऽत्र निगद्यते।
पूर्वाचार्यैर्यदाख्यातं तत्संगृह्य मयोदितम् ॥७॥

तथापि पूर्वाचार्यों द्वारा कथित गुलिकादि उपग्रहों के विशेष फलों को संग्रहीत कर मैं यहाँ कहता हूँ ॥७॥

लग्नस्थ मान्दिफल

चोरः क्रूरो विनयरहितो वेदशास्त्रार्थहीनो
नातिस्थूलो नयनविकृतो नातिधीर्नातिपुत्रः।
नाल्पाहारी सुखविरहितो लम्पटो नातिजीवी
शूरो न स्यादपि जडमतिः कोपनो मान्दिलग्ने ॥८॥

यदि गुलिक लग्न में स्थित हो तो जातक चोर, क्रूरात्मा, विनय रहित, वेद-शास्त्रादि से हीन, दुर्बल तनु, नेत्रविकार युक्त, बुद्धिहीन, अल्प सन्तति, बहुभोजी, सुख से हीन, लम्पट, अल्पायु, भीरु, जडमति और स्वभाव का क्रोधी होता है ।।८।।

'रोगार्त्तः सततं कामी पापात्माधिगतः शठः ।
मूर्त्तिस्थे गुलिके मन्दः खलभावोऽतिदुःखितः' ।। (पराशर)

द्वितीयभावस्थ मान्दिफल

न चाटुवाक्यं कलहायमानो न वित्तधान्यं परदेशवासी ।
न वाङ्न सूक्ष्मार्थविवादवाक्यो दिनेशपौत्रे धनराशिसंस्थे ।।९।।

यदि गुलिक धनभावगत हो तो जातक करुषवाक्, झगड़ालू, धन-धान्यादि से हीन, प्रवासी, न तो उसकी बातें विश्वसनीय होती है और न ही वह सभा में वाक्पटु होता है ।।९।।

'विकृतो दुःखितः क्षुद्रो व्यसनी च गतत्रपः ।
धनस्थे गुलिके जातो निःस्वो भवति मानवः' ।। (पराशर)

तृतीयस्थ मान्दिफल

विरहगर्वमदादिगुणैर्युतः प्रचुरकोपधनार्जनसम्भ्रमः ।
विगतशोकभयश्च विसोदरः सहजधामनि मन्दसुतो यदा ।।१०।।

जिसके जन्माङ्ग में गुलिक तृतीय भाव में स्थित हो तो जातक गर्व, मद्य-व्यसन आदि में लिप्त गुणों से हीन, अत्यन्त क्रोधी, धनार्जन में आडम्बरयुक्त, शोक और भय से मुक्त और सहोदर भाई या बहन से हीन होता है ।।१०।।

'चार्वङ्गो ग्रामपः पुण्यसंयुक्तः सज्जनप्रियः ।
गुलिके तृतीयगे जातो जायते राजपूजितः' ।। (पराशर)

चतुर्थ, पञ्चम और षष्ठ भावस्थ मान्दिफल

सुहृदि शनिसुते स्याद् बन्धुयानार्थहीन-
श्चलमतिरवबुद्धिस्त्वल्पजीवी च पुत्रे ।
बहुरिपुगणहन्ता भूतविद्याविनोदी
रिपुगतगुलिके सच्छ्रेष्ठपुत्रः स शूरः ।।११।।

यदि मान्दि चतुर्थ भाव में हो तो जातक स्वजन, बन्धु-बान्धवों, वाहन और धन से हीन होता है । यदि गुलिक पञ्चम भाव में स्थित हो तो जातक चञ्चल बुद्धि और अल्पायु होता है । यदि वह षष्ठभाव में स्थित हो तो जातक शत्रुदल का विनाशक, भूतविद्या का प्रेमी और श्रेष्ठ पुत्रों से युक्त शूरवीर होता है ।।११।।

'रोगी सुखपरित्यक्तः सदा भवति पापकृत् । यथात्मजे सुखस्थे तु वातपित्ताधिको भवेत् ।।
विस्तुतिर्विधनोऽल्पायुर्द्वेषी क्षुद्रो नपुंसकः । सुते सगुलिको जातो स्त्रीजितो नास्तिको भवेत् ।।

वीतशत्रुः सुपुष्टाङ्गो रिपुस्थाने यमात्मजः । सुदीप्तः सम्मतः स्त्रीणां सोत्साहः सुदृढो हितः' ॥
(पराशर)

सप्तमभावस्थ मान्दिफल

कलत्रसंस्थे गुलिके कलही बहुभार्यकः ।
लोकद्वेषी कृतघ्नश्च स्वल्पज्ञः स्वल्पकोपनः ॥१२॥

जन्माङ्ग के सप्तम भाव में यदि गुलिक स्थित हो तो जातक झगड़ालू, अनेक स्त्रियों का स्वामी, विद्वेषी या लोकद्रोही, कृतघ्न, अल्प ज्ञानी और थोड़ा क्रोधी होता है ॥१२॥

'स्त्रीजितः पापकृज्जारः कृशाङ्गो गतसौहृदः ।
जीवितः स्त्रीधनेनैव सप्तमस्थे रवेः सुते' ॥ (पराशर)

अष्टम-नवम-दशम-एकादश भावस्थ मान्दिफल

विकलनयनवक्त्रो ह्रस्वदेहोऽष्टमस्थे
गुरुसुतवियुतोऽभूद्धर्मसंस्थेऽर्कपौत्रे ।
न शुभफलदकर्मा कर्मसंस्थे विदानः
सुखसुतमतितेजः कान्तिमाँल्लाभसंस्थे ॥१३॥

जिसके जन्माङ्ग के अष्टम भाव में गुलिक स्थित हो तो वह विकल नेत्र और विकल आनन तथा ठिगने कद का होता है । गुलिक यदि नवम भावगत हो तो जातक अपने गुरुजनों और पुत्रों से हीन होता है । यदि गुलिक दशम भाव में स्थित हो तो जातक समस्त सत्कार्य, धर्माचरण आदि से विमुख और दानादि से विरत रहता है । यदि एकादश भाव में स्थित हो तो जातक सुखी, पुत्रवान्, बुद्धिमान्, तेजस्वी और कान्तिमान् होता है ॥१३॥

'क्षुधालुर्दुःखितः क्रूरस्तीक्ष्णशेषोऽतिनिर्घृणः । रन्ध्रे प्राणहरो निःस्वो जायते गुणवर्जिते ॥
बहुक्लेशी कृशतनुर्दुष्टकर्माऽतिनिर्घृणः । मन्दे धर्मसंस्थे मन्दः पिशुनो बहिराकृतिः ॥
सुस्त्रीभोगी प्रजाध्यक्षो बन्धूनां च हिते रतः । लाभे यमानुजो जातो नीचाङ्गः सार्वभौमिकः' ॥
(पराशर)

द्वादशभावस्थ मान्दिफल

विषयविरहितो दीनो बहुव्ययः स्याद्व्यये गुलिकसंस्थे ।
गुलिकत्रिकोणभे वा जन्म ब्रूयान्नवांशे वा ॥१४॥

जन्माङ्ग के द्वादश भाव में मान्दि रहने से जातक विषयभोग से निस्स्पृह, अतिदीन और अपव्ययी होता है । गुलिक जन्मलग्न से अथवा जन्मराशि से त्रिकोण में स्थित होता है अथवा लग्ननवांश गुलिक राशि के समान होता है ॥१४॥

'नीचकर्माश्रितः पापो हीनाङ्गो दुर्भगोऽनसः ।
व्ययगे गुलिके जातो नीचेषु कुरुते रतिम्' ॥ (पराशर)

गुलिक युक्त सूर्यादि फल

रवियुक्ते पितृहन्ता मातृक्लेशी निशापसंयुक्ते।
भ्रातृवियोगः सकुजे बुधयुक्ते मन्दजे च सोन्मादी ॥१५॥

यदि गुलिक सूर्य के साथ हो तो पिता के लिए कष्टप्रद होता है। चन्द्रमा के साथ गुलिक हो तो माता के लिए कष्टप्रद होता है। यदि मङ्गल से गुलिक युक्त हो तो सहोदर के लिए कष्टप्रद और यदि बुध से संयुक्त हो तो जातक उन्मादी होता है ॥१५॥

गुरुयुक्ते पाषण्डी शुक्रयुते नीचकामिनीसङ्गः।
शनियुक्ते शनिपुत्रे कुष्ठव्याध्यर्दितश्च सोऽपल्पायुः ॥१६॥

यदि गुलिक बृहस्पति से संयुक्त हो तो जातक पाषण्डी होता है, शुक्र से संयुक्त हो तो जातक नीच स्त्रियों के साथ भोग करने वाला और यदि शनि से युत हो तो कुष्ठादि व्याधियों से जातक कष्ट भोगता है तथा अल्पायु होता है ॥१६॥

विषरोगी राहुयुते शिखियुक्ते वह्निपीडितो मान्दौ।
गुलिकस्त्याज्ययुतश्चेत्तस्मिञ्जातो नृपोऽपि भिक्षाशी ॥१७॥

यदि गुलिक राहु से युत हो तो जातक विष से उत्पन्न व्याधि से ग्रस्त होता है। यदि केतु के साथ गुलिक हो तो जातक को अग्नि से भय होता है।

गुलिक काल के त्याज्य घटी (विषघटी) में यदि किसी का जन्म हो तो राजकुलोत्पन्न जातक भी भिक्षुक हो जाता है ॥१७॥

विषघटी के सम्बन्ध में जानने के लिए मेरे द्वारा सम्पादित जातकपारिजात में अध्याय ५ के श्लोक ११२ की टीका देखिए।

गुलिकस्य तु संयोगे दोषान्सर्वत्र निर्दिशेत्।
यमकण्टकसंयोगे सर्वत्र कथयेच्छुभम् ॥१८॥

जहाँ कहीं भी गुलिक का संयोग हो तो वह फल-विनाशक होता है। यमकण्टक का संयोग सर्वत्र सुखद होता है ॥१८॥

दोषप्रदाने गुलिको बलीयान् शुभप्रदाने यमकण्टकः स्यात्।
अन्ये च सर्वे व्यसनप्रदाने मान्द्युक्तवीर्यार्द्धबलान्विताः स्युः ॥१९॥

पाप या अशुभ फल प्रदान करने में गुलिक बलवान् होता है तथा शुभ फल प्रदान करने में यमकण्टक बली होता है। अन्य उपग्रह व्यसन आदि प्रदान करने में गुलिक की अपेक्षा अर्द्धबली होते हैं ॥१९॥

शनिवद्गुलिके प्रोक्तं गुरुवद्यमकण्टके।
अर्धप्रहारे बुधवत्फलं काले तु राहुवत् ॥२०॥

गुलिक शनि के समान, यमकण्टक बृहस्पति के समान, अर्धप्रहर बुध के समान और काल राहु के समान फलप्रद होता है ॥२०॥

कालस्तु राहुर्गुलिकस्तु मृत्युर्जीवातुकः स्याद्यमकण्टकोऽपि ।
अर्द्धप्रहारः शुभदः शुभाङ्कयुक्तोऽन्यथा चेदशुभं विदध्यात् ॥२१॥

काल राहु के समान, गुलिक साक्षात् मृत्यु के समान है और यमकण्टक बृहस्पति के समान जीवन-प्रदाता है। अधिक शुभग्रहों से युक्त भाव में अर्द्धप्रहर शुभ फल देता है। शुभ बिन्दु से हीन अथवा अल्प बिन्दु युक्त भाव में अशुभ फल देता है ॥२१॥

आत्मादयोऽधिपैर्युक्ता धूमादिग्रहसंयुताः ।
ते भावा नाशतां यान्ति वदतीति पराशरः ॥२२॥

स्वामी से युक्त भाव में भी यदि धूमादि उपग्रह स्थित हो तो उस भावफल के विनाशक होते हैं। ऐसा पराशर का कथन है ॥२२॥

धूमे सन्ततमुष्णं स्यादग्निभीतिर्मनोव्यथा ।
व्यतीपाते मृगभयं चतुष्पान्मरणं तु वा ॥२३॥

धूम तीव्र उत्ताप, अग्निभय और मानसिक सन्ताप देता है। व्यतीपात हो तो सींगधारी पशुओं से भय और चतुष्पदों से मृत्युभय होता है ॥२३॥

परिवेषे जले भीरुर्जलरोगश्च बन्धनम् ।
इन्द्रचापे शिलाघातः क्षतं शस्त्रैरपि च्युतिः ॥२४॥

परिवेष से जलभय और जल-प्रधान व्याधियों से कष्ट होता है। बन्धन या कारागार की भी आशंका रहती है। इन्द्रचाप से पत्थर या शिला आदि के आघात से अथवा शस्त्राघात, पतन आदि सम्भव होता है ॥२४॥

केतौ पतनघाताद्यं कार्यनाशोऽशनेभयम् ।
एते यद्भावसहितास्तद्दशायां फलं वदेत् ॥२५॥

केतु या उपकेतु पतन या आघात का भय देता है। आकाशीय बिजली से भय होता है तथा व्यवसाय का नाश करता है। उपग्रह जिस भाव में स्थित हो उसके स्वामी की दशा में ये सभी फल जातक को प्राप्त होते हैं ॥२५॥

विभिन्न भावों में केतु का संक्षिप्त फल

अल्पायुः कुमुखः पराक्रमगुणो दुःखी च नष्टात्मजः
प्रत्यर्थिक्षुभितो विशीर्णमदनो दुर्मार्गमृत्युं गतम् ।
धर्मादिप्रतिकूलताटनरुचिर्लाभान्वितो दोषवा-
नित्येवं क्रमशो विलग्नभवनात्केतोः फलं कीर्तयेत् ॥२६॥

केतु यदि लग्न में हो तो जातक अल्पायु, द्वितीय भाव में हो तो कुरूप या कटुभाषी, तीसरे भाव में हो तो पराक्रमी, चतुर्थ भाव में हो तो दुःखी, पञ्चम भाव में हो तो सन्तति-नाश, छठे भाव में हो तो शत्रु से भय, सप्तम भाव में स्थित हो तो कामेच्छा का नाश,

आठवें भाव में हो तो कुमार्ग से मृत्यु, नवम भाव में हो तो धर्म में अनभिरुचि, दशम भाव में हो तो यात्रा में रुचि, एकादश भाव में हो तो लाभ और द्वादश भाव में केतु हो तो जातक दोषी होता है ॥२६॥

अप्रकाशाः सञ्चरन्ति धूमाद्याः पञ्च खेचराः ।
क्वचित्कदाचिद्दृश्यन्ते लोकोपद्रवहेतवे ॥२७॥

धूमादि पाँच ग्रह (धूम, व्यतीपात, परिवेष, इन्द्रचाप और उपकेतु) अदृश्य रूप से आकाश में भ्रमण करते हुए यदा-कदा कहीं पर दृश्यमान हो जाते हैं तब लोकोपद्रव या प्राकृतिक आपदा से धन-जन की हानि होती है ॥२७॥

उपग्रहों के स्वरूप

धूमस्तु धूमपटलः पुच्छर्क्षमिति केचन ।
उल्कापातो व्यतीपातः परिवेषस्तु दृश्यते ॥२८॥

धूम—धूएँ के बादल के समान या पुच्छल तारा है। उल्कापात ही व्यतीपात है। परिवेष—सूर्य अथवा चन्द्रमा के चारों ओर मण्डल के रूप में दृश्यमान होता है ॥२८॥

लोके प्रसिद्धं यद्दृष्टं तदेवेन्द्रधनुः स्मृतम् ।
केतुश्च धूमकेतुः स्याल्लोकोपद्रवकारकः ॥२९॥

लोकविख्यात इन्द्रधनुष ही इन्द्रचाप है और धूमकेतु ही केतु है। ये सभी दृश्यमान होने पर लोकोपद्रव के कारण होते हैं ॥२९॥

गुलिक-विशेष फल

गुलिकभवननाथे केन्द्रगे वा त्रिकोणे
बलिनि निजगृहस्थे स्वोच्चमित्रस्थिते वा ।
रथगजतुरगाणां नायको मारतुल्यो
महितपृथुयशास्स्यान्मेदिनीमण्डलेन्द्रः ॥३०॥

इति श्रीमन्त्रेश्वरविरचितायां फलदीपिकायां गुलिकाद्युपग्रहो नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

गुलिकाधितिष्ठित भाव का स्वामी पर्याप्त बलवान् होकर यदि केन्द्र-त्रिकोण, स्वराशि, उच्चराशि अथवा मित्रराशि में स्थित हो तो जातक रथ, हाथी, घोड़ा आदि ऐश्वर्य साधनों से सम्पन्न, कामदेव के समान सुन्दर, विशाल यशस्वी, भूमण्डल पर शासन करने वाला राजा होता है ॥३०॥

इस प्रकार मन्त्रेश्वरकृत फलदीपिका में गुलिकाद्युपग्रह नामक पचीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥२५॥

षड्विंशोऽध्यायः

गोचरफलम्

सर्वेषु लग्नेष्वपि सत्सु चन्द्रलग्नं प्रधानं खलु गोचरेषु।
तस्मात्तदृक्षादपि वर्तमानग्रहेन्द्रचारैः कथयेत्फलानि ॥१॥

सभी लग्नों में चन्द्रलग्न ही सर्वश्रेष्ठ है, इसे ही प्रधान मानकर इसी से गोचरवश स्थित ग्रहों की गणना कर फलादेश करना चाहिए ॥१॥

सूर्यः षट्त्रिदशस्थितस्त्रिदशषट्सप्ताद्यगश्चन्द्रमाः
जीवस्त्वस्ततपोद्विपञ्चमगतो वक्रार्कजौ षट्त्रिगौ।
सौम्यः षट्स्वचतुर्दशाष्टमगतः सर्वेऽप्युपान्तस्थिताः
शुक्रः खास्तरिपून्विहाय शुभदस्तिग्मांशुवद्भोगिनौ ॥२॥

गोचरवश सूर्य जब चन्द्रराशि से ३,६ और १०वें भाव में; चन्द्रमा १,३,६,७ और १०वें स्थान में; मङ्गल और शनि ३ और ६वें भाव में; बुध २,४,६,८ और १०वें भाव में; बृहस्पति २,५,७ और ९ भाव में; शुक्र ६,७ और १०वें भाव के अतिरिक्त अन्य भावों में तथा ११वें भाव में सभी ग्रह शुभ फल प्रदान करते हैं। राहु और केतु सूर्य के समान ३,६ और १०वें भाव में शुभ फल देते हैं ॥२॥

सूर्य के शुभ और वेध स्थान

लाभविक्रमखशत्रुषु स्थितः शोभनो निगदितो दिवाकरः।
खेचरैः सुततपोजलान्त्यगैर्व्यार्किभिर्यदि न विद्ध्यते तदा ॥३॥

चन्द्रराशि से उपर्युक्त ३,६,१० और ११वें भाव में जो सूर्य को शुभ फलप्रदाता कहा गया है, वह तभी होगा जब शनि के अतिरिक्त अन्य ग्रह चन्द्रराशि से ९वें, १२वें, ४थे और ५वें भाव में न स्थित हों ॥३॥

उपर्युक्त वेधस्थानों में यदि शनि के अतिरिक्त अन्य ग्रह न हो तो सूर्य कथित स्थानों में शुभद होता है। शनि से सूर्य का वेध नहीं होता। बुध सूर्य से अधिकतम २८° और शुक्र सूर्य से अधिकतम ४८° के अन्तर पर होते हैं। अतः इनके वेध का प्रश्न ही नहीं होता। शेष मङ्गल और बृहस्पति का ही वेध हो सकता है। गोचर में सूर्य अपने स्थान से सप्तमभावस्थ ग्रह से विद्ध होता है।

'शुभोऽर्को जन्मतस्त्र्यायदशषट्सु न विध्यते।
जन्मतो नवपञ्चाम्बुव्ययगैर्व्यार्किभिर्ग्रहैः' ॥ (नारद)

चन्द्रमा के शुभ और वेध स्थान

द्यूनजन्मरिपुलाभखत्रिगः चन्द्रमाः शुभफलप्रदः सदा।
स्वात्मजान्त्यमृतिबन्धुधर्मगैर्विद्ध्यते न विबुधैर्यदि ग्रहैः ॥४॥

चन्द्रमा जन्मराशि से ७वें, १ले, ६वें, ११वें, १०वें और ३सरे भाव में गोचरवश शुभद होता है; यदि क्रमशः २रे, ५वें, १२वें, ८वें, ४थे और नवें भाव में बुध के अतिरिक्त अन्य किसी ग्रह का सञ्चार न होता हो ॥४॥

गोचर से चन्द्रमा के शुभ स्थान ७,१,६,११,१० और ३ भाव।
वेध स्थान २,५,१२,८,४ और ९ भाव।

'विध्यते जन्मतो नेन्दुर्द्यूनाद्यायर्तुदिक्ग्निषु।
स्वेष्वष्टान्त्याम्बुधर्मस्थैर्विबुधैर्जन्मतः शुभः' ॥ (नारद)

शनि और भौम के शुभ और वेध स्थान

विक्रमायरिपुगः कुजः शुभः स्यात्तदान्त्यसुतधर्मगैः खगैः।
चेन्न विद्ध इनसूनुरप्यसौ किन्तु धर्मघृणिना न विद्ध्यते ॥५॥

शनि और मङ्गल जन्मकालिक चन्द्रराशि से गोचरवश ३सरे, ६ठे और ११वें भाव में शुभद होता है; यदि क्रमशः १२वें, ९वें और ५वें भाव में गोचरवश अन्य कोई ग्रह न स्थित हो। शनि को सूर्य से वेध नहीं होता ॥५॥

मङ्गल और शनि के गोचरवश शुभ स्थान ३,६,११ भाव।
वेध स्थान १२,९,५ भाव।
शनि को सूर्य से वेध नहीं होता।

त्र्यायारिपुः कुजः श्रेष्ठो जन्मराशेर्न विध्यते।
अन्त्येष्वङ्कग्रहैः सौरिरपि सूर्येण सम्मतः' ॥ (नारद)

बुध के शुभ स्थान

स्वाम्बुशत्रुमृतिखायगः शुभो ज्ञस्तदा न खलु विद्ध्यते सदा।
स्वात्मजत्रितप आद्यनैधनप्राप्तिगैर्विबुधुभिर्यदि ग्रहैः ॥६॥

जन्मकालिक चन्द्रराशि से २,४,६,८,१० और ११वें भाव में गोचरवश शुभ फल देता है; यदि चन्द्रराशि से क्रमशः ५,३,९,१,८ और १२वें भाव में चन्द्रमा के अतिरिक्त अन्य कोई ग्रह संक्रमित न हो ॥६॥

बुध के गोचरवश शुभ स्थान २,४,६,८,१० और ११वाँ भाव।
वेध स्थान ५,३,९,१,८ और १२वाँ भाव।

'ज्ञःस्वाब्ध्यर्यष्टखायेषु जन्मतश्चेन्न विद्ध्यते।
धीत्र्यङ्काद्याष्टान्त्यगैर्यदा जन्मतो वीक्षितः शुभः' ॥ (नारद)

बृहस्पति के शुभ और वेध स्थान

स्वायधर्मतनयास्तसंस्थितो नाकनायकपुरोहितः शुभः ।
रिःफरन्ध्रखजलत्रिगैर्यदा विद्ध्यते गगनचारिभिर्न हि ॥७॥

गोचर से बृहस्पति २,११,९,५ और ७वें भाव (जन्मराशि से) में शुभप्रद होता है; यदि १२,८,१०,४ और ३सरे भाव में गोचर से अन्य कोई ग्रह न हो ॥७॥

बृहस्पति के गोचरवश शुभ स्थान २,११,९,५ और ७वाँ भाव।
वेध स्थान १२,८,१०,४ और ३रा भाव।

'जन्मतः स्वायगोध्यस्तेष्वन्त्याष्टखजलत्रिगैः ।
जन्मराशेर्गुरुः श्रेष्ठो ग्रहैर्यदि न विध्यते' ॥ (नारद)

शुक्र के शुभ और वेध स्थान

आसुताष्टमतपोव्ययायगो विद्ध आस्फुजिदशोभनः स्मृतः ।
नैधनास्ततनुकर्मधर्मधीलाभवैरिसहजस्थखेचरैः ॥८॥

गोचरवश शुक्र १,२,३,४,५,८,९,१२ और ११वें (जन्मराशि से) भावों में शुभ फलप्रद होता है; यदि क्रमशः ८,७,१,१०,९,५,११,६ और ३रे भाव में गोचर से अन्य कोई ग्रह न हो ॥८॥

गोचरवश शुक्र के शुभ स्थान—१,२,३,४,५,८,९,१२ और ११वाँ भाव।
वेध स्थान—८,७,१,१०,९,५,११,६ और ३सरा भाव।

'जन्मभादासुताष्टाङ्कान्त्यायेश्विष्टो न विध्यते ।
जन्मभान्मृत्युसप्ताद्यखाङ्केष्वायरिपुत्रिगैः' ॥ (नारद)

लग्नादि भावों में सूर्य-संक्रमण फल

जन्मान्यायासदाता क्षपयति विभवान् क्रोधरोगाध्वदाता
वित्तभ्रंशं द्वितीये दिशति न सुखदो वञ्चनामाग्रहं च ।
स्थानप्राप्तिं तृतीये धननिचयमुदाकल्यकृच्चारिहन्ता
रोगान् दत्ते चतुर्थे जनयति च मुहुः स्रग्धराभोगविघ्नम् ॥९॥

जन्मराशि में संक्रमित होने पर सूर्य जातक को थकान और धनक्षय कराता है, स्वभाव में चिड़चिड़ापन और रोगार्तता देता है तथा थका देने वाली दुःसाध्य यात्रा कराता है। जन्मराशि से **द्वितीय** भाव के संक्रमण काल में सूर्य धनक्षय और जातक को कष्ट देता है। वह दूसरों के द्वारा छला जाता है तथा उसमें दुराग्रह विकसित होता है। जन्मराशि से **तृतीय** भाव के संक्रमण काल में जातक को पदोन्नति, धनागम, प्रसन्नता, रोगादि से मुक्ति और शत्रुओं का नाश कराता है। **चतुर्थ** भाव के संक्रमण काल में जातक को रोगार्तता तथा विषय-भोगादि में विघ्न उपस्थित करता है ॥९॥

चित्तक्षोभं सुतस्थो वितरति बहुशो रोगमोहादिदाता
षष्ठेऽर्को हन्ति रोगान् क्षपयति च रिपूञ्छोकमोहान्प्रमार्ष्टि।
अध्वानं सप्तमस्थो जठरगुदभयं दैन्यभावं च तस्मै
रुक्त्रासावष्टमस्थः कलयति कलहं राजभीतिं च तापम् ॥१०॥

जन्मराशि से **पञ्चम** भाव के संक्रमण काल में मानसिक सन्ताप, स्वास्थ्य सम्बन्धी परेशानी, रोग-व्याधि और मोह की वृद्धि होती है। **षष्ठ** भाव के संक्रमण काल में जातक को रोगादि से मुक्ति, शत्रुओं को शोक, मोहादि और मानसिक सन्ताप से जातक मुक्त होता है। **सप्तम** भाव के संक्रमण काल में कष्टप्रद यात्राएँ, उदर और गुदामार्ग में रोग तथा अपमानजनक स्थिति उपस्थित होती है। **अष्टम** भाव के संक्रमण काल में जातक भय और रोग, विवाद (कलह), राजकोप एवं अत्यधिक ताप से कष्ट पाता है ॥१०॥

आपद्दैन्यं तपसि विरहं चित्तचेष्टानिरोधं
प्राप्नोत्युग्रां दशमगृहगे कर्मसिद्धिं दिनेशे।
स्थानं मानं विभवमपि चैकादशे रोगनाशं
क्लेशं वित्तक्षयमपि सुहृद्वैरमन्त्ये ज्वरं च ॥११॥

नवम भाव के संक्रमण काल में सूर्य जातक को विपत्ति और दीनता देता है। स्वजनों एवं मित्रों से विलगाव और मानसिक कष्ट होता है। **दशम** भाव के सूर्य द्वारा संक्रमण काल में जातक को बृहत्कार्य में सफलता और उच्चपद की प्राप्ति होती है। **एकादश** भाव में सम्मान और वैभवादि की अभिवृद्धि होती है तथा जातक रोगादि से मुक्त होता है। **द्वादश** भाव के संक्रमण काल में जातक को कष्ट, धन की हानि; स्वजनों से विरोध और ज्वरादि से भय होता है ॥११॥

लग्नादि द्वादश भावों में गोचरवश चन्द्रफल

क्रमेण भाग्योदयमर्थहानिं जयं भयं शोकमरोगतां च।
सुखान्यनिष्टं गदमिष्टसिद्धिं मोदं व्ययं च प्रददाति चन्द्रः ॥१२॥

जन्मकालिक चन्द्रराशि से द्वादश भावों में गोचरवश निम्न फल होते हैं। **चन्द्रराशि** के संक्रमण काल में भाग्योदय, **द्वितीय** भाव के संक्रमण काल में धननाश, **तृतीय** भाव के संक्रमण काल में विजय, सफलता, **चतुर्थ** भाव के संक्रमण काल में भय, **पञ्चम** भाव के संक्रमण काल में शोक, **षष्ठ** भाव के संक्रमण काल में नैरोग्यता, **सप्तम** भाव के संक्रमण काल में सुख, **अष्टम** भाव के संक्रमण काल में अनिष्ट, **नवम** भाव के संक्रमण काल में रोग, **दशम** भाव के संक्रमण काल में अभीष्ट की सिद्धि, **एकादश** भाव के संक्रमण काल में मोद (आनन्द) तथा **द्वादश** भाव के संक्रमण काल में व्ययभार में वृद्धि होती है ॥१२॥

लग्नादि द्वादश भाव में गोचरवश मंगल का फल

अन्तः शोकं स्वजनविरहं रक्तपित्तोष्णरोगं
लग्ने वित्ते भयमपि गिरां दोषमर्थक्षयं च।

धैर्ये भौमो जनयति जयं स्वर्णभूषाप्रमोदं
स्थानभ्रंशं रुजमुदरजां बन्धुदुःखं चतुर्थे ॥१३॥

जन्मराशि के संक्रमण काल में भौम जातक को मनस्ताप, स्वजन-वियोग, रक्त और पित्त की विकृति से उत्पन्न व्याधि से कष्ट देता है। **द्वितीय** भाव के संक्रमण काल में भय, वाणीदोष तथा धनक्षय होता है। **तृतीय** भाव के संक्रमण काल में विजय, सफलता, स्वर्णाभूषण और आनन्द का लाभ होता है। **चतुर्थ** भाव के संक्रमण काल में पदच्युति, उदरजन्य व्याधि तथा जातक के स्वजनों पर विपत्ति आती है ॥१३॥

ज्वरमनुचितचिन्तां पुत्रहेतुव्यथां वा
कलयति कलहं स्वैः पञ्चमे भूमिपुत्रः।
रिपुकलहनिवृत्तिं रोगशान्तिं च षष्ठे
विजयमथ धनाप्तिं सर्वकार्यानुकूल्यम् ॥१४॥

पञ्चम भाव में मङ्गल के संक्रमण काल में जातक ज्वर, अनावश्यक पुत्रचिन्ता अथवा स्वजनों से कलहजन्य सन्ताप होता है। **षष्ठ** भाव में संक्रमित होने पर मङ्गल शत्रुओं से कलह की निवृत्ति, नैरुज्यता, विजय, धन का लाभ और सभी कार्यों में अनुकूलता होती है ॥१४॥

कलत्रकलहाक्षिरुग्जठररोगकृत्सप्तमे
ज्वरक्षतजरूक्षितो विगतवित्तमानोऽष्टमे।
कुजे नवमसंस्थिते परिभवोऽर्थनाशादिभि-
र्विलम्बितगतिर्भवत्यबलदेहधातुक्षयैः ॥१५॥

सप्तम भाव में मङ्गल के संक्रमण काल में जातक का पत्नी से विरोध, नेत्रव्याधि और उदरव्याधि से कष्ट होता है। **अष्टम** भाव में मङ्गल के संक्रमित होने पर ज्वर, क्षत (घाव, चोट) आदि से रक्तस्राव तथा अर्थ और सम्मान-प्रतिष्ठा की हानि होती है। **नवम** भाव में संक्रमित होने पर पराजय, धनक्षय, शारीरिक दुर्बलता के कारण कार्यक्षमता की हानि, शरीर को पुष्टि प्रदान करने वाले तत्त्वों का क्षय आदि फल होता है ॥१५॥

दुश्चेष्टा वा कर्मविघ्नः श्रमः खे द्रव्यारोग्यक्षेत्रवृद्धिश्च लाभे।
भौमः खेटो गोचरे द्वादशस्थो द्रव्यच्छेदस्ताप उष्णामयाद्यैः ॥१६॥

दशम भाव में भौम के संक्रमित होने पर दुराचार में प्रवृत्ति होती है अथवा उसके कार्यों में विफलता या विघ्न उपस्थित होते हैं तथा जातक अत्यधिक थकान एवं परिश्रान्ति का अनुभव करता है। **एकादश** भाव में संक्रमित होने पर जातक को धन, आरोग्यता, भूसम्पदादि की वृद्धि होती है। **द्वादश** भाव में मङ्गल के संक्रमण काल में जातक के धन का क्षय और तज्जनित सन्ताप से पीड़ित होता है। अत्यधिक उत्ताप से उद्भूत व्याधि से जातक ग्रस्त होता है ॥१६॥

द्वादश भावों में गोचर से बुध का फल

वित्तक्षयं श्रियमरातिभयं धनाप्तिं
भार्यातनूजकलहं विजयं विरोधम् ।
पुत्रार्थलाभमथ विघ्नमशेषसौख्यं
पुष्टिं पराभवभयं प्रकरोति चान्द्रिः ॥१७॥

अपने संक्रमण काल में बुध **जन्मराशि** में धनक्षय कराता है । **द्वितीय** भाव में संक्रमित होकर धनलाभ कराता है, **तृतीय** भाव के संक्रमण काल में शत्रुभय देता है, **चतुर्थ** भाव में संक्रमित होकर धनलाभ कराता है, **पञ्चम** भाव के संक्रमण काल में स्त्री और पुत्रों से कलह कराता है, **षष्ठ** भाव के संक्रमण काल में विजय प्रदान करता है, **सप्तम** भाव के संक्रमण काल में विरोध कराता है, **अष्टम** भाव के संक्रमण काल में धन-पुत्रादि का लाभ देता है, नवम भाव के संक्रमण काल में जातक के लिए विघ्न उपस्थित करता है, **दशम** भाव के संक्रमण काल में चतुर्दिक् सुख होता है, **एकादश** भाव के संक्रमण काल में धनलाभ और **द्वादश** भाव के संक्रमण काल में जातक को भय एवं तिरस्कार प्राप्त होता है ॥१७॥

द्वादश भावों में गोचरवश बृहस्पति-फल

जीवे जन्मनि देशनिर्गमनमप्यर्थच्युतिं शत्रुतां
प्राप्नोति द्रविणं कुटुम्बसुखमप्यर्थैं स्ववाचां फलम् ।
दुश्चिक्ये स्थितिनाशमिष्टवियुतिं कार्यान्तरायं रुजं
दुःखैर्बन्धुजनोद्भवैश्च हिबुके दैन्यं चतुष्पाद्भयम् ॥१८॥

जन्मराशि के संक्रमण काल में बृहस्पति देशत्याग और धन की हानि तथा शत्रुता कराता है । जन्मराशि से **द्वितीय** भाव में संक्रमित होकर जातक को धनलाभ और गार्हस्थ्य सुख देता है, उसकी वाणी सारगर्भित होती है । **तृतीय** भाव के संक्रमण काल में पदच्युति, प्रिय व्यक्ति का निधन, व्यवसाय में अवरोध एवं रोगार्तता होती है । **चतुर्थ** भाव के संक्रमण काल में स्वजनों और बन्धु-बान्धवों के कारण कष्ट, दीनता और चतुष्पादों से भय होता है ॥१८॥

पुत्रोत्पत्तिमुपैति सज्जनयुतिं राजानुकूल्यं सुते
षष्ठे मन्त्रिणि पीडयन्ति रिपवः स्वज्ञातयो व्याधयः ।
यात्रां शोभनहेतवे वनितया सौख्यं सुताप्तिं स्मरे
मार्गक्लेशमरिष्टमष्टमगते नष्टं धनैः कष्टताम् ॥१९॥

बृहस्पति द्वारा जन्मराशि से **पञ्चम** भाव के संक्रमण काल में जातक को पुत्रलाभ और सज्जनों से समागम होता है तथा राजकृपा प्राप्त होती है । **षष्ठ** भाव के संक्रमणावधि में जातक शत्रुओं और स्वजनों के द्वारा उत्पीड़ित होता है तथा रोगार्तता से कष्ट पाता है । **सप्तम** भाव के संक्रमण काल में सदुद्देश्य से यात्रा, भार्या से सुख और पुत्रलाभ होता है । **अष्टम** भाव के संक्रमण काल में कष्टप्रद यात्राएँ, अरिष्ट, धनक्षय और कष्ट आदि फल होते हैं ॥१९॥

भाग्ये जीवे सर्वसौभाग्यसिद्धिः कर्मण्यर्थस्थानपुत्रादिपीडा ।
लाभे पुत्रस्थानमानादिलाभो रिःफे दुःखं साध्वसं द्रव्यहेतोः ॥२०॥

भाग्य भाव (९वें भाव) में संक्रमित होने पर बृहस्पति सौभाग्य का उदय और सिद्धि कराता है। **दशम** भाव के संक्रमण काल में धन, स्थान और पुत्र की हानि कराता है। **एकादश** भाव के बृहस्पति द्वारा संक्रमण काल में पुत्र, स्थान और सम्मानादि की वृद्धि होती है। **द्वादश** भाव में संक्रमित होने पर जातक को कष्ट, धन-सम्पदादि की हानि का भय होता है ॥२०॥

द्वादश भावों में शुक्र का गोचर-फल

अखिलविषयभोगं वित्तसिद्धिं विभूतिं
सुखसुहृदभिवृद्धिं पुत्रलब्धिं विपत्तिम् ।
दिशति युवतिपीडां सम्पदं वा सुखाप्तिं
कलहमभयमर्थप्राप्तिमिन्द्रारिमन्त्री ॥२१॥

जन्मराशि के संक्रमण काल में शुक्र समस्त विषयभोग का सुख प्रदान करता है। **द्वितीय** भाव में संक्रमित होकर धनलाभ, **तृतीय** भाव में संक्रमित होकर वैभवादि का सुख, **चतुर्थ** भाव में संक्रमित होकर सुख और मित्रों की प्राप्ति, पञ्चम भाव में संक्रमित होकर सन्तान-लाभ का सुख, **षष्ठ** भाव के संक्रमण काल में विपत्ति, **सप्तम** भाव के संक्रमण काल में स्त्री को कष्ट, **अष्टम** भाव के संक्रमण काल में धनलाभ, **नवें** भाव के संक्रमण काल में सुख, **दशम** भाव के संक्रमण काल में कलह का भय, **एकादश** भाव के संक्रमण काल में निर्भयता तथा **द्वादश** भाव के संक्रमण काल में जातक को धन का लाभ होता है ॥२१॥

द्वादश भावों में शनि का गोचर-फल

रोगाशौचक्रियाप्तिं धनसुतविहतिं स्थानभृत्यार्थलाभं
स्त्रीबन्ध्वर्थप्रणाशं द्रविणसुतमतिप्रच्युतिं सर्वसौख्यम् ।
स्त्रीरोगाध्वावभीतिं स्वसुतपशुसुहृद्वित्तनाशामयार्तिं
जन्मादेरष्टमान्तं दिशति पदवशेनार्कसूनुः क्रमेण ॥२२॥

गोचरवश शनि जब जातक के **जन्मराशि** में प्रवेश करता है तब रोगादि की वृद्धि, स्वजन का निधन, **द्वितीय** भाव के संक्रमण काल में धन-पुत्रादि की हानि, **तृतीय** भाव के संक्रमण काल में पद (स्थान), भृत्य और धन का लाभ, **चतुर्थ** भाव के संक्रमण काल में स्वजन, स्त्री और धन का नाश, **पञ्चम** भाव के संक्रमण काल में धन, पुत्र और बुद्धि की क्षति, **षष्ठ** भाव के संक्रमण काल में सभी प्रकार के सुख, **सप्तम** भाव के संक्रमण काल में स्त्री को कष्ट, यात्रा और भय होता है, **अष्टम** भाव के संक्रमण काल में पुत्र, पशु, मित्र और धन का विनाश तथा रोगार्तता आदि फल होता है ॥२२॥

दारिद्र्यं धर्मविघ्नं पितृसमविलयं नित्यदुःखं शुभस्थे
दुर्व्यापारप्रवृत्तिं कलयति दशमे मानभङ्गं रुजं वा ।

सौख्यान्येकादशस्थो बहुविधविभवप्राप्तिमुत्कृष्टकीर्तिं
विश्रान्तिं व्यर्थकार्याद्विसुहृतिमरिभिः स्त्रीसुतव्याधिमन्त्ये ॥२३॥

नवम भाव में शनि के संक्रमित होने पर दरिद्रता, धार्मिक अनुष्ठानादि में बाधा, पिता के समान किसी स्वजन का निधन और कष्ट होता है। **दशम** भाव के संक्रमण काल में दुराचार में प्रवृत्ति, मान-प्रतिष्ठादि की हानि और रोगादि से कष्ट होता है। **एकादश** भाव के संक्रमण काल में सभी प्रकार के सुख, विभव और उत्कृष्ट कीर्ति का लाभ होता है। **व्यय** भाव के संक्रमण काल में शनि जातक को थकान, अनावश्यक निरर्थक कार्य में प्रवृत्ति, शत्रु द्वारा धनक्षय, स्त्री-पुत्रादि को रोगादि भय और कष्ट होता है ॥२३॥

द्वादश भावों में गोचर के राहु का फल

देहक्षयं वित्तविनाशसौख्ये दुःखार्थनाशौ सुखनाशमृत्यून्।
हानिं च लाभं सुभगं व्ययं च कुर्यात्तमो जन्मगृहात्क्रमेण ॥२४॥

गोचरवश राहु जन्मराशि आदि द्वादश भावों में क्रमशः **जन्मराशि** में शारीरिक क्षति, **द्वितीय** भाव में धनक्षय, **तृतीय** भाव में सुख, **चतुर्थ** भाव में कष्ट, **पञ्चम** भाव में धनहानि, **षष्ठ** भाव में सुख, **सप्तम** भाव में विनाश, **अष्टम** भाव में मृत्यु या मृत्यु तुल्य कष्ट, **नवम** भाव में हानि, **दशम** भाव में लाभ, **एकादश** भाव में सुख और **द्वादश** भाव में व्ययभार में वृद्धि आदि फल देता है ॥२४॥

ग्रहों के गोचरफल-प्राप्तिकाल

क्षितितनयपतङ्गौ राशिपूर्वत्रिभागे
सुरपतिगुरुशुक्रौ राशिमध्यत्रिभागे।
तुहिनकिरणमन्दौ राशिपाश्चान्त्यभागे
शशितनयभुजङ्गौ पाकदौ सार्वकालम् ॥२५॥

सूर्य और मङ्गल राशि के प्रथम १०° के संक्रमण काल में, बृहस्पति और शुक्र राशि के १०° से २०° पर्यन्त, चन्द्रमा और शनि राशि के अन्तिम १०° अंशों के संक्रमणावधि में अपना फल देते हैं। बुध और राहु सम्पूर्ण राशि के संक्रमण काल में फल देते हैं ॥२५॥

गतिर्भयं श्रीर्व्यसनं च दैन्यं शत्रुक्षयो यानमतीव पीडा।
कान्तिक्षयोऽभीष्टवरिष्ठसिद्धिर्लाभो व्ययोऽर्कस्य फलं क्रमेण ॥
सदन्नमर्थक्षयमर्थलाभं कुक्षिव्यथां कार्यविघातलाभम्।
वित्तं रुजं राजभयं सुखं च लाभं च शोकं कुरुते मृगाङ्कः ॥
पुत्रधर्मधनस्थस्य चन्द्रस्योक्तमसत्फलम्।
कलाक्षये परिज्ञेयं कलावृद्धौ तु साधु तत् ॥
भीतिं क्षतिं वित्तमरिप्रवृद्धिमर्थप्रणाशं धनमर्थनाशम्।
शस्त्रोपघातं च रुजं च रोगं लाभं व्ययं भूतनयस्तनोति ॥
बन्धं धनं वैरिभयं धनाप्तिं पीडां स्थितिं पीडनमर्थलाभम्।

खेदं सुखं लाभमथार्थनाशं क्रमात्फलं यच्छति सोमसूनुः ॥
भीतिं वित्तं पीडनं वैरिवृद्धिं सौख्यं शोकं राजमानं च रोगम् ।
सौख्यं दैन्यं मानवित्तं च पीडां दत्ते जीवो जन्मराशेः सकाशात् ॥
रिपुक्षयं वित्तमतीव सौख्यं वित्तं सुतप्रीतिमरातिवृद्धिम् ।
शोकं धनाप्तिं वरवस्त्रलाभं पीडां स्वमर्थं च ददाति शुक्रः ॥
भ्रंशं क्लेशं शं च शत्रुप्रवृद्धिं पुत्रात्सौख्यं सौख्यवृद्धिं च दोषम् ।
पीडां सौख्यं निर्धनत्वं धनाप्तिं नानानर्थं भानुसूनुस्तनोति ॥
हानिं नैःस्वं स्वं च वैरं च शोकं वित्तं वादं पीडनं चाऽपि पापम् ।
वैरं सौख्यं द्रव्यहानिं प्रकुर्याद्राहुः पुंसां गोचरे केतुरेवम् ॥ (जातकाभरण)

नक्षत्रगोचर

सप्तशलाका चक्र

रेखाः सप्तसमालिखेदुपरिगास्तिर्यक्तथैव क्रमा-
दीशादग्निभमादितोऽपि गणयेदादित्यभस्यावधि ।
वेधा जन्मदिने मृतिर्भयमथाधानाख्यनक्षत्रके
कर्मण्यर्थविनाशनं खलु रविर्दद्यात्सपापो मृतिम् ॥२६॥

पूर्व-पश्चिम दिशा में सात रेखाएँ और उनके ऊपर याम्योत्तर दिशा में सात रेखाएँ खींच कर इन रेखाओं के २८ छोरों पर पूर्वोत्तर दिशा में कृत्तिका से प्रारम्भ कर साभिजित् २८ नक्षत्रों को चित्र के अनुसार स्थापित करने से सप्तशलाका चक्र बनता है ।

सप्तशलाका चक्र

सूर्याधितिष्ठित नक्षत्र से यदि जन्मनक्षत्र का वेध हो तो जीवन का संकट होता है। सूर्यनक्षत्र का वेध यदि आधान नक्षत्र से हो तो भय और चिन्ता, यदि कर्मनक्षत्र का वेध हो तो धनहानि होती है। किन्तु यदि सूर्य के साथ उस नक्षत्र में कोई पापग्रह युत हो तो उक्त वेधस्थिति में मृत्यु होती है ॥२६॥

जन्म के समय चन्द्रमा जिस नक्षत्र में स्थित हो उस नक्षत्र को जन्मनक्षत्र कहते हैं। जन्मनक्षत्र से १९वाँ नक्षत्र आधान नक्षत्र और १०वाँ नक्षत्र कर्मनक्षत्र होता है।

[किन नक्षत्रों में परस्पर वेध होता है यह मुहूर्तचिन्तामणि में स्पष्ट रूप से बतलाया गया है—

'शाक्रेज्ये शतभानिले जलशिवे पौष्णार्यमर्क्षे वसु-
द्वीशे वैश्वसुधांशुभे हयभगे सार्पानुराधे मिथः।
हस्तोपान्तिमभे विधातृविधिभे मूलादिती त्वाष्ट्रभा-
जाङ्घ्री याम्यमघे कृशानुहरिभे विद्धे कुभृद्रेखिके' ॥

अर्थात् ज्येष्ठा-पुष्य में, शतभिषा-स्वाती में, पूर्वाषाढ़ा और आर्द्रा में, रेवती-उत्तरा-फाल्गुनी में, धनिष्ठा-विशाखा में, उत्तराषाढ़ा-मृगशिरा में, अश्विनी-पूर्वाफाल्गुनी में, आश्लेषा-अनुराधा में, हस्त-उत्तरभाद्रपद में, रोहिणी-अभिजित् में, मूल-पुनर्वसु में, चित्रा-पूर्वभाद्रपद में, भरणी-मघा में और श्रवण-कृत्तिका में परस्पर वेध होता है।]

एवं विद्धे खचरैः क्रूररन्यैर्मरणम्।
सौम्यैर्विद्धे न मृतिर्विद्यादेवं सकलम् ॥२७॥

इस प्रकार उक्त नक्षत्रों (जन्म, आधान और कर्म नक्षत्र) का यदि सूर्येतर पापग्रहों (मङ्गल, शनि, राहु और केतु) से युक्त नक्षत्रों का वेध हो तो भी मृत्यु (अथवा मृत्युतुल्य कष्ट) सम्भव होती है। यदि शुभग्रह युक्त नक्षत्रों का वेध हो तो मृत्यु नहीं होती। इसी प्रकार सर्वत्र विचार करना चाहिए ॥२७॥

आधानकर्मर्क्षविपन्निजर्क्षे वैनाशिके प्रत्यरभे वधाख्ये।
पापग्रहो मृत्युभयं विदध्याद्वेधे तथा कार्यहरः शुभाख्ये ॥२८॥

आधाननक्षत्र, कर्मनक्षत्र, विपत्, जन्मनक्षत्र, वैनाशिक नक्षत्र, प्रत्यरिनक्षत्र और वधनक्षत्र का वेध यदि पापग्रह से हो तो मृत्युकारक होते हैं। यदि शुभग्रह से उक्त नक्षत्रों का वेध हो तो केवल व्यावसायिक क्षति होती है ॥२८॥

जन्मनक्षत्र से १९वें नक्षत्र की आधान, १०वें नक्षत्र की कर्म, ३सरे नक्षत्र की विपत्, २३वें नक्षत्र की वैनाशिक, ५वें नक्षत्र की प्रत्यारि और ७वें नक्षत्र की वध संज्ञा है।

आदित्यसङ्क्रान्तिदिने ग्रहाणां प्रवेशने वा ग्रहणे च युद्धे।
उल्कानिपाते च तथाद्भुते च जन्मत्रयं स्यान्मरणादिदुःखम् ॥२९॥

सूर्यसंक्रान्ति या अन्य किसी ग्रह के राशि परिवर्तन के दिन, ग्रहण, ग्रहयुद्ध या

उल्कानिपात के दिन यदि जन्मत्रय नक्षत्र (जन्मनक्षत्र, अनुजन्मनक्षत्र या त्रिजन्मनक्षत्र) पड़ें तो वह दिन जातक के लिए अनिष्टकर होता है ॥२९॥

कर्मर्क्ष को अनुजन्मनक्षत्र कहते हैं।

असत्फलः सौम्यनिरीक्षितो यः शुभप्रदश्चाप्यशुभेक्षितश्च।
द्वौ निष्फलौ द्वावपि खेचरेन्द्रौ यः शत्रुणा स्वेन विलोकितश्च ॥३०॥

पाप फल देने वाले ग्रह यदि शुभग्रह से दृष्ट हों अथवा शुभ फल देने वाले ग्रह पापग्रह से दृष्ट हों तो दोनों स्थितियों में ग्रह निष्फल होते हैं। यदि शुभ या पाप फल प्रदाता ग्रह अपने शत्रु से दृष्ट हों तब भी वे निष्फल होते हैं।

अनिष्टभावस्थितखेचरेन्द्रः स्वोच्चस्वगेहोपगतो यदि स्यात्।
न दोषकृच्चोत्तमभावगश्चेत् पूर्णं फलं यच्छति गोचरेषु ॥३१॥

अनिष्ट स्थान में स्थित ग्रह यदि अपनी राशि या अपनी उच्च राशि में स्थित हो तो वे अनिष्टकारक नहीं होते। ऐसे ग्रह यदि शुभ स्थान में स्थित हों तो गोचर में वे पूर्ण फल देते हैं ॥३१॥

ग्रहेश्वरास्ते शुभगोचरस्था नीचारिमौढ्यं समुपाश्रिताश्चेत्।
ते निष्फलाः किन्त्वशुभाङ्कसंस्थाः कष्टं फलं संविदधत्यनल्पम् ॥३२॥

गोचर से ग्रह यदि शुभप्रद स्थानों में स्थित हों और अपनी नीचराशि, शत्रुराशि या सूर्य-सान्निध्य में अस्त हों तो वे शुभ फल नहीं देते। यदि अशुभप्रद स्थान में उक्त स्थिति में हों तो उनका अशुभ फल अधिक होता है ॥३२॥

द्वादशाष्टमजन्मस्थाः शन्यर्काङ्गारका गुरुः।
कुर्वन्ति प्राणसन्देहं स्थानभ्रंशं धनक्षयम् ॥३३॥

शनि, सूर्य, भौम और बृहस्पति गोचरवशात् जब जन्मराशि, उससे अष्टम और द्वादश राशि में हों तो जातक को मृत्युभय, पदच्युति और धनक्षय के कारण होते हैं ॥३३॥

चन्द्राष्टमे च धरणीतनयः कलत्रे
राहुः शुभे कविररौ च गुरुस्तृतीये।
अर्कः सुतेऽर्किरुदये च बुधश्चतुर्थे
मानार्थहानिमरणानि वदेद्विशेषात् ॥३४॥

जन्मराशि से गोचरवश अष्टम भाव में चन्द्रमा, सप्तम भाव में भौम, नवम भाव में राहु, षष्ठ भाव में शुक्र, तृतीय भाव में बृहस्पति, पञ्चम भाव में सूर्य, जन्मराशि में शनि और चतुर्थ भाव में बुध जातक को अपमान, धनक्षय और अन्य परिस्थितियों के अनुकूल रहने पर मृत्युदायक भी हो सकते हैं ॥३४॥

अङ्गग्रह

गोचरवश सूर्यादि ग्रह विभिन्न नक्षत्रों के संक्रमण काल में जातक के विभिन्न अङ्गों को प्रभावित करते हैं। ग्रहों के इस प्रभाव के परिज्ञान हेतु २७ नक्षत्रों को जातक के विभिन्न अङ्गों में न्यस्त करने और उनके संक्रमण काल में प्रभावों को आगे के श्लोकों में आचार्य ने बतलाये हैं।

सूर्यनक्षत्र-न्यासक्रम

वक्त्रे क्ष्मा मूर्ध्नि चत्वार्युरसि च चतुरः सव्यहस्ते चतुष्कं
पादे षड्वामहस्ते चतुरथ नयने द्वौ च गुह्ये द्वयं च।
भानुर्नाशं विभूतिं विजयमथ धनं निर्धनं देहपीडां
लाभं मृत्युं च चक्रे जनयति विविधान् जन्मभाद्देहसंस्थः ॥३५॥

जन्मनक्षत्र आनन में, द्वितीयादि चार नक्षत्र शिर में, षष्ठादि चार नक्षत्र वक्ष में, दशमादि चार नक्षत्र दक्षिण भुजा में, चतुर्दशादि ६ नक्षत्र दोनों पैरों में, विंशत्यादि चार नक्षत्र वाम भुजा में, चौबीसवाँ और पचीसवाँ नक्षत्र दोनों नेत्रों में तथा २६वाँ और २७वाँ नक्षत्र गुह्याङ्गों में न्यस्त कर फल का विचार करना चाहिए।

जन्मनक्षत्र में गोचरवश यदि सूर्य संक्रमित हो तो विनाश, शिर में धनागम, वैभवादि, वक्षःस्थ नक्षत्रों में विजय, दक्षिण भुजा में धनागम, दोनों पैरों के नक्षत्रों में निर्धनता, वाम भुजा के नक्षत्रों में देहपीड़ा, नेत्रस्थ नक्षत्रों में लाभ तथा गुह्य प्रदेशस्थ नक्षत्रों में गोचरवश सूर्य की स्थिति मृत्युकारक होती है ॥३५॥

चन्द्रनक्षत्र-न्यासक्रम

शीतांशोर्वदने द्वयोरतिभयं क्षेमं शिरस्यम्बुधौ
पृष्ठे शत्रुजयं द्वयोर्नयनयोर्नेत्रे धनं जन्मभात्।
पञ्चस्वात्मसुखं हृदि त्रिषु करे वामे विरोधं क्रमात्
पादौ षट्सु विदेशतां जनयति त्रिष्वर्थलाभं करे ॥३६॥

जन्मनर्क्षादि दो नक्षत्र आनन में, तीन आदि चार नक्षत्र शिर में, सात आदि दो नक्षत्र पृष्ठभाग में, नव आदि दो नक्षत्र दोनों नेत्रों में, ग्यारह आदि पाँच नक्षत्र वक्षःस्थल में, सोलहवाँ आदि तीन नक्षत्र वाम हस्त में, उन्नीसवाँ आदि छः नक्षत्र दोनों पैरों में, पचीसवाँ आदि तीन नक्षत्र दक्षिण हस्त में न्यस्त करना चाहिए।

आननस्थ नक्षत्रों में चन्द्रमा के आने पर अतिभय, शिरस्थ नक्षत्रों में कुशल, सुख, पृष्ठस्थ नक्षत्रों में विजय, नेत्रस्थ नक्षत्रों में धनागम, वक्षःस्थ नक्षत्रों में आत्मिक सुख, वाम हस्तगत नक्षत्रों में कलह, पैरों में स्थित नक्षत्रों में यात्रा, दक्षिण हस्त के नक्षत्रों में भ्रमण काल में चन्द्रमा धनलाभ कराता है ॥३६॥

भौमनक्षत्र-न्यासक्रम

वक्त्रे द्वे मरणं करोत्यवनिजः षट् पादयोर्विग्रहं
क्रोडे त्रीणि जयं चतुर्विधनतां वामे करे मस्तके।

द्वे लाभं चतुराननेऽधिकभयं क्षेमं करे दक्षिणे
वार्द्धिर्द्वे नयने विदेशगमनं चक्रे स्वजन्मर्क्षतः ॥३७॥

आनन में न्यस्त जन्मनक्षत्रादि दो नक्षत्रों में गोचरवश चन्द्रमा के आने पर जातक को मृत्युभय होता है। पैर के तृतीयादि छः नक्षत्रों के संक्रमण काल में विवाद (कलह), वक्षःस्थ नवमादि नक्षत्रों में जय, सफलता, वाम हस्त के द्वादशादि चार नक्षत्रों में दारिद्र्य, शिर के षोडशादि दो नक्षत्रों में लाभ, आनन के अष्टादशादि चार नक्षत्रों में असीम भय, दक्षिण हस्त के द्वाविंशत्यादि चार नक्षत्रों में सुख, आनन्द और नेत्रद्वय के षड्विंशत्यादि दो नक्षत्रों में गोचरवश मङ्गल विदेशगमन कराता है ॥३७॥

बुध-बृहस्पति-शुक्र नक्षत्र-न्यासक्रम

मूर्ध्नि त्रीणि मुखे त्रयं च करयोः षट् पञ्च कुक्षौ तथा
लिङ्गे द्वे द्विचतुष्टयं चरणयोः प्राप्तेऽमरेन्द्रार्चितः।
शोकं लाभमनर्थमर्थनिचयं नाशं प्रतिष्ठां तथा
दद्यादात्मदिनात्तथैव भृगुजस्तद्वद्बुधोऽपि क्रमात् ॥३८॥

शिर के जन्मनक्षत्रादि तीन नक्षत्रों में गोचरवश बुध, बृहस्पति एवं शुक्र दुःख और शोक देते हैं। आनन के चतुर्थादि तीन नक्षत्रों में लाभ, हस्तद्वय के सप्तमादि छः नक्षत्रों में अनर्थ, कुक्षि के त्रयोदशादि पाँच नक्षत्रों में प्रचुर धनलाभ, लिङ्गप्रदेश के अष्टादशादि दो नक्षत्रों में हानि, विनाश और चरणद्वय के एकोनविंश आदि आठ नक्षत्रों में सम्मान एवं प्रतिष्ठा देते हैं ॥३८॥

शनि-राहु-केतु नक्षत्र-न्यासक्रम

भूवेदवह्निगुणवेदशराग्निनेत्र-
दस्रं च वक्त्रकरपादपदेषु हस्ते।
कुक्षौ च मूर्ध्नि नयनद्वयपृष्ठभागे
न्यस्य क्रमेण शनिसंयुतभान्निजर्क्षात् ॥३९॥
दुःखं च सौख्यं गमनं च नाशं लाभं स्वभोगं सुखसौख्यमृत्यून्।
वक्त्रक्रमादाह फलानि मन्दस्यैवं तमःखेचरयोर्वदन्तु ॥४०॥

आनन के जन्मर्क्ष में गोचरवशात् शनि, राहु और केतु दुःख-क्लेश आदि फल देते हैं। दक्षिण हस्त के द्वितीयादि चार नक्षत्रों में सुख, प्रसन्नता, दक्षिण चरण के षष्ठादि तीन नक्षत्रों में यात्रा, वाम चरण के नवमादि तीन नक्षत्रों में हानि, वाम हस्त के द्वादशादि चार नक्षत्रों में लाभ, कुक्षिप्रदेश के षोडशादि पाँच नक्षत्रों में भोगादि सुख, शिर के एकविंशत्यादि तीन नक्षत्रों में सुख, उल्लास, नेत्रों के चतुर्विंशत्यादि नक्षत्रद्वय में उल्लास तथा पृष्ठ के षड्विंशत्यादि नक्षत्रद्वय में उक्त तीनों जीवन-भय देते हैं ॥३९-४०॥

पिछले छः श्लोकों (३५-४०) का सारसंक्षेप नीचे दिया जाता है।

सूर्य		
जन्मनक्षत्र से ग्रहनक्षत्र संख्या	अङ्गन्यास	फल-संक्षेप
१ला	आनन	विनाश
२,३,४,५वाँ	शिर	विपुल धनागम
६,७,८,९वाँ	वक्षःस्थल	विजय, सफलता
१०,११,१२,१३वाँ	दक्षिण कर	आर्थिक लाभ
१४,१५,१६,१७,१८,१९वाँ	चरणद्वय	धनक्षय
२०,२१,२२,२३वाँ	वाम कर	रोगार्तता
२४,२५वाँ	नेत्रद्वय	लाभ
२६,२७वाँ	गुह्याङ्ग	मृत्युभय
चन्द्रमा		
१,२रा	आनन	अत्यधिक भय
३,४,५,६वाँ	शिर	सुरक्षा, कुशल
७,८वाँ	पृष्ठप्रदेश	शत्रुओं पर विजय
९,१०वाँ	नेत्रद्वय	आर्थिक लाभ
११,१२,१३,१४,१५वाँ	वक्ष	मानसिक तुष्टि
१६,१७,१८वाँ	वाम हस्त	कलह, विवाद
१९,२०,२१,२२,२३,२४वाँ	पादद्वय	विदेश-यात्रा
२५,२६,२७वाँ	दक्षिण हस्त	आर्थिक लाभ
मङ्गल		
१,२रा	आनन	मृत्यु या मृत्युभय
३,४,५,६,७,८वाँ	चरणद्वय	कलह, विवाद
९,१०,११वाँ	वक्ष	सफलता
१२,१३,१४,१५वाँ	वाम हस्त	दरिद्रता
१६,१७वाँ	शिर	लाभ
१८,१९,२०,२१वाँ	आनन	अत्यधिक भय
२२,२३,२४,२५वाँ	दक्षिण हस्त	सुख, आह्लाद
२६,२७वाँ	नेत्रद्वय	विदेश-यात्रा
बुध-बृहस्पति-शुक्र		
१,२,३रा	शिर	दुःख, क्लेश
४,५,६ठा	आनन	लाभ
७,८,९,१०,११,१२वाँ	हस्तद्वय	अनर्थ
१३,१४,१५,१६,१७वाँ	कुक्षि	विपुल धनागम
१८,१९वाँ	गुह्याङ्ग	हानि
२०,२१,२२,२३,२४,२५,२६,२७वाँ	चरणद्वय	सम्मान, प्रतिष्ठा

शनि-राहु-केतु		
१ला	आनन	विपत्ति
२,३,४,५वाँ	दक्षिण कर	प्रसन्नता, सुख
६,७,८वाँ	दक्षिण चरण	यात्रा
९,१०,११वाँ	वाम चरण	हानि
१२,१३,१४,१५वाँ	वाम कर	लाभ
१६,१७,१८,१९,२०वाँ	कुक्षि	भोगादि सुख, स्त्रीसुख
२१,२२,२३वाँ	शिर	सुख
२४,२५वाँ	नेत्रद्वय	सुख
२६,२७वाँ	पृष्ठप्रदेश	मृत्युभय

यत्राष्टवर्गेऽधिकबिन्दवः स्युस्तत्र स्थितो गोचरतो ग्रहेन्द्रः ।
तद्वत्फलं प्राह शुभं व्ययारिरन्ध्रस्थितो वाऽपि शुभं विधत्ते ॥४१॥

अष्टकवर्ग (समुदाय) के जिस भाव (राशि) में अधिक बिन्दु प्राप्त हों उस भाव में गोचरवश ग्रह शुभ फल देते हैं। त्रिक (छठे, आठवें, बारहवें) भाव में भी यदि अधिक बिन्दु प्राप्त हों तो उस भाव में भी गोचरवश ग्रह शुभ फल देते हैं ॥४१॥

लत्तादोष एवं लत्ताफल

रवेर्द्वादशनक्षत्रं भूसुतस्य तृतीयकम् ।
गुरोः षट्तारकं चैव शनेरष्टमतारकम् ॥४२॥
एतेषां च पुरोलत्ता पृष्ठलत्ताः प्रकीर्त्तिताः ।
शुक्रस्य पञ्चमं तारं चन्द्रजस्य तु सप्तमम् ॥४३॥
राहोस्तु नवमं चैव द्वाविंशं भं हिमद्युतेः ।
ग्रहस्थितर्क्षाद्गणयेल्लत्तायां जन्मभे व्यथा ॥४४॥

सूर्यनक्षत्र से बारहवाँ नक्षत्र, मङ्गल के नक्षत्र से तीसरा नक्षत्र, बृहस्पति के नक्षत्र से छठा नक्षत्र, शनिनक्षत्र से आठवाँ नक्षत्र आगे की ओर गिनने पर पुरोलत्ता से युक्त होता है। शुक्रनक्षत्र से पाँचवाँ नक्षत्र, बुधनक्षत्र से सातवाँ नक्षत्र, राहु स्थित नक्षत्र से नवाँ नक्षत्र तथा चन्द्रनक्षत्र (गोचरवश) से २२वाँ नक्षत्र पृष्ठ-लत्तादोषयुक्त होता है। ग्रह स्थित नक्षत्र से पुरो या पृष्ठ लत्ता की गणना होती है। जन्मनक्षत्र (जिस नक्षत्र में जन्मकालिक चन्द्रमा स्थित हो उसे जन्मनक्षत्र कहते हैं) में यदि लत्ता पड़े तो व्यथा, रोग या थकान होती है ॥४२-४४॥

पुरोलत्ता की गणना ग्रह स्थित नक्षत्र से आगे की ओर (Forward direction) और पृष्ठलता की गणना ग्रह स्थित नक्षत्र से विपरीत दिशा में पीछे की ओर होती है। सूर्य, मङ्गल, बृहस्पति और शनि की पुरोलत्ता और शेष ग्रह चन्द्रमा, बुध और शुक्र की पृष्ठलत्ता होती है।

उपर्युक्त नियम के अनुसार यदि कृत्तिका नक्षत्र में सूर्य स्थित हो तो कृत्तिका से बारहवें

नक्षत्र चित्रा में सूर्य की लत्ता होगी। यदि शुक्र ज्येष्ठा नक्षत्र में स्थित हो तो उसकी लत्ता विपरीत क्रम से गणना करने पर पाँचवें चित्रा नक्षत्र में शुक्र की भी लत्ता होगी। यदि मङ्गल उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में स्थित हो तो मङ्गल की लत्ता उत्तराफाल्गुनी से सीधे क्रम से गिनने पर तीसरे नक्षत्र चित्रा में होगी। इस प्रकार चित्रा नक्षत्र में सूर्य, मङ्गल और शुक्र तीनों ग्रहों की लत्ता पड़ेगी। जिस व्यक्ति का जन्म चित्रा नक्षत्र में हुआ हो उसके लिए वह दिन जिस दिन चान्द्र नक्षत्र चित्रा हो, अत्यन्त अनिष्टकर होगा।

सूर्यादि ग्रहों के लत्ताफल

रवेः सर्वार्थहानिः स्यात्तमसोर्दुःखमुच्यते।
मरणं जीवलत्तायां बन्धुनाशो भयावहः॥४५॥
शुक्रस्य कलहो भ्रंश अनर्थः शशिजस्य तु।
चन्द्रस्य तु महाहानिर्लत्तामात्रफलं भवेत्॥४६॥

सूर्य की लत्ता में समस्त धन-सम्पदादि विनष्ट होता है। राहु और केतु की लत्ता में आपदा, बृहस्पति की लत्ता में मृत्यु, सम्बन्धियों का विनाश, असुरक्षाजन्य भय; शुक्र की लत्ता में कलह-विवाद, बुध की लत्ता में पदच्युति या पदावनति या इसी प्रकार की विपत्ति, चन्द्रमा की लत्ता में हानि फल होते हैं। इस प्रकार विभिन्न लत्ताओं के अलग-अलग फल कहे गये हैं॥४५-४६॥

सर्वत्र लत्तासाङ्कर्ये द्विगुणत्रिगुणादिकम्।
वदेद्दोषफलं नृणां ग्रहाल्लत्ताधिकक्रमात्॥४७॥

यदि एक ही नक्षत्र में एकाधिक ग्रहों की लत्ता पड़े तो पाप फल में आनुपातिक वृद्धि-द्विगुणित, त्रिगुणित आदि की वृद्धि होती है॥४७॥

सर्वतोभद्रचक्रोक्तं शुभवेधाः शुभावहाः।
पापवेधा दुःखतरा गोचरेताश्च चिन्तयेत्॥४८॥

सर्वतोभद्र चक्रानुसार शुभवेध शुभ फलदायक और पापवेध कष्टप्रद होता है। गोचर फल-कथन में इसका विशेष रूप से विचार करना चाहिए॥४८॥

सर्वतोभद्र चक्र

पूर्व श्लोक में मन्त्रेश्वर ने सर्वतोभद्र चक्र का उल्लेख मात्र कर उससे वेधादि का विचार करने का निर्देश मात्र किया है। इस अत्यन्त उपयोगी चक्र का विवरण जातकाभरण आदि अनेक ग्रन्थों में उपलब्ध है। पाठकों के लाभार्थ यहाँ उसका सारसंक्षेप दिया जा रहा है। विशेष विवरण के लिए जातकाभरण, होरारत्न, स्वरचिन्तामणि प्रभृति ग्रन्थों को देखना चाहिए।

दस क्षैतिज या आड़ी (Horizontal) और उस पर दस ऊर्ध्वाधर या खड़ी (Vertical) रेखाओं की सहायता से इक्यासी कोष्ठकों से युक्त एक चक्र निर्मित कर (चित्र देखिए)

पूर्वोत्तर कोण के बाह्य कोष्ठक में १६ स्वरों के 'अ' से प्रारम्भ कर चारों बाह्यकोणों में क्रम से अ, आ, इ और ई स्वरों को क्रम से उत्तर-पूर्व, दक्षिण-पूर्व, दक्षिण-पश्चिम और उत्तर-पश्चिम के कोण कोष्ठकों में स्थापित करना चाहिए। पुनः पूर्वोत्तर दिशा के द्वितीय कोणस्थ कोष्ठक से प्रारम्भ कर इसी क्रम से उ, ऊ, ऋ, ॠ स्वरों को भीतर के दूसरे कोणों के कोष्ठकों में स्थापित करना चाहिए। शेष स्वरों ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं और अः को उसी क्रम से भीतर की ओर अगले कोणस्थ कोष्ठकों में चित्र के अनुसार स्थापित करना चाहिए।

सर्वतोभद्र चक्र

उत्तर

पश्चिम / पूर्व

ई	धनिष्ठा	शतभिष	पू.भा.	उ.भा.	रेवती	अश्विनी	भरणी	अ
श्रवण	ॠ	ग	स	द	च	ल	उ	कृत्तिका
अभिजित्	ख	ऐ	कुम्भ	मीन	मेष	ऌ	अ	रोहिणी
उ.षा.	ज	मकर	अः	रिक्ता शुक्रवार	ओ	वृष	ब	मृगशिर
पू.षा.	भ	धनु	जया गुरुवार	पूर्णा शनिवार	नन्दा रविवार भौमवार	मिथुन	क	आर्द्रा
मूल	य	वृश्चिक	अं	भद्रा सोमवार बुधवार	औ	कर्क	ह	पुनर्वसु
ज्येष्ठा	न	ए	तुला	कन्या	सिंह	ॡ	ड.	पुष्य
अनुराधा	ऋ	त	र	प	ट	म	ऊ	आश्लेषा
इ	विशाखा	स्वाती	चित्रा	हस्त	उ.फा.	पू.फा.	मघा	आ

दक्षिण

अब पूर्व के कोणस्थ कोष्ठकों को छोड़कर उ-स्थित कोष्ठक के निचले कोष्ठक से प्रारम्भ कर कृत्तिकादि ७ नक्षत्रों को स्थापित करना चाहिए। दक्षिण के दोनों कोणस्थ कोष्ठकों को छोड़कर शेष कोष्ठकों में मघादि सात नक्षत्रों को स्थापित करना चाहिए। पश्चिम के कोणस्थ कोष्ठकों को छोड़कर शेष ७ कोष्ठकों में अनुराधादि ७ साभिजित् नक्षत्रों को तथा

उत्तर के कोणस्थ कोष्ठकद्वय को छोड़कर धनिष्ठा से भरणी पर्यन्त ७ नक्षत्रों को स्थापित करना चाहिए।

इसके बाद पूर्व दिशा से प्रारम्भ कर भीतर के दूसरे कालम में अ, व, क, ह,ड— इन पाँच वर्णों को ऊपर से प्रारम्भ कर स्थापित करें। दक्षिण दिशा के दूसरी भीतरी पूर्वापर पंक्ति में म, ट, प, र और त वर्णों को दाहिने कोष्ठक से प्रारम्भ कर क्रम से स्थापित करें। पश्चिम दिशा के दूसरे याम्योत्तर कालम में दक्षिणी कोष्ठक से प्रारम्भ कर न, य, भ, ज और ख वर्णों को क्रम से नीचे से ऊपरी की ओर स्थापित करें।

अब उत्तर दिशा के दूसरे भीतरी पूर्वापर पंक्ति में बायीं ओर के प्रथम कोष्ठक में ग से प्रारम्भ कर ग, स, द, च और ल वर्णों को स्थापित करें।

पूर्वादि दिशाओं के तीसरे भीतरी कालम और पंक्ति के तीन-तीन कोष्ठकों में पूर्व दिशा से प्रारम्भ कर ऊपर के कोष्ठक में वृष से प्रारम्भ कर पूर्व के तीसरे भीतरी कालम में वृष, मिथुन और कर्क को; दक्षिण दिशा के तीसरी पंक्ति में सिंह, कन्या और तुला को; पश्चिम दिशा के तीसरे भीतरी कालम में निचले कोष्ठक से प्रारम्भ कर वृश्चिक, धनु और मकर राशियों को तथा उत्तर दिशा की भीतरी पंक्ति में बायीं ओर के कोष्ठक से प्रारम्भ कर कुम्भ, मीन और मेष राशियों को स्थापित करें।

इसके बाद भीतर पाँच कोष्ठक शेष रहें। इनमें पूर्वादि दिशाओं में एक-एक और एक मध्य में बचे। इनमें पूर्व दिशा से प्रारम्भ कर क्रमशः पूर्व के कोष्ठक में नन्दा तिथियों को, दक्षिण के कोष्ठक में भद्रा तिथियो को, पश्चिम के कोष्ठक में जया तिथियों को, उत्तर के कोष्ठक में रिक्ता तिथियों को तथा मध्य के कोष्ठक में पूर्णा तिथियों को स्थापित करें। इन्हीं तिथियों के साथ रवि आदि वारों को भी स्थापित करना चाहिए। जैसे नन्दा के साथ रविवार और भौमवार, भद्रा के साथ सोमवार और बुधवार, जया के कोष्ठक में बृहस्पतिवार, रिक्ता के साथ शुक्रवार तथा मध्य कोष्ठक में पूर्णा के साथ शनिवार को स्थापित करने से सर्वतोभद्र चक्र तैयार होता है।

प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी को नन्दा; द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी तिथियों को भद्रा; तृतीया, अष्टमी, त्रयोदशी को जया; चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी को रिक्ता तथा पञ्चमी, दशमी और पूर्णिमा या अमावास्या को पूर्णा कहते हैं।

वेध-प्रकार—सर्वतोभद्र चक्र

वेध के तीन प्रकार कहे गये हैं—

१. दक्षिण वेध — वक्रगति वाले ग्रह की दक्षिण दृष्टि होती है अतः इनका दक्षिण वेध कहा गया है।

२. वाम वेध — मार्गी ग्रह की वाम दृष्टि होती है इसलिए इनका वाम वेध कहा गया है। मध्यम गति से तीव्र गति वाले ग्रहों का भी वाम वेध होता है।

३. सम्मुख वेध — समगति से भ्रमण करने वाले ग्रहों की सम्मुख दृष्टि होने से इनका सम्मुख वेध कहा गया है।

उपर्युक्त नियमानुसार राहु और केतु की सदैव वक्रगति होने के कारण इनका दक्षिण वेध ही होता है। इसी प्रकार सूर्य और चन्द्रमा सर्वदा मार्गी रहते हैं। अत: इनका भी केवल वाम वेध ही होता है। भौमादि शेष ग्रहों का उनकी गति-वैभिन्न्य के कारण उनके दक्षिण, वाम और सम्मुख तीनों प्रकार के वेध होते हैं। ये अपने स्थान से कभी दाहिनी ओर, कभी बायीं ओर और कभी सम्मुख दिशा में वेध करते हैं।

उदाहरण के लिए कृत्तिका नक्षत्र में स्थित ग्रह का दक्षिण वेध भरणी नक्षत्र पर अ स्वर, वृष राशि, नन्दा और भद्रा तिथियाँ, तुला राशि, त व्यञ्जन, विशाखा नक्षत्र पर वाम वेध और श्रवण नक्षत्र पर सम्मुख वेध होगा।

इसी प्रकार रोहिणी में स्थित ग्रह का दक्षिण दृष्टि से उ स्वर और अश्विनी नक्षत्र का वेध होता है। सम्मुख दृष्टि से मात्र अभिजित् नक्षत्र का और वाम दृष्टि हो तो व स्वर, मिथुन राशि, औ स्वर, कन्या राशि, र व्यञ्जन और स्वाती नक्षत्र का वेध होता है।

यहाँ स्मरण रखना चाहिए कि सम्मुख वेध केवल नक्षत्र का होता है। स्वर, वर्ण, राशि आदि का सम्मुख वेध नहीं होता।

पूर्वाषाढ नक्षत्रस्थ ग्रह से वाम वेध से ज व्यञ्जन, ऐ स्वर, स व्यञ्जन और उत्तरा-भाद्रपद नक्षत्र का वेध होगा। दक्षिण दृष्टि हो तो य व्यञ्जन, ए स्वर, र व्यञ्जन और हस्त नक्षत्र का तथा सम्मुख दृष्टि से केवल आर्द्रा नक्षत्र का वेध होगा।

पापग्रह का वेध पापवेध और शुभग्रह का वेध शुभवेध कहलाता है। पापवेध का फल नेष्ट और शुभवेध का शुभ फल होता है। वेधकारक पापग्रह यदि वक्री हो तो अत्यन्त अनिष्टकारक होता है। उसी प्रकार वेधकारक शुभग्रह यदि वक्री हो तो अत्यधिक शुभद होता है। सौम्य और क्रूर ग्रह यदि शीघ्रगामी हों तो जिसके साथ स्थित हों उसके स्वभावानुसार फल देते हैं।

उत्तरादि दिशाओं के (चक्र देखिए) बाह्य कालमों के मध्य कोष्ठकों में स्थित उत्तरा-भाद्रपद, आर्द्रा, हस्त और पूर्वाषाढा नक्षत्रों में स्थित ग्रह क्रमशः थ, झ, ञ का; घ, ङ, छ का; ष, ण, ठ का और ध, फ, ढ का वेध करते हैं।

ब-व, श-स, ख-ष और य-त्र इनमें यदि एक वर्ण का वेध होता हो तो दूसरे को भी विद्ध समझना चाहिए।

अ-आ, इ-ई, उ-ऊ जैसे स्वर-युगलों में भी यदि एक का वेध हो तो दूसरे को भी विद्ध समझना चाहिए। अनुस्वार और विसर्ग में भी एक के वेध होने से दूसरे का भी वेध स्वतः हो जाता है—

घङछा रोद्रगे वेधे षणठा हस्तगे ग्रहे। धफढा पूर्वषाढायां थझञा भाद्र उत्तरे॥

बवौ सशौ खषौ चैव जयौ ङत्रौ परस्परम्। एकेन द्वितयं ज्ञेयं विद्धसौम्याशुभग्रहैः ॥
अवर्णादिस्वरद्वन्द्वेष्वेकवेधे द्वयोर्व्यधः। युक्तः स्वरात्मके वेधे त्वनुस्वरविसर्गयोः ॥
क्रूरा वक्रा महाक्रूराः सौम्या वक्रा महाशुभाः। स्युः सहजस्वभावस्थाः सौम्याः क्रूराश्च शीघ्रगाः ॥
(राजविजय)

सर्वतोभद्र चक्र में ईशान, अग्नि, नैर्ऋत्य और वायव्य कोणों में क्रमशः भरणी-कृत्तिका, आश्लेषा-मघा, विशाखा-अनुराधा और श्रवण-धनिष्ठा नक्षत्र हैं। यदि कोई ग्रह गोचरवश भरणी के चतुर्थ चरण या कृत्तिका के प्रथम चरण में अवस्थित हो, आश्लेषा के चतुर्थ या मघा के प्रथम चरण में अवस्थित हो, विशाखा के चतुर्थ या अनुराधा के प्रथम चरण में अवस्थित हो अथवा श्रवण के चतुर्थ या धनिष्ठा के प्रथम चरण में अवस्थित हो तो वह क्रमशः कोणस्थ स्वरों अ, आ, इ और ई आदि का और मध्यस्थ पूर्णा तिथियों का वेध करता है।

सर्वतोभद्र चक्र में स्वर, व्यञ्जन (नामाक्षर के), जन्मराशि, जन्मनक्षत्र और जन्मतिथि के वेध का विचार किया गया है। इनमें से यदि एक का वेध हो तो उद्वेग, दो का वेध हो तो भय, तीन का वेध हो तो हानि, चार का वेध हो तो रोगार्तता और यदि उपर्युक्त पाँचों का वेध हो तो मृत्यु अथवा मृत्यु तुल्य कष्ट होता है।

जन्मनक्षत्र विद्ध हो तो विभ्रम, नाम का प्रथम अक्षर विद्ध हो तो हानि और यदि जन्मतिथि या जन्मराशि विद्ध हो तो महाविघ्न होता है। यदि पाँचों विद्ध हो तो मृत्यु होती है।

'एकादिपूर्णवेधेन फलं पुंसां प्रजायते। उद्वेगश्च भयं हानी रोगो मृत्युः क्रमेण च।
भ्रमं ऋक्षे अक्षरे हानिः स्वरे व्याधिर्भवेत्तिथौ। राशौ विद्धे महाविघ्नं पञ्चे विद्धो न जीवति' ॥
(राजविजय)

सूर्य का वेध मानसिक सन्ताप देता है, भौमवेध हो तो धननाश, शनि का वेध हो तो रोगादि से कष्ट, राहु या केतु का वेध विघ्नकारक, चन्द्रमा के वेध से मिश्र फल, शुक्र के वेध से रतिसुख, बुध के वेध से बौद्धिक विकास और बृहस्पति के वेध से जातक को सर्वतोन्मुखी लाभ होता है।

क्रूरग्रह का वेध सदैव कष्टप्रद होता है, शुभग्रह का वेध शुभफलदायक होता है। किन्तु पापग्रह से युक्त शुभग्रह का वेध सदा अनिष्टकर होता है।

मार्गी ग्रह का वेध होने से उसका स्वाभाविक फल होता है। वक्री ग्रह के वेध से स्वाभाविक फल द्विगुणित परिमाण में, उच्च ग्रह के वेध से स्वाभाविक फल त्रिगुणित परिमाण में प्राप्त होता है। नीचराशिगत ग्रह से वेध हो तो आधा फल ही प्राप्त होता है।

जिस दिन तिथि, राशि (चन्द्रराशि) अथवा उसकी नवांशराशि अथवा चान्द्र नक्षत्र पापग्रह से विद्ध हो उस दिन को माङ्गलिक कार्यों में सर्वथा त्याग देना चाहिए। ऐसे दिन में

किया गया विवाह शुभद नहीं होता, यात्रा निष्फल होती है, दी गई औषध निष्फल होती है। ऐसे दिन में प्रारम्भ किया गया व्यवसाय विफल होता है। क्रूरग्रह के वेध में यदि रोग का प्रारम्भ हो और ग्रह वक्री हो तो रोगी की मृत्यु होती है। यदि ग्रह मार्गी हो तो व्यक्ति शीघ्र ही रोगमुक्त हो जाता है। जिस दिन जातक का जन्मदिन (वार) पड़े उस दिन यदि पाप वेध हो तो जातक मानसिक रूप से परेशान होता है।

स्वरचिन्तामणि में सर्वतोभद्र चक्र के सम्बन्ध में कुछ विशिष्ट जानकारी दी गई है। चक्र में पूर्वादि दिशाओं में वृष से प्रारम्भ कर तीन-तीन राशियाँ प्रत्येक दिशा में स्थित हैं। जैसे पूर्व दिशा में वृष, मिथुन और कर्क; दक्षिण दिशा में सिंह, कन्या और तुला; पश्चिम दिशा में वृश्चिक, धनु और मकर तथा उत्तर दिशा में कुम्भ, मीन और मेष राशियाँ स्थित हैं। प्रत्येक दिशा में स्थित तीन राशियों के भ्रमण काल—तीन मासों—में सूर्य की स्थिति उसी दिशा में होती है। वृषादि से तीन राशियों के भ्रमणावधि तीन मास पर्यन्त सूर्य पूर्व दिशा में, सिंहादि तीन राशियों के भ्रमणावधि तीन मास पर्यन्त सूर्य दक्षिण दिशा में, वृश्चिकादि तीन राशियों के भ्रमणकाल तीन मास में सूर्य पश्चिम दिशा में तथा कुम्भादि तीन राशियों में भ्रमणकाल तीन मास पर्यन्त सूर्य उत्तर दिशा में निवास करता है। इस प्रकार पूर्वादि प्रत्येक दिशा में तीन-तीन मास तक सूर्य निवास करता है। सूर्य जिस दिशा में स्थित होता है उसे अस्त दिशा कहते हैं। शेष दिशाएँ उदित दिशाएँ कहलाती हैं।

ईशान कोण में स्थित स्वरों को पूर्व दिशा में, अग्निकोण के स्वरों को दक्षिण दिशा में, नैर्ऋत्य कोणस्थ स्वरों को पश्चिम दिशा में और वायव्य कोणस्थ स्वरों को उत्तर दिशा में समझना चाहिए। इस नियम के अनुसार पूर्वोत्तर दिशा के अ, उ, ऌ तथा ओ स्वरों को पूर्व दिशा में; दक्षिण-पूर्व दिशा के आ, ऊ, ॡ तथा औ स्वरों को दक्षिण दिशा में; नैर्ऋत्य कोणस्थ इ, ऋ, ए तथा अं स्वरों को पश्चिम दिशा में और वायव्य कोणस्थ ई, ॠ, ऐ और अः स्वरों को उत्तर दिशा में समझना चाहिए।

अस्त दिशा में स्थित स्वर, व्यञ्जन, राशियाँ, नक्षत्र और तिथियाँ सभी अस्त होती हैं। अस्त नक्षत्र यदि विद्ध हो तो रोगार्तता, अस्त व्यञ्जन विद्ध हो तो हानि, अस्त स्वर यदि विद्ध हो तो दुःख, अस्त राशि यदि विद्ध हो तो बाधा, अवरोध और यदि अस्त तिथि विद्ध हो तो भय होता है। यदि उक्त पाँचों विद्ध हों तो निश्चित मृत्यु होती है।

जिस व्यक्ति के नाम का प्रथम अक्षर विद्ध दिशा में हो तो विद्ध दिशा में यात्रा, युद्ध, विवाद, द्वारस्थापन, गृह-निर्माण, काव्यस्पर्धा, किले के निर्माण आदि कार्यों को नहीं करना चाहिए। क्योंकि अस्त दिशा में किये गये सभी कार्य निष्फल होते हैं।

उदित दिशा में स्थित नक्षत्र शुभग्रह से विद्ध हो तो विकास, वर्ण (व्यञ्जन) विद्ध हो तो लाभ, स्वर विद्ध हो तो सुख, राशि विद्ध हो तो सफलता, तिथि विद्ध हो तो तेज की वृद्धि होती है तथा उदित दिशा में नक्षत्र, व्यञ्जन, स्वर आदि पाँचों स्थित होकर शुभ वेध युक्त हों तो उच्चपद का लाभ होता है।

अस्त दिशा में यदि नक्षत्र, राशि, व्यञ्जन, स्वर और तिथि पड़े तथा वे सभी पापवेध युक्त हों तो ऐसा जातक निश्चय ही मृत्यु को प्राप्त होता है।

सूर्य स्थित नक्षत्र से ५वें नक्षत्र की विद्युन्मुख संज्ञा है।
सूर्य स्थित नक्षत्र से ८वें नक्षत्र की शूल संज्ञा है।
सूर्य स्थित नक्षत्र से १४वें नक्षत्र की सन्निपात संज्ञा है।
सूर्य स्थित नक्षत्र से १८वें नक्षत्र की केतु संज्ञा है।
सूर्य स्थित नक्षत्र से २१वें नक्षत्र की उल्का संज्ञा है।
सूर्य स्थित नक्षत्र से २२वें नक्षत्र की कम्प संज्ञा है।
सूर्य स्थित नक्षत्र से २३वें नक्षत्र की वज्रक संज्ञा है।
सूर्य स्थित नक्षत्र से २४वें नक्षत्र की निर्घात संज्ञा है।

ये आठ उपग्रह हैं। ये समस्त कार्यों में अवरोधक होते हैं। दुर्भाग्यवश इनमें से कोई यदि व्यक्ति का जन्मनक्षत्र हो और विद्ध हो तो जातक लम्बी बीमारी से अथवा दुर्घटना आदि से मृत्यु को प्राप्त होता है।

'सूर्यभात्पञ्चमं धिष्ण्यं ज्ञेयं विद्युन्मुखाभिधम्। शूलं चाष्टमं प्रोक्तं सन्निपातं चतुर्दशम्॥
केतुरष्टादशे प्रोक्तमुल्का स्यादेकविंशतौ। द्वाविंशतितमे कम्पस्त्रयोविंशे च वज्रकः॥
निर्घातश्चतुर्विंशे उक्ताश्चाष्टावुपग्रहाः। स्वे स्थाने विघ्नदाः प्रोक्ताः सर्वकार्येषु सर्वदा'॥
(स्वरचिन्तामणि)

जन्मकालिक चन्द्राधितिष्ठित नक्षत्र को जन्मर्क्ष कहते हैं।

जन्मर्क्ष से १०वें नक्षत्र को कर्मर्क्ष कहते हैं।
जन्मर्क्ष से १९वें नक्षत्र को आधान कहते हैं।
जन्मर्क्ष से २३वें नक्षत्र को विनाशन या वैनाशिक कहते हैं।
जन्मर्क्ष से १८वें नक्षत्र को सामुदायिक कहते हैं।
जन्मर्क्ष से १६वें नक्षत्र को सङ्घातिक कहते हैं।
जन्मर्क्ष से २६वें नक्षत्र को जाति कहते हैं।
जन्मर्क्ष से २७वें नक्षत्र को देश कहते हैं।
जन्मर्क्ष से २८वें नक्षत्र को अभिषेक कहते हैं।

'जन्मभं जन्मनक्षत्रं दशमं कर्मसंज्ञकम्। एकोनविंशमाधानं त्रयोविंशं विनाशनम्॥
अष्टादशं च नक्षत्रं सामुदायिकसंज्ञकम्। सङ्घातिकं च विज्ञेयं ऋक्षं षोडशमत्र हि॥
षड्विंशाद्राज्यजातं च जातिनामस्वजातिभम्। देशभं देशनामर्क्षं राज्यक्षमभिषेकजम्'॥
(स्वरचिन्तामणि)

जन्मर्क्ष यदि पापविद्ध हो तो मृत्यु अथवा मृत्यु तुल्य कष्ट, आधानर्क्ष यदि विद्ध हो तो प्रवास, वैनाशिक नक्षत्र विद्ध हो तो स्वजनों से विरोध, सामुदायिक नक्षत्र यदि विद्ध हो

तो अनिष्ट, सङ्घातिक नक्षत्र विद्ध हो तो हानि, जाति नक्षत्र विद्ध हो तो कुल (परिवार) का विनाश या क्षति, अभिषेक नक्षत्र यदि विद्ध हो तो बन्धन या कारागार, देश नक्षत्र विद्ध हो तो देशच्युति होती है। ये नक्षत्र यदि शुभग्रह से विद्ध हों तो नक्षत्र सम्बन्धी शुभ फल होता है। इन नक्षत्रों में यदि उपग्रह का योग हो तो मृत्युकारक होते हैं।

जिस किसी दिन तिथि, नक्षत्र, स्वर, राशि और वर्ण (व्यञ्जन) ये पाँच चन्द्रमा से विद्ध हो तो वह दिन अत्यन्त शुभ होता है। किन्तु यदि पापग्रह से वेध हो तो उक्त दिन अत्यन्त दुर्भाग्यशाली होता है।

उपर्युक्त नियमों के परिप्रेक्ष्य में सर्वातोभद्र चक्र से गोचर-फल सरलता से कहे जा सकते हैं।

सुविधा की दृष्टि से यहाँ नक्षत्र और उनके चार चरणों में स्थित वर्णों की सूची दी जा रही है। इस तालिका से किसी के नक्षत्र और चरण का ज्ञान सहजता से किया जा सकता है। इस तालिका में कतिपय नक्षत्रों के चरणों में न्यस्त वर्णजन्य सामान्य तालिका से भिन्न है।

	नक्षत्र	**चरण**		**नक्षत्र**	**चरण**
१.	अश्विनी	चु चे चो ल	१५.	स्वाती	रु रे रो त
२.	भरणी	लि लु ले लो	१६.	विशाखा	ति तु ते तो
३.	कृत्तिका	अ इ उ ए	१७.	अनुराधा	न नि नु ने
४.	रोहिणी	ओ व वि वु	१८.	ज्येष्ठा	नो य यि यु
५.	मृगशिर	वे वो क कि	१९.	*मूल	ये यो व वि
६.	आर्द्रा	कु घ ङ छ	२०.	*पूर्वाषाढा	वु थ भ ड
७.	पुनर्वसु	के को ह हि	२१.	*उत्तराषाढा	वे वो ज जि
८.	पुष्य	हु हे हो ड	२२.	*अभिजित्	जु जे जो श
९.	श्लेषा	डि डू डे डो	२३.	*श्रवण	शि शु शे शो
१०.	मघा	म मि मु मे	२४.	धनिष्ठा	ग गि गु गे
११.	पूर्वाफाल्गुनी	मो ट टि टू	२५.	शतभिष	गो स सि सु
१२.	उत्तराफाल्गुनी	टे टो प पि	२६.	पूर्वभाद्रपद	से सो द दि
१३.	हस्त	पु ष ड ठ	२७.	*उत्तराभाद्रपद	दु ख झ ध
१४.	चित्रा	पे पो र रि	२८.	रेवती	दे दो च चि

(श्री वी. सुब्रह्मण्य शास्त्री द्वारा फलदीपिका की टीका से उद्धृत।)

सामान्य उपलब्ध तालिकाओं में ताराङ्कित नक्षत्र के चरणों में न्यस्त वर्ण इस तालिका से भिन्न है। सामान्यतया उपलब्ध तालिका में इनके स्थान पर क्रमशः ये यो भा भी, भू धा फा ढा, भे भो जा जी और दू थ झ ञ पाठ मिलते हैं।

दशापहाराष्टकवर्गगोचरे ग्रहेषु नृणां विषमस्थितेष्वपि ।
जपेच्च तत्प्रीतिकरैः सुकर्मभिः करोति शान्तिं व्रतदानवन्दनैः ॥४९॥

दशा, अन्तर्दशा, अष्टकवर्ग और गोचर में दुःस्थिति में पड़े ग्रहों से उत्पन्न विषम स्थिति के निवारण हेतु उक्त ग्रह के प्रिय मन्त्रों का जप, अनुष्ठानादि सत्कर्म, शान्ति, व्रत, दान, वन्दना आदि से उनको प्रसन्न करना चाहिए ॥४९॥

अहिंसकस्य दान्तस्य धर्मार्जितधनस्य च ।
सर्वदा नियमस्थस्य सदा सानुग्रहा ग्रहाः ॥५०॥

इति मन्त्रेश्वरविरचितायां फलदीपिकायां गोचरफलं
नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

जो हिंसा कर्म से विरत रहता है अर्थात् जो दूसरों को किसी प्रकार का दैहिक, भौतिक, मानसिक किसी प्रकार से प्रताड़ित नहीं करता; जो आत्मनियन्त्रित रहता है, जो धर्ममार्ग से अर्जित धन का उपभोग करता है तथा नित्य नियम-संयमादि का पालन करता है ऐसे व्यक्ति के प्रति ग्रह सदैव अनुकूल रहते हैं ॥५०॥

इस प्रकार मन्त्रेश्वरकृत फलदीपिका में गोचरफला नामक
छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥२६॥

सप्तविंशोऽध्याय:

प्रव्रज्यायोग:

ग्रहैश्चतुर्भिः सहिते खनाथे त्रिकोणगैः केन्द्रगतैस्तु मुक्तः ।
लग्ने गृहान्ते सति सौम्यभागे केन्द्रे गुरौ कोणगते च मुक्तः ॥१॥

जन्मकाल में चार ग्रहों से युक्त दशमेश यदि केन्द्र या त्रिकोण भाव में स्थित हो तो जातक मुक्तिमार्ग में निरत होता है।

यदि लग्न अन्तिम अंशों में हो और उसमें शुभग्रह स्थित हो तथा बृहस्पति केन्द्रस्थ हो तो जातक वैरागी या संन्यासी होता है ॥१॥

एकर्क्षसंस्थैश्चतुरादिकैस्तु ग्रहैर्वदेत्तत्र बलान्वितेन ।
प्रव्रज्यकां तत्र वदन्ति केचित् कर्मेशतुल्यां सहिते खनाथे ॥२॥

जन्मकाल में चार अथवा चार से अधिक ग्रह एक ही राशि में स्थित हों तो जातक उनमें बलवान् ग्रह के अनुरूप दीक्षा ग्रहण करता है। कतिपय मनीषियों के मतानुसार उक्त योग में यदि दशमेश युत हो तो दशमेश के अनुरूप जातक दीक्षा ग्रहण करता है ॥२॥

थोड़े अन्तर के साथ इस योग की चर्चा श्री वैद्यनाथ ने अपने ग्रन्थ जातकपारिजात में की है। उनके अनुसार चार या पाँच ग्रह संयुक्त रूप से केन्द्र या त्रिकोणस्थ किसी राशि में संयुक्त हों तो जातक उनमें बलवान् ग्रह के अनुरूप दीक्षा ग्रहण करता है। आगे वे यह भी बतलाते हैं कि योगकारक ग्रहों में किस ग्रह के बली होने पर जातक किस प्रकार की दीक्षा ग्रहण करता है। उनके अनुसार योगकारक ग्रहों में यदि सूर्य बलवान् हो तो जातक वानप्रस्थ सम्प्रदाय में, शनि बलवान् हो तो नागा सम्प्रदाय में, बृहस्पति बलवान् हो तो भिक्षु सम्प्रदाय में, यदि शुक्र बलवान् हो तो चरक सम्प्रदाय में, मङ्गल बलवान् हो तो शाक्य सम्प्रदाय में, यदि चन्द्रमा बलवान् हो तो गुरु सम्प्रदाय में और यदि बुध बलवान् हो तो जीवक सम्प्रदाय में दीक्षा ग्रहण करता है।

'जात: पञ्चचतुर्वियच्चरवर: केन्द्रत्रिकोणस्थितै-
रेकस्थैर्बलिभि: प्रधानबलवत् खेटाश्रमस्थो भवेत् ।
आदित्यासितजीवशुक्रधरणीपुत्रेन्दुतारासुतै-
र्वानप्रस्थविवासभिक्षुचरका: शाक्यो गुरुर्जीवक:' ॥ (जातकपारिजात)

उक्त प्रव्रज्या के स्वरूप—

'वानप्रस्थस्तपस्वी वनगिरिनिलयो नग्नशीलो विवासो
भिक्षुः स्यादेकदण्डी सततमुपनिषत्तत्त्वनिष्ठो महात्मा ।

नानादेशप्रवासी चरकपतिवरः शाक्ययोगी कुशीलो
राजश्रीमान्यशस्वी गुरुरशनपरो जल्पको जीवकः स्यात्' ॥

(जातकपारिजात)

शशी दृगाणे रविजस्य संस्थितः
कुजार्किदृष्टः प्रकरोति तापसम्।
कुजांशके वा रविजेन दृष्टो
नवांशतुल्यां कथयन्ति तां पुनः ॥३॥

यदि चन्द्रमा शनि के द्रेष्काण में स्थित होकर शनि और मङ्गल से दृष्ट हो तो जातक तापसी होता है। मङ्गल के नवांश में स्थित चन्द्रमा यदि शनि से दृष्ट हो तो जातक मङ्गल के अनुरूप प्रव्रज्या ग्रहण करता है ॥३॥

जन्माधिपः सूर्यसुतेन दृष्टः शेषैरदृष्टः पुरुषस्य सूतौ।
आत्मीयदीक्षां कुरुते ह्यवश्यं पूर्वोक्तमत्रापि विचारणीयम् ॥४॥

अन्य ग्रहों की दृष्टि से युक्त जन्मराशीश यदि शनि से दृष्ट हो तो जातक जन्मराशीश के अनुरूप दीक्षा ग्रहण करता है ॥४॥

योगीशं दीक्षितं वा कलयति तरणिस्तीर्थपान्थं हिमांशु-
दुर्मन्त्रज्ञं च बौधाश्रयमवनिसुतो ज्ञो मतान्यप्रविष्टम्।
वेदान्तज्ञानिनं वा यतिवरममरेड्यो भृगुर्लिङ्गवृत्तिं
व्रात्यं शैलूषवृत्तिं शनिरिह पतितं वाऽथ पाषण्डिनं वा ॥५॥

सूर्य बलवान् हो तो वह जातक को योगमार्ग में श्रेष्ठ बनाता है। यदि चन्द्रमा बलवान् हो जातक को तीर्थों में घूमने वाला संन्यासी बनाता है। मङ्गल बलवान् होकर जातक को बौद्ध मत में दीक्षा की प्रेरणा देता है तथा उसे दुर्मन्त्र में सिद्धि देता है। बुध बलवान् होकर जातक को अपनी परम्परा से भिन्न मत में दीक्षा की प्रेरणा देता है। बृहस्पति के बलवान् होने से जातक वेदान्तज्ञ यतियों में श्रेष्ठ होता है। यदि शुक्र बलशाली हो तो जातक आडम्बर युक्त तापसी का स्वरूप मात्र आजीविका और भोगलिप्सा हेतु ग्रहण करता है। यदि शनि बलवान् हो जातक ज्ञानहीन पाषण्डी होता है ॥५॥

अतिशयबलयुक्तः शीतगुः शुक्लपक्षे
बलविरहितमेनं प्रेक्षते लग्ननाथः।
यदि भवति तपस्वी दुःखितः शोकतप्तो
धनजनपरिहीनः कृच्छ्रलब्धान्नपानः ॥६॥

शुक्लपक्ष में चन्द्रमा अत्यन्त बलान्वित होता है। बलहीन (कृष्णपक्ष का चन्द्रमा अर्थात् कृष्णपक्ष का जन्म हो) चन्द्रमा लग्नेश से देखा जाता हो तो जातक अत्यन्त दुःखी, शोकसन्तप्त, कठिनाई से उदर-पोषण करने वाला परिजनों से हीन तापसी होता है ॥६॥

प्रकथितमुनियोगे राजयोगो यदि स्या-
दशुभफलविपाकं सर्वमुन्मूल्य पश्चात्।
जनयति पृथिवीशं दीक्षितं साधुशीलं
प्रणतनृपशिरोभिः स्पृष्टपादाब्जयुग्मम् ॥७॥

उपर्युक्त प्रव्रज्याकारक योग के साथ जन्माङ्ग में यदि राजयोग भी उपस्थित हो तो पूर्वोक्त श्लोक में जिन दुष्ट फलों को कहा गया है वे सभी समूल नष्ट हो जाते हैं तथा जातक साधु गुणशील युक्त पृथ्वीपति होता है जिसके सम्मुख अनेक राजा उसके सम्मान में नत-मस्तक होते हैं ॥७॥

चत्वारो द्युचराः खनाथसहिताः केन्द्रे त्रिकोणेऽथवा
सुस्थाने बलिनस्त्रयो यदि तदा संन्याससिद्धिर्भवेत्।
सद्बाहुल्यवशाच्च तत्र सुशुभस्थानस्थितैस्तैर्वदेत्
प्रव्रज्यां महितां सतामभिमतां चेदन्यथा निन्दिताम् ॥८॥

इति मन्त्रेश्वरविरचितायां फलदीपिकायां प्रव्रज्यायोगो
नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥
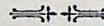
दशमेश के साथ चार ग्रह केन्द्र अथवा त्रिकोण में स्थित हों अथवा तीन बलशाली ग्रह शुभ स्थान में स्थित हों तो जातक किसी सम्प्रदाय में दीक्षित होकर सफल साधक (वीतरागी) होता है। शुभग्रह यदि अत्यन्त शुभद स्थिति में हों तब भी जातक सज्जनों के द्वारा पूजित संन्यासी होता है। यदि शुभग्रह शुभद स्थिति में न हों तो विपरीत फल होता है ॥८॥

इस प्रकार मन्त्रेश्वरकृत फलदीपिका में प्रव्रज्यायोग नामक
सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥२७॥

○

प्रव्रज्याकारक अन्य योग यहाँ उद्धृत करना अनुचित नहीं होगा। जातकपारिजात में कुछ अच्छे प्रव्रज्या योग दिये गये हैं जो निम्नवत् हैं—

'कर्मस्था बलिनस्त्रयो गगनगाः स्वोच्चादिवर्गस्थिताः
कर्मेशश्च बलाधिको यदि यतिस्तत्तुल्यशीलोऽथवा।
कर्मेशे बलवर्जिते गृहगृहप्राप्ते दुराचारवान्
तद्योगप्रदमध्यगौ धनमदस्थानाधिपौ कामधीः ॥
तद्योगप्रदखेचरैरिनक्षोणीकुमारान्वितः
संन्यासं समुपैति वित्ततनयस्त्रीवर्जितो मानवः।
सौम्यांशोपगतः सहस्रकिरणस्तुङ्गान्तभागस्थितं
खेटं पश्यति यौवने वयसि बाल्ये यतीशो भवेत् ॥

शुक्रेन्दुप्रविलोकिते गतबले लग्नाधिपे निर्धनो
भिक्षुः स्याद्यदि तुङ्गभांशकयुतस्तारापतिं पश्यति ।
एकस्थैरविलोकिते तु बहुभिर्लग्नेश्वरे दीक्षित-
स्तद्योगप्रदभावकारकदशाभुक्तौ तदीयं फलम् ॥
शीतांशुराशीशमिनात्मजो वा लग्नेश्वरः पश्यति दीक्षितः स्यात् ।
भौमर्क्षगे मन्ददृगाणभागे मन्देक्षिते शीतकरं यतिः स्यात् ॥

'जीवारमन्दलग्नेषु मन्ददृष्टियुतेषु च । लग्नाद्धर्मगते जीवे नृपयोगेऽपि तीर्थकृत् ॥
नवमस्थानगे चन्द्रे नभोगैर्नविलोकिते । नृपयोगेऽपि सञ्जातो दीक्षितो नृपतिर्भवेत् ।
सुरगुरुशशिहोरास्वार्किदृष्टासु धर्मे गुरुरथ भूपतीनां योगजस्तीर्थकृत् स्यात् ।
नवमभवनसंस्थे मन्दगेऽन्यैरदृष्टे भवति नरपयोगे दीक्षितः पार्थिवेन्द्रः' ॥

(१) अपने उच्चादि वर्गस्थ तीन ग्रह १०वें भाव में तथा १. दशमेश बलवान् हो तो यति के समान, २. दशमेश निर्बल होकर सप्तमस्थ हो तो दुराचारी सन्त, ३. उक्त तीनों योगकारक ग्रहों के मध्य द्वितीयेश और सप्तमेश स्थित हों तो कामासक्त साधु होता है । ४. तीनों योगकारक ग्रहों के साथ सूर्य, शनि और मङ्गल संयुक्त हों तो स्त्री, पुत्र और धन से हीन होकर संन्यासी होता है । (२) शुभनवांशस्थ सूर्य यदि परमोच्चस्थ प्रव्रज्याकारक ग्रह को देखता हो तो जातक युवावस्था या बाल्यावस्था में प्रव्रज्या ग्रहण करता है । (३) एक राशि (भाव) गत अनेक ग्रहों से यदि लग्नेश दृष्ट हो तो उस भावकारक ग्रह की दशान्तर्दशा में जातक प्रव्रज्या ग्रहण करता है । (४) चन्द्रराशीश को यदि शनि या लग्नेश देखता हो तो जातक दीक्षित होता है । (५) यदि मङ्गल की राशि (मेष-वृश्चिक) में स्थित चन्द्रमा शनि के द्रेष्काण में स्थित होकर शनि से दृष्ट हो तो जातक यति होता है । (६) बृहस्पति, भौम और शनि की राशि (धनु, मीन, मेष, वृश्चिक, मकर या कुम्भ राशि) लग्न में हो और शनि से दृष्ट हो तथा लग्न से नवम भाव में बृहस्पति स्थित हो तो जातक राजयोग होने पर भी तीर्थसेवी यति होता है । (७) नवें भाव में स्थित चन्द्रमा किसी भी ग्रह की दृष्टि से हीन हो तो जातक दीक्षा ग्रहण करने वाला राजा होता है । (८) बृहस्पति, शशि और लग्न पर शनि की पूर्ण दृष्टि हो तथा नवें भाव में बृहस्पति स्थित हो तो जातक राजा होकर भी तीर्थसेवी संन्यासी होता है । (९) नवम भाव में स्थित शनि पर अन्य किसी ग्रह की दृष्टि न हो तो राजयोग में उत्पन्न व्यक्ति भी प्रव्रज्या ग्रहण करता है ॥८॥

o

अष्टाविंशोऽध्याय:

उपसंहाराध्याय:

संज्ञाध्याय: कारको वर्गसंज्ञो वीर्याध्याय: कर्मजीवोऽथ योग: ।
योगो राज्ञां राशिशीलो ग्रहाणां मेषादीनां लग्नसम्प्राप्तशील: ॥१॥
भार्याभावो जातकं कामिनीनां सूनुर्बालारिष्टयोगोऽथ रोग: ।
भावस्तस्माद्द्वादशावाप्तभावा निर्याणं स्याद् द्विग्रहाद्याश्च तस्मात् ॥२॥
सूर्यादीनां यत्फलं तद्दशाप्तं भावादीनामीश्वराङ्का दशा च ।
सूर्यादीनामन्तराख्या दशाऽथ सव्यासव्या कालचक्रोऽष्टवर्ग: ॥३॥
होरासारावाप्तयद्यष्टवर्गो मान्द्यध्यायो गोचर: स्यात्प्रव्रज्य: ।
अध्यायानां विंशति: सप्तयुक्तान् जन्मन्येतद्गोलजं संवदामि ॥४॥

सत्ताईस अध्यायों वाले इस ग्रन्थ में मैंने (१) संज्ञाध्याय में विभिन्न पदों की व्याख्या की है, (२) कारकाध्याय में ग्रहों के कारकत्व का विवरण दिया है, (३) तीसरे अध्याय में राशि के विभिन्न विभागों का वर्णन है, (४) चौथा अध्याय ग्रहों के बलाबल को निरूपित करता है, (५) पञ्चम अध्याय कर्माजीव अर्थात् जातक की आजीविका के साधनों के निर्णय से सम्बन्धित है, (६) छठे अध्याय में विभिन्न योगों का विवरण है, (७) सातवें अध्याय में विभिन्न राजयोगों और उनके फलों का वर्णन है, (८) आठवाँ अध्याय लग्नादि द्वादश भावों के फल का विवरण प्रस्तुत करता है, (९) नवाँ अध्याय मेषादि लग्न के फल से सम्बन्धित है, (१०) दसवाँ अध्याय जन्माङ्ग के सप्तम भाव को समर्पित है, (११) ग्यारहवें अध्याय में स्त्री- जातक के सम्बन्ध में विचार किया गया है, (१२) बारहवें अध्याय में सन्तान भाव का विवेचन है, (१३) तेरहवाँ अध्याय बालारिष्ट को समर्पित है, (१४) चौदहवें अध्याय में रोगादि पर विचार किया गया है, (१५) पन्द्रहवें अध्याय में भावों के शुभाशुभत्व का विवेचन है, (१६) सोलहवें अध्याय में लग्नादि द्वादश भावों के समुदाय फल पर विचार किया गया है, (१७) सत्रहवें अध्याय में मृत्यु और मृत्युकाल पर विचार किया गया है, (१८) अठारहवें अध्याय में द्वयादि ग्रहयोगफल का विवेचन किया गया है, (१९) उन्नीसवें अध्याय में दशाफल का निरूपण है, (२०) बीसवें अध्याय में दशाफल पर विचार किया गया है, (२१) इक्कीसवें अध्याय में अन्तर्दशाफल का विवेचन है, (२२) बाईसवें अध्याय में कालचक्रदशा का निरूपण प्रस्तुत किया गया है, (२३) तेईसवाँ अध्याय अष्टकवर्गनिरूपण से सम्बन्धित है, (२४) चौबीसवें अध्याय में होरासारोक्त अष्टकवर्ग फल को निरूपित किया गया है, (२५) पच्चीसवें अध्याय में उपग्रहों और उनके फ़ल पर विचार किया गया है, (२६) छब्बीसवें अध्याय में गोचरफल का विवेचन है, (२७) सत्ताईसवें अध्याय में प्रव्रज्या योग की चर्चा है और (२८) अट्ठाईसवाँ अध्याय उपसंहाराध्याय है ॥१-४॥

श्रीशालिवाटिजातेन मया मन्त्रेश्वरेण वै।
दैवज्ञेन द्विजाग्रेण सतां ज्योतिर्विदां मुदे ॥५॥
सुकुन्तलाम्बां सम्पूज्य सर्वाभीष्टप्रदायिनीम्।
तत्कटाक्षविशेषेण कृता या फलदीपिका ॥६॥

इति मन्त्रेश्वरविरचितायां फलदीपिकायामुपसंहारो नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

श्रीशालिवाटि (तिन्नेवेल्ली) नामक स्थान में उत्पन्न ज्योतिर्विद् श्रेष्ठ ब्राह्मण मेरे—मन्त्रेश्वर के—द्वारा समस्त अभीष्ट सिद्धि को देने वाली सुकुन्तला माता की आराधना कर उन्हीं के कृपाकटाक्ष से दैवज्ञों को मोद प्रदान करने वाले इस फलदीपिका नामक ग्रन्थ की रचना की गई ॥५-६॥

इस प्रकार मन्त्रेश्वरकृत फलदीपिका में उपसंहार नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥२८॥

○